नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

भाग

8

सवृत्तिक-आगम-सूत्राणि-2



(दशाश्रुतस्कंधस्य-अष्टम-अध्ययनम्)

"कल्पसूत्रं" मूलं एवं वृत्तिः

मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

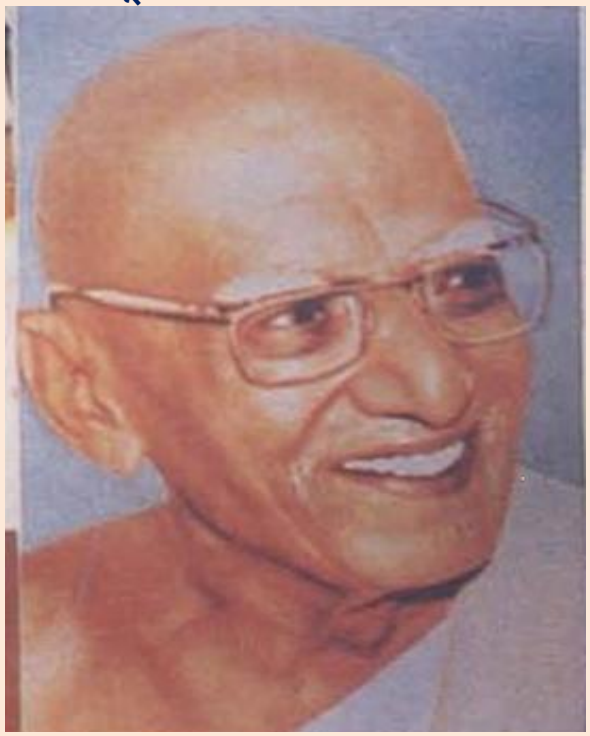
अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणा से

श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ, पालडी, अमदावाद

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

सच्चारित्र चूडामणि स्वर्गस्थ पूज्यपाद
गच्छाधिपति आचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागर
सूरीश्वरजी महाराज साहेब



श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ

वीतराग सोसायटी, प्रभूदास ठक्कर कोलेज रोड, पालडी, अमदावाद

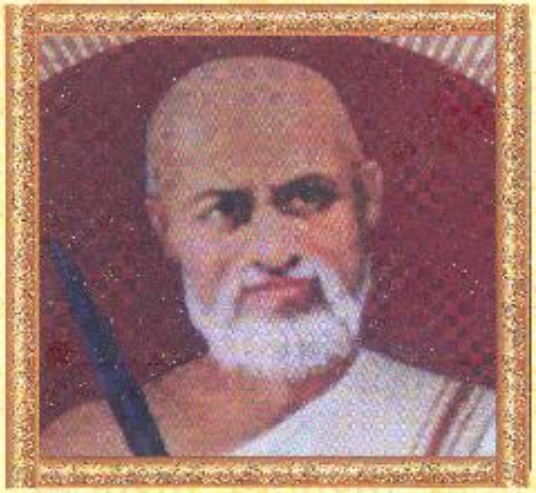
करीब पचास साल पहेले परम पूज्य स्वर्गस्थ गच्छाधिपति आचार्य देव श्रीमद् देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब द्वारा संस्थापित इस संघमें श्री शीतलनाथ भगवंत का जिनालय भी है, जिन के प्रतिष्ठाचार्य भी पूज्य देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी म० ही है |

इस संघमें पूज्य साधू-भगवंत एवं साध्वी-महाराज के लिए उपाश्रय भी है, जहां हर-साल चातुर्मास करवा के श्रावक-श्राविकाओ को धर्म-आराधन से लाभान्वित करवाया जाता है | इस संघमें आयंबिलभवन, उबाला हुआ पानी, ज्ञान-भण्डार एवं पाठशाला की भी बहोत अच्छी सुविधा प्रदान हो रही है | ऐसे सम्यग्-मार्गी संघ की सद्भावना और प्रभावक आचार्य पूज्य श्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणा से इस शास्त्र के लिए अनुदान प्राप्त हुआ है |

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

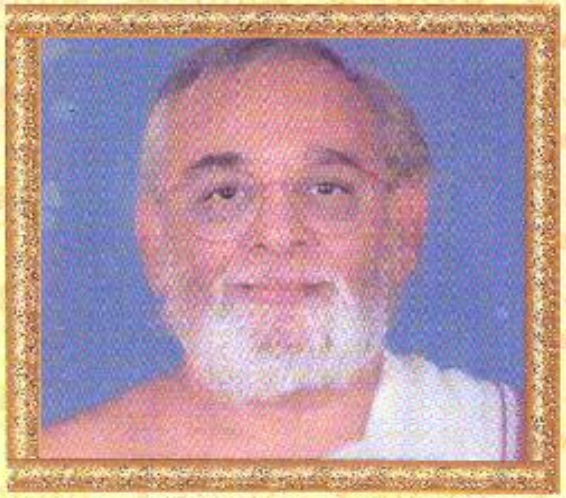
सवृत्तिक-आगम-सूत्राणि-2

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता



आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275



आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

(दशाश्रुतस्कंधस्य-अष्टम-अध्ययनम्)

श्री कल्पसूत्रम्

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित्त-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नमः

"कल्पसूत्र" मूलं एवं [सुबोधिकाख्य]-वृत्तिः

[विनयविजयजी रचिता सुबोधिका-वृत्तिः]

[आद्य संपादक: - पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म॰ सा॰]

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुनः संकलनकर्ता→ **मुनि दीपरत्नसागर** (M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि)

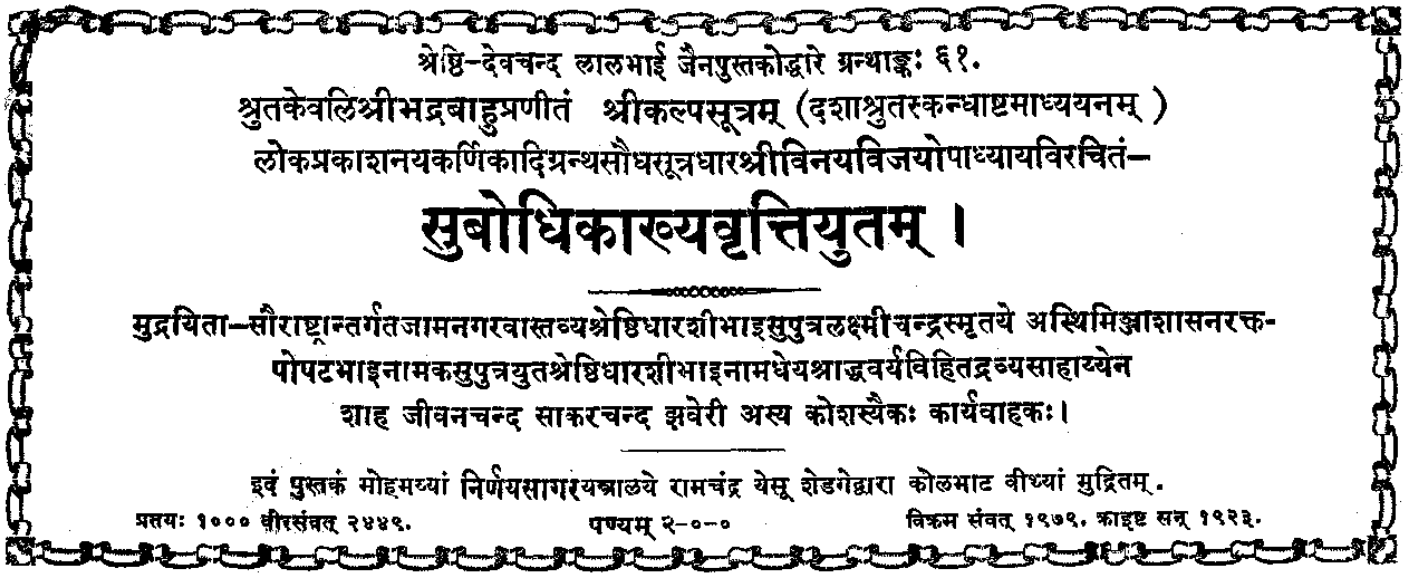
28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि-२-श्रेणी भाग-8

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



श्रेष्ठि-देवचन्द लालभाई जैनपुस्तकोद्धारे ग्रन्थाङ्कः ६१.

श्रुतकेवलिश्रीभद्रबाहुप्रणीतं श्रीकल्पसूत्रम् (दशाश्रुतस्कन्धाष्टमाध्ययनम्)

लोकप्रकाशनयकर्णिकादिग्रन्थसौधसूत्रधारश्रीविनयविजयोपाध्यायविरचितं–

सुबोधिकाख्यवृत्तियुतम् ।

मुद्रयिता–सौराष्ट्रान्तर्गतजामनगरवास्तव्यश्रेष्ठिधारशीभाइसुपुत्रलक्ष्मीचन्द्रस्मृतये अस्थिमिञ्जाशासनरक्त-
पोपटभाइनामकसुपुत्रयुतश्रेष्ठिधारशीभाइनामधेयश्राद्धवर्यविहितद्रव्यसाहाय्येन
शाह जीवनचन्द साकरचन्द झवेरी अस्य कोशस्यैकः कार्यवाहकः।

इदं पुस्तकं मोहमय्यां निर्णयसागरयन्त्रालये रामचंद्र येसू शेडगेद्वारा कोलभाट वीथ्यां मुद्रितम्.

प्रतयः १००० वीरसंवत् २४४९. पण्यम् २-०-० विक्रम संवत् १९७९. काइष्ट सन् १९२३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** कल्पसूत्र-सुबोधिका-वृत्तेः मूल संपादकेन संकलितः मुखपृष्ठः

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है, फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये, तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही "जैन-आगम-शास्त्रो" को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा, सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और "आगम मंजूषा" नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे, उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अव चूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ७०० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव "सागरजी"... ***.....मुनि दीपरत्नसागर...***

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी, जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली, बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही, साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो, मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी, [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- "*अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण* " इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना |

*** मुनि दीपरत्नसागर...

अनुदान दाता संस्था:- "श्री परम-आनंद श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ"

वीतराग सोसायटी, प्रभूदास ठककर कोलेज रोड, पालडी, अमदावाद

करीब ५० साल पहेले <u>परम पूज्य स्व. गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब</u> द्वारा संस्थापित इस संघमें श्री शीतलनाथ भगवंत का जिनालय भी है, जिन के प्रतिष्ठाचार्य भी पूज्य देवेंद्रसागरसूरीजी म०सा० ही है | इस संघमें पूज्य साधू भगवंत एवं साध्वीजीओ का उपाश्रय भी है जहा हर-साल चातुर्मास करवाके श्रावक-श्राविकाओ को धर्म-आराधन से लाभान्वित करवाया जाता है | इस संघमें आयंबिलभवन, उबाला हुआ पानी, ज्ञान-भण्डार एवं पाठशाला की भी बहोत अच्छी सुविधा प्रदान हो रही है | ऐसे सम्यग्-मार्गी संघ की सद्भावना और प्रभावक आचार्य पूज्य श्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणा से इस शास्त्र के लिए अनुदान प्राप्त हुआ है |

**** मुनि दीपरत्नसागर...*

'सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी'

इस "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" श्रेणि भाग १ से ८ के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व॰ गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे 'सागर समुदाय' के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये " सवृत्तिक-आगम-सुत्राणि-2 के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई , उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे | समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहेते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

**** मुनि दीपरत्नसागर*

[कात्रेज]पूना, शंखेश्वर, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.....मुनि दीपरत्नसागर

मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:		मूलांक:	व्याख्यानं	पृष्ठांक		मूलांक:	व्याख्यान	पृष्ठांक:
-----	इस प्रकाशन की भूमिका	०१२		००१-०१५	(१) प्रथमम्	०२६		११७-१४८	(६) षष्ठम्	२१८
-----	द्वितियसंस्करण भूमिका	०१३		०१५-०३६	(२) द्वितियम्	०६८		१४९-२२८	(७) सप्तमम्	२७८
-----	सेनप्रश्नांतर्गत् कल्पसूत्र-	०१४		०३७-०६७	(३) तृतीयम्	११२		००१-००७	(८) अष्टमम्	३४१
	उपयुक्त प्रश्नोत्तराणि			०६८-०९६	(४) चतुर्थम्	१५२		००१-०६४	(९) नवमम्	३६८
-----	कल्पसूत्र बृहत् अनुक्रम	०१८		०९७-११६	(५) पंचमम्	१८०			** प्रशस्ति:	४१४
-----	शैलानानरेशस्य प्रमाणपत्र	०२३			----------				----------	

अत्र मया संक्षिप्त-विषयानुक्रम: निर्दिष्ट: |

अस्य बृहत् विषयानुक्रम: मूल संपादकेन रचित:. अग्रे एकादशात् पृष्ठात् पंचदश-पृष्ठ: (११-१५) पर्यंत वर्तते |

[कल्पसूत्र- मूलं एवं वृत्ति:] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले "कल्पसूत्र" के नामसे सन १९२३ (विक्रम संवत १९७९) में देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार संस्था द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब |

कल्पसूत्र के मूल को "बारसासूत्र" भी कहेते है, १२१५ श्लोक प्रमाण कल्प-(बारसा)-सूत्र के अलग से भी बहोत प्रकाशन हुए है, पूज्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी संपादित 'कल्प(बारसा)सूत्र' हमने भी 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेनी के 40 वे भागमे छपवाया है | कल्पसूत्र पर दुसरी भी टीकाए है, एक चूर्णि भी हमने देखी है, मगर व्यवहारमे विनयविजयजी रचिता ये टीका ज्यादा प्रसिद्ध होने से उस का प्रकाशन करवा रहे है |

✣ हमारा ये प्रयास क्यों? ✣ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्यश्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम, फिर सूत्र आदि के नंबर लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा सूत्र आदि चल रहे है उसका सरलतासे ज्ञान हो शके | बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ 'दीप अनुक्रम' भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके |

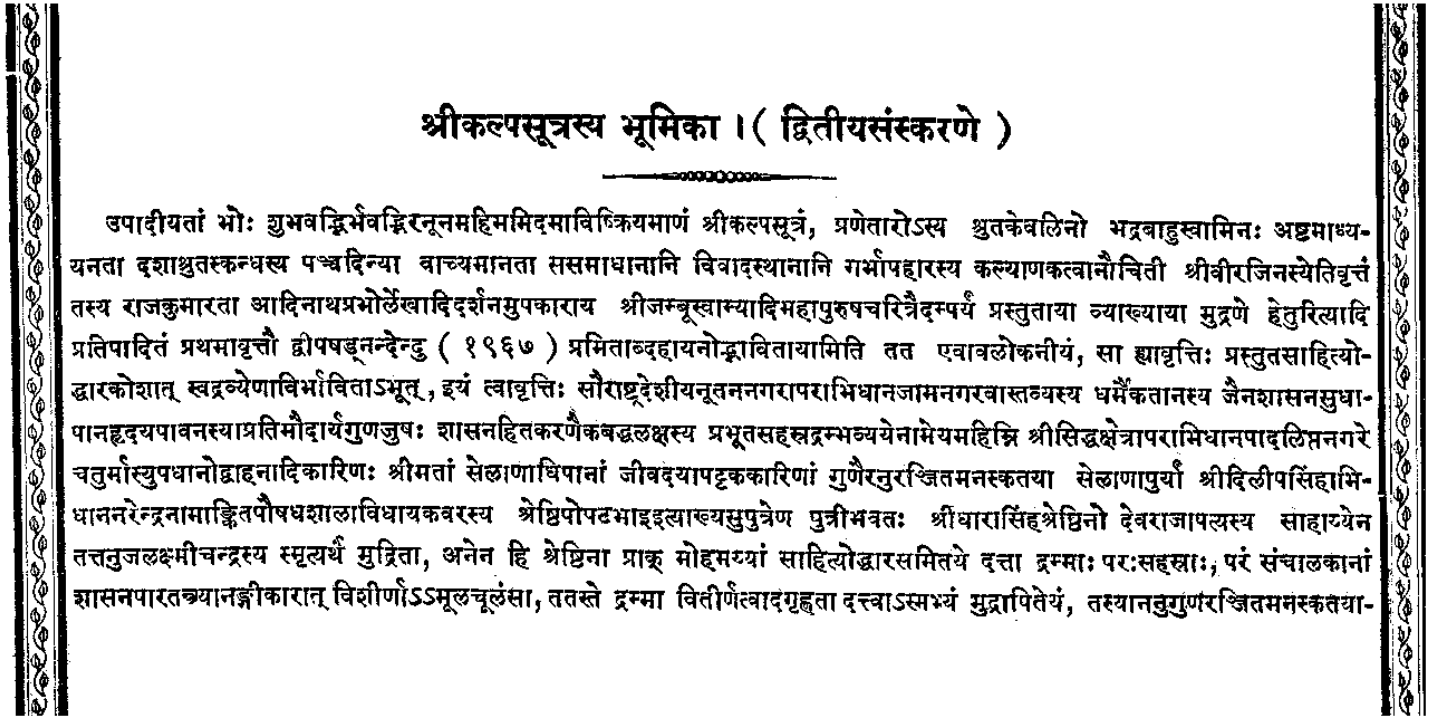
✣ हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची या 'गाथा' शब्द लिखा है| हर पृष्ठ के नीचे विशिष्ठ फूटनोट दी है |

✣ शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणासे और श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ, पालडी, अमदावाद की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये "सवृत्तिक-आगम-सूत्राणि_2" भाग-८ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है |

.... मुनि दीपरत्नसागर.

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्ति::

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||-|| दीप अनुक्रम [-]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



श्रीकल्पसूत्रस्य भूमिका ।(द्वितीयसंस्करणे)

उपादीयतां भोः शुभवद्भिर्भवद्भिरनूनमहिममिदमाविष्क्रियमाणं श्रीकल्पसूत्रं, प्रणेतारोऽस्य श्रुतकेवलिनो भद्रबाहुस्वामिनः अष्टमाध्ययनता दशाश्रुतस्कन्धस्य पञ्चदिन्या वाच्यमानता ससमाधानानि विवादस्थानानि गर्भापहारस्य कल्याणकत्वानौचिती श्रीवीरजिनस्येतिवृत्तं तस्य राजकुमारता आदिनाथप्रभोर्लेखादिदर्शनमुपकाराय श्रीजम्बूस्वाम्यादिमहापुरुषचरित्रैदम्पर्यं प्रस्तुताया व्याख्याया मुद्रणे हेतुरित्यादि प्रतिपादितं प्रथमावृत्तौ द्वीपषड्नन्देन्दु (१९६७) प्रमिताब्दहायनोद्भाविताया मिति तत एवावलोकनीयं, सा ह्यावृत्तिः प्रस्तुतसाहित्योद्धारकोशात् स्वद्रव्येणाविर्भाविताऽभूत्, इयं त्वावृत्तिः सौराष्ट्रदेशीयनूतननगरापराभिधानजामनगरवास्तव्यस्य धर्मैकतानस्य जैनशासनसुधापानहृदयपावनस्याप्रतिमौदार्यगुणजुषः शासनहितकरणैकबद्धलक्षस्य प्रभूतसहस्रद्रम्भव्ययेनामेयमहिम्नि श्रीसिद्धक्षेत्रापराभिधानपादलिप्तनगरे चतुर्मास्युपधानोद्वाहनादिकारिणः श्रीमतां सेलाणाधिपानां जीवदयापट्टकारिणां गुणैरनुरञ्जितमनस्कतया सेलाणापुर्यां श्रीदिलीपसिंहाभिधाननरेन्द्रनामाङ्कितपौषधशालाविधायकवरस्य श्रेष्ठिपोपटभाइइत्याख्यसुपुत्रेण पुत्रीभवतः श्रीधारासिंहश्रेष्ठिनो देवराजापत्यस्य साहाय्येन तत्तनुजलक्ष्मीचन्द्रस्य स्मृत्यर्थं मुद्रिता, अनेन हि श्रेष्ठिना प्राक् मोहमय्यां साहित्योद्धारसमितये दत्ता द्रम्माः पञ्चसहस्राः, परं संचालकानां शासनपारतन्त्र्यानङ्गीकारात् विशीर्णाऽऽमूलचूलंसा, ततस्ते द्रम्मा वितीर्णत्वादगृह्णता दत्त्वाऽस्मभ्यं मुद्रापितेयं, तस्यानुगुणरञ्जितमनस्कतया-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	*** अत्र पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरेण लिखिता: सुबोधिका-वृत्तेः भूमिका वर्तते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [-]

ऽस्माभिरपि विहितमेतत् कार्यं, यद्यपि तेषामभूदिच्छा सर्वासां प्रतीनां प्राभृतीकरणे परं सौकर्याभावं निरीक्ष्य समालोक्य चानेकेषां भव्यात्मनां तथाविधनिष्क्रयरहिते पुस्तकग्रहणे संकोचं विभाव्य चास्मदीयकोशव्यवस्थासौस्थ्यं परःशतं प्रतीनां दत्त्वा प्राभृताय शेषा अर्धमूल्येन स्थापिताः, तैः आगतद्रम्मैः पुनर्मुद्रयिष्यन्ति नूतनं पुस्तकरत्नमित्याशास्महे **श्रेष्ठिदेवचन्द्रलालभाईजैनपुस्तकोद्धाराध्यक्षाः ।**

लेखकाः-आनन्दा उदन्वदन्ताः, रत्नपुर्यां मालवे १९८० (गूजराती संवत् १९७९) श्रावणशुक्लैकादश्याम् ।

सदा जगज्जीवहितोद्धुराणां, जिनाधिपानां स्थविरोत्तमानाम् ।
चरित्रपङ्कं विवृतं मुनीनां, वृत्तं च दृष्ट्वाऽत्र न कस्य हर्षः ? ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

सेनप्रश्नान्तर्गतानि कल्पसूत्राद्युपयुक्तानि प्रश्नोत्तराणि.

सेनप्रश्नान्तर्गतानि कल्पसूत्रोपयोगीनि प्रश्नोत्तराणि पाठकसौकर्याय अत्रोल्लिख्यन्ते, अत्र आद्यभागे योऽङ्कः सोऽत्रत्यवाच्यसूत्राङ्कः पङ्क्तेरन्त्ये एक उल्लाससत्कोऽन्यस्तु प्रश्नोत्तरसत्कः

१४७ मरुदेव्यध्ययनं (पहाणं नामज्झयणं) विभावयन्—प्ररूपयन्नित्यर्थः १—२०

१११ सांवत्सारिकदानात् पूर्वं पश्चाद्वा लोकान्तिककृता दीक्षाविज्ञप्तिः १—५४

१११ सप्ताधिकसप्तशतादीनां लोकान्तिकानां प्रत्येकं चतुःसहस्रसामानिकादिः परिवारः,सर्वेषां भवस्थितिर्लोकान्तिकवदिति १—५५

स्थ. गा. १४ 'देविंदिगणिं नमंसामि'त्ति पादोपलक्षिता गाथा श्रीदेवर्धिगणिशिष्यकृता १—५६

स्थ. स्थविरावल्यां वज्रसेनसूरिशिष्याणां चन्द्रादीनामलिखनमत्र वाचनाभेदेन १—७९

१९ अष्टशतसंख्यान्तर्गततया सिद्धोऽपि श्रीवृषभदेवो नानन्तकालपतितः, सर्वेषामपि जिनानां यथोक्तभवसंख्याया एवार्वाक् प्रथमसम्यक्त्वलाभात् १—१०७

४२ पद्मैरुपलक्षितं सरः पद्मसरः न तु तन्नामकं किञ्चित् द्वीपान्तरे सरोऽस्ति १—१०८

2

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र कल्पसूत्र-उपयुक्त कतिपयानि सेन-प्रश्नोत्तराणि निर्दिष्टानि |

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||-|| दीप अनुक्रम [-]

स्थ. आगमव्यवहारिभिः संभूतिसूरिभिरनुज्ञानात् श्रीस्थूलभद्राणां शय्यातर्यो अपि कोशाया गृहे पिण्डादिग्रहणमिति १–१०९
१४ इन्द्रविमानेभ्यः सामानिकानां त्रायस्त्रिंशानां च पृथक् पृथक् विमानानि १–११५
३१ जिनानां पूर्वदेवादिभवसदृशोऽवधिरिति न सर्वजिनानां स समानः १–१२७
९९ षष्टिलक्षाधिककोटीमिताः कलशा एवं–प्रत्येकमष्टवाराः सहस्रेणाभिषेकात् अष्टसहस्री, कनकमयादिभेदेनाष्टधा कलशाः इति चतुःषष्टिसहस्री कलशानां,सार्धद्विशतेनाभिषेकेण गुणनाद् यथोक्तसंख्या, अभिषेकसंख्या त्वेवं–अज्योतिष्काणां द्वाषष्टेरिन्द्राणां द्वाषष्टिः, द्वात्रिंशदधिकशतसूर्यचन्द्राणां तावन्तः,दक्षिणोत्तरासुरेशेन्द्राणीनां दश,नवानां नागादीनामग्रमहिषीणां द्वादश, व्यन्तराणां ज्योतिष्काणां च चत्वारश्चत्वारः,सौधर्मेशानेन्द्राग्रमहिषीणामष्टाष्ट,सामानिकत्रायस्त्रिंशाङ्गरक्षकपार्षद्यानीकाधिपप्रकीर्णकानामेकैकः, चत्वारो लोकपालानामिति ६२-१३२-१०-१२-४-४ ८-८-१-१-१-१-१-१-४=२५० २–३०
सा. २७ विना कारणं संखण्ड्यां साधुभिर्न विहरणं, त्रिंशता चत्वारिंशता वा जनैश्च संखडी, साधर्मिकवात्सल्यमपि संखडी २–३४
१११ लोकान्तिका एकावतारिण एवेति नियमाभावः २–५२
१४७ श्रीवीरस्यायुर्द्वासप्ततिवर्षमानं यत् तन्यूनाधिकमासानामविवक्षणात्, आयुश्च गर्भात् ८२–६४
स्थ.गणभृतां वाचनाभेदोऽपि परस्परं, तेन चासंभोगिकत्वसंभावनापि मिथः २–८९
१२९ अन्यभरतेषु सर्वेष्वैरवतेषु च भस्मग्रहकुमतबाहुल्यादि २–९३
१९ एतानि अन्यानि वाऽऽश्चर्याणि दशसु क्षेत्रेषु, परं दशसंख्यानियमः २–९४
१९ श्रीवीरः सिंहभवानन्तरं भ्रान्त्वा चक्री जात इति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

सुरादिभवो मध्ये ज्ञातव्यः १–११३

२११ प्रथमतीर्थकृता सह दीक्षाग्राहकाः स्वामिवत् दीक्षापाठोच्चारं करोति,अन्यैः सह प्रव्रजितानां तु द्रव्यक्षेत्राद्यनुसारेण तपस्याग्रहणं २–१८७

११२ तीर्थकृदानमभव्या नाप्नुवन्तीति वृद्धवादः, तथाविधग्रन्थाक्षराणां त्वस्मृतिः २–१८८

१४८ श्रीसुधर्मस्वाम्यादयो नवमपूर्वान्तर्गतमेतदध्ययनं पञ्चदिनीं यावदभाणिषुः २–२०१

१९ भरतैरावतयोर्युग्मिनां न्यूनाधिकता स्यात्, न देवकुर्वादिषु, ततः संहरणभावे आनयनमेव कुतोऽपि ३–१३

२१० मृतयुग्मिशरीराणि महाखगाः नीडकाष्ठमिवोत्पात्याम्बुधौ चिक्षिपुः ३–३०

३ सुपार्श्वचरित्रे श्रीशान्तिनाथचरित्रे च च्यवनकल्याणकेऽपि सुरेन्द्रागमनादि ३–३३

४ तीर्थकरमातरश्चतुर्दशापि स्वप्नान् मुखे प्रविशतः पश्यंति ३–५६

स्थ. यक्षार्थया बाल्यात् मात्रेव पालितत्वात् महागिरिसुहस्तिनोरार्योपपदत्वम् ३–७७

७५ गजकुम्भवृषभाख्यान् स्वप्नान् प्रतिवासुदेवमातरः पश्यन्ति ३–८०

९६ मध्यरात्रे एव गर्भावतारभावात् सप्तरात्राधिका एव नव मासा भवन्ति, सिद्धान्तशैल्या तु अद्धट्ठमेत्यादि ३–८४

७४ चक्रवर्त्तिमातरश्चतुर्दश स्वप्नानस्फुटान् पश्यन्ति ३–१०३

१४ सर्वेऽपीन्द्राः सर्वदा सम्यग्दृष्टयः ३–१३३

१४ ऐरावणाद्या वाहनकाले गजादिरूपिणः सर्वदा तु सुररूपाः ३–१४०

१९ मल्लिजिनस्य वैयावृत्ये साध्व्यस्तिष्ठन्ति, पर्षत्स्थितिस्तु सर्वेषां जिनानां समानैव ३–१४९

पौषधवतां श्राद्धानां कर्पूरादिभिः श्रीकल्पपूजा तद्वतीनां श्राद्धीनां गुंहलिकान्युञ्छनादि च न कल्पते ३–१७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

९ अष्टाविंशत्यधिकशतप्रसृतिभिर्द्रोणः ३–१८८
पार्श्वेऽस्वाध्यायो भवति तदापि अवश्यकरणीयत्वात्
कल्पवाचनं शुध्यति ३–१८९
१३४ तीर्थकृतां पार्श्वे यैः सम्यक्त्वलाभपूर्वं देश-
विरतिं सर्वविरतिं वा प्रतिपन्नास्त एव तत्परिवारभूताः ३–२३२
९७ भवनपत्यादिवत् क्रीडाप्रियत्वेन कुमार्यो दिक्कुमार्यः ३–३२५
जातिस्मरणवान् अतीतान् संख्यातान् भवान् पश्यति ३–३४१
९८ तीर्थकृतां जन्मानन्तरं द्वात्रिंशद्धिरण्यकोटीमानां
वृष्टिं देवाः कुर्वन्ति ३–४४३
१४७ श्रीवीरस्य चतुर्दशीदिनादेशनारम्भः अमावास्या-
यामेकोनत्रिंशन्मुहूर्त्तैर्निर्वाणं च ३–४५०
१४८ श्रीदेवर्धिगणिभिः सर्वोऽपि सिद्धान्तः पुस्तकारूढः
कृतः अन्यपुस्तकानि तु पुरापि बहून्येवाभूवन् ४–२३
सा.२१पारणके उत्तरपारणके चैकाशनकं विनापि चउत्थ-
भत्तं छट्ठभत्तमित्यादि कथ्यते, परम्परया सैकाशनेऽभक्तार्थे
चउत्थभत्तं अन्यथा अभत्तट्ठमिति ४–५८
१४८श्राद्धादीनुद्दिश्य पठनं कल्पस्य विना पर्युषणां न युक्तं४–६१
चातुर्मासिकपाक्षिकप्रतिक्रमणानां चतुर्दश्यां चतुर्मा-
सीकरणात् न्यूनाधिकत्वं, परमाचरणया निर्दोषं, श्राद्धानां
कल्पसूत्रश्रावणवत् ४–१११
सामान्योपयोगीनि चैतानि
पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकाणां क्षामणानि तपांसि
च यथाक्रमं द्वितीयां पञ्चमीं दशमीं च यावत् शुध्यन्ति २–४४
घटीद्वयात्प्रारभ्य मिलन्ती तिथिः शुध्यति न तु न्यूना३–११६
वृद्धौ सत्यां स्वल्पाऽप्यग्रेतना तिथिः प्रमाणम् ३–१८५
सांवत्सरिके सनमस्कारचत्वारिंशल्लोकोद्योतचिन्तनं ३–२८६
केवलसाधुभिः पाक्षिकप्रतिक्रमणे तपआद्यतिचारा
यद्यायान्ति तदा कथनीयाः ३–३३२
आवश्यकचूर्ण्यादौ श्राद्धानां चरवलक (रजोहरण)-
ग्रहणाक्षराणि ३–३३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्पसूत्रविषयानुक्रमः ॥

विषयः	सूत्राङ्कः	पत्राङ्कः	विषयः	सूत्राङ्कः	पत्राङ्कः	विषयः	सूत्राङ्कः	पत्राङ्कः
मङ्गलादि		१	चैत्यपरिपाट्यादीनि पञ्च कार्याणि		७	फलस्य पृच्छा विचारणं च	७	१३
आचेलक्यादयः कल्पाः		४	अष्टमतपसि नागकेतुकथा		८	स्वप्नफलकथनं स्वप्नाधिकारश्च	८	१५
आचारभेदे कारणं दृष्टान्ताश्च		५	संक्षिप्तवाचनया श्रीवीरचरित्रम्	१	९	बाल्यातिक्रमे पुत्रविज्ञानादि फलं	९	१६
चतुर्मास्याः परतः स्थाने कारणानि		५	षट्कल्याणकवादखण्डनम्		९	स्वप्नफलनिवेदनम्	१०	१६
चतुर्मासीयोग्यक्षेत्रगुणाः		६	मध्यमवाचनया श्रीवीरचरित्रम्	२	१०	स्वप्नफलाङ्गीकारे हर्षः	११	१६
तृतीयौषधदृष्टान्तः		६	श्रीवीरस्य गर्भावतारः	३	११	स्वप्नफलवचसोऽङ्गीकारः	१२	१६
कल्पमहिमा		७	देवानन्दायाः स्वप्नदर्शनम्	४	१२	इन्द्रस्वरूपं (कार्त्तिकश्रेष्ठिकथा)	१३	१८
पूर्वलेखने मषीमानम्		७	ऋषभदत्तपार्श्वे गमनम्	५	१२	श्रीवीरगर्भावतारे हर्षः	१४	१९
वाचनाश्रवणाधिकारिणः		७	स्वप्ननिवेदनम्	६	१३	शक्रस्तवः (मेघकुमारकथा च)	१५	२१

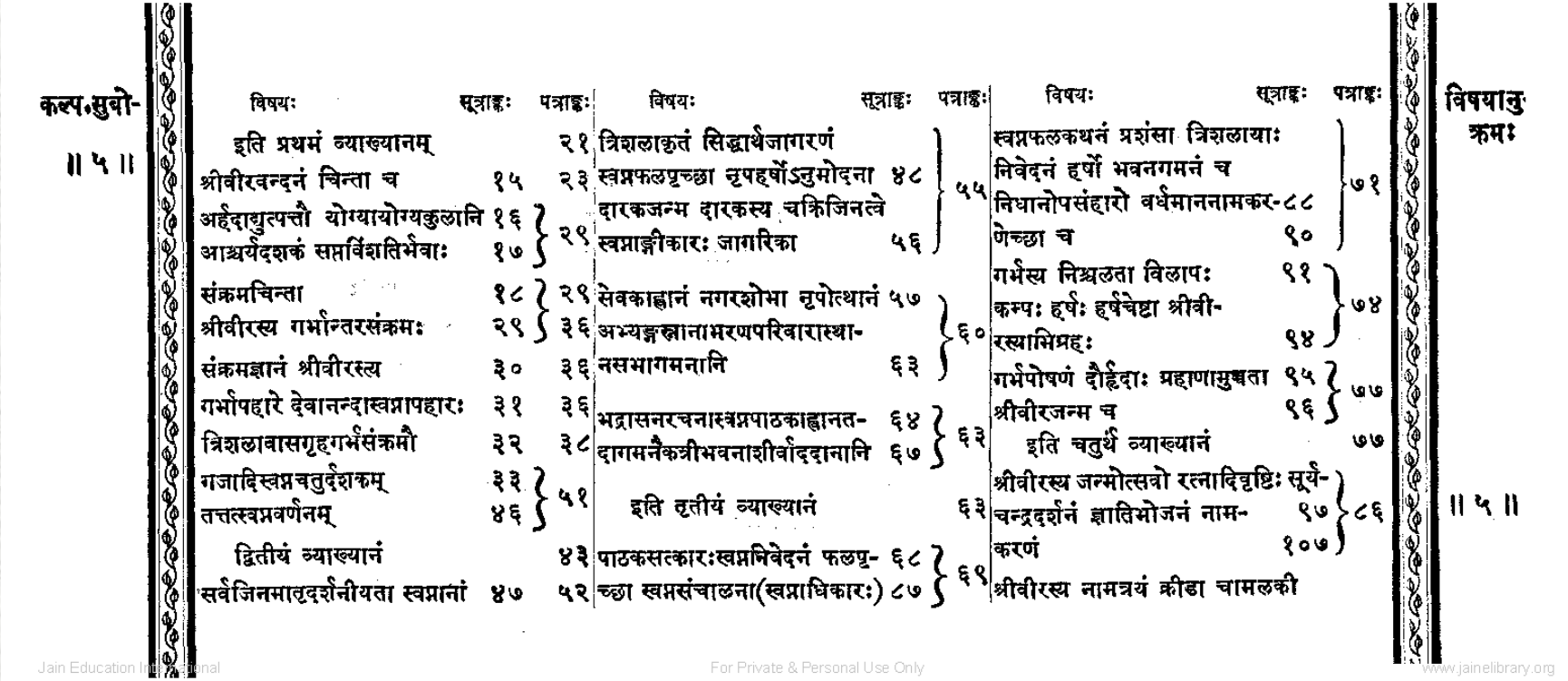
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र मूल-संपादकेन रचितः अस्या वृत्तेः विषयानुक्रमः वर्तते, तस्य पृष्ठांकः प्रत-पृष्ठांकानुसार ज्ञातव्यः

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो- ॥ ५ ॥

विषयः	सूत्राङ्कः	पत्राङ्कः
इति प्रथमं व्याख्यानम्		२१
श्रीवीरवन्दनं चिन्ता च	१५	२३
अर्हदायुत्पत्तौ योग्यायोग्यकुलानि	१६	२९
आश्चर्यदशकं सप्तविंशतिर्भवाः	१७	
संक्रमचिन्ता	१८	२९
श्रीवीरस्य गर्भान्तरसंक्रमः	२९	३६
संक्रमज्ञानं श्रीवीरस्य	३०	३६
गर्भापहारे देवानन्दास्वप्नापहारः	३१	३६
त्रिशलावासगृहगर्भसंक्रमौ	३२	३८
गजादिस्वप्नचतुर्दशकम्	३३	५१
तत्तत्स्वप्नवर्णनम्	४६	
द्वितीयं व्याख्यानं		४३
सर्वजिनमातृदर्शनीयता स्वप्नानां	४७	५२
त्रिशलाकृतं सिद्धार्थजागरणं		५५
स्वप्नफलपृच्छा नृपहर्षोऽनुमोदना	४८	
दारकजन्म दारकस्य चक्रिजिनत्वे		
स्वप्नाङ्गीकारः जागरिका	५६	
सेवकाह्वानं नगरशोभा नृपोत्थानं	५७	६०
अभ्यङ्गस्नानाभरणपरिवारास्था-		
नसभागमनानि	६३	
भद्रासनरचनास्वप्नपाठकाह्वानत-	६४	६३
दागमनैकत्रीभवनाशीर्वाददानानि	६७	
इति तृतीयं व्याख्यानं		६३
पाठकसत्कारःस्वप्ननिवेदनं फलपृ-	६८	६९
च्छा स्वप्नसंचालना(स्वप्नाधिकारः)	८७	
स्वप्नफलकथनं प्रशंसा त्रिशलायाः		७१
निवेदनं हर्षो भवनगमनं च		
निधानोपसंहारो वर्धमाननामकर-	८८	
णेच्छा च	९०	
गर्भस्य निश्चलता विलापः	९१	७४
कम्पः हर्षः हर्षचेष्टा श्रीवी-		
रस्याभिग्रहः	९४	
गर्भपोषणं दौर्हृदाः प्रहाणामुच्चता	९५	७७
श्रीवीरजन्म च	९६	
इति चतुर्थं व्याख्यानं		७७
श्रीवीरस्य जन्मोत्सवो रत्नादिवृष्टिः सूर्य-		८६
चन्द्रदर्शनं ज्ञातिभोजनं नाम-	९७	
करणं	१०७	
श्रीवीरस्य नामत्रयं क्रीडा चामलकी		

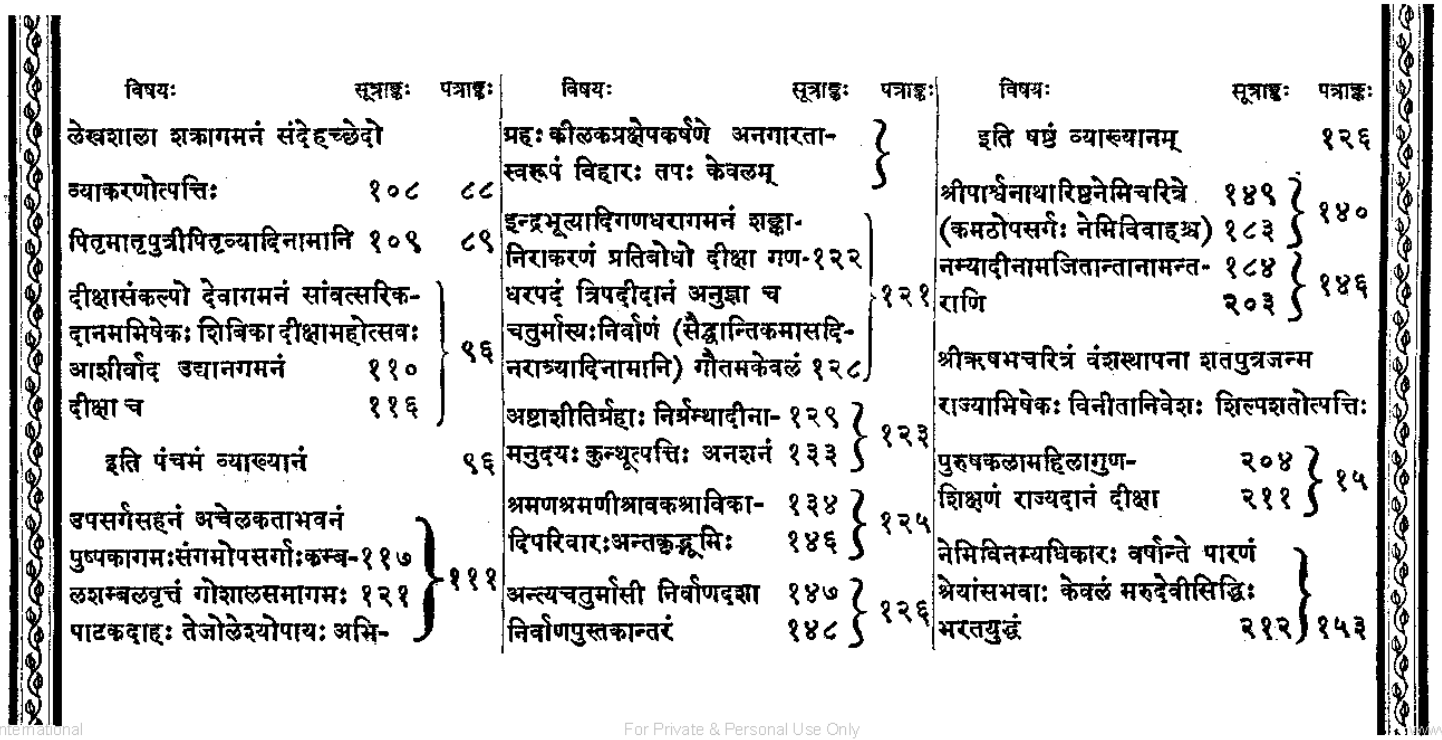
विषयानुक्रमः ॥ ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



विषयः	सूत्राङ्कः	पत्राङ्कः
लेखशाला शक्रागमनं संदेहच्छेदो व्याकरणोत्पत्तिः	१०८	८८
पितृमातृपुत्रीपितृव्यादिनामानि	१०९	८९
दीक्षासंकल्पो देवागमनं सांवत्सरिक-दानमभिषेकः शिबिका दीक्षामहोत्सवः आशीर्वाद उद्यानगमनं	११०	९६
दीक्षा च	११६	
इति पंचमं व्याख्यानं		९६
उपसर्गसहनं अचेलकताभवनं पुष्पकागमःसंगमोपसर्गाःकम्ब-लशम्बलवृत्तं गोशालसमागमः पाटकदाहः तेजोलेश्योपायः अभि-	११७ १२१	१११

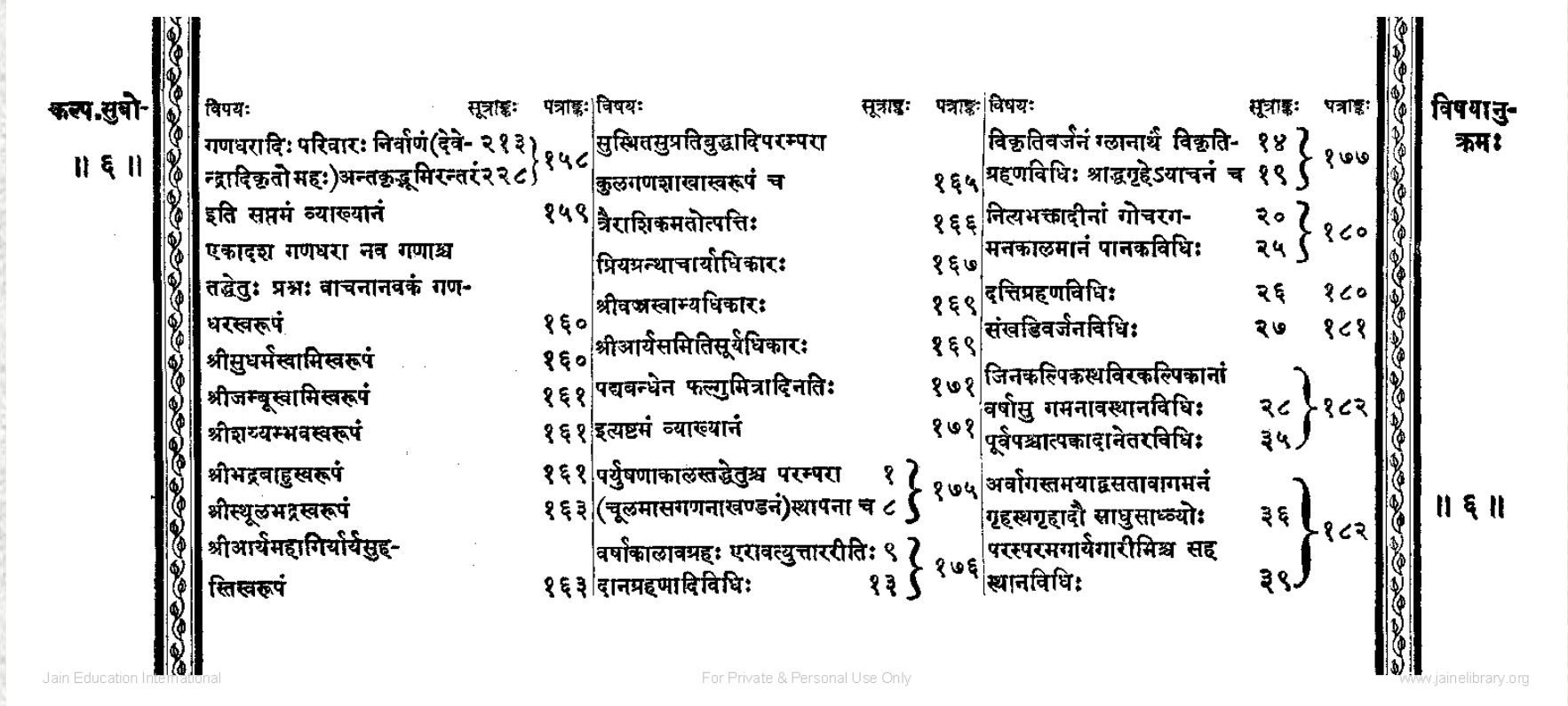
विषयः	सूत्राङ्कः	पत्राङ्कः
ग्रहः कीलकप्रक्षेपकर्षणे अनगारता-स्वरूपं विहारः तपः केवलम्		
इन्द्रभूत्यादिगणधरागमनं शङ्का-निराकरणं प्रतिबोधो दीक्षा गण-धरपदं त्रिपदीदानं अनुज्ञा च	१२२	१२१
चतुर्मास्यःनिर्वाणं (सैद्धान्तिकमासदि-नराज्यादिनामानि) गौतमकेवलं	१२८	
अष्टाशीतिर्ग्रहाः निर्ग्रन्थादीना- मनुदयः कुन्थूत्पत्तिः अनशनं	१२९ १३३	१२३
श्रमणश्रमणीश्रावकश्राविका- दिपरिवारःअन्तकृद्भूमिः	१३४ १४६	१२५
अन्त्यचतुर्मासी निर्वाणदशा निर्वाणपुस्तकान्तरं	१४७ १४८	१२६

विषयः	सूत्राङ्कः	पत्राङ्कः
इति षष्ठं व्याख्यानम्		१२६
श्रीपार्श्वनाथारिष्टनेमिचरित्रे (कमठोपसर्गः नेमिविवाहश्च)	१४९ १८३	१४०
नम्यादीनामजितान्तानामन्त-राणि	१८४ २०३	१४६
श्रीऋषभचरित्रं वंशस्थापना शतपुत्रजन्म राज्याभिषेकः विनीतानिवेशः शिल्पशतोत्पत्तिः		
पुरुषकलामहिलागुण- शिक्षणं राज्यदानं दीक्षा	२०४ २११	१५
नेमिविनम्यधिकारः वर्षान्ते पारणं श्रेयांसभवाः केवलं मरुदेवीसिद्धिः भरतयुद्धं	२१२	१५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||-|| दीप अनुक्रम [-]

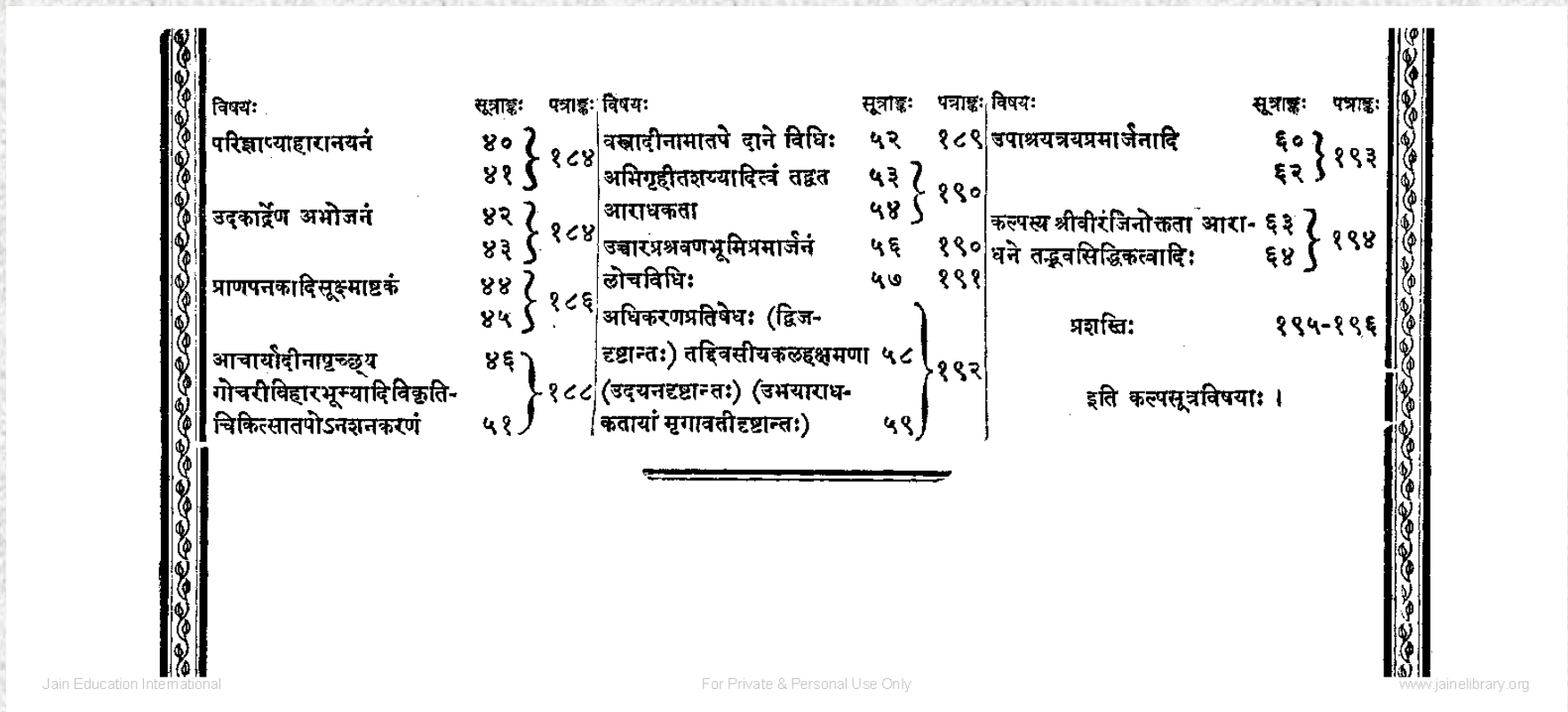
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो- ॥ ६ ॥ विषयानुक्रमः

विषयः	सूत्राङ्कः	पत्राङ्कः
गणधरादिः परिवारः निर्वाणं(देवे- न्द्रादिकृतो महः)अन्तकृद्भूमिरन्तरं	२१३-२२८	१५८
इति सप्तमं व्याख्यानं		१५९
एकादश गणधरा नव गणाश्च तद्धेतुः प्रभः वाचनानवकं गण- धरस्वरूपं		१६०
श्रीसुधर्मस्वामिस्वरूपं		१६०
श्रीजम्बूस्वामिस्वरूपं		१६१
श्रीशय्यम्भवस्वरूपं		१६१
श्रीभद्रबाहुस्वरूपं		१६१
श्रीस्थूलभद्रस्वरूपं		१६३
श्रीआर्यमहागिर्यार्यसुह- स्तिस्वरूपं		१६३
सुस्थितसुप्रतिबुद्धादिपरम्परा कुलगणशाखास्वरूपं च		१६५
त्रैराशिकमतोत्पत्तिः		१६६
प्रियग्रन्थाचार्याधिकारः		१६७
श्रीवज्रस्वाम्यधिकारः		१६९
श्रीआर्यसमितिसूर्यधिकारः		१६९
पद्मबन्धेन फल्गुमित्रादिनतिः		१७१
इत्यष्टमं व्याख्यानं		१७१
पर्युषणाकालस्तद्धेतुश्च परम्परा (चूलमासगणनाखण्डनं)स्थापना च	१-८	१७५
वर्षाकालावग्रहः एरावत्युत्तारीतिः दानग्रहणादिविधिः	९-१३	१७६
विकृतिवर्जनं ग्लानार्थं विकृति- ग्रहणविधिः श्राद्धगृहेऽयाचनं च	१४-१९	१७७
नित्यभक्तादीनां गोचरग- मनकालमानं पानकविधिः	२०-२५	१८०
दत्तिग्रहणविधिः	२६	१८०
संखडिवर्जनविधिः	२७	१८१
जिनकल्पिकस्थविरकल्पिकानां वर्षासु गमनावस्थानविधिः पूर्वपश्चात्पकादानेतरविधिः	२८-३५	१८२
अर्वागस्तमयाद्वसतावागमनं गृहस्थगृहादौ साधुसाध्व्योः परस्परमगार्यगारीमिश्र सह स्थानविधिः	३६-३९	१८२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



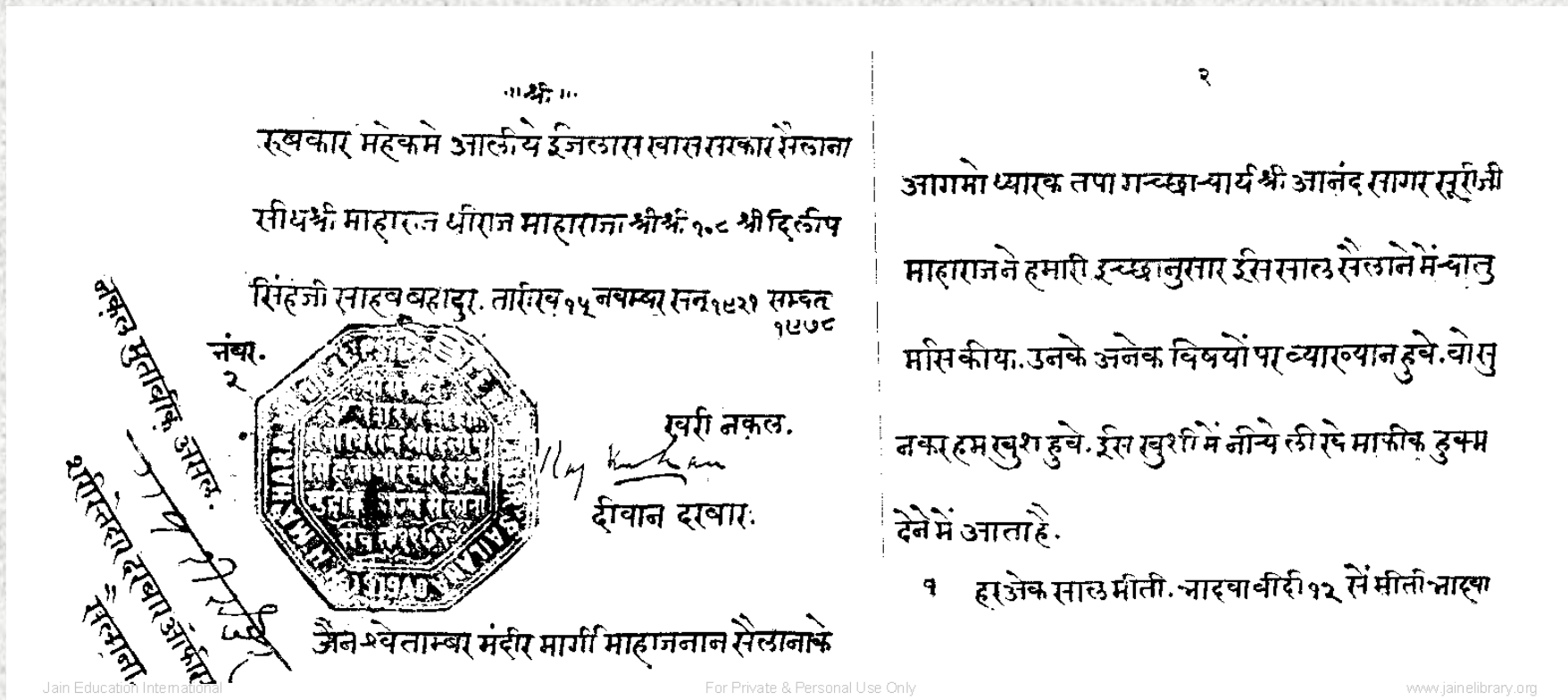
विषयः	सूत्राङ्कः	पत्राङ्कः
परिज्ञाप्याहारानयनं	४०	१८४
	४१	
उदकार्द्रेण अभोजनं	४२	१८४
	४३	
प्राणपनकादिसूक्ष्माष्टकं	४४	१८६
	४५	
आचार्यादीनापृच्छ्य गोचरीविहारभूम्यादिविकृति-चिकित्सातपोऽनशनकरणं	४६ ५१	१८८
वस्त्रादीनामातपे दाने विधिः	५२	१८९
अभिगृहीतशय्यादित्वं तद्वत आराधकता	५३ ५४	१९०
उच्चारप्रश्रवणभूमिप्रमार्जनं	५६	१९०
लोचविधिः	५७	१९१
अधिकरणप्रतिषेधः (द्विज-दृष्टान्तः) तद्दिवसीयकलहक्षमणा (उदयनदृष्टान्तः) (उभयाराधकतायां मृगावतीदृष्टान्तः)	५८ ५९	१९२
उपाश्रयत्रयप्रमार्जनादि	६० ६२	१९३
कल्पस्य श्रीवीरजिनोक्तता आराधने तद्भवसिद्धिकत्वादिः	६३ ६४	१९४
प्रशस्तिः		१९५-१९६
इति कल्पसूत्रविषयाः ।		

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



॥ श्रीः ॥

रूबकार मेहकमे आलीये इजलास खास सरकार सैलाना

सीधश्री माहाराज धीराज माहाराजा श्रीश्री १०८ श्री दिलीप

सिंहजी साहब बहादुर. तारीख १५ नवम्बर सन १९२१ सम्वत १९७८

नंबर. २

खरी नकल.

दीवान दरबार.

नक्ल मुताबिक असल.

श्रीसंघका दरबार आर्फत सैलाना

जैन श्वेताम्बर मंदीर मार्गी माहाजनान सैलानाके

२

आगमोध्यारक तपा गच्छा-चार्य श्री आनंद सागर सूरीजी माहाराजने हमारी इच्छानुसार ईस साल सैलानेमें चातु मासि कीया. उनके अनेक विषयों पर व्याख्यान हुवे. वो सु नकर हम खुश हुवे. ईस खुशी में नीचे लीखे माफीक हुक्म देने में आता है.

१ हा अेक साल मीती. चादवा वीदी १२ सें मीती नाश्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** शैलाना-नगरस्य नृपेण (राज्ञा) पूज्य आनन्दसागरसूरीश्वरं प्रदत्त खिताब:

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

३

सुरी ५ तक याने पर्युषणों के दीनो में सदा बंद माफीक
पलती रहेगी. ईसमें विसेष ये हुक्म दियाजाताहे के.
सैलाने की हर मे इन दिनो में बकरा नही माराजावेगा.
२ हमारी साल गीरह की तीथी अष्टमीहै. ईसलीये
हर महीने की दोनो अष्टमी के दीन याने साल भर में २४
दीन ग्येकादसी व अमावस्या की पलती के माफीक
तमाम ईलाके में पलती होतीरहे. सी.

४

नकल रुबकार हाजा की बतोर दारयला आचार्य
जी आनंदसागर सूरीजी माहाराज व पंन्य माहाजने
सैलाने को देने वास्ते दरबार ऑफीस में भेजा जावे.
तारिख १५ नवंबर सन १९२१ संमत १९७८
सही ईंग्रेजी में. श्रीजी हजुर साहब बहादुरकी.
अज महेक्मे आलीये दरबार सैलाना.
नंबर रोजना संख्या. ५२२ ई. नंबर रसीद. ८१५
नकल रुबकार हाजा की जरीये नकल हक्म हाजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

५

आचार्यजी महाराज आनंद सागर सूरीजी व पंच

महाजनान सैलाना को दीजाचे. तारिख १८।११।१९२१

संमत १९७८

सही ईंग्रेजी में. दीवान साहब दरबार सैलाना



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

श्रेष्ठि देवचन्द्र लालभ्रातृ–जैनपुस्तकोद्धारे—
श्रीविनयविजयोपाध्यायरचितसुबोधिकाख्यवृत्तियुतं—

श्रुतकेवलिश्रीभद्रबाहुस्वामिप्रणीतं श्रीकल्पसूत्रम् ।

अपश्चिमपूर्वभृत्सकलसिद्धान्तोद्धारकेभ्यः श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणेभ्यो नमः ।

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं, एसो पंचणमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो । मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥ पुरिमचरिमाण कप्पो, मंगलं वद्धमाणतित्थंमि । इह परिकहिया जिणगणहराइथेरावलि चरित्तं ॥ १ ॥

प्रणम्य परमश्रेयस्करं श्रीजगदीश्वरम् । कल्पे सुबोधिकां कुर्वे, वृत्तिं बालोपकारिणीम् ॥ १ ॥ यद्यपि बह्व्यष्टीकाः, कल्पे सन्त्येव निपुणगणगम्याः । तदपि ममायं यत्नः, फलेग्रहिः स्वल्पमतिबोधात् ॥ २ ॥ यद्यपि भानुद्युतयः सर्वेषां वस्तुबोधिका बह्व्यः । तदपि महीगृहगानां, प्रदीपिकैवोपकुरुते द्राक् ॥ ३ ॥ नास्यामर्थविशेषो न युक्तयो नापि पद्यपाण्डित्यम् । केवलमर्थव्याख्या, वितन्यते बालबोधाय ॥ ४ ॥ हास्यो न स्यां सद्भिः कुर्वन्ने-

कल्प. सु. १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमं व्याख्यानं आरभ्यते

*** अथ कल्पसूत्रस्य वृत्तेः आरंभः क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [०]

कल्प.सुबो-व्या० १

॥ १ ॥

तामतीक्ष्णबुद्धिरपि । यदुपदिशन्ति त एव हि शुभे यथाशक्ति यतनीयम् ॥५॥ अत्र हि पूर्वं नवकल्पविहार-क्रमेणोपागते योग्यक्षेत्रे साम्प्रतं च परम्परया गुर्वादिष्टे क्षेत्रे चतुर्मासीस्थिताः साधवः श्रेयोनिमित्तं आनन्दपुरे सभासमक्षं वाचनादनु सङ्घसमक्षं पञ्चभिर्दिवसैर्नवभिः क्षणैः श्रीकल्पसूत्रं वाचयन्ति । तत्र कल्पशब्देन साधूनां आचारः कथ्यते, तस्य च कल्पस्य दश भेदास्तद्यथा—आचेलक्कु १ देसिअ २ सिज्जायर ३ रायपिंड ४ किइकम्मे ५। वय ६ जिट्ठ ७ पडिक्कमणे, ८ मासं ९ पज्जोसणाकप्पे १० ॥ १ ॥ व्याख्या—'आचेलक्क'मिति न विद्यते चेलं-वस्त्रं यस्य सोऽचेलकस्तस्य भाव आचेलक्यं, विगतवस्त्रत्वं इत्यर्थः, तच्च तीर्थेश्वरानाश्रित्य प्रथमान्तिमजिनयोः शक्रोपनीतदेवदूष्यापगमे सर्वदा अचेलकत्वं, अन्येषां तु सर्वदा सचेलकत्वं । यच्च किरणावलीकारेण चतुर्विंशतेरपि जिनानां शक्रोपनीतदेवदूष्यापगमे अचेलकत्वं उक्तं तच्चिन्त्यम्, 'उसभे णं अरहा कोसलिए संवच्छरसाहिअं चीवरधारी होत्थ'त्ति जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवचनात् 'सक्को अ लक्खमुल्लं सुरदूसं

कल्पभेदाः

१५

२०

॥ १ ॥

• १ अष्टौ शेषमासभवा एकश्चातुर्मासिकः, अभिवर्धिताधिकमासस्याविवक्षा । २ वक्खाणं पुरिसपुरओ अज्जा । कुव्वंति जत्थ मेरा नडपेडगसंनिहा जाणे ॥१॥ति संबोधप्रकरणवचनात् न साध्व्या व्याख्यानमात्रस्याप्यधिकारः पुरुषाणां पुरतः, न चाल्पज्ञानाः साधवः पठन्ति पार्श्वे तासां न च ते ता वन्दंते, पुरुषोत्तमत्वं त्वत्रापि । ३ अणागयं पंचरत्तं कड्ढिज्जईत्यावश्यकाद्युक्तेः । ४ असंतचेला य तित्थयरा सव्वे (पञ्चकल्पभाष्यं) असत्स्वेव चेलेषु सर्वे जिना अचेला इत्यर्थः । ५ ऋषभः अर्हन् कौशलिकः संवत्सरं साधिकं चीवरधारी अभवत् इति। ६ शक्रश्च लक्षमूल्यं सुरदूष्यं स्थापयति सर्वजिनस्कन्धे । वीरस्य वर्षमधिकं सदापि शेषाणां तस्य स्थितिः ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र 'कल्प'स्य दश-भेदानां वर्णनं क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [०]

ठवइ सव्वजिणखंधे । वीरस्स वरिसमहिअं सयावि सेसाण तस्स ठिई' ॥ १ ॥ इति ससतिशतस्थानकवचनाच्चेति ज्ञेयं । साधून् आश्रित्य च अजितादिद्वाविंशतिजिनतीर्थसाधूनां ऋजुप्राज्ञानां बहुमूल्यविविधवर्णवस्त्रपरिभोगानुज्ञासद्भावेन सचेलकत्वमेव केषाञ्चिच्च श्वेतमानोपेतवस्त्रधारित्वेन अचेलकत्वमपि इत्थंनियतस्तेषामयं कल्पः, श्रीऋषभवीरतीर्थयतीनां च सर्वेषामपि श्वेतमानोपेतजीर्णप्रायवस्त्रधारित्वेन अचेलकत्वमेव । ननु वस्त्रपरिभोगे सत्यपि कथं अचेलकत्वं इति चेद्, उच्यते, जीर्णप्रायतुच्छवस्त्रे सत्यपि अवस्त्रत्वं सर्वजनप्रसिद्धमेव, तथाहि-कृतपोतिका नदीमुत्तरन्तो वदन्ति-अस्माभिर्नग्नीभूय नदी उत्तीर्णा इति, तथा सत्यपि वस्त्रे तन्तुवायरजकादींश्च वदन्ति-शीघ्रं अस्माकं वस्त्रं देहि वयं नग्नाः स्म इति, एवं साधूनां वस्त्रसद्भावेऽपि अचेलकत्वं इति प्रथमः १ ॥

तथा 'उद्देसिअ'त्ति औद्देशिकं आधाकर्मिकं इत्यर्थः साधुनिमित्तं कृतं अशनपानखादिमखादिमवस्त्रपात्रवसतिप्रमुखं, तच्च प्रथमचरमजिनतीर्थे एकं साधुं एकं साधुसमुदायं एकं उपाश्रयं वा आश्रित्य कृतं तत्सर्वेषां साध्वादीनां न कल्पते, द्वाविंशतिजिनतीर्थे तु यं साध्वादिकं आश्रित्य कृतं तत्तस्यैव अकल्प्यं, अन्येषां तु कल्पते इति द्वितीयः २ ॥

तथा 'सिज्जायर'त्ति शय्यातरो-वसतिस्वामी तस्य पिण्डः-अशन १ पान २ खादिम ३ खादिम ४ वस्त्र ५-पात्र ६ कम्बल ७ रजोहरण ८ सूची ९ पिप्पलक १० नखरदन ११ कर्णशोधनक १२ लक्षणो द्वादशप्रकारः

१ पात्रलेपवत् संयमशुद्ध्यै वर्णपरावर्त्तोऽधुना ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो व्या० १ ॥ २ ॥

सर्वेषां जिनानां तीर्थेषु सर्वसाधूनां न कल्पते, अनेषणीयप्रसङ्गवसतिदौर्लभ्यादिबहुदोषसंभवात्। अथ यदि साधवः समग्रां रात्रिं जाग्रति प्रातः प्रतिक्रमणं च अन्यत्र कुर्वन्ति तदा मूलोपाश्रयस्वामी शय्यातरो न भवति, यदि च निद्रायन्ति प्रतिक्रमणं च अन्यत्र कुर्वन्ति तदा द्वावपि शय्यातरौ भवतः, तथा तृणडगल-भस्ममल्लकपीठफलकशय्यासंस्तारकलेपादिवस्तूनि चारित्रेच्छुः सोपधिकः शिष्यश्च शय्यातरस्यापि ग्रहीतुं कल्पते, इति तृतीयः ३ ॥

'रायपिंड'त्ति सेनापति १ पुरोहित २ श्रेष्ठि ३ अमात्य ४ सार्थवाह ५ लक्षणैः पञ्चभिः सह राज्यं पाल-यन् मूर्धाभिषिक्तो यो राजा तस्य पिण्डः–अशनादिचतुष्कं ४ वस्त्रं ५ पात्रं ६ कम्बलं ७ रजोहरणं ८ चेति अष्टविधः प्रथमचरमजिनसाधूनां निर्गच्छद्भागच्छत्सामन्तादिभिः स्वाध्यायव्याघातस्य अपशकुनबुद्ध्या शरी-रव्याघातस्य च संभवात् स्वाद्यलोभलघुत्वनिन्दादिदोषसंभवाच्च निषिद्धः, द्वाविंशतिजिनसाधूनां तु ऋजुप्रा-ज्ञत्वेन पूर्वोक्तदोषाभावेन राजपिण्डः कल्पते इति चतुर्थः ४ ॥

'किइकम्म'त्ति कृतिकर्म–वंदनकं, तद् द्विधा-अभ्युत्थानं द्वादशावर्तं च, तत्सर्वेषां अपि तीर्थेषु साधुभिः परस्परं यथादीक्षापर्यायेण विधेयं, साध्वीभिश्च चिरदीक्षिताभिरपि नवदीक्षितोऽपि साधुरेव वन्द्यः,

१ राज्ञामतिथिसंविभागव्रताराधनं तु साधर्मिकभक्त्या, साधुसाध्वीश्रावकश्राविकाणामतिथितयोमास्वातिभिर्व्याख्यानात्।

कल्पभेदाः १५ २० ॥ २ ॥ २५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

पुरुषप्रधानत्वात् धर्मस्य इति पञ्चमः ५ ॥ 'चय'त्ति व्रतानि–महाव्रतानि तानि च द्वार्विंशतितिजिनसाधूनां चत्वारि, यतस्ते एवं जानन्ति यत् अपरिगृहीतायाः स्त्रियः भोगासंभवात् स्त्री अपि परिग्रह एवेति परिग्रहे प्रत्याख्याते स्त्री प्रत्याख्यातैव, प्रथमचरमजिनसाधूनां तु तथाज्ञानाभावात् पञ्च व्रतानि इति षष्ठः ६ ॥ 'जिट्ठ'त्ति ज्येष्ठो-रत्नाधिकः स एव कल्पो वृद्धलघुत्वव्यवहार इत्यर्थः, तत्र आद्यान्तिमजिनयतीनां उपस्थापनातः प्रारभ्य दीक्षापर्यायगणना मध्यमजिनयतीनां च निरतिचारचारित्रत्वादीक्षादिनादेव, अथ पितापुत्रमातादुहितृराजामात्यश्रेष्ठिवणिक्पुत्रादीनां सार्द्धं गृहीतदीक्षाणां उपस्थापने को विधिः?, उच्यते, यदि पित्रादयः पुत्रादयश्च समकमेव षड्जीवनिकायाध्ययनयोगोद्वहनादिभिर्योग्यतां प्राप्तास्तदा अनुक्रमेणैवोपस्थापना, अथ स्तोकं अन्तरं तदा कियद्विलम्बेनापि पित्रादीनामेव प्रथममुपस्थापना, अन्यथा पुत्रादीनां बृहत्त्वेन पित्रादीनां अप्रीतिः स्यात्, अथ पुत्रादीनां सप्रज्ञत्वेन अन्येषां निष्प्रज्ञत्वेन महदन्तरं तदा स पित्रादिरेवं प्रतिबोध्यः-भो महाभाग! सप्रज्ञोऽपि तव पुत्रः अन्येभ्यो बहुभ्यो लघुर्भविष्यति तव पुत्रे च ज्येष्ठे तवैव गौरवं, एवं प्रज्ञापितः स यदि अनुमन्यते तदा पुत्रादिः प्रथमं उपस्थापनीयः, नान्यथा, इति सप्तमः ७ ॥ 'पडिक्कमणे'त्ति अतिचारो भवतु मा वा परं श्रीऋषभवीरसाधूनां उभयकालं अवश्यं प्रतिक्रमणं कर्त्तव्यमेव, शेषजिनमुनीनां च दोषे सति प्रतिक्रमणं नान्यथा, तत्रापि मध्यमजिनयतीनां कारणसद्भावेऽपि दैवसिकरात्रिके एव प्रायः प्रतिक्रमणे, न तु पाक्षिकचातुर्मासिक-

५

१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||-|| दीप अनुक्रम [०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

सांवत्सरिकाणि, तथा चोक्तं सप्ततिशतस्थानकग्रन्थे–'देसिय १ राइय २ पक्खिय ३ चउमासिअ ४ वच्छरीअ ५ नामाउ । दुण्हं पण पडिकमणा, मज्झिमगाणं तु दो पढमा ॥ १ ॥ तं दुण्ह सय दुकालं, इयराणं कारणे इउ मुणिणो ' इति अष्टमः ८ ॥ 'मास'त्ति आद्यान्त्यजिनयतीनां मासकल्पमर्यादा नियता, दुर्भिक्षाशक्तिरोगादि-कारणसद्भावेऽपि शाखापुरघाटककोणकपरावर्त्तेनापि सत्यापनीयैव, परं शेषकाले मासादधिकं न स्थेयं, प्रति-बन्धलघुत्वप्रमुखबहुदोषसंभवात्, मध्यमजिनयतीनां तु ऋजुप्राज्ञानां पूर्वोक्तदोषाभावेन अनियतो मासकल्पः, ते हि देशोनां पूर्वकोटीं यावदपि एकत्र तिष्ठन्ति, कारणे मासमध्येऽपि विहरन्ति, इति नवमः ९ ॥ 'पज्जोसणा-कप्पे'त्ति परि–सामस्त्येन उषणा–वसनं पर्युषणा, तत्र पर्युषणाशब्देन सामस्त्येन वसनं, वार्षिकं पर्व च द्वयं अपि कथ्यते, तत्र वार्षिकं पर्व भाद्रपदसितपञ्चम्यां कालकसूरेरनन्तरं चतुर्थ्यामेवेति, सामस्त्येन वसनलक्ष-णश्च पर्युषणाकल्पो द्विविधः–सालम्बनो निरालम्बनश्च, तत्र निरालम्बनः कारणाभाववान् इत्यर्थः, स द्विविधो जघन्य उत्कृष्टश्च, तत्र जघन्यस्तावत् सांवत्सरिकप्रतिक्रमणादारभ्य कार्तिकचतुर्मासप्रतिक्रमणं यावत् सप्ततिः७०-

१ दैवसिकरात्रिकपाक्षिकचातुर्मासिकवात्सरिकनामानि । द्वयोः (प्रथमान्तिमतीर्थकरतीर्थयोः) पञ्च प्रतिक्रमणानि, मध्यमकानां तु द्वे प्रथमे ॥ १ ॥ तत् द्वयोः सदोभयकालं, इतरेषां कारणे इति मुनीनां । २ चन्द्रसंवत्सरापेक्षयेदमिति कश्चिन्मुग्धः, शास्त्रापेक्षया पौषाषाढयोरेव वृद्धेः, किंचाधिकमासप्रमाणीकरणे पौषवृद्धौ माघे आषाढवृद्धौ चाद्याषाढे चतुर्मासीकरणापत्तिः, तस्माः तत्तन्मास-प्रतिबद्धत्वेऽत्रापि समानं समाधानं ।

कल्पभेदाः १५ २० २३ ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [०]

दिनमानः उत्कृष्टस्तु चातुर्मासिकः, अयं द्विविधो निरालम्बनः स्थविरकल्पिकानां, जिनकल्पिकानां तु एको निरालम्बनश्चातुर्मासिक एव, सालम्बनस्तु कारणिक इत्यर्थः, यत्र क्षेत्रे मासकल्पः कृतस्तत्रैव चतुर्मासककरणे चतुर्मासकानन्तरं च मासकल्पकरणे षाण्मासिकः, अयमपि स्थविरकल्पिकानां एव, तथा पञ्चकपञ्चकवृद्ध्या गृहिज्ञाताज्ञातादिविस्तरस्तु नात्र लिखितः, साम्प्रतं सङ्घाज्ञया तस्य विधेर्व्युच्छिन्नत्वाद्विस्तरभयाच्च, विशेषार्थिना च कल्पकिरणावल्यादयो विलोक्याः, एवं सर्वत्रापि ज्ञेयं, अथैवंवर्णितस्वरूपः पर्युषणाकल्पः प्रथमान्तिमजिनयोस्तीर्थे नियतः शेषाणां तु अनियतः, यतस्ते हि दोषाभावे एकस्मिन् क्षेत्रे देशोनां पूर्वकोटिं यावत् तिष्ठन्ति दोषसद्भावे तु न मासं अपि, एवं महाविदेहेऽपि द्वाविंशतिजिनवत् सर्वेषां जिनानां कल्पव्यवस्था ज्ञेया इति दशमः ॥ १० ॥ एते दशापि कल्पा ऋषभवर्धमानतीर्थे नियता एव द्वाविंशतिजिनतीर्थे तु आचेलक्यौ १ देशिक-प्रतिक्रमण ३ राजपिण्ड ४ मास ५ पर्युषणा ६ लक्षणाः षट् कल्पा अनियताः, शेषास्तु शय्यातर १ चतुर्व्रत-२ पुरुषज्येष्ठ ३ कृतिकर्म ४ लक्षणाश्चत्वारो नियता एवेति दशानां कल्पानां नियतानियतविभागः ॥

ननु एकस्मिन् मोक्षमार्गे साध्ये प्रथमचरमजिनसाधूनां द्वाविंशतिजिनसाधूनां च कथं आचारभेदः?, उच्यते, जीवविशेषा एव तत्र कारणं, [पुरिमाणं दुव्विसोज्झो, चरिमाणं दुरणुपालओ कप्पो । मज्झिमगाण जिणाणं

१ पूर्वेषां दुर्विशोध्यः, चरमाणां दुरनुपालः कल्पः । मध्यमकानां जिनानां, सुविशोध्यः सुखानुपालश्च ॥ १ ॥ ऋजुजडाः पूर्वे खलु, नटादिज्ञाताद् भवन्ति ज्ञातव्याः । वक्रजडाः पुनः चरमाः, ऋजुप्राज्ञा मध्यमा भणिताः ॥ २ ॥

५

१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||-|| दीप अनुक्रम [०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

सुविसुज्झो सुहणुपालो अ ॥ १ ॥ उज्जुजडा पुरिमा खलु नडाइनायाउ हुंति नायव्वा । वक्कजडा पुण चरिमा उजुपण्णा मज्झिमा भणिया ॥ २ ॥] तथाहि—श्रीऋषभतीर्थजीवा ऋजुजडास्तेषां धर्मस्य अवबोधो दुर्लभो जडत्वात्, वीरतीर्थसाधूनां च धर्मस्य पालनं दुष्करं वक्रजडत्वात्, अजितादिजिनतीर्थसाधूनां तु धर्मस्य अवबोधः पालनं च द्वयं अपि सुकरं, ऋजुप्राज्ञत्वात्, तेन आचारो द्विधा कृतः । अत्र च दृष्टान्ताः प्रदर्श्यन्ते—यथा केचित् प्रथमजिनयतयो बहिर्भूमेर्गुरुसमीपं आगताः पृष्टाश्च गुरुभिः—भो मुनयो भवतां इयती वेला क्व जाता?, तैरुक्तं-स्वामिन्! वयं नटं नृत्यन्तं विलोकयितुं स्थिताः, ततो गुरुभिः कथितं—इदं नटविलोकनं साधूनां न कल्पते, तैरपि तथेति अङ्गीकृतं, अथ अन्यदा त एव साधवश्चिरेण उपाश्रयं आगतास्तथैव गुरुभिः पृष्टाः प्रोचुः—प्रभो! वयं नटीं नृत्यन्तीं निरीक्षितुं स्थिताः, तदा गुरुभिरूचे भो महाभागास्तदानीं भवतां नटो निषिद्धो नटे निषिद्धे च नटी सुतरां निषिद्धैव, ततस्तैर्विज्ञप्तं—स्वामिन्! इदं अस्माभिर्न ज्ञातं अथैवं न करिष्यामः, अत्र च जडत्वान्नटे निषिद्धे नटी निषिद्धैवेति तैर्न ज्ञातं, ऋजुत्वाच्च सरलं उत्तरं दत्तं इति प्रथमः । अत्र द्वितीयोऽपि दृष्टान्तः—यथा कोऽपि कुङ्कुणदेशीयो वणिग् वृद्धत्वे प्रव्रजितः, स चैकदा ऐर्यापथिकीकायोत्सर्गे चिरं स्थितो गुरुभिः पृष्टः—एतावद्दीर्घे कार्योत्सर्गे किं चिन्तितं?, स प्रत्युवाच—स्वामिन्! जीवदया चिन्तिता, कथमिति पुनर्गुरुभिः पृष्ट आह—पूर्वं गृहस्थावस्थायां क्षेत्रेषु वृक्षनिषूदनपूर्वकं उप्तानि धान्यानि बहून्यभूवन्, इदानीं मम पुत्रास्तु निश्चिन्ता यदि वृक्षनिषूदनं न करिष्यन्ति तदा धान्याभवनेन वराकाः कथं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र प्रथम-अंतिम तथा मध्यवर्ती तीर्थकराणां कल्प-भेदस्य कारणानि निर्दिश्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [०]

भविष्यन्ति ? इति ऋजुत्वात् स्वाभिप्राये यथास्थिते निवेदिते गुरुभिः कथितं–महाभाग ! दुर्ध्यातं भवता, अहो ! अयुक्तमेतद्यतीनां, इत्युक्ते च मिथ्यादुष्कृतं ददौ ॥ तथा वीरजिनयतीनां वक्रजडत्वेऽपि दृष्टान्तद्वयं– तत्र केचिद्वीरतीर्थसाधवो नटं नृत्यन्तं विलोक्य गुरुसमीपं आगता गुरुभिः पृष्टा निषिद्धाश्च नटावलोकनं प्रति, पुनरन्यदा नटीं नृत्यन्तीं विलोक्य आगता गुरुभिस्तथैव पृष्टा वक्रतया अन्यानि उत्तराणि ददुर्बाढं पृष्टाश्च सत्यं प्रोचुः, गुरुभिरुपालम्भे च दत्ते संमुखं गुरूनेव उपालब्धवन्तः–यदस्माकं तदा नटनिषेधसमये नटीनिषेधोऽपि कुतो न कृतो ? भवतां एव अयं दोषः, अस्माभिः किं ज्ञायते ? इति प्रथमो दृष्टान्तः । तथा कश्चिद्व्यवहारिसुतः पित्रा बहुशः शिक्ष्यमाणो जनकादीनां संमुखं जल्पनं न कर्त्तव्यं इति पितृवचनं वक्रतया मनसि दधार, अथैकदा सर्वेषु स्वजनेषु बहिर्गतेषु पुनः पुनः शिक्षयन्तं पितरं अद्य शिक्षयामीति विचिन्त्य कपाटं दत्त्वा स्थितः, आगतेषु च पित्रादिषु द्वारोद्घाटनार्थं बहुशब्दकरणेऽपि न वक्ति न चोद्घाटयति, भित्त्युल्लङ्घनेन मध्ये प्रविष्टेन च पित्रा हसन् दृष्ट उपालब्धश्च कथयामास–भवद्भिरेवोक्तं वृद्धानां उत्तरं न देयं इति द्वितीयः ॥ अथाजितादियतीनां ऋजुप्राज्ञत्वे दृष्टान्तः—यथा केचिदजितजिनयतयो नटं निरीक्ष्य चिरेणागता गुरुभिः पृष्टा यथास्थितं अकथयन् गुरुभिश्च निषिद्धाः, अथ अन्यदा ते बहिर्गताः नटीं नृत्यन्तीं विलोक्य प्राज्ञत्वात् विचारयामासुः–यदस्माकं रागहेतुत्वाद् गुरुभिर्नटनिरीक्षणं निषिद्धं तर्हि नटी तु अत्यन्त-रागकारणत्वात् सर्वथा निषिद्धैवेति विचार्य नटीं नालोकितवन्तः ॥ ननु तर्हि द्वाविंशतिजिनयतीनां ऋजुप्रा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||-|| दीप अनुक्रम [०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-व्या० १ ॥ ५ ॥

ज्ञानां भवतु धर्मः, परं प्रथमजिनयतीनां ऋजुजडानां कुतो धर्मः ?, अनवबोधात्, तथा च वक्रजडानां वीरयतीनां तु सर्वथा धर्मस्य अभाव एव, मैवं, ऋजुजडानां प्रथमजिनयतीनां जडत्वेन स्खलनासद्भावेऽपि भावस्य विशुद्धत्वाद् भवति धर्मः, तथा वक्रजडानां अपि वीरजिनयतीनां ऋजुप्राज्ञापेक्षया अविशुद्धो भवति परं सर्वथा धर्मो न भवतीति न वक्तव्यं, तथा वचने हि महान् दोषः, तदुक्तम्—"जो भणइ नत्थि धम्मो, न य सामइयं न चेव य वयाइं । सो समणसंघबज्झो , कायव्वो समणसंघेणं ॥ १ ॥"

तथा यो नियतमवस्थानलक्षणः ससतिदिनमानः पर्युषणाकल्प उक्तः सोऽपि कारणाभावे एव, कारणे तु तन्मध्येऽपि विहर्तुं कल्पते, तद्यथा—अशिवे १ भोजनाप्राप्तौ २, राज ३ रोग ४ पराभवे । चतुर्मासकमध्येऽपि, विहर्तुं कल्पतेऽन्यतः ॥ १ ॥ असति स्थण्डिले ५ जीवाकुले ६ च वसतौ ७ तथा । कुन्थु ८ ष्वग्नौ ९ तथा सर्पे १०, विहर्तुं कल्पतेऽन्यतः ॥ २ ॥ तथा एभिः कारणैश्चतुर्मासकात्परतोऽपि स्थातुं कल्पते—वर्षाद्विरते मेघे, मार्गे कर्दमदुर्गमे । अतिक्रमेऽपि कार्तिक्यास्तिष्ठन्ति मुनिसत्तमाः ॥ १ ॥' एवं अशिवादिदोषाभावेऽपि संयमनिर्वाहार्थं क्षेत्रगुणा अन्वेषणीयाः, तच्च क्षेत्रं त्रिविधं—जघन्यं १ मध्यमं २ उत्कृष्टं ३ च, तत्र चतुर्गुणयुक्तं जघन्यं, तेचामी—' समिई विहारभूमी वियारभूमी य सुलहसज्झाओ । सुलहा भिक्खा जाहे जहन्नयं वासखित्तं तु ॥ १ ॥' यत्र विहारभूमिः सुलभा-आसन्नो जिनप्रासाद इत्यर्थः १ यत्र स्थण्डिलं शुद्धं निर्जीवं अनालोकं

१ यो भणति नास्ति धर्मः न च सामायिकं नैव च व्रतानि । स श्रमणसंघबाह्यः कर्तव्यः श्रमणसंघेन ॥ १ ॥

वसति-गुणाः १५ २० ॥ ५ ॥ २६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

च २ यत्र स्वाध्यायभूमिः सुलभा, अस्वाध्यायादिरहिता ३ यत्र भिक्षा च सुलभा ४, त्रयोदशगुणं उत्कृष्टं, ते चामी—'चिक्खिल्ल १ पाण २ थंडिल्ल,३ वसही ४ गोरस ५ जणाउले ६ विज्जे ७॥ ओसह ८ मिच्चया ९ हिवई १० पासंडा ११ भिक्ख १२ सज्झाए १३ ॥ १ ॥ यत्र भूयान् कर्दमो न भवति १ यत्र बहवः संमूर्च्छिमाः प्राणिनो न भवन्ति २ यत्र स्थण्डिलं निर्दोषं भवति ३ यत्र वसतिः स्त्रीसंसर्गादिरहिता ४ यत्र गोरसं प्रचुरं ५ यत्र जनसमवायो महान् भद्रकश्च ६ यत्र वैद्याश्च भद्रकाः ७ यत्र औषधानि सुलभानि ८ यत्र गृहस्थगृहाः सकुटुम्बा धनधान्यादिपूर्णाश्च ९ यत्र राजा भद्रकः १० यत्र ब्राह्मणादिभ्यो मुनीनामपमानं न स्यात् ११ यत्र भिक्षा सुलभा १२ यत्र स्वाध्यायः शुद्ध्यति १३ 'चउग्गुणोववेयं तु, खित्तं होइ जहन्नयं। तेरसगुणमुक्कोसं, दुण्हं मज्झंमि मज्झिमयं ॥ १ ॥ पूर्वोक्तचतुर्गुणादधिकं पंचादिगुणं त्रयोदशगुणाच्च न्यूनं द्वादशगुणपर्यन्तं मध्यमं क्षेत्रं, एवं च उत्कृष्टे क्षेत्रे तदप्राप्तौ मध्यमे तस्यापि अप्राप्तौ जघन्ये क्षेत्रे साम्प्रतं च गुर्वादिष्टे क्षेत्रे साधुभिः पर्युषणाकल्पः कर्तव्यः ॥

अयं च दशप्रकारोऽपि कल्पो दोषाभावेऽपि क्रियमाणस्तृतीयौषधवत् हितकारको भवति, तथाहि—केनचिद् भूपतिना स्वपुत्रस्य अनागतचिकित्सार्थं त्रयो वैद्या आकारिताः, तत्र प्रथमो वैद्य आह—मदीयं औषधं रोगसद्भावे रोगं हन्ति रोगाभावे च दोषं प्रकटयति, राज्ञोक्तं—सुसर्षपोत्थापनतुल्येन

१ चतुर्गुणोपपेतं तु क्षेत्रं भवति जघन्यकं। त्रयोदशगुणमुत्कर्षं द्वयोर्मध्ये मध्यमकं ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० १ ॥ ६ ॥

अनेन औषधेन किं?, द्वितीयः प्राह—मदीयं औषधं विद्यमानं व्याधिं हन्ति रोगाभावे च न गुणं न दोषं च करोति, राजा प्राह—भस्मनिहुततुल्येन अनेनापि पर्याप्तं, तृतीयः प्राह—मदीयं औषधं सद्भावे रोगं हन्ति, तदभावे च शरीरे सौन्दर्यवीर्यतुष्टिपुष्टिं करोति, राज्ञोक्तं–इदं औषधं समीचीनं, तद्वदेयमपि कल्पो दोषसद्भावे दोषं निराकरोति, दोषाभावे च धर्मं पुष्णाति।

तदेवं समुपस्थिते पर्युषणापर्वणि मङ्गलनिमित्तं पञ्चभिरेव दिनैः कल्पसूत्रं वाचनीयं, तच्च यथा देवेषु इन्द्रः, तारासु चन्द्रः, न्यायप्रवीणेषु रामः, सुरूपेषु कामः, रूपवतीषु रम्भा, वादित्रेषु भम्भा, गजेषु ऐरावणः, साहसिकेषु रावणः, बुद्धिमत्सु अभयः, तीर्थेषु शत्रुञ्जयः, गुणेषु विनयः, धानुष्केषु धनञ्जयः, मन्त्रेषु नमस्कारः, तरुषु सहकारस्तथा सर्वशास्त्रेषु शिरोमणिभावं बिभर्त्ति, यतः—नार्हतः परमो देवो, न मुक्तेः परमं पदम्। न श्रीशत्रुञ्जयात्तीर्थं, श्रीकल्पान्न परं श्रुतम् ॥ १ ॥ तथाऽयं कल्पः साक्षात्कल्पद्रुम एव, तस्य च अनानुपूर्व्या उक्तत्वात् श्रीवीरचरित्रं बीजं,श्रीपार्श्वचरित्रमङ्कुरः, श्रीनेमिचरित्रं स्कन्धः,श्रीऋषभचरित्रं शाखासमूहः, स्थविरावली पुष्पाणि, सामाचारीज्ञानं सौरभ्यं, फलं मोक्षप्राप्तिः, किञ्च—'वाचनात्साहाय्यदानात्, सर्वाक्षरश्रुतेरपि। विधिनाऽऽराधितः कल्पः, शिवदोऽन्तर्भवाष्टकम् ॥ १ ॥ [1]एगग्गचित्ता जिणसासणम्मि, पभावणापूअपरायणा जे। तिसत्तवारं निसुणंति कप्पं,

१ एकाग्रचित्ता जिनशासने प्रभावनापूजापरायणा ये। त्रिसप्तवाराः शृण्वन्ति कल्पं भवार्णवं गौतम ! ते तरन्ति ॥ १ ॥

तृतीयौषध-समकल्प-महिमा १५ २० ॥ ६ ॥ २६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र वृत्तिकार-रचितं कल्पसूत्रस्य माहात्म्यं वर्णयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [०]

भवण्णवं गोअम ! ते तरन्ति ॥ २ ॥' एवं च कल्पमहिमानं आकर्ण्य तपःपूजाप्रभावनादिधर्मकार्येषु कष्टधन-व्ययसाध्येषु आलस्यं न विधेयं, सकलसामग्रीसहितस्यैव तस्य वाञ्छितफलप्रापकत्वात्, यथा बीजं अपि वृष्टिवायुप्रभृतिसामग्रीसद्भावे एव फलनिष्पत्तौ समर्थं नान्यथा,एवं अयं श्रीकल्पोऽपि देवगुरुपूजाप्रभावनासाधर्मिकभक्तिप्रमुखसामग्रीसद्भावे एव यथोक्तफलहेतुः, अन्यथा–'[1]इक्कोऽवि नमुक्कारो जिणवरवसहस्स वद्धमाणस्स। संसारसागराओ तारेइ नरं व नारिं वा॥१॥' इति श्रुत्वा किञ्चित्प्रयाससाध्ये कल्पश्रवणेऽपि आलस्यं भवेत्। ५

अथ 'पुरुषविश्वासे वचनविश्वास' इति कल्पसूत्रस्य प्रणेता वक्तव्यः, स च चतुर्दशपूर्वविद्युगप्रधानः श्रीभद्रबाहुस्वामी दशाश्रुतस्कन्धस्य अष्टमाध्ययनतया प्रत्याख्यानप्रवादाभिधाननवमपूर्वात् उद्धृत्य कल्पसूत्रं रचितवान्, तत्र पूर्वाणि च प्रथमं एकेन हस्तिप्रमाणमषीपुञ्जेन लेख्यं १,द्वितीयं द्वाभ्यां २,तृतीयं चतुर्भिः ४,चतुर्थं अष्टाभिः ८,पञ्चमं षोडशभिः १६,षष्ठं द्वात्रिंशता ३२,सप्तमं चतुःषष्ट्या ६४,अष्टमं अष्टाविंशत्यधिकशतेन १२८,नवमं षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयेन २५६,दशमं द्वादशाधिकैः पञ्चभिः शतैः ५१२,एकादशं चतुर्विंशत्यधिकेन सहस्रेण १०२४,द्वादशं अष्टचत्वारिंशदधिकया द्विसहस्र्या २०४८,त्रयोदशं षण्णवत्यधिकया चतुःसहस्र्या ४०९६, चतुर्दशं च अष्टसहस्र्या द्विनवत्युत्तरशताधिकया ८१९२, सर्वाणि पूर्वाणि षोडशभिः सहस्रैरुपशीत्यधिकैस्त्रिभिः शतैश्च १६३८३ हस्तिप्रमाणमषीपुञ्जैर्लेख्यानि, तस्मान्महापुरुषप्रणीतत्वेन मान्यो गम्भीरार्थश्च, यतः— १०, १४

१ एकोऽपि नमस्कारो जिनवरवृषभस्य वर्द्धमानस्य । संसारसागरात् तारयति नरं वा नारीं वा ॥ १ ॥

कल्प. सु. २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** कल्पसूत्रस्य कर्तारः नाम्नः एवं उद्धरनास्य वर्णनं क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [०]

कल्पसुबो-ध्या० १ ॥ ७ ॥

'सव्वनईणं जइ हुज्ज वालुआ सव्वोदहीण जं उदयं। तत्तो अणंतगुणिओ अत्थो इक्कस्स सुत्तस्स ॥ १ ॥ मुखे जिह्वासहस्रं स्याद्, हृदये केवलं यदि। तथापि कल्पमाहात्म्यं, वक्तुं शक्यं न मानवैः ॥ २ ॥'

अथ तस्य श्रीकल्पस्य वाचने श्रवणे च अधिकारिणो मुख्यवृत्त्या साधुसाध्व्यस्तत्रापि कालतो रात्रौ विहितकाल-ग्रहणादिविधीनां साधूनां वाचनं श्रवणं च, साध्वीनां च निशीथचूर्ण्याद्युक्तविधिना दिवाऽपि श्रवणं, तथा श्रीवीर-निर्वाणादशीत्यधिकनवशत ९८० वर्षातिक्रमे मतान्तरेण च त्रिनवत्यधिकनवशतवर्षा ९९३ तिक्रमे ध्रुवसेननृपस्य पुत्रमरणार्त्तस्य समाधिमाधातुमानन्दपुरे सभासमक्षं समहोत्सवं श्रीकल्पसूत्रं वाचयितुमारब्धं, ततःप्रभृति चतुर्विधोऽपि सङ्घः श्रवणेऽधिकारी, वाचने तु विहितयोगानुष्ठानः साधुरेव ॥

अथ अस्मिन् वार्षिकपर्वणि कल्पश्रवणवत् इमान्यपि पञ्च कार्याणि अवश्यं कार्याणि, तद्यथा—चैत्यपरिपाटी १ समस्तसाधुवन्दनं २ सांवत्सरिकप्रतिक्रमणं ३ मिथः साधर्मिकक्षामणं ४ अष्टमं तपश्च ५, एषां अपि कल्पश्रव-णवद् वाञ्छितदायकत्वं अवश्यकर्तव्यत्वं जिनानुज्ञातत्वं च ज्ञेयं, तत्र अष्टमं तप उपवासत्रयात्मकं महाफलकारणं रत्नत्रयवदान्यं शल्यत्रयोन्मूलनं जन्मत्रयपावनं कायवाङ्मानसदोषशोषकं विश्वत्रयाग्र्यपदप्रापकं निःश्रेयसपदाभिलाषुकैरवश्यं कर्त्तव्यं नागकेतुवत्, तथाहि—चन्द्रकान्ता नगरी, तत्र विजयसेनो नाम राजा, श्रीका-

१ सर्वनदीनां यावत्यो भवेयुर्वालुकाः सर्वोदधीनां यद् उदकं। ततोऽनंतगुणितोऽर्थ एकस्य सूत्रस्य ॥१॥ २ आधुनिकसंघश्रावणापेक्षया ३ नेदं क्वचित् ४ काले विणए बहुमाणे उवहाणेइत्युक्तेः

पूर्वमानं अधिकारी कृत्यपंचकं च २० ॥ ७ ॥ २६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** पर्युषण-पर्व-निमित्त अवश्य-कर्तव्याणि पंच-कार्याणि निर्दिश्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [०]

न्ताख्यश्च व्यवहारी, तस्य श्रीसखी भार्या, तया च बहुप्रार्थित एकः सुतः प्रसूतः, स च बालक आसन्ने पर्युषणापर्वणि कुटुम्बकृतां अष्टमचर्चां आकर्ण्य जातजातिस्मृतिः स्तन्यपोऽपि अष्टमं कृतवान्, ततस्तं स्तन्यपानमकुर्वाणं पर्युषितमालतीकुसुममिव म्लानं आलोक्य मातापितरौ अनेकान् उपायांश्चक्रतुः, क्रमाच्च मूर्च्छां प्राप्तं तं बालं मृतं ज्ञात्वा स्वजना भूमौ निक्षिपन्ति स्म, ततश्च विजयसेनो राजा तं पुत्रं तद्दुःखेन तत्पितरं च मृतं विज्ञाय तद्धनग्रहणाय सुभटान् प्रेषयामास, इतश्च-अष्टमप्रभावात् प्रकम्पितासनो धरणेन्द्रः सकलं तत्स्वरूपं विज्ञाय भूमिस्थं तं बालकं अमृतच्छटया आश्वास्य विप्ररूपं कृत्वा धनं गृह्णतस्तान् निवारयामास, तत् श्रुत्वा राजाऽपि त्वरितं तत्रागत्योवाच-भो भूदेव! परम्परागतं इदं अस्माकं अपुत्रधनग्रहणं कथं निवारयसि?, धरणोऽवादीत्-राजन्! जीवत्यस्य पुत्रः, कथं कुत्रास्तीति राजादिभिरुक्ते भूमेस्तं जीवन्तं बालकं साक्षात्कृत्य निधानमिव दर्शयामास, ततः सर्वैरपि सविस्मयैः स्वामिन्! कस्त्वं कोऽयमिति पृष्टे सोऽवदत्-अहं धरणेन्द्रो नागराजः कृताष्टमतपसोऽस्य महात्मनः साहाय्यार्थं आगतोऽस्मि, राजादिभिरुक्तं-स्वामिन्! जातमात्रेण अनेन अष्टमतपः कथं कृतं?, धरणेन्द्र उवाच-राजन्! अयं हि पूर्वभवे कश्चिद्वणिक्पुत्रो बाल्येऽपि मृतमातृक आसीत्, स च अपरमात्राऽत्यन्तं पीड्यमानो मित्राय स्वदुःखं कथयामास, सोऽपि त्वया पूर्वजन्मनि तपः न कृतं तेनैवं परा-भवं लभसे इत्युपदिष्टवान्, ततोऽसौ यथाशक्ति तपोनिरतः आगामिन्यां पर्युषणायां अवश्यं अष्टमं करिष्या-मीति मनसि निश्चित्य तृणकुटीरे सुष्वाप, तदा च लब्धावसरया विमात्रा आसन्नप्रदीपनकादग्निकणस्तत्र

५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

निक्षिप्तः तेन च कुटीरके ज्वलिते सोऽपि मृतः अष्टमध्यानाच्च अयं श्रीकान्तमहेभ्यनन्दनो जातः, ततोऽनेन पूर्वभवचिन्तितं अष्टमतपः साम्प्रतं कृतं, तदसौ महापुरुषो लघुकर्माऽस्मिन् भवे मुक्तिगामी यत्नात् पालनीयो, भवतां अपि महते उपकाराय भविष्यतीति उक्त्वा नागराजः स्वहारं तत्कण्ठे निक्षिप्य स्वस्थानं जगाम, ततः स्वजनैः श्रीकान्तस्य मृतकार्यं विधाय तस्य नागकेतुरिति नाम कृतं, क्रमाच्च स बाल्यादपि जितेन्द्रियः परमश्रावको बभूव, एकदा च विजयसेनराजेन कश्चिद् अचौरोऽपि चौरकलङ्केन हतो व्यन्तरो जातः समग्रनगरविघाताय शिलां रचितवान्, राजानं च पादप्रहारेण रुधिरं वमन्तं सिंहासनाद् भूमौ पातयामास, तदा स नागकेतुः कथं इमं सङ्घप्रासादविध्वंसं जीवन् पश्यामीतिबुद्ध्या प्रासादशिखरमारुह्य शिलां पाणिना दध्रे, ततः स व्यन्तरोऽपि तत्तपःशक्तिं असहमानः शिलां संहृत्य नागकेतुं नतवान्, तद्वचनेन भूपालं अपि निरुपद्रवं कृतवान्। अन्यदा च स नागकेतुर्जिनेन्द्रपूजां कुर्वन् पुष्पमध्यस्थितसर्पेण दष्टोऽपि तथैवाव्यग्रो भावनारूढः केवलज्ञानं आसादितवान्, ततः शासनदेवताऽर्पितमुनिवेषश्चिरं विहरति स्म, एवं नागकेतुकथां श्रुत्वा अन्यैरपि अष्टमतपसि यतनीयं। इति नागकेतुकथा॥

अथात्र श्रीकल्पसूत्रे त्रीणि वाच्यानि यथा—'पुरिमचरिमाण कप्पो,मंगलं वद्धमाणतित्थम्मि। इह परिकहिया जिणगणहराइथेरावली चरित्तं॥ १॥' व्याख्या-'पुरिमचरिमाण'त्ति ऋषभवीरजिनयोः 'कप्प'त्ति अयं कल्पः-आचारः यत् वृष्टिर्भवतु मा वा परं अवश्यं पर्युषणा कर्तव्या, उपलक्षणत्वात् कल्पसूत्रं वाचनीयं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** कल्पसूत्रे त्रीणि वाच्यानि कथनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [१]

च, मङ्गलमिति एकं अयं आचारः अपरं च मङ्गलं–मङ्गलकारणं भवति वर्धमानतीर्थे, कस्मादेवं इत्याह—यस्मा-
दिह परिकथितानि 'जिण'त्ति-जिनानां चरितानि १ 'गणहराइथेरावली'ति-गणधरादिस्थविरावली २ 'चरित्त'-
न्ति-सामाचारी ३। तत्र प्रथमाधिकारे जिनचरितेषु आसन्नोपकारितया प्रथमं श्रीवीरचरित्रं वर्णयन्तः
श्रीभद्रबाहुस्वामिनो जघन्यमध्यमवाचनात्मकं प्रथमं सूत्रं रचयन्ति—

(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले, अवसर्पिणीचतुर्थारकपर्यन्तलक्षणे, णंकारः सर्वत्र वाक्यालङ्कारार्थः (तेणं समएणं) निर्विभाज्यः कालविभागः समयस्तस्मिन् समये (समणे भगवं महावीरे त्ति) श्रमणः–तपोनिरतः 'भगवं' ति-भगवान् अर्कयोनिवर्जितद्वादशभगशब्दार्थवान्, यदाहुः—'भगोऽर्क १ ज्ञान २ माहात्म्य ३ यशो-
४ वैराग्य ५ मुक्तिषु ६। रूप ७ वीर्य ८ प्रयत्ने ९ च्छा १० श्री ११ धर्मै १२ श्वर्य १३ योनिषु १४ ॥ १ ॥' अत्र
आद्यान्त्यौ अर्थौ वर्जनीयौ, ननु अन्त्योऽर्थस्तु वर्ज्य एव, परं अर्कः कथं वर्ज्यः?, सत्यं, उपमानतया अर्को
भवति परं वत्प्रत्ययान्तत्वेन अर्कवान् इत्यर्थो न लगतीति वर्जितः, 'महावीरे'त्ति-कर्मवैरिपराभवसमर्थः,
श्रीवर्धमानस्वामीत्यर्थः (पञ्चहत्थुत्तरे होत्थत्ति) हस्तोत्तरा-उत्तराफाल्गुन्यः, गणनया ताभ्यो हस्तस्य उत्तर-
त्वात्, ताः पञ्चसु स्थानेषु यस्य स पञ्चहस्तोत्तरो भगवान् 'होत्थ'त्ति-अभवत्॥ अथ षट्कल्याणकवादी आह—
ननु 'पञ्चहत्थुत्तरे साइणा परिनिव्वुडे' इति वचनेन महावीरस्य षट्कल्याणकत्वं संपन्नमेव, मैवं, एवं उच्यमाने
'पञ्चउत्तरासाढे अभीइछट्ठे होत्थ' त्ति जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवचनात् श्रीऋषभस्यापि षट् कल्याणकानि वक्तव्यानि

५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र प्रथमं सूत्र एव वर्तते किंतु बारसासूत्रस्य संपादने अस्य सूत्रस्य क्रमांकन '२' इति लिखितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [१]

स्युः, न च तानि त्वयाऽपि तथोच्यन्ते, तस्माद्यथा पञ्चउत्तरासाढे इत्यत्र नक्षत्रसाम्यात् राज्याभिषेको मध्ये गणितः परं कल्याणकानि तु 'अभीइछट्ठे' इत्यनेन सह पञ्चैव तथाऽत्रापि 'पञ्चहत्थुत्तरे' इत्यत्र नक्षत्रसाम्यात् गर्भापहारो मध्ये गणितः, परं कल्याणकानि तु 'साइणा परिनिव्वुडे' इत्यनेन सह पञ्चैव, तथा श्रीआचाराङ्गटीकाप्रभृतिषु 'पञ्चहत्थुत्तरे' इत्यत्र पञ्च वस्तून्येव व्याख्यातानि, न तु कल्याणकानि। किञ्च-श्रीहरिभद्रसूरिकृतयात्रापञ्चाशकस्य अभयदेवसूरिकृतायां टीकायां अपि–आषाढशुद्धषष्ठ्यां गर्भसंक्रमः १ चैत्रशुद्धत्रयोदश्यां जन्म २ मार्गशितदशम्यां दीक्षा ३ वैशाखशुद्धदशम्यां केवलं ४ कार्तिकामावास्यायां मोक्षः ५ एवं श्रीवीरस्य पञ्च कल्याणकानि उक्तानि, अथ यदि षष्ठं स्यात्तदा तस्यापि दिनं उक्तं स्यात्। अन्यच्च नीचैर्गोत्रविपाकरूपस्य अतिनिन्द्यस्य आश्चर्यरूपस्य गर्भापहारस्यापि कल्याणकत्वकथनं अनुचितं ॥ अथ 'पञ्चहत्थुत्तरे' इत्यत्र गर्भा-

१ ताश्च पञ्चसु स्थानेषु-गर्भाधानसंहरणजन्मदीक्षाज्ञानोत्पत्तिरूपेषु संवृत्ता इति प्रथमाङ्गे 'चवणाईणं छण्हं वत्थूणं'ति कल्पचूर्णौ। मोचनार्थत्वाभावादपहारस्यानेन संक्रमानर्थान्तरतामुक्त्वाऽप्यपहारस्य कल्याणकतया प्रथनं वक्तुः पृथुस्थूलबुद्धेरनुमापकं। कल्याणकानि वस्तुस्थानरूपाणि न तु वस्तुस्थानानि कल्याणकानीति तु सुबोधमेव २ महोत्सवार्थं वीरकल्याणकभणनप्रसंगे एतदुक्तेः. षष्ठकल्याणकवर्णनमाकाशकुसुमकल्पं, जिनवल्लभात् प्राक् न केनापि च लेशतोऽपि तदुक्तं, जिनवल्लभश्च सूत्रोत्तीर्णवादीति जीवाभिगमप्रज्ञापनादौ मलयगिरयः, परेषामनुगतिरनाभोगिकी ३ गर्भापहारोऽशुभः गर्भसंक्रमस्तूत्तमकुले उत्तमः, विचार्यो भेदोऽनयोर्बावदूकैः, अपहारे हि आजन्ने वक्षो देवानन्दया, उत्तमकुलादुत्तमकुले संक्रमेऽपि पितृद्वयादिना स्पष्टैवाशुभता,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** भगवन्त महावीरस्य पंच-कल्याणकानां निर्देश:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [१]

पहरणं कथं उक्तं इति चेत् सत्यं, अत्र हि भगवान् देवानन्दाकुक्षौ अवतीर्णः, प्रसूतवती च त्रिशलेति असंगतिः स्यात् तन्निवारणाय 'पञ्चहत्थुत्तरे'त्ति वचनं, इत्यलं प्रसङ्गेन, कल्याणकानि पञ्चैव (१)॥ (तंजहत्ति) तद्यथा-पञ्चहस्तोत्तरत्वं भगवतो मध्यमवाचनया दर्शयति-(हत्थुत्तराहिं चुएत्ति) उत्तराफाल्गुनीषु च्युतो देवलोकात् (चइत्ता गब्भं वक्कंतेत्ति) च्युत्वा गर्भे उत्पन्नः (हत्थुत्तराहिं गब्भाउ गब्भं साहरिएत्ति) उत्तराफाल्गुनीषु गर्भात् गर्भं संहृतः, देवानन्दागर्भात्त्रिशलागर्भे मुक्त इत्यर्थः, (हत्थुत्तराहिं जाएत्ति) उत्तरफाल्गुनीषु जातः (हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिअं पव्वइएत्ति) उत्तराफाल्गुनीषु मुण्डो भूत्वा, तत्र द्रव्यतो मुण्डः केशलुञ्चनेन, भावतो मुण्डः रागद्वेषाभावेन, अगारात्-गृहात् निष्क्रम्येति शेषः अनगारितां-साधुतां 'पव्वइए'त्ति प्रतिपन्नः, तथा (हत्थुत्तराहिंति) उत्तराफाल्गुनीषु (अणन्तेत्ति) अनन्तं-अनन्तवस्तुविषयं (अणुत्तरेत्ति) अनुपमं (निव्वाघाएत्ति) निर्व्याघातं-भित्तिकटादिभिरस्खलितं (निरावरणेत्ति) समस्तावरणरहितं (कसिणेत्ति) कृत्स्नं-सर्वपर्यायोपेतवस्तुज्ञापकं (पडिपुण्णेत्ति) परिपूर्णं-सर्वावयवसंपन्नं, एवंविधं यत् (केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्नेत्ति) वरं-प्रधानं केवलज्ञानं केवलदर्शनं च तत् उत्तराफाल्गुनीषु प्राप्तः, (साइणा परिनिव्वुए भयवन्ति) स्वाति-नक्षत्रे मोक्षं गतो भगवान् (२)॥ अथ विस्तरवाचनया श्रीवीरचरित्रम्-(तेणं कालेणंति) तस्मिन् काले

५ १० १२

१ बहुकल्याणकार्थं बहुवचनमिति प्रणेतारो बालिशा एव, यतः फाल्गुन्योर्द्विवचनान्तता स्वतः कोशादिसंगता, द्वित्वे च प्राकृते बहुत्वं स्वभावादेव, किंच 'फल्गुनीप्रोष्ठपदस्य भे' (२-२-१२३) इत्यपि नेक्षितं तैरतिप्रहाकुलैः बहुकल्याणेत्याद्युपज्ञायमानैः, कथमन्यथा बहुत्र वाक्येषु बहुवचनं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० १

॥ १० ॥

(तेणं समएणंति) तस्मिन् समये (समणे भगवं महावीरेत्ति) श्रमणो भगवान् महावीरः (जे से गिम्हाणंति) योऽसौ ग्रीष्मकालस्य (चउत्थे मासेत्ति) चतुर्थो मासः (अट्ठमे पक्खेत्ति) अष्टमः पक्षः, कोऽर्थः?–(आसाढसुद्धेत्ति) आषाढशुक्लपक्षः (तस्स णं आसाढसुद्धस्सत्ति) तस्य आषाढशुक्लपक्षस्य (छट्ठीपक्खेणंति) षष्ठीरात्रौ (महाविजयपुप्फुत्तरपवरपुंडरीआओ महाविमाणाओत्ति) महान् विजयो यत्र तन्महाविजयं 'पुप्फुत्तर'त्ति पुष्पोत्तरनामकं 'पवरपुंडरीआओ'त्ति प्रवरेषु–अन्यश्रेष्ठविमानेषु पुण्डरीकमिव–श्वेतकमलमिव अतिश्रेष्ठं इत्यर्थः तस्मात् 'महाविमाणाओ'त्ति महाविमानात्, किंविशिष्टात्?–(वीसंसागरोवमठिइआओत्ति) विंशतिसागरोपमस्थितिकात्, तत्र हि देवानां विंशतिः सागराणि उत्कृष्टा स्थितिर्भवति भगवतोऽपि एतावत्येव स्थितिरासीत्, अथ तस्माद्विमानात् (आउखएणंति) देवायुःक्षयेण (भवखएणंति) देवगतिनामकर्मक्षयेण (ठिइखएणंति) स्थितिः–वैक्रियशरीरेऽवस्थानं तस्याः क्षयेण–पूर्णीकरणेन (अणन्तरंति) अन्तररहितं (चयं चइत्तत्ति) च्यवं–च्यवनं कृत्वा (इहेव जम्बुदीवे दीवेत्ति) अस्मिन्नेव जम्बूद्वीपनाम्नि द्वीपे (भारहे वासेत्ति) भरतक्षेत्रे (दाहिणड्ढभरहेत्ति) दक्षिणार्धभरते (इमीसे ओसप्पिणीएत्ति) यत्र समये समये रूपरसादीनां हानिः स्यात् साऽवसर्पिणी, ततोऽस्यां अवसर्पिण्यां (सुसमसुसमाए समाए विइक्कंताएत्ति) सुषमसुषमानाम्नि चतुष्कोटाकोटिसागरप्रमाणे प्रथमारके अतिक्रान्ते (सुसमाए समाएत्ति) सुषमानाम्नि त्रिकोटाकोटिसागरप्रमाणे द्वितीयारके (विइक्कंताए) अतिक्रांते (सुसमदूसमाए समाएत्ति) सुषमदुष्षमानाम्नि द्विकोटाकोटिसागरप्रमाणे

कल्याणक-पंचकं सू.२
कुक्षावव-तारः सू. ३
१५
२०
॥ १० ॥
२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

तृतीयारके (विइक्कंताए) व्यतिक्रान्ते-अतीते (दूसमसुसमाए समाएत्ति) दुष्षमसुषमानाम्नि चतुर्थारके (बहुविइक्कंताएत्ति) बहुव्यतिक्रान्ते किञ्चिदूने, तदेवाह—(सागरोवमकोडाकोडीए बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणियाएत्ति) द्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रया ४२००० ऊना एका सागरकोटाकोटिश्चतुर्थारकप्रमाणं, तत्रापि चतुर्थारकस्य (पञ्चहत्तरीए वासेहिं अद्धनवमेहि अ मासेहिं सेसेहिंति) पञ्चसप्तति ७५ वर्षेषु सार्द्धाष्टमासाधिकेषु शेषेषु श्रीवीरावतारः, द्वासप्ततिवर्षाणि च श्रीवीरस्यायुः, श्रीवीरनिर्वाणाच्च त्रिभिर्वर्षैः सार्द्धाष्टमासैश्चतुर्थारकसमाप्तिः ततः, पूर्वोक्ता या द्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्री सा एकविंशत्येकविंशतिवर्षसहस्रप्रमाणयोः पञ्चमारकषष्ठारकयोः सम्बन्धिनी ज्ञेया, (इक्कवीसाए तित्थयरेहिंति) एकविंशतौ तीर्थंकरेषु (इक्खागकुलसमुप्पन्नेहिंति) ईक्ष्वाकुकुलसमुत्पन्नेषु (कासवगुत्तेहिंति) काश्यपगोत्रेषु (दोहि अत्ति) द्वयोः मुनिसुव्रतनेम्योः (हरिवंसकुलसमुप्पन्नेहिंति) हरिवंशकुलसमुत्पन्नयोः (गोयमसगुत्तेहिंति) गौतमगोत्रयोः, एवं च (तेवीसाए तित्थयरेहिं विइक्कंतेहिंति) त्रयोविंशतौ तीर्थंकरेषु अतीतेषु (समणे भगवं महावीरेत्ति) श्रमणो भगवान् महावीरः, किंविशिष्टः?-(चरमतित्थयरेत्ति) चरमतीर्थङ्करः, पुनः किंविशिष्टः?-(पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठेत्ति) पूर्वतीर्थङ्करनिर्दिष्टः-श्रीवीरो भविष्यतीत्येवं पूर्वजिनैः कथितः (माहणकुंडग्गामे नयरेत्ति) ब्राह्मणकुण्डग्राम-

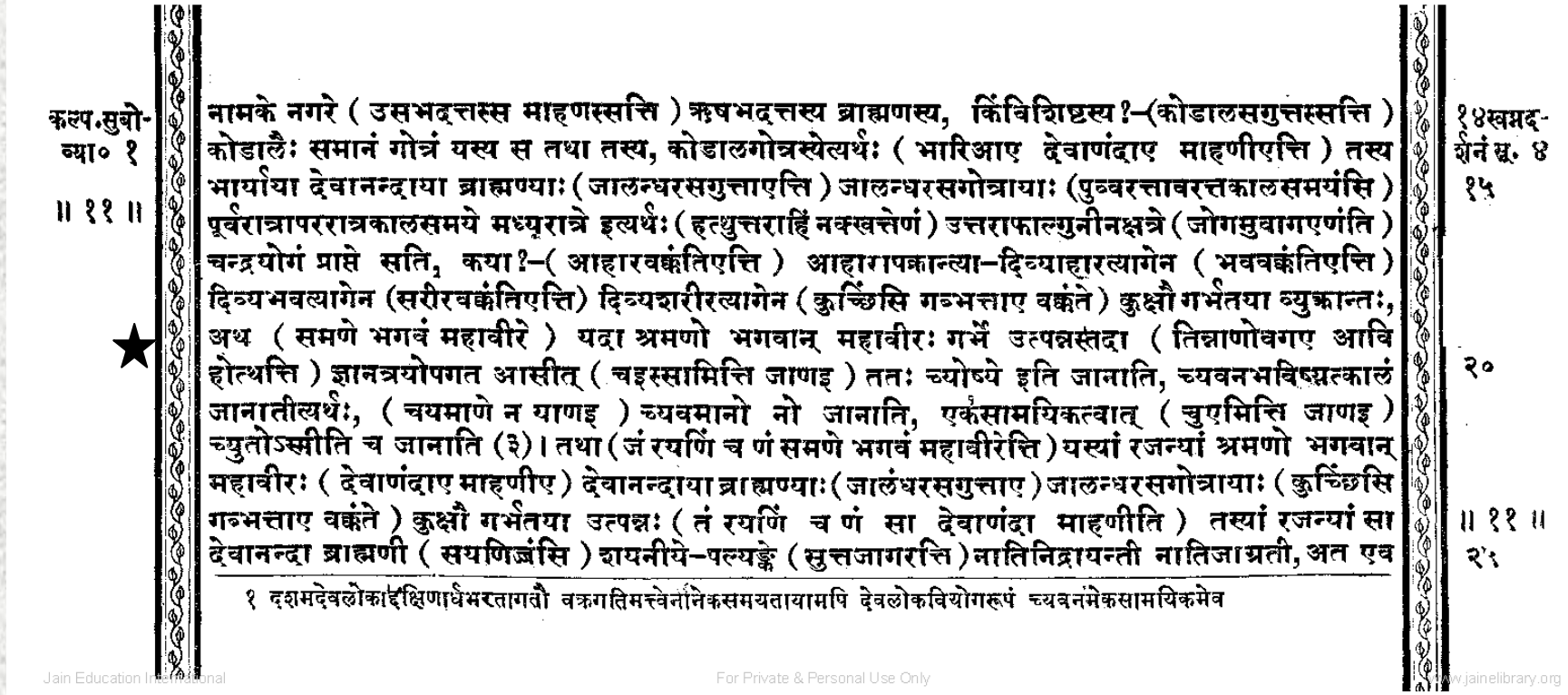
१ पूर्वतीर्थकरेत्यस्यादिजिनेनेत्यर्थं कथयित्वा भववर्णनं कृतं केनचित् तच्चिन्त्यं, सर्वजिनैश्चतुर्विंशतिस्तवोदितैः, निर्गमसंबन्धेनावश्यकादौ भवक्रमसंबन्धेन च वीरचरित्रादौ पूर्वं भववर्णनं दृष्ट्वाऽत्राप्यत्रैव भववर्णनं युक्तमित्याख्यानं अनाभोगमूलं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [३] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [३]



कल्प.सुबो-व्या० १

॥ ११ ॥

नामके नगरे (उसभदत्तस्स माहणस्सत्ति) ऋषभदत्तस्य ब्राह्मणस्य, किंविशिष्टस्य?–(कोडालसगुत्तस्सत्ति) कोडालैः समानं गोत्रं यस्य स तथा तस्य, कोडालगोत्रस्येत्यर्थः (भारिआए देवाणंदाए माहणीएत्ति) तस्य भार्यायां देवानन्दायां ब्राह्मण्याः (जालन्धरसगुत्ताएत्ति) जालन्धरसगोत्रायाः (पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि) पूर्वरात्रापररात्रकालसमये मध्यरात्रे इत्यर्थः (हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं) उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रे (जोगमुवागएणंति) चन्द्रयोगं प्राप्ते सति, कया?–(आहारवक्कंतिएत्ति) आहारापक्रान्त्या–दिव्याहारत्यागेन (भववक्कंतिएत्ति) दिव्यभवत्यागेन (सरीरवक्कंतिएत्ति) दिव्यशरीरत्यागेन (कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते) कुक्षौ गर्भतया व्युक्रान्तः, अथ (समणे भगवं महावीरे) यदा श्रमणो भगवान् महावीरः गर्भे उत्पन्नस्तदा (तिन्नाणोवगए आवि होत्थत्ति) ज्ञानत्रयोपगत आसीत् (चइस्सामित्ति जाणइ) ततः च्योष्ये इति जानाति, च्यवनभविष्यत्कालं जानातीत्यर्थः, (चयमाणे न याणइ) च्यवमानो नो जानाति, एकसामयिकत्वात्[१] (चुएमित्ति जाणइ) च्युतोऽस्मीति च जानाति (३)। तथा (जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरेत्ति) यस्यां रजन्यां श्रमणो भगवान् महावीरः (देवाणंदाए माहणीए) देवानन्दाया ब्राह्मण्याः (जालंधरसगुत्ताए) जालन्धरसगोत्रायाः (कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते) कुक्षौ गर्भतया उत्पन्नः (तं रयणिं च णं सा देवाणंदा माहणीति) तस्यां रजन्यां सा देवानन्दा ब्राह्मणी (सयणिज्जंसि) शयनीये–पल्यङ्के (सुत्तजागरत्ति) नातिनिद्रायन्ती नातिजाग्रती, अत एव

१ दशमदेवलोकादक्षिणार्धभरतागतौ वक्रगतिमत्त्वेनानेकसमयतायामपि देवलोकवियोगरूपं च्यवनमेकसामयिकमेव

१४स्वप्नद-र्शनं सू. ४ १५ २० ॥ ११ ॥ २१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** देवानन्दायाः कुक्षौ भगवन्त महावीरस्य उत्पत्तिः

प्रत सूत्रांक [४] गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

॥४॥

सुत्तजागरा ओहिरमाणि २ त्ति) अल्पां निद्रां कुर्वती (इमेत्ति) इमान् (एयारूवेत्ति) एतद्रूपान्–वक्ष्यमाणस्वरूपान् (उरालेत्ति) उदारान्–प्रशस्तान् (कल्लाणेत्ति) कल्याणहेतून् (सिवेत्ति) शिवान्–उपद्रवहरान् (धन्नेत्ति) धन्यान्–धनहेतून् (मंगल्लेत्ति) मङ्गलकारकान् (सस्सिरीएत्ति) सश्रीकान् (चउद्दस महासुमिणे) ईदृशान् चतुर्दश महास्वप्नान् (पासित्ता णं पडिबुद्धत्ति) दृष्ट्वा जागरिता, (तंजहत्ति) तद्यथा–(गय १ वसह २ सीह- ३ अभिसेअ ४ दाम ५ ससि ६ दिणयरं ७ झयं ८ कुंभं ९। पउमसर १० सागर ११ विमाणभवण १२ रयणु- च्चय १३ सिहिं च १४॥१॥) हस्ती १ वृषभः २ सिंहः ३ अभिषेकः श्रियाः सम्बन्धी ४ पुष्पमाला ५ चन्द्रः ६ सूर्यः ७ ध्वजः ८ पूर्णकुम्भः ९ पद्मोपलक्षितं सरः १० समुद्रः ११ विमानं देवसम्बन्धि भवनं–गृहं, तत्र यः स्वर्गाद्- वतरति तन्माता विमानं पश्यति यस्तु नरकादायाति तन्माता भवनमिति द्वयोरेकतरदर्शनाच्चतुर्दशैव स्वप्नाः १२ रत्नानां उच्चयो–राशिः १३ शिखी–निर्धूमोऽग्निः १४ (४)। (तए णं सा देवानंदा माहणी) ततः सा देवानन्दा ब्राह्मणी (इमेति) इमान् (एयारूवेत्ति) एतद्रूपान् (उरालेत्ति) उदारान्–प्रशस्तान् (जावत्ति) यावत्- शब्देन पूर्वपाठोऽनुसरणीयः, (चउद्दस महासुमिणेत्ति) यथोक्तान् चतुर्दश महास्वप्नान् (पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणीति) दृष्ट्वा जागरिता सती (हट्ठत्ति) हृष्टा–विस्मयं प्राप्ता (तुट्ठत्ति) संतोषं प्राप्ता (चित्तमाणंदिअत्ति) चित्तेन आनन्दिता (पीइमणत्ति) प्रीतिर्मनसि यस्याः सा तथा प्रीतियुक्तचित्ता (परमसोमणस्सिआ) परमं सौमनस्यं–सन्तुष्टचित्तत्वं जातं यस्याः सा तथा (हरिसवसत्ति) हर्षवशेन (विसप्पमाणत्ति) विस्तारवत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

॥१२॥

(हिअयत्ति) हृदयं यस्याः सा तथा, पुनः किं भूता ! (धाराहयकयंबपुप्फगंपिवत्ति) धारया मेघजलधारया सिक्तं एवंविधं यत्कदम्बतरुकुसुमं तद्वि मेघधारया फुल्लति ततस्तद्वत् (समुस्ससिअरोमकूवा) समुच्छ्वसिताानि रोमाणि कूपेषु यस्याः सा तथा एवंविधा सती (सुमिणुग्गहं करेइ २ त्ता) स्वप्नानां अवग्रहं स्मरणं करोति, तत्कृत्वा च (सयणिज्जाओ अब्भुट्टेइ) शय्याया अभ्युत्तिष्ठति, (अब्भुट्टित्ता) अभ्युत्थाय (अतुरिअत्ति) अत्वरितया मानसौत्सुक्यरहितया (अचवलत्ति) अचपलया कायचापल्यवर्जितया, (असंभन्ताएत्ति) असम्भ्रान्तया अस्खलन्त्या (अविलंबिआएत्ति) विलम्बरहितया (रायहंससरिसीए गइए) राजहंससदृशया गत्या (जेणेव उसभदत्ते)

कल्प०

माहणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उसभदत्तं माहणं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता भद्दासणवरगया आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—एवं खलु अहं देवाणुप्पिआ, अज्ज सयणिज्जंसि—

माहणे) यत्रैव रुषभदत्तो ब्राह्मणः (तेणेव उवागच्छइ) तत्रैवोपागच्छति (उवागच्छित्ता) उपागत्य (उसभदत्तं माहणं) रुषभदत्तं ब्राह्मणं (जएणं विजएणं वद्धावेइ) जयेन विजयेन वर्धापयति आशिषं ददाति, तत्र जयः स्वदेशे विजयः परदेशे (वद्धावित्ता) वर्धापयित्वा च (भद्दासणवरगया) भद्रासनवरगता ततश्च (आसत्थात्ति) आश्वस्ता श्रमापनयनेन (वीसत्थात्ति) विश्वस्ता क्षोभाऽभावेन, अत एव (सुहासणवरगयात्ति) सुखेन आसनवरं प्राप्ता, (करयलपरिग्गहिअं दसनहं) करतलाभ्यां परिगृहीतं कृतं दश नखाः समुदिता यत्र तम् (सिरसावत्तान्ति) शिरसि आवर्त्तः प्रदक्षिणभ्रमणं यस्य तं एवंविधं (मत्थए अंजलिं कट्टु) अञ्जलिं मस्तके कृत्वा देवानन्दा (एवं वयासीत्ति) एवं अवादीत्, किं तदित्याह—॥ ५ ॥

(एवं खलु अहं देवाणुप्पिआ) एवं निश्चयेन अहं हे देवानुप्रिय हे स्वामिन् (अज्ज सयणिज्जंसि) अद्य

सुत्रो०

॥१२॥

प्रत सूत्रांक [६] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [७]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

सुत्तजागरा ओहीरमाणी२ति) सुप्तजागरा-अल्पनिद्रां कुर्वती(इमेत्ति) इमान् (एयारूवेत्ति) एतद्रूपान्
(उरालत्ति) उदारान् (जाव ससिरीएत्ति) यावत् सश्रीकान् (चउद्दस महासुमिणेत्ति) चतुर्दश महा-
स्वप्नान् (पासित्ता णं पडिबुद्धत्ति) दृष्ट्वा जागरिता (तंजहा) तद्यथा (गय जाव सिहिं चत्ति) गय इत्या-
दितः सिहिं चेति यावत् पूर्वोक्ताः स्वप्ना ज्ञेयाः (६) ॥ (एएसि णं देवाणुप्पिअत्ति) एतेषां देवानुप्रिय !
(उरालाणंति) प्रशस्तानां (जाव चउद्दसण्हं महासुमिणाणंति) यावत् चतुर्दशानां महास्वप्नानां (के मण्णे ५
कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइत्ति) मन्ये-विचारयामि कः कल्याणकारी फलवृत्तिविशेषो भविष्यति ?,
तत्र फलं-पुत्रादि वृत्तिः-जीवनोपायादिः, (तए णं से उसभदत्ते माहणे) ततः स ऋषभदत्तो ब्राह्मणः
(देवाणंदाए माहणीएत्ति) देवानन्दायाः ब्राह्मण्याः (अंतिएत्ति) अन्तिके-पार्श्वे (एअमट्ठं सुच्चा) एतं
अर्थं श्रुत्वा कर्णाभ्यां (निसम्मत्ति) निशम्य-चेतसा अवधार्य (हट्ठतुट्ठजावहियएत्ति) हृष्टः तुष्टः यावत्
हर्षवशेन विसर्पद्धृदयः (धाराहयकयंबपुप्फगंपिव समुस्ससिअरोमकूवेत्ति) मेघधारया सिक्तकदम्बवृक्षपुष्प- १०
वत् समुच्छ्वसितानि रोमाणि कूपेषु यस्य सः, एवंविधः सन् (सुमिणुग्गहं करेइति) स्वप्नधारणं करोति (करि-
त्तत्ति) कृत्वा च (ईहं अणुपविसइ) ईहां-अर्थविचारणां प्रविशति (ईहं अणुपविसित्ता) तां कृत्वा च
(अप्पणो साहाविएणं महपुव्वएणं बुद्धिविन्नाणेणंति) आत्मनः-स्वात्मनः स्वाभाविकेन मतिपूर्वकेण
बुद्धिविज्ञानेन, तत्र अनागतकालविषया मतिः, वर्तमानकालविषया बुद्धिः, विज्ञानं चातीतानागतवस्तुविषयं, १४

कल्प. सु. ३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० १ ॥ १३ ॥

(तेसिं सुमिणाणं अत्थुग्गहं करेइत्ति) तेषां स्वप्नानां अर्थनिश्चयं करोति (अत्थुग्गहं करित्ता) तं कृत्वा (देवाणंदं माहणिं) देवानन्दां ब्राह्मणीं (एवं वयासीत्ति) एवं अवादीत् (७)॥ किं तदित्याह–(उराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा) उदारास्त्वया देवानुप्रिये ! स्वप्ना दृष्टाः (कल्लाणा णं जाव सस्सिरीयत्ति) कल्याणकारकाः यावत् सश्रीकाः (आरोग्गत्ति) आरोग्यं–नीरोगत्वं (तुट्ठित्ति) तुष्टिः–संतोषः (दीहाउत्ति) दीर्घायुः–चिरजीवित्वं (कल्लाणत्ति) कल्याणं–उपद्रवाभावः (मङ्गलकारगा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा) मङ्गलं–वाञ्छितावाप्तिः, एतेषां वस्तूनां कारकास्त्वया हे देवानुप्रिये ! स्वप्ना दृष्टाः (तंजहत्ति) तद्यथा (अत्थलाभो देवाणुप्पिएत्ति) अर्थलाभो भविष्यति हे देवानुप्रिये ! (भोगलाभो देवाणुप्पिएत्ति) भोगानां लाभः हे देवानुप्रिये ! (पुत्तलाभो देवाणुप्पिएत्ति) पुत्रस्य लाभः हे देवानुप्रिये ! (सुक्खलाभो देवाणुप्पिएत्ति) सौख्यलाभो हे देवानुप्रिये ! भविष्यतीति सर्वत्र योज्यं, (एवं खलु तुमं देवाणुप्पिएत्ति) एवं खलु त्वं देवानुप्रिये ! (नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणंति) नवसु मासेषु बहुप्रतिपूर्णेषु (अद्धट्ठमाण राइंदिआणं विइक्कंताणं) सार्द्धसप्ताहोरात्राधिकेषु अतीतेषु, एतादृशं दारकं–पुत्रं (पयाहिसित्ति) प्रजनिष्यसीति सम्बन्धः, किंविशिष्टं दारकं ? (सुकुमालपाणिपायंति) सुकुमालं पाणिपादं यस्यैवंविधं, किंवि० (अहीणत्ति) अहीनानि–लक्षणोपेतानि (पडिपुन्नपञ्चिन्दिअसरीरत्ति) स्वरूपेण प्रतिपूर्णानि पञ्चेन्द्रियाणि यत्र तादृशं शरीरं यस्य स तथा तं, तथा (लक्खणवंजणगुणोववेअंति) लक्षणानि व्यञ्जनानि च लक्षणद्रव्य-

स्वप्नफले प्रश्नोत्तरौ पुत्रस्वरूपं सू. ७–८ २० २५ ॥ १३ ॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [८] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [९]

ज्ञनानि तेषां गुणास्तैरुपपेतं, तत्र लक्षणानि छत्रचामरादीनि, चक्रितीर्थकृतां अष्टोत्तरसहस्रं, बलदेववासुदेवानां अष्टोत्तरशतं, अन्येषां तु भाग्यवतां द्वात्रिंशत्, तानि चेमानि–'छत्रं १ तामरसं २ धनू ३ रथवरो ४ दम्भोलि ५-कूर्मा ६ ङ्कुशा ७, वापी ८ स्वस्तिक ९ तोरणानि १० च सरः ११ पञ्चाननः १२ पादपः १३। चक्रं १४ शङ्ख १५-गजौ १६ समुद्र १७ कलशौ १८ प्रासाद १९ मत्स्या २० यवा २१, यूप २२ स्तूप २२ कमण्डलू २४ न्यवनि-भृत् २५ सचामरो २६ दर्पणः २७ ॥ १ ॥ उक्षा २८ पताका २९ कमलाभिषेकः ३०, सुदाम ३१ केकी ३२ धन- पुण्यभाजाम्॥ तथा 'इह भवति ससरक्तः, षडुन्नतः पञ्चसूक्ष्मदीर्घश्च । त्रिविपुललघुगम्भीरो द्वात्रिंशल्लक्षणः स पुमान् ॥ १ ॥ तत्र सप्त रक्तानि–नख १ चरण २ हस्त ३ जिह्वा ४ ओष्ठ ५ तालु ६ नेत्रान्ताः ७, षडुन्नतानि–कक्षा १ हृदयं २ ग्रीवा ३ नासा ४ नखा ५ मुखं च ६, पञ्च सूक्ष्माणि–दन्ताः १ त्वक् २ केशा ३ अङ्गुलिपर्वाणि ४ नखाश्च ५, तथा पञ्च दीर्घाणि–नयने १ हृदयं २ नासिका ३ हनुः ४ भुजौ च ५, त्रीणि विस्तीर्णानि–भालं १ उरः २ वदनं च ३, त्रीणि लघूनि–ग्रीवा १ जङ्घा २ मेहनं च ३, त्रीणि गम्भीराणि–सत्त्वं १ स्वरः २ नाभिश्च ३, मुखमर्धं शरीरस्य, सर्वं वा मुखमुच्यते। ततोऽपि नासिका श्रेष्ठा, नासिकायाश्च लोचने ॥ १ ॥ यथा नेत्रे तथा शीलं, यथा नासा तथाऽऽर्जवम्। यथा रूपं तथा वित्तं, यथा शीलं तथा गुणाः ॥ २ ॥ अतिह्रस्वेऽतिदीर्घेऽति-स्थूले चातिकृशे तथा। अतिकृष्णेऽतिगौरे च, षट्सु सत्त्वं निगद्यते ॥३॥ सद्धर्मः सुभगो नीरुक्, सुखप्रः सुनयः कविः। सूचयत्यात्मनः श्रीमान्, नरः स्वर्गगमागमौ ॥ ४ ॥ निर्दम्भः सदयो दानी, दान्तो दक्षः सदा ऋजुः।

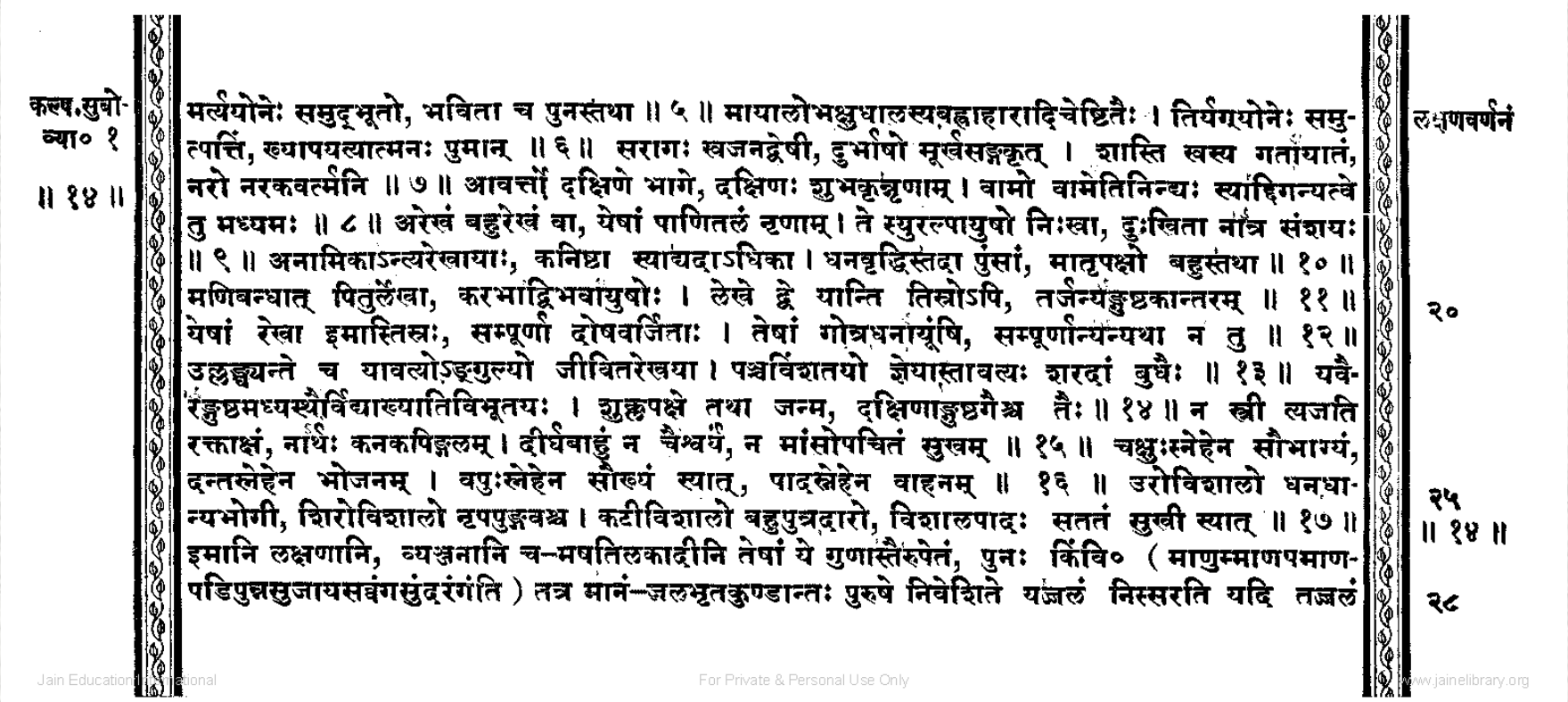
५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र द्वात्रिन्शत् लक्षणानाम् वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [८] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-व्या० १

॥ १४ ॥

मर्त्ययोनेः समुद्भूतो, भविता च पुनस्तथा ॥ ५ ॥ मायालोभक्षुधालस्यबह्वाहारादिचेष्टितैः । तिर्यग्योनेः समुत्पत्तिं, ख्यापयत्यात्मनः पुमान् ॥ ६ ॥ सरागः खजनद्वेषी, दुर्भाषो मूर्खसङ्गकृत् । शास्ति स्वस्य गतायातं, नरो नरकवर्त्मनि ॥ ७ ॥ आवर्त्तो दक्षिणे भागे, दक्षिणः शुभकृन्नृणाम् । वामो वामेतिनिन्द्यः स्यादिगन्यत्वे तु मध्यमः ॥ ८ ॥ अरेखं बहुरेखं वा, येषां पाणितलं नृणाम् । ते स्युरल्पायुषो निःस्वा, दुःखिता नात्र संशयः ॥ ९ ॥ अनामिकाऽन्त्यरेखायाः, कनिष्ठा स्याद्यदाऽधिका । धनवृद्धिस्तदा पुंसां, मातृपक्षो बहुस्तथा ॥ १० ॥ मणिबन्धात् पितुर्लेखा, करभाद्भिभवायुषोः । लेखे द्वे यान्ति तिस्रोऽपि, तर्जन्यङ्गुष्ठकान्तरम् ॥ ११ ॥ येषां रेखा इमास्तिस्रः, सम्पूर्णा दोषवर्जिताः । तेषां गोत्रधनायूंषि, सम्पूर्णान्यन्यथा न तु ॥ १२ ॥ उल्लङ्घ्यन्ते च यावत्योऽङ्गुल्यो जीवितरेखया । पञ्चविंशतयो ज्ञेयास्तावत्यः शरदां बुधैः ॥ १३ ॥ यवैरङ्गुष्ठमध्यस्थैर्विद्याख्यातिविभूतयः । शुक्लपक्षे तथा जन्म, दक्षिणाङ्गुष्ठगैश्च तैः ॥ १४ ॥ न स्त्री त्यजति रक्ताक्षं, नार्थः कनकपिङ्गलम् । दीर्घबाहुं न चैश्वर्यं, न मांसोपचितं सुखम् ॥ १५ ॥ चक्षुःस्नेहेन सौभाग्यं, दन्तस्नेहेन भोजनम् । वपुःस्नेहेन सौख्यं स्यात्, पादस्नेहेन वाहनम् ॥ १६ ॥ उरोविशालो धनधान्यभोगी, शिरोविशालो नृपपुङ्गवश्च । कटीविशालो बहुपुत्रदारो, विशालपादः सततं सुखी स्यात् ॥ १७ ॥ इमानि लक्षणानि, व्यञ्जनानि च–मषतिलकादीनि तेषां ये गुणास्तैरुपेतं, पुनः किंवि० (माणुम्माणपमाणपडिपुन्नसुजायसव्वंगसुंदरंगंति) तत्र मानं–जलभृतकुण्डान्तः पुरुषे निवेशिते यज्जलं निस्सरति यदि तज्जलं

लक्षणवर्णनं

२०

२५

॥ १४ ॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

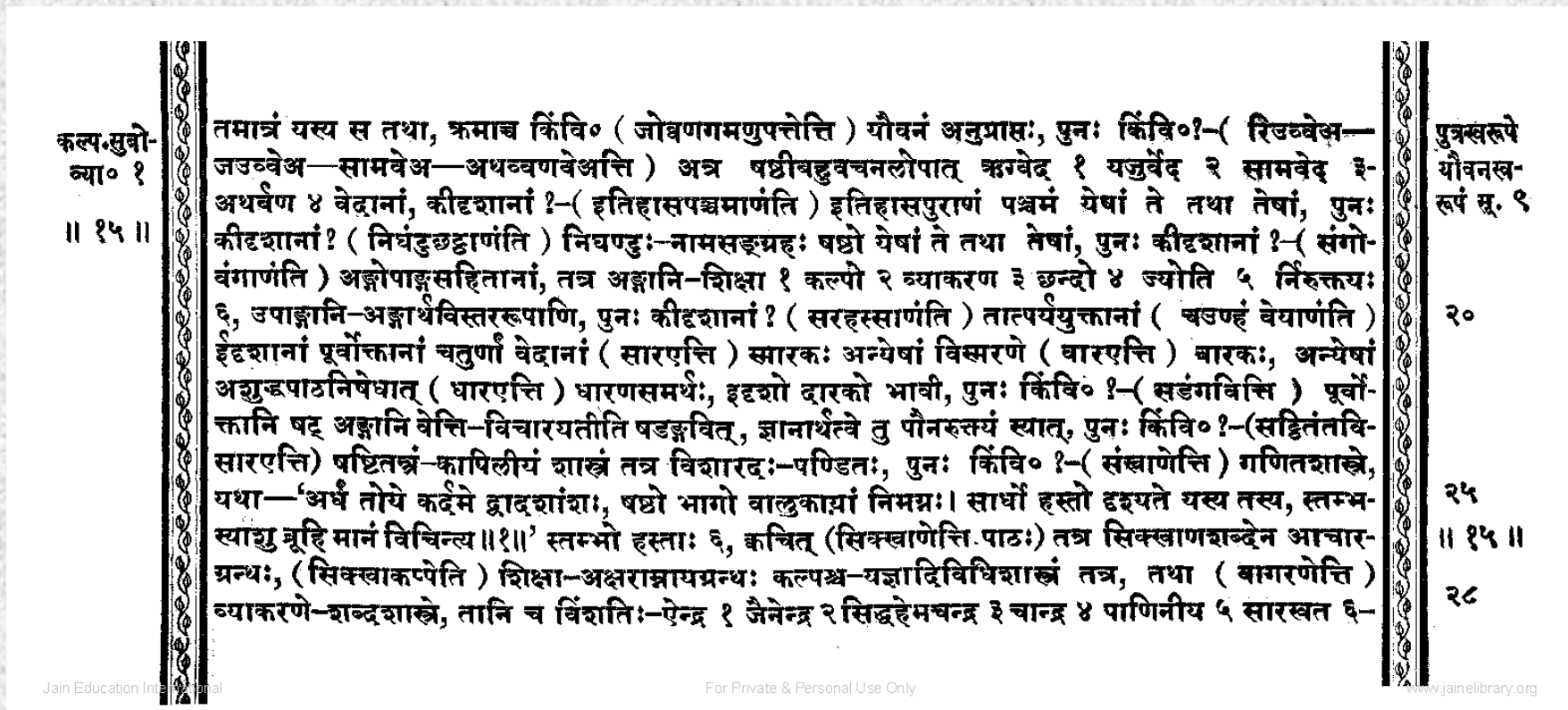
द्रोणमानं भवेत् तदा स पुरुषो मानप्राप्तः, यदि च तुलारोपितोऽर्धभारमानः स्यात्तदा स उन्मानप्राप्तः, तत्र भारमानं–'षट्सर्षपैर्यवस्त्वेको, गुञ्जैका च यवैस्त्रिभिः। गुञ्जात्रयेण वल्लः स्याद्, गद्याणे ते च षोडश ॥१॥ पले च दश गद्याणास्तेषां सार्धशतं मणे। मणैर्दशभिरेका च, घटिका कथिता बुधैः ॥२॥ घटिभिर्दशभिस्ताभिरेको भारः प्रकीर्त्तितः॥ अत्र 'तेषां सार्द्धशतं मणे' इति तेषां गद्याणानां इति वाच्यं न तु पलानां, पलानां सार्धशतेन मणकथने हि भारे अष्टसप्ततिर्मणाः स्युस्तदर्धं च एकोनचत्वारिंशन्मणाः, एतावच्च शरीरमानं न सम्भवति, गद्याणानां सार्धशतेन मणकथने तु भारे चत्वारिंशत्शेरमानेन पादोना अष्ट मणाः किञ्चिदधिका जायन्ते, सम्भवति च तदर्धमानं पञ्चशेराधिकपादोनचतुर्मणप्रमाणं शरीरमिति, संभवति च गद्याणकानां सार्धशतस्यापि मणत्वं, क्वचिद्देशे किञ्चिदूनशेरत्रयस्यापि मणत्वव्यवहारात्, तथा 'पमाण'त्ति स्वाङ्गुलेन अष्टोत्तरशताङ्गुलोच्च उत्तमपुरुषः, मध्यहीनपुरुषौ च षण्णवतिचतुरशीत्यङ्गुलोच्चौ स्यातां, अत्र उत्तमपुरुषोऽपि अन्य एव, तीर्थङ्करस्तु द्वादशाङ्गुलोष्णीषसद्भावेन विंशत्यधिकशताङ्गुलोच्चो भवति, ततश्च मानोन्मानप्रमाणैः प्रतिपूर्णानि सुजातानि सर्वाङ्गानि–शिरःप्रमुखाणि यत्र एवंविधं सुन्दरं अङ्गं यस्य तथा तं, पुनः किंवि० (ससिसोमागारेत्ति) शशिवत्सौम्याकारं (कन्तन्ति) कमनीयं (पियदंसणंति) वल्लभदर्शनं (सुरूवंति) शोभनरूपं (दारयं पयाहिसित्ति) दारकं प्रजनिष्यसीति ज्ञेयम् (८)॥ ॥ (सेवि अ णं दारएत्ति) सोऽपि दारक एवंविधो भविष्यति, किंवि०?-(उम्मुक्कबालभावेत्ति) त्यक्तबाल्यो–जाताष्टवर्षः, पुनः किंवि०?–(विन्नायपरिणयमित्तेत्ति) विज्ञानं परिण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [९] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [९]



कल्प.सुबो-व्या० १

॥ १५ ॥

तमात्रं यस्य स तथा, क्रमाच्च किंवि० (जोव्वणगमणुपत्तेत्ति) यौवनं अनुप्राप्तः, पुनः किंवि०?-(रिउव्वेअ—जउव्वेअ—सामवेअ—अथव्वणवेअत्ति) अत्र षष्ठीबहुवचनलोपात् ऋग्वेद १ यजुर्वेद २ सामवेद ३-अथर्वण ४ वेदानां, कीदृशानां ?-(इतिहासपञ्चमाणंति) इतिहासपुराणं पञ्चमं येषां ते तथा तेषां, पुनः कीदृशानां? (निघंटुछट्ठाणंति) निघण्टुः-नामसङ्ग्रहः षष्ठो येषां ते तथा तेषां, पुनः कीदृशानां ?-(संगोवंगाणंति) अङ्गोपाङ्गसहितानां, तत्र अङ्गानि-शिक्षा १ कल्पो २ व्याकरण ३ छन्दो ४ ज्योति ५ निरुक्तयः ६, उपाङ्गानि-अङ्गार्थविस्तररूपाणि, पुनः कीदृशानां ? (सरहस्साणंति) तात्पर्ययुक्तानां (चउण्हं वेयाणंति) ईदृशानां पूर्वोक्तानां चतुर्णां वेदानां (सारएत्ति) स्मारकः अन्येषां विस्मरणे (धारएत्ति) धारकः, अन्येषां अशुद्धपाठनिषेधात् (धारएत्ति) धारणसमर्थः, इदृशो दारको भावी, पुनः किंवि० ?-(सडंगविउत्ति) पूर्वोक्तानि षट् अङ्गानि वेत्ति-विचारयतीति षडङ्गवित्, ज्ञानार्थत्वे तु पौनरुक्त्यं स्यात्, पुनः किंवि०?-(सट्ठितंतविसारएत्ति) षष्टितन्त्रं-कापिलीयं शास्त्रं तत्र विशारदः-पण्डितः, पुनः किंवि० ?-(संखाणेत्ति) गणितशास्त्रे, यथा—'अर्धं तोये कर्दमे द्वादशांशः, षष्ठो भागो वालुकायां निमग्नः। सार्धो हस्तो दृश्यते यस्य तस्य, स्तम्भस्याशु ब्रूहि मानं विचिन्त्य ॥१॥' स्तम्भो हस्ताः ६, क्वचित् (सिक्खाणेत्ति पाठः) तत्र सिक्खाणशब्देन आचारग्रन्थः, (सिक्खाकप्पेति) शिक्षा-अक्षरान्नायग्रन्थः कल्पश्च-यज्ञादिविधिशास्त्रं तत्र, तथा (वागरणेत्ति) व्याकरणे-शब्दशास्त्रे, तानि च विंशतिः-ऐन्द्र १ जैनेन्द्र २ सिद्धहेमचन्द्र ३ चान्द्र ४ पाणिनीय ५ सारस्वत ६-

पुत्रस्वरूपे यौवनस्वरूपं सू. ९

२०

२५

॥ १५ ॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१०] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [१०]

शाकटायन ७ वामन ८ विश्रान्त ९ बुद्धिसागर १० सरस्वतीकण्ठाभरण ११ विद्याधर १२ कलापक १३-
भीमसेन १४ शैव १५ गौड १६ नन्दि १७ जयोत्पल १८ मुष्टिव्याकरण १९ जयदेवाभिधानानि २०,
(छंदेत्ति) छन्दःशास्त्रे (निरुत्तेत्ति) पदभञ्जने व्युत्पत्तिरूपे टीकादौ इत्यर्थः (जोइसामयणेत्ति) ज्योतिः-
शास्त्रे (अन्नेसु अ बहुसुत्ति) एषु पूर्वोक्तेषु अन्येषु च बहुषु (बंभण्णएसुत्ति) ब्राह्मणहितेषु शास्त्रेषु (परि-
व्वायएसुत्ति) परिव्राजकसम्बन्धिषु (नएसु) नयेषु–आचारशास्त्रेषु (सुपरिनिट्ठिए यावि भविस्सइत्ति) अति- ५
निपुणो भविष्यतीति योगः (९) ॥ (तं उराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा) तस्मात् कारणात्
उदाराः त्वया हे देवानुप्रिये ! स्वप्ना दृष्टाः (जाव आरुग्गतुट्ठिदीहाउमंगल्लकारगा णंति) यावत् आरो-
ग्यतुष्टिदीर्घायुःकल्याणमङ्गलानां कारकाः (तुमे देवाणुप्पिए सुमिणा दिट्ठत्ति) त्वया हे देवानुप्रिये !
स्वप्ना दृष्टाः (इतिकट्टुत्ति) इतिकृत्वा (भुज्जो भुज्जो अणुवूहइत्ति) भूयो भूयो–वारं वारं अनुबृंहयति–अनु- १०
मोदयति (१०) ॥ (तए णं सा देवाणंदा माहणीति) ततः सा देवानन्दा ब्राह्मणी (उसभदत्तस्स माहणस्स
अंतिए) ऋषभदत्तस्य ब्राह्मणस्य पार्श्वे (एयमट्ठं सुच्चत्ति) इमं अर्थं श्रुत्वा (निसम्मत्ति) चेतसा अवधार्य
(हट्ठतुट्ठजावहिययत्ति) हृष्टा तुष्टा यावत् हर्षपूर्णहृदया (करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए
अंजलिं कट्टु) करतलाभ्यां कृतं दश नखा मिलिताः यत्र तं, शिरसि आवर्तो यत्र तं, इदृशं मस्तके करस- १५
म्पुटं कृत्वा (उसभदत्तं माहणं) ऋषभदत्तं ब्राह्मणं (एवं वयासी) ततः सा देवानन्दा एवं अवादीत् (११)॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [११]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० १

॥ १६ ॥

किमित्याह—(एवमेअं देवाणुप्पिअत्ति) एवमेतत् देवानुप्रिये ! (तहमेअं देवाणुप्पियत्ति) तथैतद्देवानुप्रिय ! यथा यथा भवद्भिरुक्तं (अवितहमेअं देवाणुप्पियत्ति) यथास्थितं एतद्देवानुप्रिय ! (असंदिद्धमेअं देवाणुप्पियत्ति) सन्देहरहितं एतद्देवानुप्रिय ! (इच्छिअमेअं देवाणुप्पियत्ति) ईप्सितं एतद्देवानुप्रिय ! (पडिच्छिअमेअं देवाणुप्पियत्ति) प्रतीष्टं–युष्मन्मुखात् पतदेव गृहीतं देवानुप्रिय ! (इच्छियपडिच्छिअमेअं देवाणुप्पियत्ति) उभयधर्मोपेतं देवानुप्रिय ! (सच्चे णं एस अट्ठेत्ति) सत्यः स एषोऽर्थः (से) अथ (जहेयंति) येन प्रकारेण इमं अर्थं (तुब्भे वयहत्ति) यूयं वदथ (इति कट्टु) इति कृत्वा–इति भणित्वा (ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइत्ति) तान् स्वप्नान् सम्यग् अङ्गीकरोति (पडिच्छित्तत्ति) अङ्गीकृत्य (उसभदत्तेणं माहणेणं सद्धिंति) ऋषभदत्तब्राह्मणेन सार्धं (उरालाइं माणुस्सगाइंति) उदारान् मानुष्यकान् (भोगभोगाइंति) भोगार्हा भोगा भोगभोगास्तान् भोगार्हभोगान् (भुंजमाणा विहरइ) भुञ्जाना विहरति (१२)॥ (तेणं कालेणंति) तस्मिन् काले (तेणं समएणंति) तस्मिन् समये स शक्रो विहरतीति सम्बन्धः, किंविशिष्टः?–(सक्केत्ति) शक्रनामसिंहासनाधिष्ठाता (देविंदेत्ति) देवानां इन्द्रः (देवरायात्ति) देवेषु राजा–कान्त्यादिगुणैः राजमानः (वज्जपाणित्ति) करधृतवज्रः (पुरंदरेत्ति) दैत्यनगरविदारकः (सयक्कउत्ति) शतं क्रतवः—श्राद्धपञ्चमप्रतिमारूपा नियमविशेषा यस्य स शतक्रतुः, इदं हि कार्तिकश्रेष्ठिभवापेक्षया, तथाहि—पृथिवीभूषणनगरे प्रजापालो नाम राजा, कार्त्तिकनामा श्रेष्ठी, तेन श्राद्धप्रतिमानां शतं कृतं, ततः शतक्रतुरितिख्यातिः, एकदा च गैरिकपरिव्राजको मासोपवासी

स्वप्नोपबृंहा विनयः प्रतीच्छा इन्द्रवर्णनं सू. १०–१३ २० २५ ॥ १६ ॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [१३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

तत्रागतः, एकं कार्तिकं विना सर्वोऽपि लोकस्तद्भक्तो जातः, तच्च ज्ञात्वा कार्तिकोपरि गैरिको रुष्टः, एकदा च राज्ञा निमन्त्रितोऽवदत्–यदि कार्तिकः परिवेषयति तदा तव गृहे पारणां करोमि, राज्ञा तथेति प्रतिपद्य कार्तिकायोक्तं–यत्त्वं मद्गृहे गैरिकं भोजय, ततः कार्त्तिकेणोक्तं–राजन्! भवदाज्ञया भोजयिष्यामि, ततः श्रेष्ठिना भोज्यमानो गैरिको धृष्टोऽसीति अङ्गुलिना नासिकां स्पृशंश्चेष्टां चकार, श्रेष्ठी दध्यौ–यदि मया पूर्वं दीक्षा गृहीताऽभविष्यत्तदाऽयं न पराभविष्यदिति विचिन्त्याष्टाधिकसहस्रेण वणिक्पुत्रैः सह श्रीमुनिसुव्रतस्वामिसमीपे चारित्रं गृहीत्वा द्वादशाङ्गीं अधीत्य द्वादशवर्षपर्यायः सौधर्मेन्द्रोऽभूत्, गैरिकोऽपि निजधर्मतस्तद्वाहनं ऐरावणोऽभवत्, ततः कार्तिकोऽयमिति ज्ञात्वा पलायमानं तं धृत्वा शक्रः शीर्षे आरूढः; स च शक्रभापनार्थं रूपद्वयं कृतवान्, शक्रोऽपि तथा, एवं रूपचतुष्टयं, शक्रोऽपि तथा, ततश्चावधिना ज्ञातस्वरूपस्तं तर्जितवान् तर्जितश्च स्वाभाविकं रूपं चक्रे, इति कार्तिकश्रेष्ठिकथा ॥ ५

(सहस्सक्खेत्ति) मन्त्रिदेवपञ्चशत्या लोचनानि इन्द्रकार्यकराणीति इन्द्रसम्बन्धीन्येवेति सहस्राक्षः (मघवंति) मघा–महामेघा वशे सन्त्यस्येति मघवान् (पागसासणेत्ति) पाकं–दैत्यं शास्ति–शिक्षयतीति पाकशासनः (दाहिणड्ढलोगाहिवइत्ति) मेरोर्दक्षिणतो यल्लोकार्धं तस्याधिपतिः, उत्तरलोकार्धस्य ईशानस्वामिकत्वात् (एरावणवाहणेत्ति) ऐरावणवाहनः (सुरिंदेत्ति) सुराणां इन्द्रः–आह्लादकः (बत्तीसविमाणसयसहस्साहिवइत्ति) द्वात्रिंशल्लक्षविमानाधिपतिः (अरयत्ति) अरजस्कानि–रजोरहितानि (अंबरवत्थधरेत्ति) स्वच्छतया १०, १४

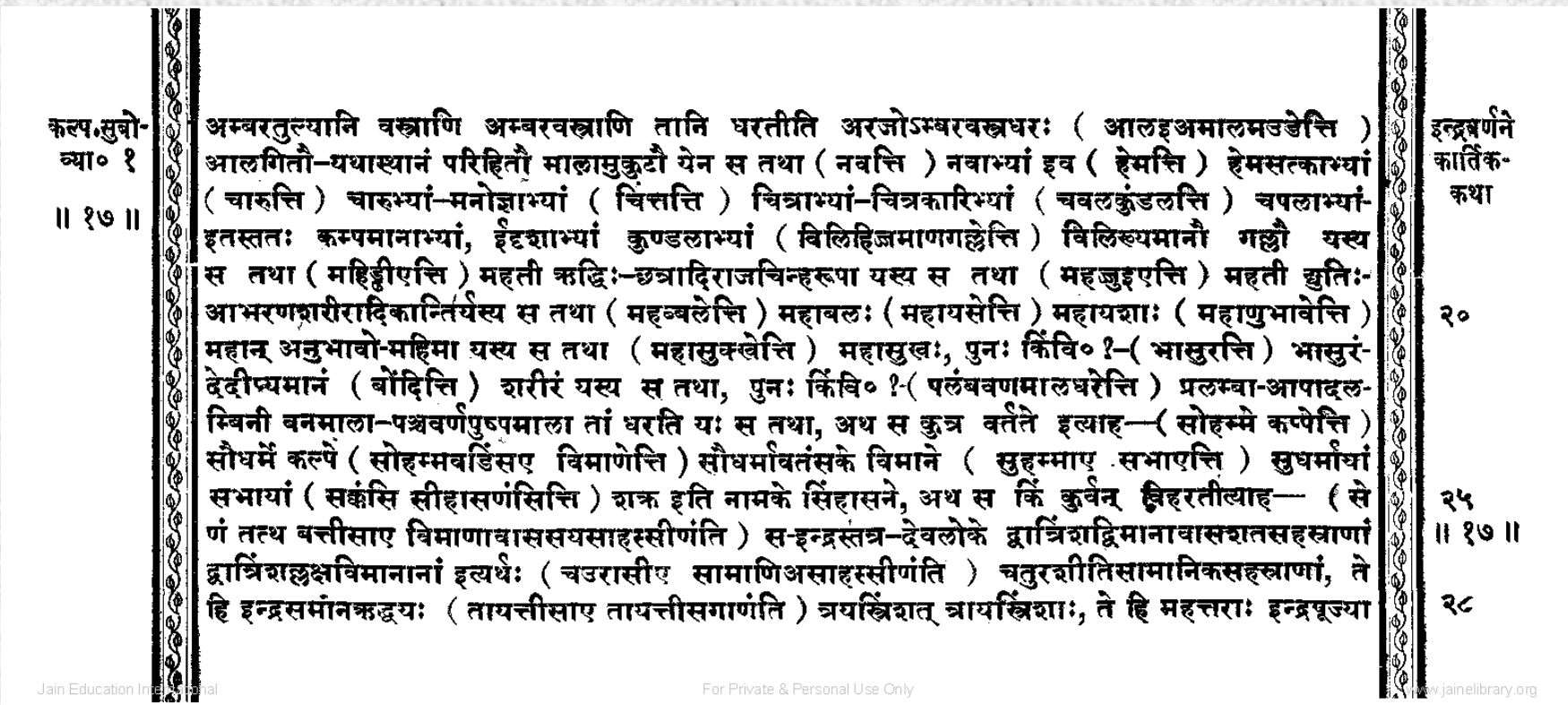
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** शक्रेन्द्रस्य वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१३] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [१३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-ध्या० १

॥ १७ ॥

अम्बरतुल्यानि वस्त्राणि अम्बरवस्त्राणि तानि धरतीति अरजोऽम्बरवस्त्रधरः (आलइअमालमउडेत्ति) आलगितौ–यथास्थानं परिहितौ मालामुकुटौ येन स तथा (नवत्ति) नवाभ्यां इव (हेमत्ति) हेमसत्काभ्यां (चारुत्ति) चारुभ्यां–मनोज्ञाभ्यां (चित्तत्ति) चित्राभ्यां–चित्रकारिभ्यां (चवलकुंडलत्ति) चपलाभ्यां-इतस्ततः कम्पमानाभ्यां, ईदृशाभ्यां कुण्डलाभ्यां (विलिहिज्जमाणगल्लेत्ति) विलिख्यमानौ गल्लौ यस्य स तथा (महिड्ढीएत्ति) महती ऋद्धिः–छत्रादिराजचिन्हरूपा यस्य स तथा (महज्जुइएत्ति) महती द्युतिः-आभरणशरीरादिकान्तिर्यस्य स तथा (महब्बलेत्ति) महाबलः (महायसेत्ति) महायशाः (महाणुभावेत्ति) महान् अनुभावो-महिमा यस्य स तथा (महासुक्खेत्ति) महासुखः, पुनः किंवि० ?–(भासुरत्ति) भासुरं-देदीप्यमानं (बोंदित्ति) शरीरं यस्य स तथा, पुनः किंवि० ?-(पलंबवणमालधरेत्ति) प्रलम्बा-आपादलम्बिनी वनमाला–पञ्चवर्णपुष्पमाला तां धरति यः स तथा, अथ स कुत्र वर्तते इत्याह—(सोहम्मे कप्पेत्ति) सौधर्मे कल्पे (सोहम्मवडिंसए विमाणेत्ति) सौधर्मावतंसके विमाने (सुहम्माए सभाएत्ति) सुधर्मायां सभायां (सक्कंसि सीहासणंसित्ति) शक्र इति नामके सिंहासने, अथ स किं कुर्वन् विहरतीत्याह— (से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससयसाहस्सीणंति) स-इन्द्रस्तत्र–देवलोके द्वात्रिंशद्विमानावासशतसहस्राणां द्वात्रिंशल्लक्षविमानानां इत्यर्थः (चउरासीए सामाणिअसाहस्सीणंति) चतुरशीतिसामानिकसहस्राणां, ते हि इन्द्रसमानऋद्धयः (तायत्तीसाए तायत्तीसगाणंति) त्रयस्त्रिंशत् त्रायस्त्रिंशाः, ते हि महत्तराः इन्द्रपूज्या

इन्द्रवर्णने कार्तिक-कथा

२०

२५

॥ १७ ॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१३] गाथा ||१..||

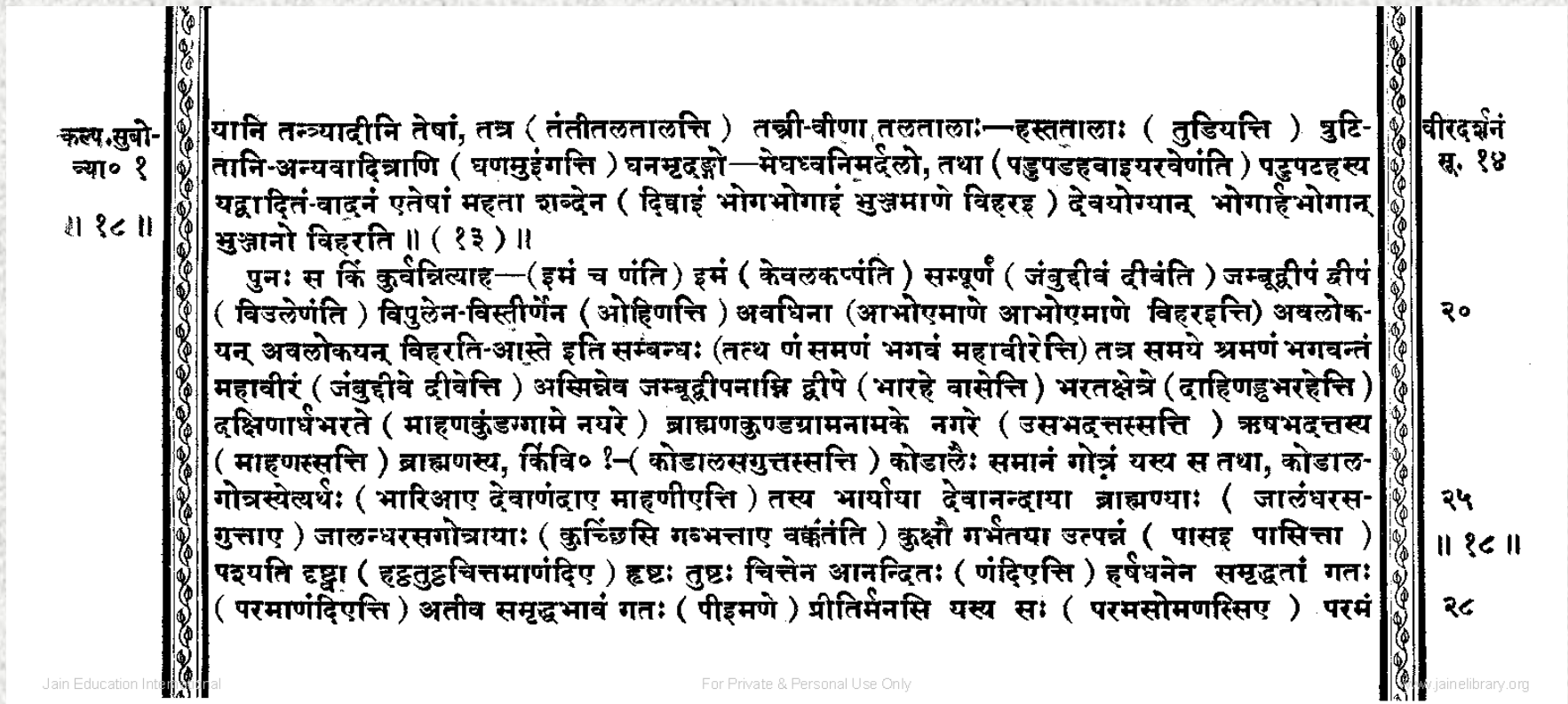
दीप अनुक्रम [१३]

मन्त्रिकल्पा वा तेषां (चउण्हं लोगपालाणंति) चतुर्णां लोकपालानां–सोम १ यम २ वरुण ३ कुबेरा ४ भिधानानां (अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं) अष्टानां अग्रमहिषीणां, ता हि पद्मा १ शिवा २ शची ३ अञ्जु ४ अमला ५-अप्सरो ६ नवमिका ७ रोहिणी ८ त्यभिधानाः, किंविशिष्टानां तासां?–(सपरिवाराणंति) सपरिवाराणां प्रत्येकं षोडशसहस्रपरिवाराणां तथा (तिण्हं परिसाणंति) तिसृणां पर्षदां, बाह्य १ मध्यमा २ भ्यन्तराणां ३ (सत्तण्हं अणिआणंति) सप्तानां अनीकानां–सैन्यानां गन्धर्व १ नाटक २ अश्व ३ गज ४ रथ ५ सुभट ६ वृषभ ७ संज्ञकानां, भवनपत्यादीनां वृषभस्थाने महिषा भवन्तीति ज्ञेयं, तथा (सत्तण्हं अणिआहिवईणंति) सप्तानां सेनापतीनां (चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणंति) चतसृषु दिक्षु प्रत्येकं चतुरशीतिसहस्रमितानामात्मरक्षकदेवानां सर्वसङ्ख्यया च षट्त्रिंशत्सहस्राधिकलक्षत्रयमितानां (३३६०००) (अन्नेसिं च बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं वेमाणिआणं देवाणं देवीण यत्ति) अन्येषां च बहूनां सौधर्मकल्पवासिनां वैमानिकानां देवानां देवीनां च (आहेवचंति) अधिपतिकर्म–रक्षां इत्यर्थः (पोरेवचंति) अग्रगामित्वं (सामित्तंति) नायकत्वं (भट्टित्तंति) भर्तृत्वं–पोषकत्वं (महत्तरगत्तंति) गुरुतरत्वं (आणाईसरसेणावचंति) आज्ञया ईश्वरो यः सेनापतिः तत्त्वं, स्वसैन्यं प्रति अद्भुतं आज्ञाप्राधान्यं इत्यर्थः (कारेमाणेत्ति) कारयन् नियुक्तैः (पालेमाणेत्ति) पालयन् स्वयमेव, पुनः किं कुर्वन् ?–(महयत्ति) तत्र महतेति रवेण इत्यनेन योज्यते, महता शब्देनेत्यर्थः, केषां इत्याह—(अहयत्ति) अविच्छिन्नं एवंविधं यत् (नट्टगीअति) नाटकं गीतं-प्रसिद्धं (वाइअत्ति) वादितानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [१४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-ध्या० १ ॥ १८ ॥

यानि तन्त्र्यादीनि तेषां, तत्र (तंतीतलतालत्ति) तन्त्री-वीणा तलतालाः—हस्तताला: (तुडियत्ति) त्रुटितानि-अन्यवाद्यत्राणि (घणमुइंगत्ति) घनमृदङ्गो—मेघध्वनिर्मर्दलो, तथा (पडुपडहवाइयरवेणंति) पटुपटहस्य यद्वादितं-वादनं एतेषां महता शब्देन (दिव्वाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणे विहरइ) देवयोग्यान् भोगार्हभोगान् भुञ्जानो विहरति ॥ (१३) ॥

पुनः स किं कुर्वन्नित्याह—(इमं च णंति) इमं (केवलकप्पंति) सम्पूर्णं (जंबुद्दीवं दीवंति) जम्बूद्वीपं द्वीपं (विउलेणंति) विपुलेन-विस्तीर्णेन (ओहिणत्ति) अवधिना (आभोएमाणे आभोएमाणे विहरइत्ति) अवलोकयन् अवलोकयन् विहरति-आस्ते इति सम्बन्धः (तत्थ णं समणं भगवं महावीरेत्ति) तत्र समये श्रमणं भगवन्तं महावीरं (जंबुद्दीवे दीवेत्ति) अस्मिन्नेव जम्बूद्वीपनाम्नि द्वीपे (भारहे वासेत्ति) भरतक्षेत्रे (दाहिणड्ढभरहेत्ति) दक्षिणार्धभरते (माहणकुंडग्गामे नयरे) ब्राह्मणकुण्डग्रामनामके नगरे (उसभदत्तस्सत्ति) ऋषभदत्तस्य (माहणस्सत्ति) ब्राह्मणस्य, किंवि० ?–(कोडालसगुत्तस्सत्ति) कोडालैः समानं गोत्रं यस्य स तथा, कोडालगोत्रस्येत्यर्थः (भारिआए देवाणंदाए माहणीएत्ति) तस्य भार्यायां देवानन्दाया ब्राह्मण्याः (जालंधरसगुत्ताए) जालन्धरसगोत्रायाः (कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंतंति) कुक्षौ गर्भतया उत्पन्नं (पासइ पासित्ता) पश्यति दृष्ट्वा (हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए) हृष्टः तुष्टः चित्तेन आनन्दितः (णंदिएत्ति) हर्षवनेन समृद्धतां गतः (परमाणंदिएत्ति) अतीव समृद्धभावं गतः (पीइमणे) प्रीतिर्मनसि यस्य सः (परमसोमणस्सिए) परमं

वीरदर्शनं सू. १४ २० २५ ॥ १८ ॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** देवानन्दा कुक्षौ स्थितः भगवन्त महावीरस्य दर्शनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१४] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [१४]

कल्प. सु. ४

सौमनस्यं-तुष्टचित्तत्वं प्राप्तः (हरिसवसविसप्पमाणहिअए) हर्षवशेन विसर्प्पत् हृदयं यस्य सः, प्रमुदितचित्त-प्राग्भारेणैव (धाराहयकयंबसुरहिकुसुमत्ति) धाराहतं यत्कदम्बस्य सुरभिकुसुमं तद्वत् (चंचुमालइअत्ति) रोमाञ्चितः, अत एव (ऊससिअरोमकूवेत्ति) उच्छ्रितरोमकूपः, तथा (विअसिअवरकमलाणणनयणेत्ति) विकसितं वरं-प्रधानं यत्कमलं तद्वत् आननं-मुखं नयने च यस्य स तथा, प्रमोदपूरितत्वात् (पयलिअत्ति) प्रचलितानि-भगवद्दर्शनेन अधिकसम्भ्रमवत्त्वात् कम्पितानि (वरकडगत्ति) वराणि कटकानि-कङ्कणानि (तुडिअत्ति) त्रुटिताश्च-बाहुरक्षकाः 'बहिरखा' इति लोके (केऊरत्ति) केयूराणि च-अङ्गदानि 'बाजूबन्ध' इति लोके (मउडकुंडलत्ति) मुकुटं कुण्डले च प्रसिद्धे, एतानि प्रचलितानि यस्य स तथा, (हारविरायंतवच्छेत्ति) हारेण विराजमानं हृदयं यस्य स तथा, ततो विशेषणसमासः, (पालंबपलंबमाणत्ति) प्रलम्बमानं यत्प्रालम्बो-ज्झुम्बनकं (घोलंतभूसणधरेत्ति) दोलायमानानि भूषणानि च तानि धरति यः स तथा (ससंभमंति) सादरं (तुरिअं चवलं सुरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइत्ति) त्वरितं-सौत्सुक्यं चपलं-कायचापल्योपेतं एवं यथा स्यात् तथा सुरेन्द्रः सिंहासनादभ्युत्तिष्ठति (अब्भुट्ठित्तत्ति) अभ्युत्थाय यावत् (पादपीढाओ पच्चोरुहइत्ति) यत्र पादौ स्थाप्येते तत्पादपीठं कथ्यते तस्मात्प्रत्यवतरति (पच्चोरुहित्तत्ति) प्रत्यवतीर्य च पादुके अवमुञ्चति, किंविशिष्टे ते? (वेरुलिअत्ति) वैडूर्यं-मरकतं नाम नीलरत्नं (वरिट्ठरिट्ठअंजणत्ति) वरिष्ठे-प्रधाने रिष्ठअञ्जन-नाभी श्यामरत्ने, एतै रत्नैः कृत्वा (निउणोवचिअत्ति) निपुणेन शिल्पिना रचिते इव, पुनः किंवि० ?

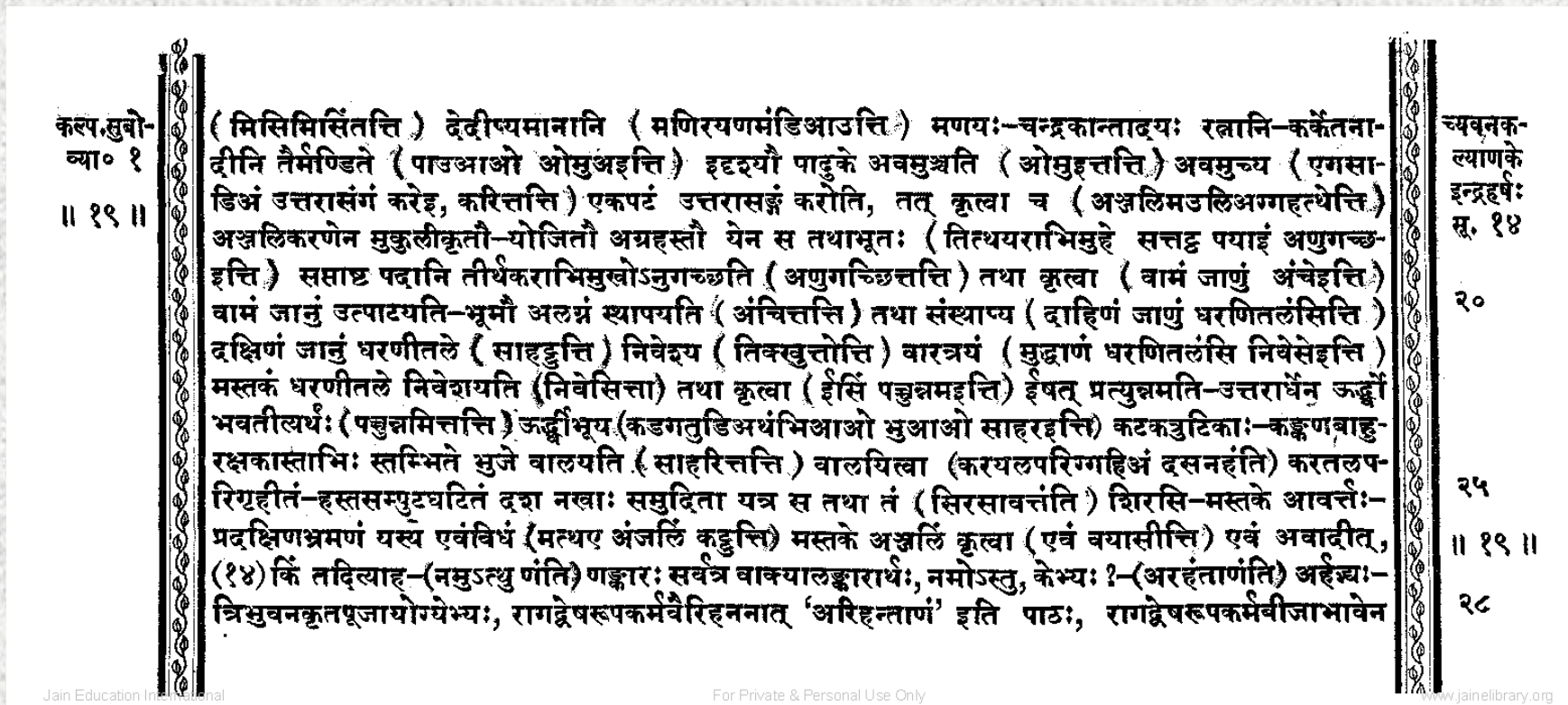
५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** भगवन्तस्य च्यवन-अवसरे शक्रेन्द्र-कृत् भक्ति एवं स्तवना

प्रत सूत्रांक [१४] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [१४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-व्या० १ ॥ १९ ॥

(मिसिमिसिंतत्ति) देदीप्यमानानि (मणिरयणमंडिआउत्ति) मणयः–चन्द्रकान्तादयः रत्नानि–कर्केतनादीनि तैर्मण्डिते (पाउआओ ओमुअइत्ति) इदृश्यौ पादुके अवमुञ्चति (ओमुइत्तत्ति) अवमुच्य (एगसाडिअं उत्तरासंगं करेइ, करित्तत्ति) एकपटं उत्तरासङ्गं करोति, तत् कृत्वा च (अञ्जलिमउलिअग्गहत्थेत्ति) अञ्जलिकरणेन मुकुलीकृतौ–योजितौ अग्रहस्तौ येन स तथाभूतः (तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइत्ति) सप्ताष्ट पदानि तीर्थकराभिमुखोऽनुगच्छति (अणुगच्छित्तत्ति) तथा कृत्वा (वामं जाणुं अंचेइत्ति) वामं जानुं उत्पाटयति–भूमौ अलग्नं स्थापयति (अंचित्तत्ति) तथा संस्थाप्य (दाहिणं जाणुं धरणितलंसित्ति) दक्षिणं जानुं धरणीतले (साहट्टुत्ति) निवेश्य (तिक्खुत्तोत्ति) वारत्रयं (मुद्धाणं धरणितलंसि निवेसेइत्ति) मस्तकं धरणीतले निवेशयति (निवेसित्ता) तथा कृत्वा (ईसिं पच्चुन्नमइत्ति) ईषत् प्रत्युन्नमति–उत्तरार्धेन ऊर्द्धो भवतीत्यर्थः (पच्चुन्नमित्तत्ति) ऊर्द्धीभूय (कडगतुडिअथंभिआओ भुआओ साहरइत्ति) कटकत्रुटिकाः–कङ्कणबाहुरक्षकास्ताभिः स्तम्भिते भुजे वालयति (साहरित्तत्ति) वालयित्वा (करयलपरिग्गहिअं दसनहंति) करतलपरिगृहीतं–हस्तसम्पुटघटितं दश नखाः समुदिता यत्र स तथा तं (सिरसावत्तंति) शिरसि–मस्तके आवर्त्तः–प्रदक्षिणभ्रमणं यस्य एवंविधं (मत्थए अंजलिं कट्टुत्ति) मस्तके अञ्जलिं कृत्वा (एवं वयासीत्ति) एवं अवादीत्, (१४) किं तदित्याह–(नमुऽत्थु णंति) णङ्कारः सर्वत्र वाक्यालङ्कारार्थः, नमोऽस्तु, केभ्यः ?–(अरहंताणंति) अर्हद्भ्यः–त्रिभुवनकृतपूजायोग्येभ्यः, रागद्वेषरूपकर्मवैरिहननात् 'अरिहन्ताणं' इति पाठः, रागद्वेषरूपकर्मबीजाभावेन

च्यवनकल्याणके इन्द्रहर्षः सू. १४ २० २५ ॥ १९ ॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** 'शक्रस्तव-स्तोत्र'स्य अर्थ विचारणा

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१५] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [१५]

भवक्षेत्रे प्ररोहणाभावात् 'अरुहन्ताणं' इति पाठश्च (भगवंताणंति) भगवद्भ्यो–ज्ञानादिमद्भ्यः (आइगराणंति) आदिकरेभ्यः आदिकरत्वं स्वस्वतीर्थापेक्षया धर्मस्येति ज्ञेयं (तित्थयराणंति) तीर्थकरेभ्यः, तत्र तीर्थं–सङ्घः प्रथमगणधरो वा तत्स्थापकेभ्यः (सयंसंबुद्धाणंति) स्वयंसम्बुद्धेभ्यो, न तु परोपदेशेन (पुरिसुत्तमाणंति) पुरुषेषु उत्तमेभ्यः, अनन्तगुणनिधानत्वात् (पुरिससीहाणंति) पुरुषसिंहेभ्यः, कर्मवैरिषु निर्दयशूरत्वात् (पुरिसवरपुंडरीआणंति) पुरुषवरपुण्डरीकेभ्यः, पुरुषेषु वरं–प्रधानं यत्पुण्डरीकं–श्वेतपद्मं तत्तुल्येभ्यः, यथा पुण्डरीकं पङ्के जातं जलैर्वृद्धं जलपङ्कौ त्यक्त्वा उपरि तिष्ठति एवं भगवन्तोऽपि कर्मकर्दमे उत्पन्नाः भोगजलेन वृद्धाः कर्मभोगौ त्यक्त्वा पृथग् तिष्ठन्ति (पुरिसवरगंधहत्थीणं) पुरुषवरगन्धहस्तिभ्यः, यथा गन्धहस्तिगन्धेन अन्ये गजाः पलायन्ते तथा भगवत्प्रभावेण दुर्भिक्षादयोऽपि (लोगुत्तमाणं) लोकेषु–भव्यसमूहेषु चतुस्त्रिंशदतिशययुक्तत्वात् उत्तमास्तेभ्यो लोकोत्तमेभ्यः (लोगनाहाणं) लोकानां–भव्यानां नाथेभ्यो–योगक्षेमकारिभ्यः, तत्र योगः–अप्राप्तज्ञानादिप्रापणं क्षेमं च–प्राप्तज्ञानादिरक्षणं (लोगहिआणं) लोकानां–सर्वजीवानां हितेभ्यो–हितकारकेभ्यो, दयाप्ररूपकत्वात् (लोगपईवाणं) लोकप्रदीपेभ्यः, मिथ्यात्वध्वान्तनाशकत्वात् (लोगपज्जोअगराणं) लोकप्रद्योतकरेभ्यः, सूर्यवत् सर्ववस्तुप्रकाशकत्वात् (अभयदयाणं) भयानां अभावः अभयं तद्दायकेभ्यः, भयानि सप्त, तद्यथा–मनुष्यस्य मनुष्याद्भयं इहलोकभयं १ मनुष्यस्य देवादेर्भयं परलोकभयं २ धनादिग्रहणाद्भयं आदानभयं ३ बाह्यनिमित्तनिरपेक्षं भयं अकस्माद्भयं ४ आजीविकाभयं ५ मरणभयं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१५] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [१५]



६ अपयशोभयं ७ चेति (चक्खुदयाणं) चक्षुःसमानश्रुतज्ञानदायकेभ्यः (मग्गदयाणंति) मार्गस्य-सम्यग्दर्शनादिमोक्षमार्गस्य दायकेभ्यः, यथा केचिज्जनाश्चौरैर्लुण्टितधना लोचने पट्टबन्धं कृत्वा उन्मार्गे पातिताः स्युस्तेषां कोऽपि पट्टकापनयनेन धनार्पणेन मार्गदर्शनेन उपकारी भवति एवं भगवन्तोऽपि कषायैर्लुण्टितधर्मधनानां मिथ्यात्वाच्छादितविवेकनयनानां श्रुतज्ञानसद्धर्ममुक्तिमार्गदानेन उपकारिणो भवन्ति, (सरणदयाणंति) भवभीतानां शरणदायकेभ्यः (जीवदयाणंति) जीवनं जीवः-सर्वथा मरणाभावस्तदायकेभ्यः, क्वचिद् 'बोहिदयाणं'ति पाठस्तत्र बोधिः-सम्यक्त्वं तद्दायकेभ्यः (धम्मदयाणंति) धर्मः-चारित्ररूपस्तद्दायकेभ्यः (धम्मदेसयाणंति) धर्मोपदेशदायकेभ्यः, धर्मदेशकत्वं च एतेषां धर्मस्वामित्वे सति न पुनर्नटवदिति दर्शयन्नाह-(धम्मनायगाणंति) धर्मनायकेभ्यः (धम्मसारहीणंति) धर्मस्य सारथय इव, यथा सारथिः उन्मार्गे गच्छन्तं रथं मार्गे आनयति एवं भगवन्तोऽपि मार्गभ्रष्टं जनं मार्गे आनयंति, अत्र च मेघकुमारदृष्टान्तो यथा—एकदा श्रीवीरस्वामी राजगृहे समवसृतः, तत्र श्रेणिकधारिण्योः सुतो मेघकुमारः प्रतिबुद्धः, कथमपि पितरौ आपृच्छ्याष्टौ प्रियाः परित्यज्य दीक्षां गृहीतवान्, प्रभुणा च शिक्षार्थं स्थविराणां अर्पितः, तत्र अनुक्रमेण संस्तारककरणे द्वारपार्श्वे मेघकुमारस्य संस्तारक आगतः, ततः प्रश्रवणाद्यर्थं गच्छदागच्छत्साधुपादरजोभिर्भरितः मेघकुमारः समग्रायां रजन्यां क्षणमपि निद्रां न प्राप्तः, चिन्तयामास-क्व मे सुखशय्या क्व चेदं भूलुठनं?, कियत्कालं इदं दुःखं मया सोढव्यं?, ततः प्रातः प्रभुमापृच्छ्य गृहं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [१५]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

यास्यामीति प्रभाते प्रभुपार्श्वमागतः, प्रभुणाऽपि मधुरवचनेन आभाषितः–वत्स! त्वया निशि एवं दुर्ध्यानं कृतं, परं अविचारितं एतत्, नरकादिदुःखाग्रे कियदेतद् दुःखं?, तान्यपि दुःखानि सागरोपमाणि अनेकानि यावत् प्राणिना बहुशः सोढानि, किञ्च–वरमग्गिम्मि पवेसो वरं विसुद्धेण कम्मुणा मरणं। मा गहियव्वयभङ्गो मा जीअं खलिअसीलस्स ॥ १ ॥ तथा इदं चारित्रादिकष्टानुष्ठानं महते फलाय भवति, यथा त्वयैव पूर्वभवे अनुभूतं धर्मार्थं कष्टं एतावत्फलप्रापकं अभवत्, शृणु ततः पूर्वभवान्, यथा इतस्तृतीये भवे वैताढ्यभूमौ षड्दन्तः शुभ्रो हस्तिनीसहस्रभर्त्ता सुमेरुप्रभनामा त्वं गजराजोऽभूः, अन्यदा दावानलाद्भीतः पलायमानस्तृषितः पङ्कबहुलं एकं सरः प्राप्तस्तत्र चाज्ञातमार्गः पङ्के निमग्नो नीरात्तीराच्च भ्रष्टः पूर्ववैरिहस्तिना दन्तैर्हन्यमानः सप्त दिनानि वेदनां अनुभूय सविंशं शतं आयुः समाप्य विन्ध्याचले रक्तवर्णश्चतुर्दन्तः ससहस्तिनीशतभर्त्ता हस्ती जातः, क्रमेण च दावानलं दृष्ट्वा जातजातिस्मरणः पूर्वभवं स्मृतवान्, ततो दावानलपराभवरक्षणाय योजनपरिमितं मण्डलं कृतवान्, तत्र वर्षाणां आदौ मध्ये अन्ते च यत् किञ्चित् तृणवल्ल्यादि भवति तत् सर्वं उन्मूलयति, अन्यदा च दावानलाद्भीताः सर्वे वनजीवास्तन्मण्डलं व्याप्तवन्तः त्वमपि शीघ्रं आगत्य तत्र मण्डले स्थितः, कदाचिद् देहकण्डूयनेच्छया एकं पादं उत्पाटितवान्, उत्पाटिते च तस्मिन् पादे

५

१०

१२

१ वरमग्नौ प्रवेशो वरं विशुद्धेन कर्मणा मरणं। मा गृहीतव्रतभंगो मा जीवितं स्खलितशीलस्य ॥ १ ॥ २ अलब्धसम्यक्त्वेनाप्यनुकम्पायै पादस्यामोचनेन ३ शशकरक्षणात् ४ विद्याधरैः कृतं नामेदमस्य ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [१५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

अन्यत्र साङ्कीर्ण्यपीडितः शशकस्तत्र आगत्य स्थितः, गात्रं कण्डूयित्वा च पादं मुञ्चन् शशकं दृष्ट्वा तदयया सार्द्धं दिनद्वयं तथैव पादं स्थापितवान्, उपशान्ते च दावानले सर्वेषु जीवेषु स्वस्थानं गतेषु विलगितपादो झटिति भूमौ पतितस्ततो दिनत्रयं क्षुधया तृषा च पीडितः कृपापरः शतवर्षं आयुः परिपाल्यात्र श्रेणिकधारिण्योः पुत्रत्वेन जातस्त्वं, ततो भो मेघ! तदानीं तिर्यग्भवेऽपि त्वया धर्मार्थं तत्कष्टं सोढं तर्हि जगद्वन्द्यसाधूनां चरणैर्घट्टयमानः किं दूयसे?, इत्याद्युपदेशेन भगवता धर्मे स्थिरीकृतोऽवाप्तजातिस्मरणो नेत्रे विमुच्यान्यत्सर्वं शरीरं मया व्युत्सृष्टं इत्यभिग्रहं कृतवान्, क्रमात् निरतिचारं चारित्रमाराध्यान्ते मासिकीं संलेखनां कृत्वा विजयविमाने सुरोऽभवत्, ततश्च्युतो महाविदेहे सेत्स्यति, इति श्रीमेघकुमारकथा ॥

इति महोपाध्यायश्रीकीर्तिविजयगणिशिष्योपाध्यायश्रीविनयविजयगणिविरचितायां
कल्पसुबोधिकायां प्रथमं व्याख्यानं समाप्तम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमं व्याख्यानं समाप्तं

प्रत सूत्रांक [१५] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [१५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

॥ अथ द्वितीयं व्याख्यानं प्रारभ्यते ॥

(धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं) त्रयः समुद्राश्चतुर्थो हिमवानिति चत्वारोऽन्तास्तेषु प्रभुतया भवाश्चातुरन्ताः-चतुरन्तस्वामिनः एवंविधा ये चक्रवर्त्तिनस्ते चातुरन्तचक्रवर्त्तिनः धर्मस्य वराः-श्रेष्ठाः चातुरन्तचक्रवर्तिनो धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्तिनः, धर्मनायका इत्यर्थः, तेभ्यः (दीवो) समुद्रे मज्जतां द्वीप इव संसारसमुद्रे आधारः, (ताणं) त्राणं-अनर्थप्रतिघातहेतुः, अत एव (सरणं) कर्मोपद्रवेभ्यो भीतानां शरणं (गई) गम्यते सौ- ५
स्थ्याय दुःस्थैराश्रीयते गतिः (पइट्ठा) भवकूपपतत्प्राणिनां अवलम्बनं, द्वीपो ताणं इत्यादीनि पदानि प्रथमा-
न्तान्यपि चतुर्थ्यर्थषष्ठ्यन्ततया व्याख्येयानि (अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं) अप्रतिहते-कटकुट्यादिभि-
रस्खलिते वरे-प्रधाने ज्ञानदर्शने-केवलज्ञानदर्शने धरन्ति ये ते तथा तेभ्यः (विअट्टछउमाणं) व्यावृत्तं-
गतं छद्म-घातिकर्माणि येभ्यस्ते व्यावृत्तच्छद्मानस्तेभ्यः (जिणाणं) रागद्वेषजेतृभ्यः (जावयाणं) उपदेशदा- १०
नादिना भव्यसत्त्वै रागादिजापकास्तेभ्यः (तिन्नाणं) भवसमुद्रं तीर्णेभ्यः (तारयाणं) सेवकानां तारकेभ्यः
(बुद्धाणं) सर्वतत्त्वबुद्धेभ्यः (बोहयाणं) अन्येषां बोधकेभ्यः (मुत्ताणं) मुक्तेभ्यः कर्मपञ्जरात् (मोअगाणं) १२
सेवकानां मोचकेभ्यः (सव्वन्नूणं) सर्वज्ञेभ्यः (सव्वदरिसीणं) सर्वदर्शिभ्यः (सिवं) निरुपद्रवं (अयलं)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितियम् व्याख्यानं आरभ्यते

*** अत्र शक्रस्तव-स्तोत्रस्य शेष-वर्णनं वर्तते

प्रत सूत्रांक [१५] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [१५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

अचलं (अरुअं) अरुजं-रोगरहितं (अणंतं) अनन्तं अनन्तवस्तुविषयज्ञानस्वरूपत्वात् (अक्खयं) क्षयरहितं, साद्यनन्तत्वात् (अव्वाबाहं) व्याबाधारहितं (अपुणरावित्तिं) पुनरावृत्तिः-पुनरागमनं तेन रहितं, एवंविधं (सिद्धिगइनामधेयं) सिद्धिगतिनामकं (ठाणं संपत्ताणं) यत्स्थानं तत्सम्प्राप्तेभ्यः (नमो जिणाणं) नमो जिनेभ्यो (जिअभयाणं) जितभयेभ्यः, एवं सर्वजिनान्नमस्कृत्याथ शक्रः श्रीवीरं नमस्करोति-(नमोऽत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स) नमोऽस्तु श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठस्स) पूर्वतीर्थङ्करैः निर्दिष्टस्य (जाव संपाविउकामस्स) यावत् सिद्धिगतिनामकं स्थानं सम्प्राप्तुकामस्य, श्रीवीरो हि अथ मुक्तिं यास्यतीत्येवं विशेषणं, इमानि सर्वाण्यपि विशेषणानि चतुर्थ्यर्थषष्ठ्येकवचनान्तानि ज्ञेयानि, (वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए) वन्दे अहं भगवन्तं तत्रगतं-देवानन्दाकुक्षौ स्थितं इत्यर्थः, अत्र स्थितोऽहं (पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयंति कट्टु) पश्यतु मां भगवान् तत्र स्थित इह स्थितं इति उक्त्वा (समणं भगवं महावीरं) श्रमणं भगवन्तं महावीरं (वंदइ नमंसइ) वन्दते नमस्यति (वंदित्ता नमंसित्ता) वन्दित्वा नमस्यित्वा (सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सन्निसण्णे) पूर्वाभिमुखः सिंहासने सन्निषण्ण-उपविष्ट इत्यर्थः (तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो) ततः तस्य शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवानां राज्ञः (अयमेआरूवे) अयं एतद्रूपः (अज्झत्थिए) आत्मविषय इत्यर्थः (चिंतिए) चिन्तात्मकः (पत्थिए) प्रार्थितः-अभिलाषरूपः (मणोगए) मनोगतो, न तु वचनेन प्रकाशितः, इदृशः (संकप्पे) संकल्पो-विचारः

२०

॥ २२ ॥ २५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१६] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [१६]

(समुप्पज्जित्था) समुत्पन्नः ॥ (१५) ॥ कोऽसौ इत्याह–(न खलु एअं भूअं) न निश्चयेन एतद् भूतं अतीतकाले (न भवं) न भवति एतत्, वर्त्तमानकाले (न भविस्सं) एतत् न भविष्यति आगामिनि काले, किं तदित्याह—(जन्नं अरहंता वा) यत् अर्हन्तो वा (चक्कवट्टी वा) चक्रवर्त्तिनो वा (बलदेवा वा) बलदेवा वा (वासुदेवा वा) वासुदेवा वा (अंतकुलेसु वा) अन्त्यकुलेषु शूद्रकुलेषु इत्यर्थः (पंतकुलेसु वा) प्रान्तकुलेषु–अधमकुलेषु (तुच्छकुलेसु वा) तुच्छाः–अल्पकुटुम्बास्तेषां कुलेषु वा (दरिद्दकुलेसु वा) दरिद्रा–निर्धनास्तेषां कुलेषु वा (किविणकुलेसु वा) कृपणाः–अदातारस्तेषां कुलेषु वा (भिक्खागकुलेसु वा) भिक्षाकाः–तालाचरास्तेषां कुलेषु वा (माहणकुलेसु वा) ब्राह्मणकुलेषु वा, तेषां भिक्षुकत्वात्, एतेषु (आयाइंसु वा) आगता अतीतकाले (आयाइंति वा) आगच्छन्ति वर्तमानकाले (आयाइस्संति वा) आगमिष्यन्ति अनागतकाले, एतन्न भूतमित्यादियोगः ॥ (१६) ॥ तर्हि अर्हदादयः ४ केषु कुलेषु उत्पद्यन्ते ? इत्याह–(एवं खलु) एवं–अनेन प्रकारेण खलु–निश्चये (अरहंता वा) अर्हन्तो वा (चक्कवट्टी वा) चक्रवर्त्तिनो वा (बलदेवा वा) बलदेवा वा (वासुदेवा वा) वासुदेवा वा (उग्गकुलेसु वा) उग्राः–श्रीआदिनाथेन आरक्षकतया स्थापिता जनाः तेषां कुलेषु (भोगकुलेसु वा) भोगाः–गुरुतया स्थापिताः तेषां कुलेषु (रायन्नकुलेसु वा) राजन्याः–श्रीऋषभदेवेन मित्रस्थाने स्थापिताः तेषां कुलेषु (इक्खागकुलेसु वा) इक्ष्वाकाः–श्रीऋषभदेववंशोद्भवाः तेषां कुलेषु (खत्तियकुलेसु वा) क्षत्रियाः–श्रीआदिदेवेन प्रजालोकतया स्थापिताः तेषां कुलेषु (हरिवंसकुलेसु वा) तत्र 'हरि'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१७] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [१७]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-व्या० २ ॥ २३ ॥

त्ति पूर्वभववैरिसुरानीतहरिवर्षक्षेत्रयुगलं तस्य वंशो हरिवंशस्तत्कुलेषु (अन्नयरेसु वा) अन्यतरेषु वा (तह-प्पगारेसु विसुद्धजाइकुलवंसेसु) विशुद्धे जातिकुले यत्र एवंविधेषु वंशेषु, तत्र जातिः–मातृपक्षः कुलं–पितृपक्षः, इदृशेषु कुलेषु (आयाइंसु वा) आगता अतीतकाले (आयाइंति वा) आगच्छन्ति वर्त्तमानकाले (आयाइस्संति वा) आगमिष्यन्ति अनागतकाले, न तु पूर्वोक्तेषु ॥ (१७) ॥ तर्हि भगवान् कथं उत्पन्न ? इत्याह–(अत्थि पुण एसेऽवि भावे) अस्ति पुनः एषोऽपि भावो–भवितव्यताख्यः (लोगच्छेरयभूए) लोके आश्चर्यभूतः (अणंताहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं) अनन्तासु उत्सर्पिण्यवसर्पिणीषु (विइक्कंताहिं समुप्पज्जइ) व्यतिक्रान्तासु इदृशः कश्चित्पदार्थ उत्पद्यते, तत्रास्यां अवसर्पिण्यां इदृशानि दश आश्चर्याणि जातानि, यथा—

उवसग्ग १ गब्भहरणं २ इत्थीतित्थं ३ अभाविआ परिसा ४ । कण्हस्स अवरकंका ५ अवयरणं चंदसूराणं ६ ॥ १ ॥ हरिवंसकुलुप्पत्ती ७ चमरुप्पाओ ८ अ अट्ठसय सिद्धा ९ । अस्संजयाण पूआ १० दसवि अणंतेण कालेणं ॥ २ ॥ व्याख्या–'उवसग्ग'त्ति उपसर्गा–उपद्रवाः, ते हि श्रीवीरस्वामिनः छद्मस्थावस्थायां अग्रे वक्ष्यमाणा बहवोऽभवन्, किञ्च–अस्य भगवतः केवल्यवस्थायां अपि स्वप्रभावप्रशमितसर्वोपद्रवस्यापि स्वशिष्याभासेन गोशालकमात्रेणापि उपद्रवः कृतः, तथाहि–एकदा श्रीवीरो विहरन् श्रावस्त्यां समवसृतः, गोशालकोऽपि जिनोऽहं इति लोके ख्यापयन् तत्रागतः, ततो द्वौ जिनौ श्रावस्त्यां वर्त्तेते इति लोके प्रसिद्धिर्जाता, तां श्रुत्वा श्रीगौतमेन भगवान् पृष्टः–स्वामिन्! कोऽसौ द्वितीयो जिन इति स्वं ख्यापयति ?, श्रीभगवानुवाच–

अर्हदाद्युत्पत्तिविचारः सू. १६–१८ २० २५ ॥ २३ ॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ दश-आश्चर्याणां वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [१८] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [१८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

गौतम! नायं जिनः, किंतु शरवणग्रामवासी मङ्खलेः सुभद्राभार्यायां गोबहुलब्राह्मणगोशालायां जातत्वात् गोशालनामा अस्माकं एव शिष्यीभूतोऽस्मत्त एव किञ्चिद् बहुश्रुतीभूतो मुधा स्वं जिन इति ख्यापयति, ततः सर्वतः प्रसिद्धां इमां वार्त्तां आकर्ण्य रुष्टो गोशालो गोचरचर्यागतं आनन्दनामानं भगवच्छिष्यं जगाद–भो आनन्द! एकं दृष्टान्तं शृणु, यथा–केचिद्वणिजो धनोपार्जनाय विविधक्रयाणकपूर्णशकटाः परदेशं गच्छन्तोऽरण्यं प्रविष्टास्तत्र जलाभावेन तृषाकुला जलं गवेषयन्तः चत्वारि वल्मीकशिखराणि पश्यन्ति स्म, ततस्तैरेकं शिखरं स्फोटितं, तस्माद्विपुलं जलं निर्गतं, तेन जलेन गतपिपासाः पयःपात्राणि पूरितवन्तः, तत एकेन वृद्धेनोक्तं–सिद्धं अस्माकं समीहितं अथ मा स्फोटयन्तु द्वितीयं शिखरं इति निवारिता अपि द्वितीयं स्फोटयामासुस्तस्माच्च सुवर्णं प्राप्तवन्तः तथैव वृद्धवारिता अपि तृतीयं स्फोटितवन्तस्तस्माद्रत्नानि प्राप्य तथैव बहुवारिता अपि लोभान्धाश्चतुर्थं अपि स्फोटयन्ति स्म, तस्माच्च प्रादुर्भूतेन दृष्टिविषसर्पेण सर्वेऽपि स्वदृष्टिपातेन पञ्चत्वं प्रापिताः, स हितोपदेशको वणिक् तु न्यायित्वात् आसन्नदेवतया स्वस्थाने मुक्तः, एवं तव धर्माचार्योऽपि एतावत्या स्वसम्पदा असन्तुष्टो यथातथाभाषणेन मां रोषयति, तेनाहं स्वतपस्तेजसा धक्ष्यामि, ततस्त्वं शीघ्रं तत्र गत्वा एनं अर्थं तस्मै निवेदय, त्वां च वृद्धवणिजमिव हितोपदेशकत्वात् जीवन्तं रक्षिष्यामीति श्रुत्वा भीतोऽसौ मुनिर्भगवदग्रे सर्वं व्यतिकरं कथितवान्, ततो भगवता उक्तं–भो आनन्द! शीघ्रं त्वं गौतमादीन् मुनीन् कथय यत् एष गोशाल आगच्छति न केनार्प्यस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [१८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-व्या० २ ॥ २४ ॥

संभाषणं कर्त्तव्यं इतस्ततः सर्वेऽपसरन्तु, ततस्तैस्तथाकृते गोशाल आगत्य भगवन्तं अवादीत्–भो काश्यप! किमेवं वदसि यदयं गोशालो मङ्खलिपुत्र इत्यादि, स तव शिष्यस्तु मृतः अहं तु अन्य एव परीषहसहनसमर्थं तच्छरीरं ज्ञात्वा अधिष्ठाय स्थितोऽस्मि, एवं च भगवत्तिरस्कारं असहमानौ सुनक्षत्रसर्वानुभूती अनगारौ मध्ये उत्तरं कुर्वाणौ तेन तेजोलेश्यया दग्धौ स्वर्गं गतौ, ततो भगवता उक्तं–भो गोशाल! स एव त्वं नान्यो, मुधा किं आत्मानं गोपायसि?, न ह्येवं आत्मा गोपयितुं शक्यः, यथा कश्चिच्चौर आरक्षकैर्दृष्टोऽङ्गुल्या तृणेन वा आत्मानमाच्छादयति स किं आच्छादितो भवति?, एवं च प्रभुणा यथास्थितेऽभिहिते स दुरात्मा भगवदुपरि तेजोलेश्यां मुमोच, सा च भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य गोशालकशरीरं प्रविष्टा, तया च दग्धशरीरो विविधां वेदनां अनुभूय सप्तमरात्रौ मृतः, भगवानपि तस्यास्तापेन षण्मासीं यावल्लोहितवर्चोबाधां अनुभूतवान्, तदेवं नामस्मरणशमितसकलदुःखस्य भगवतोऽप्येवं यदुपसर्गस्तदाश्चर्यं (१) 'गब्भहरणं'ति गर्भस्य हरणं–उदरान्तरमोचनं तत् कस्यापि जिनस्य न भूतपूर्वं श्रीवीरस्य जातं इत्याश्चर्यं २ 'इत्थीतित्थ'न्ति

१ कर्मोदयमात्रजन्येयं न गोशालकतेजोलेश्योद्भवेति तु सूत्रानवबोधत एव । २ यथा मल्लीजिनस्य स्त्रीत्वेन प्रतिमादि न क्रियते आश्चर्यरूपत्वात्तस्य तद्वदिदमपि न कल्याणकतामञ्चति, न च स्थानवस्तुप्रभृतिभिः स्पष्टे व्यापके व्याख्याने व्याप्यकल्याणकव्याख्यानस्य ग्रहणं बुद्धिमतामर्हं, स्पष्टं चोक्तं कल्याणकपरिगणनायां वीरस्य च्युतिजन्मदीक्षाकेवलमोक्षरूपाणां पञ्चकमेव कल्याणानां पञ्चाशके चान्द्रकुलीनाभयदेवसूरिभिः

अर्हदाद्युत्पत्तिविचारे आश्चर्यदशकं

२०

२४

॥ २४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१८] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [१८]

कल्प. सु. ५

तीर्थंकरा हि भगवन्तः पुरुषोत्तमा एव भवंति, अत्रावसर्पिण्यां च मिथिलापतिकुम्भराजस्य पुत्री मल्लिनाम्नी एकोनविंशतितमजिनत्वेनोत्पन्ना तीर्थं प्रवर्तितवतीति आश्चर्यं (३) 'अभाविया परिस'त्ति अभाविता पर्षद्, भगवतो हि देशना कदापि निष्फला न भवति, अत्र च समुत्पन्नकेवलेन श्रीवर्धमानस्वामिना प्रथमसमवसरण एव देशना दत्ता, न च तया कस्यापि विरतिपरिणामो जात इत्याश्चर्यं (४) 'कण्हस्स'त्ति कृष्णस्य– नवमवासुदेवस्य द्रौपदीनिमित्तं अपरकङ्कागमनं आश्चर्यं, तच्चैवं–पुरा किल पाण्डवभार्यया द्रौपद्या असंयतत्वान्नारदस्य अभ्युत्थानादि न कृतं, तेन च रुष्टेन तस्याः कष्टे पातनार्थं धातकीखण्डभरते अपरकङ्कराजधानीप्रभोः पद्मोत्तरस्य स्त्रीलुब्धस्य पुरतो रूपवर्णनं कृतं, तेनापि स्वमित्रदेवेन द्रौपदी स्वगृहं आनायिता, इतश्च पाण्डवमात्रा कुन्त्या विज्ञपितेन कृष्णेन द्रौपदीगवेषणव्यग्रेण नारदमुखादेव स समाचारो लब्धः, ततः सोऽपि आराधितसुस्थितदेवताप्रदत्तमार्गो द्विलक्षयोजनायामं लवणसमुद्रं अतिक्रम्य अपरकङ्कां गतः, तत्र च तर्जितपाण्डवं पद्मोत्तरं नरसिंहरूपकरणेन विजित्य द्रौपदीवचसा जीवन्तं मुक्त्वा च द्रौपद्या सह पश्चाद्वलितः, वलमानश्च शङ्खं आपूरितवान्, तच्छब्दं श्रुत्वा च तत्र विहरमानमुनिसुव्रतजिनवचनेन कृष्णं आगतं ज्ञात्वा मिलनोत्सुकः कपिलवासुदेवोऽपि जलधितटमुपेत्य शङ्खं आपूरितवान्, ततो मिथः शङ्खशब्दौ मिलितौ, ततोऽस्यां अवसर्पिण्यां कृष्णस्य अपरकङ्कागमनं आश्चर्यं (५) 'अवयरणं चंदसूराणं'ति यत् कौशाम्ब्यां भगवतः श्रीवर्धमानस्वामिनो वन्दनार्थं मूलविमानेन सूर्याचन्द्रमसौ उत्तीर्णौ तदाश्चर्यं (६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [१८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

'हरिवंसकुलुप्पत्ति'त्ति सा चैवं—कुत्रचिन्नगरे केनचिद्राज्ञा वीरकशालापतिभार्या वनमालानाम्नी सुरूपेति स्वान्तःपुरे क्षिप्ता, स च शालापतिस्तस्या वियोगेन विकलो जातो, यं कञ्चन पश्यति तं वनमाला वनमालेति जल्पयति, एवं च कौतुकाक्षिप्तैरनेकैर्लोकैः परिवृतः पुरे भ्रमन् वनमालया समं क्रीडता राज्ञा दृष्टः, ततश्चास्माभिरनुचितं कृतं इति चिन्तयन्तौ तौ दम्पती तत्क्षणाद्विद्युत्पातेन मृतौ हरिवर्षक्षेत्रे युगलित्वेन समुत्पन्नौ, शालापतिश्च तौ मृतौ श्रुत्वा आः पापिनोः पापं लग्नं इति सावधानोऽभूत्, ततोऽसौ वैराग्यात्तपस्तप्त्वा व्यन्तरोऽभूत्, विभङ्गज्ञानेन च तौ दृष्ट्वा चिन्तितवान्—अहो इमौ मद्वैरिणौ युगलसुखं अनुभूय देवौ भविष्यतस्तत इमौ दुर्गतौ पातयामीति विचिन्त्य स्वशक्त्या संक्षिप्तदेहौ तौ इहानीतवान्, आनीय च राज्यं दत्त्वा सप्त व्यसनानि शिक्षितौ, ततस्तौ तथाभूतौ नरकं गतौ, अथ तस्य वंशो हरिवंशः, अत्र युगलिकस्यानयनं शरीरायुःसंक्षेपणं नरकगमनं चेति सर्वं आश्चर्यं (७) 'चमरुप्पाओ'त्ति चमरस्य—असुरकुमारराजस्य उत्पातः, स चैवं—पूरणनामा ऋषिस्तपस्तप्त्वा चमरेन्द्रतया उत्पन्नः, स च नवोत्पन्नः शिरःस्थं सौधर्मेन्द्रं विलोक्य कोपाक्रान्तः परिघं गृहीत्वा श्रीवीरं शरणीकृत्य सौधर्मेन्द्रात्मरक्षकांस्त्रासयन् सौधर्मावतंसकविमानवेदिकायां पादं मुक्त्वा शक्रं आक्रोशयामास, ततो रुष्टेन शक्रेण जाज्वल्यमानं वज्रं तं प्रति मुक्तं, ततोऽसौ भीतो भगवत्पादयोर्लीनः, ततो ज्ञातव्यतिकरेण इन्द्रेण सहसाऽऽगत्य चतुरङ्गुलाप्राप्तं वज्रं गृहीतं, भगवत्प्रसादान्मुक्तोऽसीत्युक्त्वा चमरो मुक्तः, इयं चमरस्योर्ध्वगमनं आश्चर्यं (८) 'अट्ठसय'त्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [१८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

एकस्मिन् समये उत्कृष्टावगाहनावन्तः अष्टाधिकशतमिता न सिध्यन्ति, ते च अस्यां अवसर्पिण्यां सिद्धाः, यतः–'वृषभो १ वृषभस्य सुता ९९ भरतेन विवर्जिताश्च नवनवतिः। अष्टौ भरतस्य सुताः १०८ शिवं गता एकसमयेन ॥ १ ॥ (९) 'असंजयाणं'ति असयंताः–असंयमवन्तः आरम्भपरिग्रहप्रसक्तास्तेषां पूजा, संयता एव सर्वदा पूज्यन्ते, अस्यां अवसर्पिण्यां तु नवमदशमजिनयोरन्तरे असंयतानां अपि ब्राह्मणादीनां पूजा प्रवृत्तेति आश्चर्यं (१०)

इमानि दशापि आश्चर्याणि अनन्तकालातिक्रमे अस्यां अवसर्पिण्यां जातानि, एवं च कालसाम्यात् शेषेष्वपि चतुर्षु भरतेषु पञ्चसु ऐरवतेषु च प्रकारान्तरेण दश आश्चर्याणि ज्ञेयानि। अथ दशानां आश्चर्याणां तीर्थव्यक्तिः–अष्टाधिकशतसिद्धिगमनं श्रीऋषभतीर्थे १ हरिवंशोत्पत्तिः शीतलतीर्थे २ अपरकङ्कागमनं श्रीनेमितीर्थे ३ स्त्रीतीर्थकरी मल्लितीर्थे ४ असंयतपूजा सुविधिजिनतीर्थे ५, शेषाणि च उपसर्ग १ गर्भापहार-२ अभाविता पर्षत् ३ चमरोत्पात ४ चन्द्रसूर्यावतरणलक्षणानि ५ पञ्च आश्चर्याणि श्रीवीरतीर्थे, एकं तावत् आश्चर्यं इदं, अपरञ्च–(नामगुत्तस्स वा कम्मस्स) नाम्ना गोत्रं इति प्रसिद्धं यत्कर्म गोत्राभिधानं कर्मेत्यर्थः तस्य, किंविशिष्टस्य? (अक्खीणस्स) अक्षीणस्य, स्थितेः अक्षयेण (अवेइअस्स) अवेदितस्य, रसस्य अपरिभोगेन (अणिज्जिण्णस्स) अनिर्जीर्णस्य, जीवप्रदेशेभ्योऽपरिशटितस्य, इदृशस्य गोत्रस्य–नीचैर्गोत्रस्य-(उदएणं) उदयेन भगवान् ब्राह्मणीकुक्षौ उत्पन्न इति योगः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [१८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-व्या० १ ॥ २६ ॥

तच्च नीचैर्गोत्रं भगवता स्थूलससविंशतिभवापेक्षया तृतीयभवे बद्धं, तथाहि—~~प्रथमभवे~~ पश्चिममहाविदेहे नयसारनामा ग्रामपतिः, स चैकदा काष्ठनिमित्तं वनं गतः, तत्र मध्याह्ने भोजनसमये सार्थभ्रष्टान् साधून् दृष्ट्वा हृष्टश्चिन्तितवान्–अहो मे भाग्यं! यदस्मिन् समये अतिथिसमागमः, ततः परमप्रमोदेन साधवोऽशनपानादिभिः प्रतिलम्भिताः, पश्चाद्भोजनानन्तरं साधून् नत्वा उवाच–चलन्तु महाभागा! मार्गं दर्शयामि, ततो मार्गे गच्छद्भिः साधुभिर्योग्योऽयमिति धर्मोपदेशेन सम्यक्त्वं प्रापितः, अन्ते च नमस्कारस्मरणपूर्वं मृत्वा ~~द्वितीयभवे~~ सौधर्मदेवलोके पल्योपमायुर्देवो जातः, ततश्च्युत्वा ~~तृतीयभवे~~ मरीचिनामा भरतचक्रवर्तिपुत्रो जातः, स च प्राप्तवैराग्यः श्रीऋषभदेवपार्श्वे प्रव्रजितः स्थविरपार्श्वे एकादशाङ्गीं अधीतश्च, एकदा च ग्रीष्मकाले तापादिपीडितश्चिन्तितवान्–अतिदुष्करोऽयं संयमभारो मया निर्वोढुं न शक्यते गृहे गमनं च सर्वथा अनुचितं, इति ध्यात्वाऽभिनवं वेषं रचितवान्, तथाहि—श्रमणास्त्रिदण्डविरताः अहं तु न तथा इति मम त्रिदण्डं चिह्नमस्तु, श्रमणा द्रव्यभावाभ्यां मुण्डाः अहं तु न तथेति मम शिरसि चूडा क्षुरमुण्डनं चास्तु, तथा श्रमणानां सर्वेभ्यः प्राणातिपातादिभ्यो विरतिर्मम तु स्थूलेभ्यः साऽस्तु, शीलसुगन्धाः साधवो नाहं तथेति मम चन्दनादिविलेपनमस्तु, तथा अपगतमोहाः श्रमणाः अहं तु मोहाच्छादित इति मे छत्रकं अस्तु, श्रमणा अनुपानच्चरणाः मम तु चरणयोरुपानद् अस्तु, श्रमणा निष्कषायाः अहं तु सकषाय इति इति मम काषाय्यं वस्त्रं अस्तु, श्रमणाः स्नानाद्विरताः मम तु परिमितजलेन स्नानं पानं चास्तु, एवं स्वबुद्ध्या

श्रीवीरस्य २७ भवाः २० २५ ॥ २६ ॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ भगवन्त महावीरस्य भावानां वर्णनं आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१८] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [१८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

परिव्राजकधर्मं विकल्पितवान्, ततस्तं विरूपवेषं विलोक्य सर्वे जना धर्मं पृच्छन्ति तत्पुरश्च साधुधर्मं प्ररूपयति देशनाशक्त्या च अनेकान् राजपुत्रादीन् प्रतिबोध्य भगवतः शिष्यतया ददाति भगवता सहैव च विहरति, एकदा भगवान् अयोध्यायां समवसृतस्तत्र वन्दनार्थं आगतेन भरतेन पृष्टं–स्वामिन्! अस्यां पर्षदि कोऽपि भरतक्षेत्रेऽस्यां चतुर्विंशतिकायां भाविजिनोऽस्ति?, भगवानुवाच–भरत! तव पुत्रोऽयं मरीचिनामा अस्यां अवसर्पिण्यां वीरनामा चतुर्विंशस्तीर्थकृत् १ विदेहे मूकाराजधान्यां प्रियमित्रनामा चक्री २ अत्रैव भरते प्रथमो वासुदेवश्च ३ भविष्यतीति श्रुत्वा हर्षितो भरतो गत्वा त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य मरीचिं वन्दित्वा अवदत्–भो मरीचे! यावन्तो लाभास्ते त्वयैव लब्धाः, यतस्त्वं तीर्थंकरो वासुदेवश्चक्री च भविष्यसि, अहं च तव पारिव्राज्यं न वन्दे किंतु त्वं चरमतीर्थंकरो भविष्यसीति वन्दे इति पुनः पुनः स्तुत्वा भरतः स्वस्थानं गतः, मरीचिरपि तत् श्रुत्वा हर्षोद्रेकात्त्रिपदीं आस्फोट्य नृत्यन्निदं अवोचत्—'प्रथमो वासुदेवोऽहं, मूकायां चक्रवर्त्यहम्। चरमस्तीर्थराजोऽहं, ममाहो उत्तमं कुलम् ॥ १ ॥ आद्योऽहं वासुदेवानां, पिता मे चक्रवर्तिनाम्। पितामहो जिनेन्द्राणां, ममाहो उत्तमं कुलम् ॥ ॥ २ ॥' इत्थं च मदकरणेन नीचैर्गोत्रं बद्धवान्, यतः—'जाति १ लाभ २ कुलै ३ श्वर्य ४ बल ५ रूप ६ तपः ७ श्रुतैः ८। कुर्वन् मदं पुनस्तानि, हीनानि लभते जनः ॥ ३ ॥' ततो भगवति निर्वृते प्राग्वज्जनान् प्रतिबोध्य साधूनां शिष्यान् कुर्वन् तैः सह विहरति, एकदा च ग्लानीभूतस्य तस्य न कोऽपि वैयावृत्यं करोति, तदा स चिन्तितवान्–अहो एते बहुपरिचिता अपि पर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [१८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कीया एव निर्ग्रन्थाः, ततो यदि नीरोगो भवामि तदैकं वैयावृत्यकरं शिष्यं करोमीति, क्रमेण च नीरोगो जातः, एकदा कपिलनामा राजपुत्रो देशनां निशम्य प्रतिबुद्धो मरीचिना प्रोक्तो–भो कपिल! याहि साधुसमीपे चारित्रं गृहाण, तदा कपिलेन प्रोक्तं–स्वामिन्! भवदृशेने एव व्रतं ग्रहिष्यामि, तदा मरीचिरुवाच–भो कपिल! श्रमणास्त्रिदण्डविरताः अहं तु त्रिदण्डवानित्यादि सर्वं स्वरूपं कथितं, तथापि स बहुलकर्मा चारित्रपराङ्मुखः प्रोवाच–किं भवदृशेने सर्वथा धर्मो नास्ति?, तदा मरीचिना एष मम योग्यः शिष्य इति विचिन्त्य उक्तं–"कविला इत्थंपि इहयंपि" कपिल! जैनमार्गेऽपि धर्मोऽस्ति मम मार्गेऽपि विद्यते, तत् श्रुत्वा च कपिलस्तत्पार्श्वे प्रव्रजितः, मरीचिरपि अनेन उत्सूत्रवचनेन कोटाकोटिसागरप्रमाणं संसारं उपार्जयामास, यत्तु किरणावलीकारेण प्रोक्तं 'कविला इत्थंपि इहयंपीति' वचनं उत्सूत्रमिश्रितमिति, तदुत्सूत्रभाषिणां नियमादनन्तः संसार इति स्वमतस्थापनरसिकतयेति ज्ञेयं, इदं हि तन्मतं–उत्सूत्रभाषिणस्तावन्नियमादनन्तः एव संसारः स्यात्, यदि च इदं मरीचिवचनमुत्सूत्रमित्युच्यते तदा अस्यापि अनन्तः संसारः प्रसज्यते न चासौ सम्प्रस्तदिदं उत्सूत्रमिश्रितमिति, तच्चायुक्तं, उत्सूत्रभाषिणां अनन्त एव संसार इति नियमाभावात्, श्रीभगवत्यादिबहुग्रन्थानुसारेण उत्सूत्रभाषिशिरोमणेर्जमालिनिह्नवस्यापि परिमितभवत्वदर्शनात्, न चोत्सूत्रमिश्रत्वकथनेऽपि अस्य मरीचिवचनस्य उत्सूत्रत्वं अपगच्छति, विषमिश्रितान्नस्यापि विषत्वमेवेत्यलं

२०

२५

॥ २७ ॥

२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१८] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [१८]

प्रसङ्गेन, ततोऽनालोचिततत्कर्मा चतुरशीतिलक्षपूर्वाणि आयुः परिपाल्य मृत्वा चतुर्थे भवे ब्रह्मलोके दशसागरस्थितिः सुरः सञ्जातस्ततश्च्युतः पञ्चमे भवे कोल्लाकसन्निवेशे अशीतिलक्षपूर्वायुर्विप्रो भूत्वा विषयासक्तो निःशूकः प्रान्ते त्रिदण्डीभूत्वा बहुकालं संसारे भ्रान्तः, ते हि भवाः स्थूलभवमध्ये न गण्यन्ते, ततः षष्ठे भवे स्थूणायां नगर्यां द्वासप्ततिलक्षपूर्वायुः पुष्पनामा द्विजस्त्रिदण्डीभूत्वा मृतः सप्तमे भवे सौधर्मे कल्पे मध्यस्थितिः सूरोऽभूत्, ततश्च्युतोऽष्टमे भवे चैत्यसन्निवेशे षष्टिलक्षपूर्वायुः अग्निद्योतो नाम विप्रस्त्रिदण्डी- ५
भूत्वा मृतो नवमे भवे ईशानदेवलोके मध्यस्थितिकः सुरः, ततश्च्युतो दशमे भवे मन्दरसन्निवेशे षट्पञ्चाशल्लक्षपूर्वायुरग्निभूतिनामा ब्राह्मणः अन्ते त्रिदण्डीभूत्वा एकादशे भवे तृतीयकल्पे मध्यस्थितिकः सुरः, ततश्च्युतो द्वादशे भवे श्वेताम्ब्यां नगर्यां चतुश्चत्वारिंशल्लक्षपूर्वायुर्भारद्वाजनामा विप्रस्त्रिदण्डीभूत्वा मृत्वा त्रयोदशे भवे माहेन्द्रकल्पे मध्यस्थितिः सुरः, ततश्च्युतः कियत्कालं संसारे भ्रान्त्वा चतुर्दशे भवे राजगृहे चतुस्त्रिंशल्लक्षपूर्वायुः स्थावरो नाम विप्रस्त्रिदण्डीभूत्वा मृतः पञ्चदशे भवे ब्रह्मलोके मध्यस्थितिको देवः षोडशे भवे १०
कोटिवर्षायुर्विश्वभूतिनामा युवराजपुत्रः सम्भूतिमुनिपादान्ते चारित्रं गृहीत्वा वर्षसहस्रं दुस्तपं तपस्तप्यमानो मासोपवासपारणायां मथुरायां गोचरचर्यार्थं गतः, तत्र एकया धेन्वा तपःकृशत्वाद्भुवि पातितः, तद् दृष्ट्वा च १२

१ दुर्भाषितेनैकेनेत्याद्युपदेशमालायां, कविलेत्यादेः निरुपचरितो जैनधर्मे अत्र तु सोपचरित इति मलयगिरिपादाः, जमालेर्मतान्तरेणानन्ता भवा उक्ताः स्वयं लोकप्रकाशे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [१८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-व्या० २ ॥ २८ ॥

परिणयनार्थं तत्रागतेन[१] विशाखनन्दिनाम्ना पितृव्यपुत्रेण हसितः सन् कुपितस्तां धेनुं शृङ्गयोर्गृहीत्वा आकाशे भ्रमितवान्, निदानं चैवं कृतवान्—यदनेन उग्रतपसा भवान्तरे भूयिष्ठवीर्यो भूयासं, ततो मृत्वा सप्तदशे भवे महाशुक्रे उत्कृष्टस्थितिः सुरः ततश्च्युतः अष्टादशे भवे पोतनपुरे स्वपुत्रीकासुकस्य प्रजापते राज्ञो मृगावत्याः पुत्र्याः पत्न्याश्च कुक्षौ चतुरशीतिलक्षवर्षायुस्त्रिपृष्ठनामा वासुदेवः,तत्र बाल्येऽपि प्रतिवासुदेवशालिक्षेत्रविघ्नकारिणं सिंहं विमुक्तशस्त्रः कराभ्यां विदारितवान्, क्रमेण च वासुदेवत्वं प्राप्तः, एकदा च शय्यापालकं आदिष्टवान्—यदस्मासु निद्राणेषु एते गायना गीतगानान्निवारणीयाः,तेन च गीतरसासक्तेन वासुदेवे निद्राणेऽपि ते न निवारिताः, ततः क्षणात् प्रतिबुद्धेन वासुदेवेन आः पाप ! मदाज्ञापालनादपि तव गीतश्रवणं प्रियं लभस्व तर्हि तत्फलं इत्युक्त्वा तत्कर्णयोस्तप्तं त्रपु क्षिप्तवान्, तेन च कर्णयोः कीलकप्रक्षेपकारणं कर्मोपार्जितवान्, एवं च कृतानेकदुष्कर्मा ततो मृत्वा एकोनविंशे भवे सप्तमनरके नारकतया उत्पन्नः, ततो निर्गत्य विंशतितमे भवे सिंहस्ततो मृत्वा एकविंशतितमे भवे चतुर्थनरके, ततो निर्गत्य बहून् भवान् भ्रान्त्वा द्वाविंशे भवे मनुष्यत्वं प्राप्योपार्जितशुभकर्मा त्रयोविंशे भवे मूकायां राजधान्यां धनञ्जयस्य राज्ञो धारिण्या देव्याः कुक्षौ चतुरशीतिलक्षपूर्वायुः प्रियमित्रनामा चक्रवर्त्ती बभूव, स च पोट्टिलाचार्यसमीपे दीक्षां गृहीत्वा वर्षकोटिं यावत् परि-

श्रीवीरस्य २७ भवाः १५ २० २४ ॥ २८ ॥

१ जिनभवान् प्राक् षष्ठे भवे पोट्टिलकुमारः मृतश्च सहस्रारेऽभूदिति समवाये, उक्तभवग्रहणं विना हि नान्यद्भवग्रहणं षष्ठं श्रूयते भगवत इत्येतदेव षष्ठभवग्रहणतया व्याख्यातमिति वाक्यार्थमनवबुध्य यथारुचि कथनं खाद्यानां न मतिमतां मान्यं,नहि भवद्वयेन कल्याणकालिसंगतिरुचिता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [१८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

पाल्य चतुर्विंशतितमे भवे महाशुक्रे देवः, ततश्च्युतः पञ्चविंशे भवे इहैव भरतक्षेत्रे छत्रिकायां नगर्यां जितशत्रुनृपतेर्भद्रादेव्याः कुक्षौ पञ्चविंशतिवर्षलक्षायुर्नन्दनो नाम पुत्रः, स च पोट्टिलाचार्यपार्श्वे चारित्रं गृहीत्वा यावज्जीवं मासक्षपणैर्विंशतिस्थानकाराधनेन च तीर्थंकरनामकर्म निकाच्य वर्षलक्षं चारित्रपर्यायं परिपाल्य मासिकया संलेखनया मृत्वा षड्विंशतितमे भवे प्राणतकल्पे पुष्पोत्तरावतंसकविमाने विंशतिसागरोपमस्थितिको देवो जातः, ततश्च्युत्वा तेन मरीचिभवबद्धेन नीचैर्गोत्रकर्मणा भुक्तशेषेण सप्तविंशे भवे ब्राह्मणकुण्डग्रामे नगरे ऋषभदत्तस्य ब्राह्मणस्य देवानन्दायाः ब्राह्मण्याः कुक्षौ उत्पन्नः, ततः शक्र एवं चिन्तयति–

(जन्नं अरहंता वा) यत् एवं नीचैर्गोत्रोदयेन अर्हन्तो वा (चक्कवट्टी वा) चक्रवर्तिनो वा (बलदेवा वा) बलदेवा वा (वासुदेवा वा) वासुदेवा वा (अन्तकुलेसु वा) अन्त्याः–शूद्रास्तेषां कुलेषु वा (पन्तकुलेसु वा) प्रान्ता–अधमाचाराः तेषां कुलेषु वा (तुच्छकुलेसु वा) तुच्छा–अल्पकुटुम्बास्तेषां कुलेषु वा (दरिद्दकुलेसु वा) दरिद्रा–निर्धनास्तेषां कुलेषु वा (किविणकुलेसु वा) कृपणाः–अदातारस्तेषां कुलेषु वा (भिक्खागकुलेसु वा) भिक्षाकाः–चारणादयस्तेषां कुलेषु वा (माहणकुलेसु वा) ब्राह्मणानां कुलेषु वा (आयाइंसु वा) आगता अतीतकाले (आयाइंति वा) आगच्छन्ति वर्त्तमानकाले (आयाइस्संति वा) आगमिष्यन्ति अनागतकाले (कुच्छिंसि) कुक्षौ (गब्भत्ताए) गर्भतया (वक्कमिंसु वा) उत्पन्ना वा (वक्कमंति वा) उत्पद्यन्ते वा (वक्कमिस्संति वा) उत्पत्स्यन्ते वा, परं (नो चेव णं) नैव (जोणीजम्मणनिक्खमणेणं) योन्या यत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१९] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [१९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-व्या० २ ॥ २९ ॥

जन्मार्थं निष्क्रमणं तेन (निक्खमिंसु वा) निष्क्रान्ता वा (निक्खमंति वा) निष्क्रामन्ति वा (निक्खमिस्संति वा) निष्क्रमिष्यन्ति च, अयमर्थः—यद्यपि कदाचित् कर्मोदयेन आश्चर्यभूतस्तुच्छादिकुलेषु अर्हदादीनां अवतारो भवति परं जन्म तु कदाचिन्न भूतं न भवति न भविष्यति च ॥ (१८) ॥

(अयं च णं) अयं प्रत्यक्षः (समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (जंबुद्दीवे दीवे) जंबूद्वीपे द्वीपे (भारहे वासे) भरतक्षेत्रे (माहणकुंडग्गामे नयरे) ब्राह्मणकुण्डग्रामे नगरे (उसभदत्तस्स माहणस्स) ऋषभदत्तस्य ब्राह्मणस्य (कोडालसगुत्तस्स) कोडालसगोत्रस्य (भारियाए) भार्यायाः (देवाणंदाए माहणीए) देवानन्दायाः ब्राह्मण्याः (जालंधरसगुत्ताए) जालन्धरसगोत्रायाः (कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते) कुक्षौ गर्भतया उत्पन्नः ॥ (१९) ॥ (तं जीअमेयं) तस्मात् हेतोः जीतं एतत्—आचार एष इत्यर्थः, केषां इत्याह—(तीअपच्चुप्पन्नमणागयाणं) अतीतवर्त्तमानानागतानां (सक्काणं देविंदाणं देवरायाणं) शक्राणां देवेन्द्राणां देवराजानां, कोऽसौ? इत्याह—यत् (अरिहंते भगवंते) अर्हतो भगवतः (तहप्पगारेहिंतो) तथाप्रकारेभ्यः (अंतकुलेहिंतो) अन्तकुलेभ्यः (पंतकुलेहिंतो) प्रान्तकुलेभ्यः (तुच्छकुलेहिंतो) तुच्छकुलेभ्यः (दरिद्दकुलेहिंतो) दरिद्रकुलेभ्यः (भिक्खागकुलेहिंतो) भिक्षाचरकुलेभ्यः (किविणकुलेहिंतो) कृपणकुलेभ्यः (माहणकुलेहिंतो) ब्राह्मणकुलेभ्यश्चादाय (तहप्पगारेसु) तथाप्रकारेषु (उग्गकुलेसु वा) उग्रकुलेषु वा (भोगकुलेसु वा) भोगकुलेषु वा (रायन्नकुलेसु वा) राजन्यकुलेषु वा (नायकुलेसु वा) ज्ञातकुलेषु वा

नीचगोत्रेष्वजन्मवि. नीचगोत्रोत्पत्तिः संहरणविचारः सू.१८-२० २० २५ ॥ २९ ॥ २८

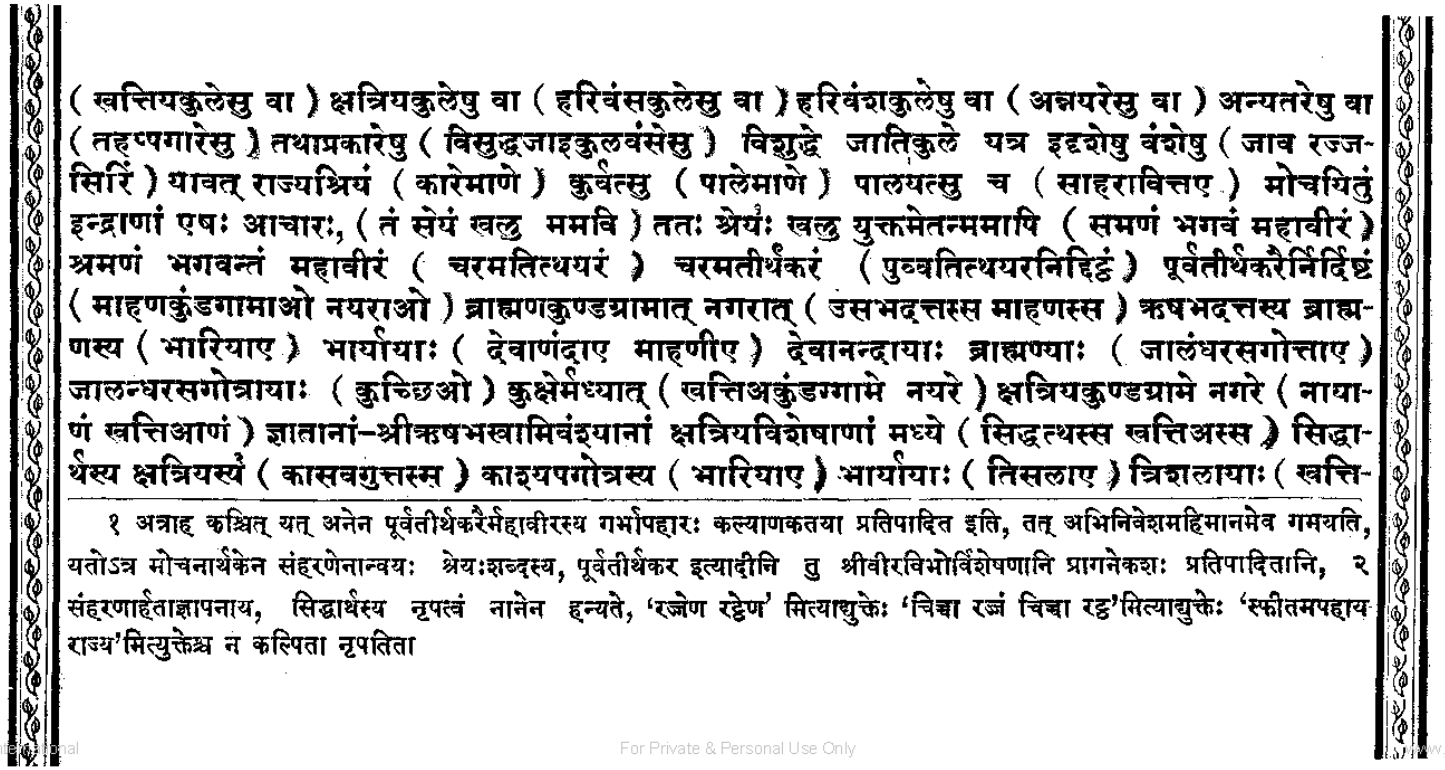
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** भगवन्त महावीरस्य गर्भ-संहरण-वृतान्त

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२०] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [२०]



(खत्तियकुलेसु वा) क्षत्रियकुलेषु वा (हरिवंसकुलेसु वा) हरिवंशकुलेषु वा (अन्नयरेसु वा) अन्यतरेषु वा (तहप्पगारेसु) तथाप्रकारेषु (विसुद्धजाइकुलवंसेसु) विशुद्धे जातिकुले यत्र इदृशेषु वंशेषु (जाव रज्ज-सिरिं) यावत् राज्यश्रियं (कारेमाणे) कुर्वत्सु (पालेमाणे) पालयत्सु च (साहरावित्तए) मोचयितुं इन्द्राणां एषः आचारः, (तं सेयं खलु ममवि) ततः श्रेयः खलु युक्तमेतन्ममापि (समणं भगवं महावीरं) श्रमणं भगवन्तं महावीरं (चरमतित्थयरं) चरमतीर्थंकरं (पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठं) पूर्वतीर्थकरैर्निर्दिष्टं (माहणकुंडगामाओ नयराओ) ब्राह्मणकुण्डग्रामात् नगरात् (उसभदत्तस्स माहणस्स) ऋषभदत्तस्य ब्राह्मणस्य (भारियाए) भार्यायाः (देवाणंदाए माहणीए) देवानन्दायाः ब्राह्मण्याः (जालंधरसगोत्ताए) जालन्धरसगोत्रायाः (कुच्छिओ) कुक्षेर्मध्यात् (खत्तिअकुंडग्गामे नयरे) क्षत्रियकुण्डग्रामे नगरे (नायाणं खत्तिआणं) ज्ञातानां-श्रीऋषभस्वामिवंश्यानां क्षत्रियविशेषाणां मध्ये (सिद्धत्थस्स खत्तिअस्स) सिद्धार्थस्य क्षत्रियस्य (कासवगुत्तस्स) काश्यपगोत्रस्य (भारियाए) भार्यायाः (तिसलाए) त्रिशलायाः (खत्ति-

१ अत्राह कश्चित् यत् अनेन पूर्वतीर्थकरैर्महावीरस्य गर्भापहारः कल्याणकतया प्रतिपादित इति, तत् अभिनिवेशमहिमानमेव गमयति, यतोऽत्र मोचनार्थकेन संहरणेनान्वयः श्रेयःशब्दस्य, पूर्वतीर्थकर इत्यादीनि तु श्रीवीरविभोर्विशेषणानि प्रागनेकशः प्रतिपादितानि, २ संहरणार्हताज्ञापनाय, सिद्धार्थस्य नृपत्वं नानेन हन्यते, 'रज्जेण रट्ठेण' मित्याद्युक्तेः 'चिच्चा रज्जं चिच्चा रट्ठ'मित्याद्युक्तेः 'स्फीतमपहाय राज्य'मित्युक्तेश्च न कल्पिता नृपतिता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [२०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

आणीए) क्षत्रियाण्याः (वासिट्ठसगुत्ताए) वाशिष्टसगोत्रायाः (कुच्छिंसि गब्भत्ताए) कुक्षौ गर्भतया (साहरावित्तए) मोचयितुं, तथा–(जेऽविअ णं से तिसलाए खत्तिआणीए गब्भे) योऽपि च तस्याः त्रिशलायाः क्षत्रियाण्याः गर्भः पुत्रिकारूपः (तंपिअ णं देवाणंदाए माहणीए) तं अपि देवानन्दायाः ब्राह्मण्याः (जालंधरसगुत्ताए) जालन्धरसगोत्रायाः (कुच्छिंसि गब्भत्ताए) कुक्षौ गर्भतया (साहरावित्तए) मोचयितुं, (तिकट्टु) इति कृत्वा (एवं संपेहेइ) एवं–पूर्वोक्तं विचारयति (संपेहित्ता) विचार्य च (हरिणेगमेसिं) हरिनैगमेषिनामकं (पाइत्ताणीआहिवइं) पदातिकटकाधिपतिं (देवं सद्दावेइ) देवं आकारयति, (सद्दावित्ता) आकार्य (एवं वयासी) एवं इन्द्रः अवादीत् ॥ (२०) ॥ किं तदित्याह—(एवं खलु देवाणुप्पिआ !) एवं निश्चयेन हे हरिनैगमेषिन्! (न एअं भूअं) न एतद्भूतं (न एअं भव्वं) न एतत् भवति (न एअं भविस्सं) न एतत् भविष्यति (जन्नं अरिहंता वा) यत् अर्हन्तो वा (चक्कवट्टि वा) चक्रधरा वा (बलदेवा वा) बलदेवा वा (वासुदेवा) वासुदेवा वा (अंतकुलेसु वा) अन्त्यकुलेषु वा (पंतकुलेसु वा) प्रान्ताः–अधमाचाराः तेषां कुलेषु वा (तुच्छकुलेसु वा) तुच्छाः–अल्पकुटुम्बास्तेषां कुलेषु वा (दरिद्दकुलेसु वा) दरिद्राः–निर्धनास्तेषां कुलेषु वा (किविणकुलेसु वा) कृपणाः–अदातारस्तेषां कुलेषु वा (भिक्खागकुलेसु वा) भिक्षाकाः–चारणादयः तेषां कुलेषु वा (माहणकुलेसु वा) ब्राह्मणानां कुलेषु वा (आयाइंसु वा) आगताः अतीतकाले (आयाइंति वा) आगच्छन्ति वर्त्तमानकाले (आयाइस्संति वा) आगमिष्यन्ति अनागतकाले,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२१] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [२१]

कल्प. सु. ६

(एवं खलु अरहंता वा) अनेन प्रकारेण निश्चयेन अर्हन्तो वा (चक्कवट्टी वा) चक्रवर्तिनो वा (बलदेवा वा) बलदेवा वा (वासुदेवा वा) वासुदेवा वा (उग्गकुलेसु वा) श्रीऋषभेण आरक्षकतया स्थापिताः उग्राः तेषां कुलेषु वा (भोगकुलेसु वा) गुरुतया स्थापिताः भोगाः तेषां कुलेषु वा (राइण्णकुलेसु वा) मित्रस्थाने स्थापिताः राजन्यास्तेषां कुलेषु वा (खत्तियकुलेसु वा) प्रजालोकतया स्थापिताः क्षत्रियास्तेषां कुलेषु वा (हरिवंसकुलेसु वा) पूर्ववैरिसुरानीतहरिवर्षक्षेत्रयुगलस्य वंशो हरिवंशस्तस्य कुलेषु वा (अण्णयरेसु वा) अन्यतरेषु वा (तहप्पगारेसु) तथाप्रकारेषु (विसुद्धजाइकुलवंसेसु) विशुद्धे जातिकुले यत्र इदृशेषु वंशेषु, मातृपक्षो जातिः पितृपक्षः कुलं (आयाइंसु वा) आगता वा (आयाइंति वा) आगच्छन्ति वा (आयाइस्संति वा) आगमिष्यन्ति वा, ॥ (२१) ॥ तर्हि भगवान् कथमुत्पन्न ? इत्याह—(अत्थि पुण एसेऽवि भावे) अस्ति पुनः एषोऽपि भवितव्यतानामपदार्थः (लोगच्छेरयभूए) लोके आश्चर्यभूतः (अणंताहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं) अनन्तासु उत्सर्पिण्यवसर्पिणीषु (विइक्कंताहिं) व्यतिक्रान्तासु सतीषु (समुप्पज्जइ) इदृशः कश्चिद्भावः समुत्पद्यते (नामगुत्तस्स वा) नाम्ना कृत्वा गोत्रस्य, अर्थात् नीचैर्गोत्रनामकस्य वेति पक्षान्तरे (कम्मस्स) कर्मणः, किंविशिष्टस्य ? (अक्खीणस्स) स्थितेः अक्षयेण अक्षीणस्य, पुनः किंवि० ? (अवेइअस्स) रसस्यापरिभोगेन अवेदितस्य, पुनः किंवि० ? (अणिज्जिण्णस्स) अत एव अनिर्जीर्णस्य—आत्मप्रदेशेभ्यः अपृथग्भूतस्य (उदएणं) उदयेन कृत्वा (जन्नं अरहंता वा) यत् नीचैर्गोत्रोदयेन कृत्वा अर्हन्तो वा (चक्कवट्टी वा) चक्रवर्तिनो वा

जिनाद्यागमनआश्चर्यं जन्मनोऽभावः सू. २१–२२ ५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२२] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [२२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० १ ॥ ३१ ॥

(बलदेवा वा) बलदेवा वा (वासुदेवा वा) वासुदेवा वा (अंतकुलेसु वा) अन्त्यकुलेषु वा (पंतकुलेसु वा) प्रान्तकुलेषु वा (तुच्छकुलेसु वा) तुच्छकुलेषु वा (दरिद्दकुलेसु वा) दरिद्रकुलेषु वा (भिक्खागकुलेसु वा) भिक्षाचरकुलेषु वा (किविणकुलेसु वा) कृपणकुलेषु वा (माहणकुलेसु वा) ब्राह्मणकुलेषु वा (आयाइंसु वा) आगता वा (आयाइंति वा) आगच्छन्ति वा (आयाइस्संति वा) आगमिष्यन्ति वा (कुच्छिंसि) कुक्षौ (गब्भत्ताए) गर्भतया (वक्कमिंसु वा) उत्पन्ना वा (वक्कमंति वा) उत्पद्यन्ते वा (वक्कमिस्संति वा) उत्पत्स्यन्ते वा (नो चेव णं) परं नैव (जोणीजम्मणनिक्खमणेणं) योनिमार्गेण जन्मनिमित्तं निष्क्रमणेन कृत्वा (निक्खमिंसु वा) निष्क्रान्ता वा (निक्खमंति वा) निष्क्रामन्ति वा (निक्खमिस्संति वा) निष्क्रमिष्यन्ति वा ॥(२२)॥ (अयं च णं) अयं प्रत्यक्षः (समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (जंबुद्दीवे दीवे) जंबूद्वीपे द्वीपे (भारहे वासे) भरतक्षेत्रे (माहणकुंडग्गामे नयरे) ब्राह्मणकुण्डग्रामे नगरे (उसभदत्तस्स माहणस्स) ऋषभदत्तस्य ब्राह्मणस्य (कोडालसगुत्तस्स) कोडालसगोत्रस्य (भारियाए) भार्यायाः (देवाणंदाए माहणीए) देवानन्दायाः ब्राह्मण्याः (जालंधरसगुत्ताए) जालन्धरसगोत्रायाः (कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते) कुक्षौ गर्भतया उत्पन्नः ॥ (२३) ॥

(तं जीअमेयं) तस्मात् आचार एषः (तीअपच्चुप्पन्नमणागयाणं) अतीतवर्त्तमानानागतानां (सक्काणं देविंदाणं देवरायाणं) शक्राणां देवेन्द्राणां देवराजानां (अरिहंते भगवंते) अर्हतो भगवतः (तहप्पगारे-

श्रीवीराग-मनं संहर-णाचारः सू. २३–२४ २० २५ ॥ ३१ ॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२४] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [२४]

हिंतो) तथाप्रकारेभ्यः (अंतकुलेहिंतो) अन्तकुलेभ्यः (पंतकुलेहिंतो) प्रान्तकुलेभ्यः (तुच्छकुलेहिंतो) तुच्छकुलेभ्यः (दरिद्दकुलेहिंतो) दरिद्रकुलेभ्यः (किविणकुलेहिंतो) कृपणकुलेभ्यः (वणीमगकुलेहिंतो) भिक्षाचरकुलेभ्यः (माहणकुलेहिंतो) ब्राह्मणकुलेभ्यश्च (तहप्पगारेसु) तथाप्रकारेषु (उग्गकुलेसु वा) उग्रकुलेषु वा (भोगकुलेसु वा) भोगकुलेषु वा (रायन्नकुलेसु वा) राजन्यकुलेषु वा (नायकुलेसु वा) ज्ञातकुलेषु वा (खत्तिअकुलेसु वा) क्षत्रियकुलेषु वा (इक्खागकुलेसु वा) इक्ष्वाककुलेषु वा (हरिवंसकुलेसु वा) हरिवंशकुलेषु वा (अण्णयरेसु वा) अन्यतरेषु वा (तहप्पगारेषु) तथाप्रकारेषु (विसुद्धजाइकुलवंसेसु) विशुद्धजातिकुलवंशेषु (साहरावित्तए) मोचयितुं ॥ (२४) ॥ (तं गच्छ णं देवाणुप्पिए) यस्मात् कारणात् इन्द्राणां एष आचारः तस्मात्कारणात् त्वं गच्छ देवानुप्रिय ! हे हरिणैगमेषिन् ! (समणं भगवं महावीरं) श्रमणं भगवन्तं महावीरं (माहणकुंडग्गामाओ नयराओ) ब्राह्मणकुण्डग्रामात् नगरात् (उसभदत्तस्स माहणस्स) ऋषभदत्तस्य ब्राह्मणस्य (कोडालसगुत्तस्स) कोडालसगोत्रस्य (भारियाए) भार्यायाः (देवाणंदाए माहणीए) देवानन्दायाः ब्राह्मण्याः (जालंधरसगुत्ताए) जालन्धरसगोत्रायाः (कुच्छिओ) कुक्षेः लात्वा (खत्तियकुंडग्गामे नयरे) क्षत्रियकुण्डग्रामे नगरे (नायाणं खत्तिआणं) ज्ञातजातीयानां क्षत्रियाणां मध्ये (सिद्धत्थस्स खत्तिअस्स) सिद्धार्थस्य क्षत्रियस्य (कासवगुत्तस्स) काश्यपगोत्रस्य (भारियाए) भार्यायाः (तिसलाए खत्तिआणीए) त्रिशलायाः क्षत्रियाण्याः (वासिट्ठसगुत्ताए) वाशिष्ठगोत्रायाः

गर्भसंहरणादेशः सू. २५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२५] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [२५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० १ ॥ ३२ ॥

(कुच्छिंसि गब्भत्ताए) कुक्षौ गर्भतया (साहराहि) मुञ्च, (जेऽवि य णं) योऽपि च (से तिसलाए) तस्याः त्रिशलायाः (खत्तिआणीए) क्षत्रियाण्याः (गब्भे) गर्भः (तंपि य णं) तं अपि (देवाणंदाए माहणीए) देवानन्दायाः ब्राह्मण्याः (जालंधरसगुत्ताए) जालन्धरगोत्रायाः (कुच्छिंसि) कुक्षौ (गब्भत्ताए) गर्भतया(साहराहि) मुञ्च (साहरित्ता) मुक्त्वा (मम एअमाणत्तिअं) मम एतां आज्ञप्तिं–आज्ञां (खिप्पामेव) शीघ्रमेव (पच्चप्पिणाहि) प्रत्यर्पय, कार्यं कृत्वाऽऽगत्य मयैतत् कार्यं कृतं इति शीघ्रं निवेदय इत्यर्थः ॥ (२५) ॥

(तए णं से हरिणेगमेसी) ततः स हरिणैगमेषी (पायत्ताणियाहिवई देवे) पदात्यनीकाधिपतिर्देवः (सक्केणं देविंदेणं) शक्रेण देवेन्द्रेण (देवरन्ना) देवराजेन (एवं वुत्ते समाणे) एवं उक्तः सन् (हट्ठ) (जाव) यावत्करणात् तुट्ठचित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाण इत्यादि सर्वं वक्तव्यं (हियए) हर्षपूर्णहृदयः, अथैवंविधः सन् हरिणैगमेषी (करयल) करतलाभ्यां (जाव) यावत्कारणात् परिग्गहियं दस-नहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं इति प्राग्वत् वाच्यं (कट्टु) तथा मस्तके अञ्जलिं कृत्वा (जं देवो आणवे-इत्ति) यत् शक्रः आज्ञापयति इत्युक्त्वा (आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ) आज्ञाया–उक्तरूपाया यद्व-चनं तद्विनयेन प्रतिशृणोति–अङ्गीकरोति (पडिसुणित्ता) प्रतिश्रुत्य च–अङ्गीकृत्य च (उत्तरपुरच्छिमं दिसि-

१ यदा संहरणस्य कल्याणकता तदा इन्द्रः स्वयमेव तदकरिष्यत् न पदात्यनीकाधिपेनाकारयिष्यत्, श्रेयःप्रकर्षाभिलाषयुक्तत्वात्तस्य, जन्मादिकल्याणकवत्, ऋषभराज्याभिषेकः स्वयं कृत इन्द्रेणेति तस्य विशेषेण खात्रेन कल्याणकता स्वीकार्या ।

संहरणं सू. २६ २० ॥ ३२ ॥ २६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** हरिणेगमेषीदेवेन कृत भगवन्त महावीरस्य गर्भ-संहरण

प्रत सूत्रांक [२६] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [२६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

भागं) ईशाणकोणनामके दिग्विभाग इत्यर्थः तत्र (अवक्कमइ) अपक्रामति गच्छतीत्यर्थः (अवक्कमित्ता) अपक्रम्य–गत्वा च (विउव्विअसमुग्घाएणं समोहणइ) वैक्रियसमुद्घातेन समुद्धन्ति–वैक्रियशरीरकरणार्थं प्रयत्नविशेषं करोतीत्यर्थः (समोहणित्ता) प्रयत्नविशेषं कृत्वा (संखिज्जाइं जोअणाइं) संख्येययोजनप्रमाणं (दंडं) दण्डाकारं शरीरबाहल्यं ऊर्ध्वाधआयतं जीवप्रदेशकर्मपुद्गलसमूहं (निस्सिरइ) शरीराद्बहिः निष्कासयतीत्यर्थः, तत्कुर्वाणस्तु एवंविधान् पुद्गलान् आदत्ते, (तंजहा) तद्यथा–(रयणाणं) रत्नानां–कर्केतनादीनां १ यद्यपि रत्नपुद्गला औदारिका वैक्रियशरीरकरणे असमर्थाः तत्र वैक्रियवर्गणापुद्गला एव उपयुज्यन्ते तदपि रत्नानां इव सारपुद्गला इति ज्ञेयं (वयराणं) वज्राणां–हीरकाणां २ (वेरुलिआणं) वैडूर्याणां–नीलरत्नानां ३ (लोहिअक्खाणं) लोहिताक्षाणां ४ (मसारगल्लाणं) मसारगल्लानां ५ (हंसगब्भाणं) हंसगर्भाणां ६ (पुलयाणं) पुलकानां ७ (सोगंधिआणं) सौगन्धिकानां ८ (जोईरसाणं) ज्योतीरसानां ९ (अंजणाणं) अञ्जनानां १० (अंजणपुलयाणं) अञ्जनपुलकानां ११ (जायरूवाणं) जातरूपाणां १२ (सुभगाणं) सुभगानां १३ (अंकाणं) अङ्कानां १४ (फलिहाणं) स्फटिकानां १५ (रिट्ठाणं) रिष्ठानां १६ एताः षोडश रत्नजातयस्तेषां च (अहाबायरे) यथाबादरान्–अत्यन्तं असारान् स्थूलान् इत्यर्थः (पुग्गले) तान् पुद्गलान् (परिसाडेइ) परित्यजति,

१ लब्ध्याऽन्यवर्गणापुद्गलानामन्यवर्गणात्वेन परिणतेरौदारिकाण्यपि वा सन्तु २ उदितवैक्रियनामकर्मपुद्गलानिति श्रीहरिभद्राद्या आचार्याः

वैक्रियकरणं ५ १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [२७]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

(परिसाडित्ता) परित्यज्य (अहासुहुमे) यथासूक्ष्मान्–अत्यन्तं सारान् इत्यर्थः, तान् (पुग्गले) पुद्गलान् (परिआएइ) पर्यादत्ते–गृह्णातीत्यर्थः ॥ (२६) ॥ (परियाइत्ता) पर्यादाय–गृहीत्वा (दुच्चंपि) द्वितीयवारं अपि (वेउव्वियसमुग्घाएणं) वैक्रियसमुद्घातेन (समोहणइ) समुद्घन्ति-पूर्ववत् प्रयत्नविशेषं करोति, (समोहणित्ता) प्रयत्नविशेषं कृत्वा (उत्तरवेउव्विअं रूवं) उत्तरवैक्रियं–भवधारणीयापेक्षया अन्यत् इत्यर्थः, ईदृशं रूपं (विउव्वइ) विकुर्वति–करोति (विउव्वित्ता) तथा कृत्वा (ताए) तया (उक्किट्ठाए) उत्कृष्टया–अन्येषां गतिभ्यो मनोहरया (तुरिआए) त्वरितया–चित्तौत्सुक्यवत्या (चवलाए) कायचापल्ययुक्तया (चंडाए) चण्डया–अत्यन्ततीव्रया (जयणाए) शेषगतिजयनशीलया (उद्धूआए) उद्धूतया–प्रचण्डपवनोद्धूतधूमादेरिव (सिग्घाए) अत एव शीघ्रया, छेआएत्ति कुत्रचित् पाठः तत्र छेकया–विघ्नपरिहारदक्षया, (दिव्वाए) देवयोग्यया, इदृश्या (देवगइए) देवगत्या (वीइवयमाणे वीइवयमाणे) अतिगच्छन् २—अधस्तादुत्तरन् २ (तिरिअमसंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं) तिर्यग् असंख्येयानां द्वीपसमुद्राणां (मज्झंमज्झेणं) मध्यंमध्येन–मध्यभागेन (जेणेव जंबुद्दीवे दीवे) यत्रैव जम्बूद्वीपो द्वीपः (भारहे वासे) भरतक्षेत्रं (जेणेव माहणकुंडग्गामे नयरे) यत्रैव ब्राह्मणकुण्डग्रामनगरं (जेणेव उसभदत्तस्स माहणस्स गिहे) यत्रैव ऋषभदत्तस्य ब्राह्मणस्य गृहं (जेणेव देवाणंदा माहणी) यत्रैव देवानन्दा ब्राह्मणी (तेणेव

१ वैक्रियनिर्माणयोग्यान् । २ वैक्रियरूपनिर्माणाय ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२७] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [२७]

उवागच्छइ) तत्रैव उपागच्छति (उवागच्छित्ता) उपागत्य च (आलोए) आलोके–दर्शनमात्रे (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (पणामं करेइ) प्रणामं करोति (पणामं करित्ता) प्रणामं कृत्वा च (देवाणंदाए माहणीए) देवानन्दायाः ब्राह्मण्याः (सपरिजणाए) सपरिवारायाः (ओसोवणिं) अवस्वापिनीनिद्रां (दलइ) ददाति (दलित्ता) तां दत्त्वा च (असुभे पुग्गले) अशुचीन् पुद्गलान् अपवित्रानित्यर्थः (अवहरइ) अपहरति–दूरीकरोति (अवहरित्ता) तथा कृत्वा च (सुभे पुग्गले) शुभान् पुद्गलान्, पवित्रपुद्गलानित्यर्थः (पक्खिवइ) प्रक्षिपति, (पक्खिवित्ता) प्रक्षिप्य च (अणुजाणउ मे भयवंतिकट्टु) अनुजानातु–आज्ञां ददातु मह्यं भगवान् इतिकृत्वा–इत्युक्त्वा (समणं भगवं महावीरं) श्रमणं भगवन्तं महावीरं (अव्वाबाहं) व्याबाधारहितं (अव्वाबाहेणं) अव्याबाधेन–सुखेन (दिव्वेणं पहावेणं) दिव्येन प्रभावेण (करयलसंपुडेणं गिण्हइ) करतलसम्पुटे गृह्णाति, न च तेन गृह्यमाणस्यापि गर्भस्य काचित् पीडा स्यात्, यदुक्तं भगवत्यां–[३]'प्रभू णं भंते ! हरिणेगमेसी सक्कदूए इत्थीगब्भं नहसिरंसि वा रोमकूवंसि वा साह-

१ प्रणामक्रियादर्शनेन शक्रस्तवपाठाभ्युपगमकारिणां च्यवनद्वयाभ्युपगमवतां जडिममग्नानामत्रापि शक्रस्तवाभ्युपगमप्रसंगः
२ 'रुहिरकलमलाणि य न हवन्ती'ति वाक्यं तु विशिष्टाशुचिपुद्गलनिषेधख्यापकं, प्रक्षेप्यदिव्यपुद्गलापेक्षया वाऽत्राशुचिपुद्गलाः ।
३ प्रभुः भदन्त ! हरिणैगमेषी शक्रदूतः स्त्रीगर्भं नखशिरसि वा रोमकूपे वा मोक्तं वा निष्कासयितुं वा ?, हन्त प्रभुः, नैव तस्य गर्भस्य आबाधां वा विबाधां वा उत्पादयेत्, छविच्छेदं पुनः कुर्यात् । २ (भग० सू० १८६)

गर्भसंक्रामणं

५

१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [२७]

कल्प.सुबो-ध्या० २

॥ ३४ ॥

रित्तए वा निहरित्तए वा ?, हंता पभू, नो चेव णं तस्स गब्भस्स आबाहं वा विबाहं वा उप्पाएज्जा, छविच्छेअं पुण करिज्जा ' छविच्छेदं-त्वक्छेदनं अकृत्वा गर्भस्य प्रवेशयितुं अशक्यत्वादिति (करयलसंपुडेणं गिण्हित्ता) हस्ततलसम्पुटे गृहीत्वा च (जेणेव खत्तियकुण्डग्गामे नयरे) यत्रैव क्षत्रियकुण्डग्रामनगरं (जेणेव सिद्धत्थस्स खत्तियस्स गिहे) यत्रैव सिद्धार्थस्य क्षत्रियस्य गृहं (जेणेव तिसला खत्तियाणी) यत्रैव त्रिशला क्षत्रियाणी (तेणेव उवागच्छइ) तत्रैव उपागच्छति (तिसलाए खत्तिआणीए) त्रिशलायाः क्षत्रियाण्याः (सपरिअणाए) परिवारसहितायाः (ओसोवणिं) अवस्वापिनीं निद्रां (दलइ) ददाति (दलित्ता) तां दत्त्वा च (असुभे पुग्गले अवहरइ) अशुभान् पुद्गलान् दूरीकरोति (अवहरित्ता) तथा कृत्वा (सुभे पुग्गले पक्खिवइ) शुभान् पुद्गलान् प्रक्षिपति, (पक्खिवित्ता) प्रक्षिप्य च (समणं भगवं महावीरं) श्रमणं भगवन्तं महावीरं (अव्वाबाहं) व्याबाधारहितं (अव्वाबाहेणं) अव्याबाधेन-सुखेन (दिव्वेणं पहावेणं) दिव्येन प्रभावेण (तिसलाए खत्तिआणीए) त्रिशलायाः क्षत्रियाण्याः (कुच्छिंसि गब्भत्ताए) कुक्षौ गर्भतया (साहरइ) मुञ्चति, अत्र गर्भाशयात् गर्भाशये,गर्भाशयात् योनौ,योनेर्गर्भाशये, योनेर्योनौ, इति गर्भसंहरणे चतुर्भङ्गी संभवति, तत्र योनिमार्गेण आदाय गर्भाशये मुञ्चतीत्ययं तृतीयो भङ्गोऽनुज्ञातः शेषाश्च निषिद्धाः श्रीभगवतीसूत्रे (जेऽविअ णं से तिसलाए खत्तिआणीए गब्भे) योऽपि च तस्याः त्रिशलायाः क्षत्रियाण्याः

१ गर्भसंक्रमस्यापि कल्याणकता चेत् जन्ममहादिवत् स्वयं स्यात् कर्त्तव्यमिदं, न नियुक्तैः कारणीयं, २-(भग० २१९ पत्रे सू० १८६)

गर्भपरा-वृत्तिः

१५

२०

॥ ३४ ॥

२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२८] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [२८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

गर्भः पुत्रीरूपः (तंपिअ) गर्भं (देवाणंदाए माहणीए) देवानन्दायाः ब्राह्मण्याः (कुच्छिंसि गब्भत्ताए) (कुक्षि-विषये गर्भतया (साहरइ) मुञ्चति (साहरित्ता) मुक्त्वा च (जामेव दिसिं पाउब्भूए) यस्याः एव दिशः सकाशात् प्रादुर्भूतः–आगतः (तामेव दिसिं पडिगए) तस्यां एव दिशि पश्चाद्गतः स देव इति ॥ (२७) ॥

(ताए उक्किट्ठाए) तया अन्येषां गतिभ्यो मनोहरया (तुरिआए) चित्तौत्सुक्यवत्या (चवलाए) कायचाप-ल्ययुक्तया (चंडाए) अत्यन्ततीव्रया (जयणाए) सकलगतिजेत्र्या (उद्धुआए) ऊर्द्धुतया (सिग्घाए) अत एव शीघ्रया (दिव्वाए) देवयोग्यया (देवगइए) इष्टया देवगत्या (तिरिअमसंखिज्जाणं) तिर्यग् असङ्ख्ये-यानां (दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं) द्वीपसमुद्राणां मध्यंमध्येन–मध्यभागेन भूत्वा (जोयणसयसाहस्सि-एहिं) योजनलक्षप्रमाणाभिः (विग्गहेहिं) वींखाभिः–विग्रहैः–पदन्यासान्तरैः वींखाभिर्गतिभिरित्यर्थः (उप्पयमाणे) ऊर्ध्वं उत्पतन् २ (जेणामेव सोहम्मे कप्पे) यत्र स्थाने सौधर्मे कल्पे (सोहम्मवडिंसए विमाणे) सौधर्मावतंसकविमाने (सक्कंसि सीहासणंसि) शक्रनामनि सिंहासने (सक्के देविंदे देवराया) शक्रो देवेन्द्रः देवराजोऽस्ति (तेणामेव उवागच्छइ) तत्रैव स्थाने उपागच्छति (उवागच्छित्ता) उपागत्य च (सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो) शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य (तमाणत्तिअं खिप्पामेव) तां पूर्वोक्तां आज्ञां शीघ्रमेव (पच्चप्पि-णइ) प्रत्यर्पयति–कृत्वा निवेदयति स देव इति ॥ (२८) ॥

आज्ञाप्रत्यर्पणं सू. २८

५

१०

१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२९] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [२९]

कल्प.सुबो-ध्या० २

॥ ३५ ॥

(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (जे से वासाणं तच्चे मासे) योऽसौ वर्षाणां–वर्षाकालसम्बन्धी तृतीयो मासः (पंचमे पक्खे) पञ्चमः पक्षः, कोऽसौ? इत्याह–(आसोअबहुले) आश्विनमासस्य कृष्णपक्षः (तस्स णं आसोअबहुलस्स) आश्विनकृष्ण-पक्षस्य (तेरसीपक्खेणं) त्रयोदश्याः पक्षः पश्चार्धरात्रिरित्यर्थः, तस्यां (बासीइ राइंदिएहिं विइक्कंतेहिं) द्व्यशीतौ अहोरात्रेषु अतिक्रान्तेषु (तेसीइमस्स राइंदिअस्स) त्र्यशीतितमस्याहोरात्रस्य (अंतरा वट्टमाणस्स) अन्त-रकाले–रात्रिलक्षणे काले वर्त्तमाने (हिआणुकंपएणं) हितेन–स्वस्य इन्द्रस्य च हितकारिणा तथा अनुकम्प-केन–भगवतो भक्तेन, अनुकम्पायाश्च भक्तिवाचित्वं 'आयरिअअणुकंपाए गच्छो अणुकंपिओ महाभागो' इति वचनात्, (हरिणेगमेसिणा देवेणं) इदृशेन हरिणैगमेषिनामकेन देवेन (सक्कवयणसंदिट्ठेणं) शक्रवचन-संदिष्टेन–प्रेषितेन (माहणकुंडग्गामाओ) ब्राह्मणकुण्डग्रामात् (नयराओ) नगरात् (उसभदत्तस्स माह-णस्स) ऋषभदत्तस्य ब्राह्मणस्य (कोडालसगुत्तस्स) कोडालसगोत्रस्य (भारिआए देवाणंदाए माहणीए) भार्यायाः देवानन्दायाः ब्राह्मण्याः (जालंधरसगुत्ताए) जालन्धरसगोत्रायाः (कुच्छिओ) कुक्षितः (खत्ति-

१ मासपक्षादिदर्शनेन कल्याणकताभिसन्धिः सत्यसन्धाशून्यानामेव, कुत्रापि तादृशस्तल्लक्षण्यस्याश्रुतेः; किंच-मेघकुमारादीनां दीक्षादावपि तच्छ्रुतेः, इन्द्रादिमहोत्सवस्तु नात्र गन्धतोऽपि २ हितानुकम्पकदेवकृतत्वेन न कल्याणकताया लेशोऽपि, कल्याणकस्य भक्तिमात्रविहितत्वात् ३ आचार्यभक्त्या महामागो गच्छो भक्तः (ओघ० १२७ भाष्यं)

संहरणका-लादि सू. २९ १५ २० २४ ॥ ३५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२९] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [२९]

अकुंडग्गामे नयरे) क्षत्रियकुण्डग्रामे नगरे (नायाणं खत्तिआणं) ज्ञातजातीयानां क्षत्रियाणां (सिद्धत्थस्स खत्तियस्स) सिद्धार्थस्य क्षत्रियस्य (कासवगुत्तस्स) काश्यपगोत्रस्य (भारिआए तिसलाए खत्तिआणीए) भार्यायास्त्रिशलायाः क्षत्रियाण्याः (वासिट्ठसगुत्ताए) वाशिष्टगोत्रायाः (पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि) मध्यरात्रकालसमये (हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं) उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रे (जोगमुवागएणं) चन्द्रेण सम्बन्धं उपागते (अव्वाबाहं)पीडारहितं यथा स्यात्तथा(अव्वाबाहेणं दिव्वेणं पहावेणं)अव्याबाधेन दिव्यप्रभावेण(कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरिए) कुक्षिविषये गर्भतया संहृतः–मुक्त इत्यर्थः॥ अत्र कवेरुत्प्रेक्षा–'सिद्धार्थपार्थिवकुलासगृहप्रवेशे, मौहूर्त्तमागमयमान इव क्षणं यः। रात्रिंदिवान्युषितवान् भगवान् द्वयशीतिं, विप्रालये स चरमो जिनराट् पुनातु ॥(२९)॥

(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये च (समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (तिन्नाणोवगए आवि हुत्था) त्रिभिर्ज्ञानैः उपगतः–सहितः अभवत्, (साहरिज्जिस्सामित्ति जाणइ) संहरिष्यमाणः–मां इतः संहरिष्यति इति जानाति, (साहरिज्जमाणे नो जाणइ) संह्रियमाणः संहरणसमये न जानाति, (साहरिएमित्ति जाणइ) संहृतोऽस्मीति च जानाति, ननु संह्रियमाणो न जानातीति कथं युक्तं?, संहरणस्य असङ्ख्यसामयिकत्वात् भगवतश्च संहरणकर्तृदेवापेक्षया विशिष्टज्ञानवत्त्वात्, उच्यते, इदं वाक्यं संहरणस्य कौशलज्ञापकं, तथा तेन संहरणं कृतं भगवतः यथा भगवता ज्ञातमपि अज्ञातमिवीभूत् पीडाऽभावात्, यथा कश्चिद्वदति त्वया मम पादात्तथा कण्टक उद्धृतो यथा मया ज्ञात एव नेति, सौख्यातिशये

संहरणदशायां ज्ञानत्रयं सू. ३०

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [३०] गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३१]

कल्प.सुबो-व्या० २ ॥ ३६ ॥

च सर्वेवंविधो व्यपदेशः सिद्धान्तेऽपि दृश्यते, तथाहि—— 'तहिं देवा वंतरिआ, वरतरुणीगीअवाइअरवेणं । निचं सुहिअपसुइआ, गयंपि कालं न याणंति ॥ १ ॥ इत्यादि, तथा च 'साहरिज्जमाणेवि जाणइ' (३९९ सू०) इत्याचाराङ्गोक्तेन विरोधोऽपि न स्यात्, इति मन्तव्यम् ॥ (३०) ॥

(जं रयणिं च णं) यस्यां च रात्रौ (समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (देवाणंदाए माहणीए) देवानन्दायाः ब्राह्मण्याः (जालंधरसगुत्ताए) जालंधरसगोत्रायाः (कुच्छिओ) कुक्षितः (तिसलाए खत्तिआणीए) त्रिशलायाः क्षत्रियाण्याः (वासिट्ठसगुत्ताए) वाशिष्ठगोत्रायाः (कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरिए) कुक्षौ गर्भतया मुक्तः (तं रयणिं च णं) तस्यां एव रात्रौ (सा देवाणंदा माहणी) सा देवानन्दा ब्राह्मणी (सयणिज्जंसि) शय्यायां (सुत्तजागरा) सुप्तजागरा (ओहीरमाणी ओहीरमाणी) अल्पनिद्रां कुर्वती (इमे एयारूवे उराले) इमान् एतद्रूपान् प्रशस्तान् (जाव चउद्दस महासुमिणे) यावत् चतुर्दश महास्वप्नान् (तिसलाए खत्तिआणीए हडे पासित्ता णं पडिबुद्धा) त्रिशलया क्षत्रियाण्या हृता इति दृष्ट्वा जागरिता, (तंजहा) तद्यथा (गयवसह गाहा) 'गयवसह' इति गाथाऽत्र वाच्या ॥ (३१) ॥

(जं रयणिं च णं) यस्यां च रात्रौ (समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (देवाणंदाए माहणीए) देवानन्दायाः ब्राह्मण्याः (जालंधरसगुत्ताए) जालन्धरसगोत्रायाः (कुच्छिओ) कुक्षितः (तिसलाए खत्तिआणीए) त्रिशलायाः क्षत्रियाण्याः (वासिट्ठसगुत्ताए) वाशिष्ठसगोत्रायाः (कुच्छिंसि गब्भ-

स्वप्नापहारः सू. ३१

२०

२५

॥ ३६ ॥

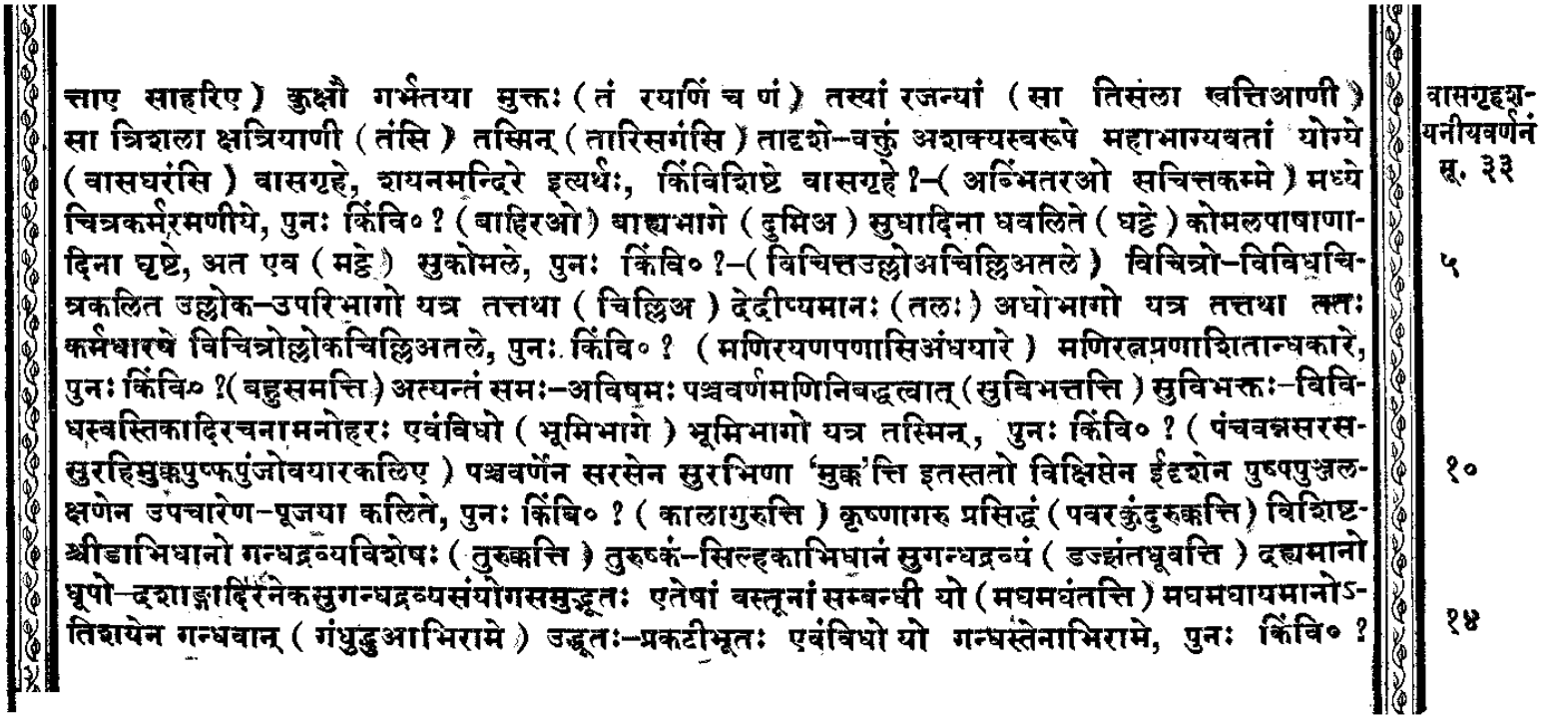
२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३] गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



त्ताए साहरिए) कुक्षौ गर्भतया मुक्तः (तं रयणिं च णं) तस्यां रजन्यां (सा तिसला खत्तिआणी) सा त्रिशला क्षत्रियाणी (तंसि) तस्मिन् (तारिसगंसि) तादृशे-वक्तुं अशक्यस्वरूपे महाभाग्यवतां योग्ये (वासघरंसि) वासगृहे, शयनमन्दिरे इत्यर्थः, किंविशिष्टे वासगृहे ?-(अब्भिंतरओ सचित्तकम्मे) मध्ये चित्रकर्मरमणीये, पुनः किंवि० ? (बाहिरओ) बाह्यभागे (दुमिअ) सुधादिना धवलिते (घट्टे) कोमलपाषाणादिना घृष्टे, अत एव (मट्ठे) सुकोमले, पुनः किंवि० ?-(विचित्तउल्लोअचिल्लिअतले) विचित्रो-विविधचित्रकलित उल्लोक-उपरिभागो यत्र तत्तथा (चिल्लिअ) देदीप्यमानः (तलः) अधोभागो यत्र तत्तथा ततः कर्मधारये विचित्रोल्लोकचिल्लिअतले, पुनः किंवि० ? (मणिरयणपणासिअंधयारे) मणिरत्नप्रणाशितान्धकारे, पुनः किंवि० ?(बहुसमत्ति) अत्यन्तं समः-अविषमः पञ्चवर्णमणिनिबद्धत्वात् (सुविभत्तत्ति) सुविभक्तः-विविधस्वस्तिकादिरचनामनोहरः एवंविधो (भूमिभागे) भूमिभागो यत्र तस्मिन्, पुनः किंवि० ? (पंचवन्नसरससुरहिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिए) पञ्चवर्णेन सरसेन सुरभिणा 'मुक्क'त्ति इतस्ततो विक्षिप्तेन ईदृशेन पुष्पपुञ्जलक्षणेन उपचारेण-पूजया कलिते, पुनः किंवि० ? (कालागुरुत्ति) कृष्णागरु प्रसिद्धं (पवरकुंदुरुक्कत्ति) विशिष्टश्रीडाभिधानो गन्धद्रव्यविशेषः (तुरुक्कत्ति) तुरुष्कं-सिल्हकाभिधानं सुगन्धद्रव्यं (डज्झंतधूवत्ति) दह्यमानो धूपो-दशाङ्गादिरनेकसुगन्धद्रव्यसंयोगसमुद्भूतः एतेषां वस्तूनां सम्बन्धी यो (मघमघंतत्ति) मघमघायमानोऽतिशयेन गन्धवान् (गंधुद्धुआभिरामे) उद्धूतः-प्रकटीभूतः एवंविधो यो गन्धस्तेनाभिरामे, पुनः किंवि० ?

वासगृहवर्णनं सू. ३३ ५ १० १४

कल्प. सू.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३] गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-व्या० २

॥ ३७ ॥

(सुगंधवरगंधिए) सुगन्धाः–सुरभयो ये वरगन्धाः–प्रधानचूर्णानि तेषां गन्धो यत्र तत् तथा तस्मिन्, पुनः किंवि० ? (गंधवट्टिभूए) गन्धवर्तिः–गन्धद्रव्यगुटिका तत्सदृशोऽतिसुगन्धे इत्यर्थः, एतादृशे वासभवने, अथ (तंसि) तस्मिन् (तारिसगंसि) तादृशे–वक्तुं अशक्यस्वरूपे महाभाग्यवतां योग्ये (सयणिज्जंसि) शयनीये, पल्यङ्के इत्यर्थः, इदं विशेष्यं, किंविशिष्टे ?—(सालिंगणवट्टिए) सालिङ्गनवर्त्तिके–आलिङ्गनवर्त्तिका नाम शरीरप्रमाणं दीर्घं गण्डोपधानं तया सहिते, पुनः किंवि० ? (उभओ) उभयतः–शिरोऽन्तपादान्तयोः (बिम्बोअणे) उच्छीर्षके यत्र तत्तथा तस्मिन्, पुनः किंवि० ? (उभओ उन्नए) यत उभयत उच्छीर्षकयुक्ते अत एव उभयत उन्नते, पुनः किंवि० ? (मज्झे णयगंभीरे) तत एव मध्ये नते गम्भीरे च, पुनः किंवि० ? (गंगापुलिणवालुआउद्दालसालिसए) तत्र 'उद्दाल'त्ति उद्दालेन–पादविन्यासे अधोगमनेन गङ्गातटवालुकासदृशे, अयमर्थः—यथा गङ्गापुलिनवालुका पादे मुक्ते अधो व्रजति तथा अतिकोमलत्वात् स पल्यङ्कोऽपीति ज्ञेयं, पुनः किंवि० ?(उवचिअत्ति)परिकर्मितं (खोमिअत्ति) क्षौमं—अतसीमयं (दुगुल्लपट्टत्ति) दुकूलं—वस्त्रं तस्य यः पट्टो–युगलापेक्षया एकपट्टः तेन (पडिच्छन्ने) आच्छादिते, पुनः किंवि० ? (सुविरइअरयत्ताणे) सुष्ठु विरचितं रजस्त्राणं–अपरिभोगावस्थायां आच्छादनं यत्र तस्मिन्, पुनः किंवि० ? (रत्तंसुअसंवुडे) रक्तांशुकेन–मशकगृहाभिधानेन रक्तवस्त्रेणाच्छादिते तथा (सुरम्मे) अतिरमणीये, पुनः किंवि० ? (आइणगरूअबूरनवणीअतूलतुल्लफासे) आजिनकं–परिकर्मितं चर्म रूतं–कर्पासपक्ष्म बूरो–वनस्पतिविशेषः नवनीतं–म्रक्षणं

वासगृहशयनीयवर्णनं सू. ३३

२०

२५

॥ ३७ ॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [३३] गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३५]

॥३२॥

तूलं–अर्कतूलं एभिः तुल्यः–समानः स्पर्शो यस्य स तथा तस्मिन्, एतद्वस्तुवत्कोमले इत्यर्थः, पुनः किंवि० ? (सुगंधवरकुसुमचुन्नसयणोवयारकलिए) सुगन्धवरैः–अतिसुगन्धैः कुसुमैः चूर्णैः–वासादिभिश्च यः शयनोपचारः–शय्यासंस्क्रिया तेन कलिते, कुसुमैः चूर्णैश्च मनोहरे इत्यर्थः, (पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि) मध्यरात्रकालप्रस्तावे (सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी) सुप्तजागरा–अल्पनिद्रां कुर्वती २ (इमे एयारूवे) इमान् एतद्रूपान् (उराले) प्रशस्तान् (जाव चउद्दस महासुमिणे) यावत् चतुर्दश महास्वप्नान् (पासित्ता णं पडिबुद्धा) दृष्ट्वा जागरिता, (तंजहा) तद्यथा—गय १ वसह २ सीह ३ अभिसेअ ४ दाम ५ ससि ६ दिणयरं ७ झयं ८ कुंभं ९। पउमसर १० सागर ११ विमाण–भवण १२ रयणुच्चय १३ सिहिं च १४ ॥१॥ इयं गाथा सुगमा ॥ (तए णं सा तिसला खत्तिआणी) ततः सा त्रिशला क्षत्रियाणी (तप्पढमयाए) तत्प्रथमतया प्रथमं इत्यर्थः इभं स्वप्ने पश्यतीति सम्बन्धः, अत्र प्रथमं इभं पश्यतीति यदुक्तं तत् बहीभिर्जिनजननीभिस्तथादृष्टत्वात् पाठानुक्रममपेक्ष्योक्तं, अन्यथा ऋषभमाता प्रथमं वृषभं वीरमाता च सिंहं ददर्शेति, अथ कीदृशं इभं पश्यति ?–(चउदंतत्ति) चत्वारो दन्ता यस्य स चतुर्दन्तस्तं, क्वचित् 'तओअचउदंत' इति पाठस्तत्र ततौजसो–महाबलवन्तश्चत्वारो दन्ता यस्येति व्याख्येयं, पुनः कीदृशं ?–(उसिअत्ति) उच्छ्रित–उत्तुङ्गस्तथा (गलिअ-

१ एवं पञ्चकल्याणकपाठोऽपि बाहुल्यापेक्षयेति वचस्तु कल्पनोद्भवत्वेन न मानं, यथाऽऽवश्यकादौ स्वप्नदर्शनविषये स्पष्ट उल्लेखः न तथा षट्कल्याणकगन्धोऽपि जिनवल्लभात् प्राक्, प्रत्युत पञ्चाशके श्रीवीरस्यैव परिगणितानि पञ्च कल्याणकानि

गजस्वप्नवर्णनं सू.३३

५

१०

१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** भगवन्त माता-त्रिशालाया: दृष्ट १४ स्वप्नानाम दर्शनं एवं स्वप्नानाम् फ़ल-कथनं

प्रत सूत्रांक [३३] गाथा ॥१॥ दीप अनुक्रम [३५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

विपुलजलहर) गलितो–वर्षणादनन्तरकालभावी, स हि दुग्धवर्णो भवति, एवंविधो यो विपुलजलधरो–महामेघस्तथा (हारनिकरत्ति) मुक्ताहारः (खीरसागरत्ति) दुग्धसमुद्रः (ससंककिरणत्ति) चन्द्रकिरणाः (दगरयत्ति) जलकणाः (रययमहासेलपंडुरं) रजतस्य–रूप्यस्य महाशैलो–महान् पर्वतो वैताढ्यः तद्वत्पाण्डुरः, तत्तश्च उच्छ्रितश्चासौ पूर्वोक्तसर्ववस्तुवत्पाण्डुरश्चेति कर्मधारयः तत्तं, पुनः कीदृशं ?–(समागयत्ति) समागतागन्धलोभेन मिलिताः (महुअरत्ति) मधुकरा–भ्रमरा यत्र तादृशं यत् (सुगंधत्ति) विशिष्टगन्धाधिवासितं (दाणत्ति) मदवारि तेन (वासिअत्ति) सुरभीकृतं (कवोलमूलं) कपोलयोर्मूलं यस्य स तथा तं, तस्य कपोलमूलं दानवासितं अस्ति तद्गन्धेन भ्रमरा अपि तत्र मिलिताः सन्तीति भावः, पुनः कीदृशं ? (देवरायकुंजरवरप्पमाणं) देवराजो–देवेन्द्रस्तस्य कुञ्जरो–हस्ती तद्वत् वरं–शास्त्रोक्तं प्रमाणं–देहमानं यस्य स तथा तं (पिच्छइ) प्रेक्षते-पश्यतीति, इदं क्रियापदं 'इभं' इत्यनेन पूर्वं योजितं, पुनः कीदृशं ? (सजलघणविपुलजलहरगज्जिअगंभीरचारुघोसं) सजलो–जलपूर्णस्तस्य हि ध्वनिर्गम्भीरो भवति एवंविधो यो घनो–निबिडो विपुलजलधरो–महामेघस्तस्य यद्गर्जितं तद्वत् गम्भीरश्चारुः–मनोहरश्च घोषः–शब्दो यस्य स तथा तं, महामेघवत् स गजो गर्जतीति भावः, (इभं) गजं, इदं विशेष्यं, पुनः कीदृशं ? (सुभं) शुभं–प्रशस्यं, पुनः कीदृशं ? (सव्वलक्खणकयंबिअं) सर्वलक्षणानां कदम्बः–समूहस्तज्ज्ञातं यस्य स तथा तं, पुनः कीदृशं ? (वरोरुं) वरः–प्रधानः उरुः–विशालश्च, एवंविधं हस्तिवरं प्रथमे स्वप्ने त्रिशला पश्यतीति १ ॥ (३३) ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [३४] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [३६]

(तओ पुणो) ततः पुनः–गजदर्शनानन्तरं वृषभं पश्यतीति सम्बन्धः, अथ किंविशिष्टं वृषभं ? (धवल- कमलपत्तत्ति) धवलानां–उज्ज्वलानां कमलानां यानि पत्राणि तेषां (पयरत्ति) प्रकरः–समूहस्तस्मात् (अइरेगत्ति) अतिरेका–अधिकतरा (रूवप्पभं) रूपप्रभा—रूपकान्तिर्यस्य स तथा तं, पुनः किंवि० ? (पहासमुदओवहारे- हिं) प्रभा–कान्तिस्तस्याः समुदयः–समूहस्तस्य उपहारा–विस्तारणानि तैः (सव्वओ) सर्वतो–दशापि दिशः (चेव) निश्चयेन (दीवयंतं) दीपयन्तं–शोभयन्तं, पुनः किंवि० ? (अइसिरिभरत्ति) अतिशयितः श्रीभरः–शो- भासमूहस्तेन कृता या (पिल्लणा) प्रेरणा, उत्प्रेक्ष्यते तयैव (विसप्पंतत्ति) विसर्पत्–उल्लसत् अत एव (कंतत्ति) कान्तं–दीप्तिमत् तत एव (सोहंतत्ति) शोभमानं (चारु) मनोहरं (ककुहं) ककुदं–स्कन्धो यस्य स तथा तं, अयमर्थः–यद्यपि स्कन्ध उन्नतत्वात् स्वयमेव उल्लसति तथापि अतिश्रीभरप्रेरणयैव उल्लसतीत्युत्प्रेक्ष्यते, पुनः किंवि० ? (तणुसुद्धसुकुमालत्ति) तनूनि–सूक्ष्माणि शुद्धानि–निर्मलानि सुकुमालानि ईदृशानि यानि (लोमत्ति) रोमाणि तेषां (णिद्धछविं) स्निग्धा–सस्नेहा न तु रूक्षा छविः–कान्तिर्यस्य स तथा तं, पुनः किंवि० ? (थिर- सुबद्धत्ति) स्थिरं–दृढं अत एव सुबद्धं (मंसलोवचिअ) मांसयुक्तं अत एव 'उवचिय'त्ति पुष्टं (लट्ठत्ति) लष्टं–प्रधानं (सुविभत्तत्ति) सुविभक्तं–यथास्थानस्थितसर्वावयवं, ईदृशं (सुंदरगं) सुन्दरं अङ्गं यस्य स तथा तं, (पिच्छइ) सा त्रिशला प्रेक्षते इदं क्रियापदं, पुनः किंवि० ? (घणवट्टत्ति) घने–निचिते वृत्ते–वर्तुले (लट्ठउक्किट्ठत्ति) लष्टात्- प्रधानादपि उत्कृष्टे अतिप्रधाने इत्यर्थः (तुप्पग्गत्ति) सूक्ष्मताग्रे (तिक्खसिंगं) तीक्ष्णे ईदृशे शृङ्गे यस्य स तथा

वृषभस्वप्न-वर्णनं सू. ३४

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [३५] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [३७]

तं, पुनः किंवि० ? (दंतं) दान्तं–अक्रूरं (सिवं) उपद्रवहरं, पुनः किंवि० ? (समाणसोहंतसुद्धदंतं) समानाः-तुल्यप्रमाणाः अत एव शोभमानाः श्वेता निर्दोषा वा दन्ता यस्य स तथा तं, पुनः किंवि० ? (अमिअगुणमंगलमुहं) अमिता गुणा येभ्य एवंविधानि यानि मङ्गलानि तेषां मुखं–द्वारं आगमनकारणमित्यर्थः २ ॥ (३४) ॥

(तओ पुणो) ततः पुनर्वृषभदर्शनानन्तरं सा त्रिशला सिंहं पश्यति, अथ किंविशिष्टं सिंहं ?–(हारनिकरखीरसागरससंककिरणदगरयरययमहासेलपंडुरतरं) हारनिकरक्षीरसागरशशाङ्ककिरणोत्करजोरजतमहाशैलाः—पूर्वं व्याख्यातास्तद्वत्पाण्डुरं—उज्ज्वलं, पुनः किंवि० ? (रमणिज्जपिच्छणिज्जं) रमणीयं—मनोहरं अत एव प्रेक्षणीयं—द्रष्टुं योग्यं, पुनः किंवि० ? (थिरलट्ठत्ति) स्थिरौ–दृढौ– अत एव लष्टौ–प्रधानौ (पउट्ठत्ति) प्रकोष्ठौ–कलाचिके 'पउंचा' इति लोकप्रसिद्धौ हस्तावयवौ यस्य स तथा तं, पुनः किंवि० ? (वट्टत्ति) वृत्ताः–वर्तुलाः (पीवरत्ति) पीवराः–पुष्टाः (सुसिलिट्ठत्ति) सुश्लिष्टा–अन्योऽन्यं अन्तररहिताः अत एव (विसिट्ठत्ति) विशिष्टाः–प्रधानाः (तिक्खत्ति) तीक्ष्णा एवंविधा याः (दाढा) दंष्ट्रास्ताभिः (विडंबिअमुहं) विडम्बितं, कोऽर्थः ?–अलङ्कृतं, मुखं यस्य स तथा तं, ततो विशेषणकर्मधारयः, पुनः किंवि० ? (परिकम्मिअत्ति) परिकर्मितावित्र परिकर्मितौ (जच्चकमलकोमलत्ति) जात्यं–उत्तमजातिसम्भवं यत्कमलं तद्वत् कोमलौ, तथा (पमाणसोभंतत्ति) यथोक्तमानेन शोभमानौ तथा (लट्ठउट्ठं) लष्टौ–प्रधानौ एवंविधौ ओष्ठौ यस्य स तथा तं, पुनः किंवि० ? (रत्तुप्पलपत्तत्ति) रक्तोत्पलं–रक्तकमलं तस्य यत् पत्रं तद्वत् (मउअसुकुमालतालुत्ति) मृदुसुकुमालं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [३५] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [३७]

तालु, तथा (निल्लालिअग्गजीहं) निर्लालिता—लपलपायमाना अग्र्या–प्रधाना जिह्वा यस्य, कोऽर्थः ?–उक्त-स्वरूपं तालु उक्तरूपा जिह्वा च विद्यते यस्य स तथा तं, पुनः किंवि० ? (मूसागयपवरकणगताविअआवत्ता-यंतवट्टत्ति) मूषा–मृन्मयभाजनं यत्र सुवर्णकारेण सुवर्णं प्रक्षिप्य गाल्यते, तस्यां स्थितं तापितं आवर्त्तायमा-नं–प्रदक्षिणं भ्रमत् एवंविधं यत् प्रवरकनकं तद्वत् वृत्ते (तडिविमलसरिसनयणं) विमला या तडित्–विद्युत् तत्सदृशे नयने—लोचने यस्य स तथा तं, पुनः किंविशिष्टं ? (विसालपीवरवरोरुं) विशालौ–विस्तीर्णौ पीव-रौ–पुष्टौ वरौ–प्रधानौ उरू यस्य स तथा तं, पुनः किंवि० ? (पडिपुन्नविमलखंधं) प्रतिपूर्णः–अन्यूनः विमलश्च स्कन्धो यस्य स तथा तं, पुनः किंवि० ? (मिउविसयत्ति) मृदूनि–सुकुमाराणि विशदानि–धवलानि (सुहुमत्ति) सूक्ष्माणि (लक्खणपसत्थत्ति) प्रशस्तलक्षणानि (विच्छिण्णत्ति) विस्तीर्णानि–दीर्घाणि (केसराडोवसोहिअं) केसराणि–स्कन्धसम्बधिरोमाणि तेषां आटोप–उद्भूतत्वं तेन शोभितं, पुनः किंवि० ? (उसिअसुनिम्मिअसु-जायत्ति) उच्छ्रितं–उन्नतं सुनिर्मितं–कुण्डलीकृतं सुजातं–सशोभं यथा स्यात्तथा (अप्फोडिअलंगूलं) आस्फो-टितं लाङ्गूलं–पुच्छं येन स तथा तं, तेन पूर्वं लाङ्गूलं आस्फोट्य पश्चात् कुण्डलीकृतमिति भावः, पुनः किंवि० ? (सोमं) सौम्यं–मनसा अक्रूरं (सोमागारं) सौम्याकारं–सुन्दराकृतिमित्यर्थः, पुनः किंवि० ? (लीलायंतं) सविलासगतिं, पुनः किंवि० ? (नहयलाओ उवयमाणं) आकाशतलात् अवपतन्तं–अधस्तादुत्तरन्तं, ततश्च (नियगवयणमइवयंतं) निजकवदनमनुप्रविशन्तं (पिच्छइ सा) प्रेक्षते सा त्रिशला, पुनः किंवि० ? (गाढतिक्खग्ग-

सिंहस्वप्नव-र्णनं सू.३५

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [३६] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [३८]

कल्प.सुबो-ध्या० २

॥ ४० ॥

नहं) गाढं–अत्यन्तं तीक्ष्णानि अग्राणि येषां एवंविधा नखा यस्य स तथा तं (सीहं) केसरिणं इति विशेष्यं, पुनः किंवि० ? (वयणसिरित्ति) वदनस्य श्रीः–शोभा तदर्थं (पल्हवपत्तत्ति) पल्हववत् प्रसारिता (चारुजीहं) मनोहरा जिह्वा येन स तथा तं ३ ॥ (३५) ॥

(तओ पुणो) ततः पुनः–सिंहदर्शनानन्तरं (पुन्नचंदवयणा) पूर्णचन्द्रवदना त्रिशला भगवतीं श्रियं–श्रीदेवतां पश्यतीति योजना, अथ किंविशिष्टां तां ? (उच्चागयठाणलट्ठसंठिअं) उच्चो योऽगः–पर्वतो हिमवान् तत्र जातं उच्चागजं एवंविधं लष्टं–प्रधानं यत् स्थानं–कमललक्षणं तत्र संस्थितां, तच्चैवं–एकशतयोजनो१००च्चो द्वादशकलाधिकद्विपञ्चाशद्योजनोत्तरयोजनसहस्र १०५२$\frac{१२}{१९}$ पृथुलः स्वर्णमयो हिमवन्नामा पर्वतः, तदुपरि च दशयोजनावगाढः पञ्चशतयोजनपृथुलः सहस्र१०००योजनदीर्घो वज्रमयतलभागः पद्महृदनामा ह्रदः, तस्य मध्यभागे जलात् क्रोशद्वयोच्चं एकयोजनपृथुलं एकयोजनदीर्घं नीलरत्नमयदशयोजननालं वज्रमयमूलं रिष्टरत्नमयकन्दं रक्तकनकमयबाह्यपत्रं कनकमयमध्यपत्रं एवंविधं एकं कमलं, तस्मिन् कमले च क्रोशद्वयपृथुला क्रोशद्वयदीर्घा एकक्रोशोच्चा रक्तसुवर्णमयकेसराविराजिता एवंविधा कनकमयी कर्णिका, तस्या मध्ये च अर्धक्रोशपृथुलं एकक्रोशदीर्घं किंचिदूनैकक्रोशोच्चं श्रीदेवीभवनं, तस्य च त्रीणि द्वाराणि पञ्चशतधनुरुच्चानि तदर्धमानपृथुलानि पूर्वदक्षिणोत्तरदिक्स्थितानि, अथ तस्य भवनस्य मध्यभागे सार्धशतद्वयधनुर्मिता रत्नमयी वेदिका, तदुपरि च श्रीदेवीयोग्या शय्या, अथ तस्मान्मुख्यकमलात्परितश्च श्रीदेव्या आभरणभृतानि वलया-

लक्ष्म्यभिषेकवर्णनं सू. ३६

२०

२५

॥ ४० ॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३६] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [३८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कराणि पूर्वोक्तमानादर्धमानोच्चत्वदीर्घत्वपृथुत्वानि अष्टोत्तरशतकमलानि, एवं सर्वेष्वपि वलयेषु क्रमेणार्धार्ध-मानत्वं ज्ञेयं, इति प्रथमं वलयम् , द्वितीयवलये वायव्येशानोत्तरदिक्षु चतुःसहस्रसामानिकदेवानां चतुःसहस्री कमलानां, पूर्वदिशि चत्वारि महत्तराकमलानि, आग्नेय्यां गुरुस्थानीयाभ्यन्तरपर्षद्देवानां अष्टसहस्रकमलानि, दक्षिणदिशि मित्रस्थानीयमध्यमपर्षद्देवानां दशसहस्रकमलानि, नैर्ऋत्यां किङ्करस्थानीयबाह्यपर्षद्देवानां द्वाद-शसहस्रकमलानि, पश्चिमायां च हस्ति १ तुरङ्गम २ रथ ३ पदाति ४ महिष ५ गन्धर्व ६ नाट्य ७ रूपससकट-कनायकानां सप्त कमलानि, इति द्वितीयं वलयम्, ततस्तृतीये वलये तावतां अङ्गरक्षकदेवानां षोडशसहस्र-कमलानि, इति तृतीयम् वलयं, अथ चतुर्थे वलये अभ्यन्तराभियोगिकदेवानां द्वात्रिंशल्लक्षकमलानि, पञ्चमे वलये मध्यमाभियोगिकदेवानां चत्वारिंशल्लक्षकमलानि, षष्ठे वलये बाह्याभियोगिकदेवानां अष्टचत्वारिंशल्ल-क्षकमलानि, सर्वसंख्यया च मूलकमलेन सह एका कोटिर्विंशतिर्लक्षाः पञ्चाशत् सहस्राः शतमेकं विंशतिश्च १२०५०१२० कमलानामिति। अथ एवंविधं यत्कमललक्षणं स्थानं तत्र स्थितां, पुनः किंवि० ? (पसत्थरूवं) प्रशस्तरूपां—मनोहररूपां इत्यर्थः, पुनः किंवि० ? (सुपइट्ठिअत्ति) सुप्रतिष्ठितौ—सम्यक्तया स्थापितौ यौ (कण-गमयकुम्मत्ति) कनकमयकच्छपौ तयोः (सरिसोवमाणचलणं) सदृशं—युक्तं उपमानं ययोः एवंविधौ चरणौ यस्याः सा तथा तां, पुनः किंवि० ? (अच्चुन्नयत्ति) अत्युन्नतं तथा (पीणत्ति) पीनं—पुष्टं यत् अङ्गुष्ठादि अङ्गं तत्र स्थिताः (रइअ) रञ्जिता इव, अयमर्थः—श्रीदेव्याः स्वयमेव नखास्तथा रक्ताः सन्ति यथा उत्प्रेक्ष्यन्ते

वलयपरिवारवर्णनं सू. ३६

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [३६] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [३८]

कल्प.सुबो-ध्या० २ ॥ ४१ ॥

लाक्षादिना रञ्जिता इव (मंसलउवचिअत्ति) मांसयुक्ताः तत एव उपचिताः—पुष्टाः (तणुतंबणिद्धनहं) तनवः-सूक्ष्माः न तु स्थूलाः ताम्राः—अरुणाः स्निग्धाः—अरूक्षा नखा यस्याः सा तथा तां, पुनः किंवि० ? (कमल-पलाससुकुमालकरचरणं) कमलस्य पलाशानि–पत्राणि तद्वत् सुकुमालं करचरणं यस्याः सा तथा तां (कोम-लवरंगुलिं) कोमला अत एव वराः—श्रेष्ठाः अङ्गुलयो यस्याः सा तथा तां, ततो विशेषणसमासः, पुनः किंवि० ? (कुरुविंदावत्तत्ति) कुरुविन्दावर्तं–आवर्त्तविशेष आभरणविशेषो वा तेन शोभिते (वट्टाणुपुव्वत्ति) वृत्तानुपूर्वे, कोऽर्थः—पूर्वं बहुस्थूले ततः स्तोकं स्तोकं स्थूले करिकरवत् (जंघं) ईदृशे जङ्घे यस्याः सा तथा तां, पुनः किंवि० ? (निगूढजाणुं) निगूढे–गुप्ते जानुनी यस्याः सा तथा तां, पुनः किंवि० ? (गयवरकरसरिसपीवरोरुं) गजवरो-गजेन्द्रस्तस्य करः–शुण्डा तत्सदृशे पीवरे–पुष्टे उरू यस्याः सा तथा तां, उरुशब्देन लोके 'साथल' इत्युच्यते, पुनः किंवि० ? (चामीकररइअमेहलाजुत्तं) सुवर्णरचिता–सुवर्णमयी इत्यर्थः एवंविधा या मेखला तया युक्तं, अत एव (कंतविच्छिन्नसोणिचक्कं) मनोहरं विस्तीर्णं श्रोणिचक्रं–कटितटं यस्याः सा तथा तां, पुनः किंवि० ? (जच्चंजणत्ति) जात्याञ्जनं–मर्दितं तैलादिना अञ्जनं (भमरजलयपयरत्ति) भ्रमराणां–प्रसिद्धानां जलदानां च-मेघानां यः प्रकरः–समूहः तत्समानवर्णतया जात्याञ्जनभ्रमरजलदप्रकर इव (उज्जुअसमसंहिअत्ति) ऋजुका–प्रध्वरा अत एव समा–अविषमा संहिता–निरन्तरा (तणुअआइज्जलडहत्ति) तनुका–सूक्ष्मा आदेया–सुभगा, लटभा–विलासमनोहरा (सुकुमालमउअत्ति) सुकुमालेभ्यः–शिरीषपुष्पादिवस्तुभ्योऽपि मृदुका तत एव (रम-

श्रीदेवीव-र्णनं सू. ३६

२०

२५

॥ ४१ ॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [३६] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [३८]

णिज्जरोमराइं) रमणीया रोमराजिर्यस्याः सा तथा तां, पुनः किंवि ? (नाभिमंडलसुंदरविसालपसत्थजघणं) नाभिमण्डलेन सुन्दरं विशालं–विस्तीर्णं प्रशस्तं–लक्षणोपेतं एवंविधं जघनं–अग्रेतनकट्यधोभागो यस्याः सा तथा तां, पुनः किंवि० ? (करयलमाइअत्ति) करतलमेयो–मुष्टिग्राह्य इत्यर्थः (पसत्थतिवलिअत्ति) प्रशस्ता त्रिवलिः-तिस्रो वल्यो रेखा यत्रैवंविधो (मज्झं) मध्यभाग–उदरलक्षणो यस्याः सा तथा तां, पुनः किंवि० ? (नाणामणि-कणगरयणत्ति) नानाजातीया मणयः–चन्द्रकान्तप्रभृतयः, कनकं–पीतवर्णं सुवर्णं, रत्नानि–वैडूर्यप्रभृतीनि (विम-लमहातवणिज्जत्ति) विमलं–निर्मलं, महत्–महाजातीयं, एवंविधं तपनीयं–रक्तवर्णं सुवर्णं, एतत्सम्बन्धीनि यानि (आभरणभूसणत्ति) आभरणानि–अङ्गपरिधेयानि, ग्रैवेयककङ्कणादीनि, भूषणानि–उपाङ्गपरिधेयानि मुद्रिका-दीनि तैः (विराइअमंगुवंगिं) विराजितानि अङ्गानि–शिरःप्रभृतीनि उपाङ्गानि–अङ्गुल्यादीनि, यस्याः सा तथा तां, कोऽर्थः–आभरणैः श्रीदेव्या अङ्गानि भूषितानि सन्ति भूषणैश्च उपाङ्गानीति, पुनः किंवि० ?(हारविरायंतत्ति)हा-रेण–मौक्तिकादिमालया विराजत्–शोभमानं (कुंदमालपरिणद्धत्ति) कुन्दादिपुष्पमालया परिणद्धं–व्याप्तं (जल-जलिंतत्ति) जाज्वल्यमानं–देदीप्यमानं एवंविधं यत् (थणजुअलविमलकलसं) स्तनयुगलं, तदेव सदृशाकारतया विमलौ कलशौ यस्याः सा तथा तां, अनेन च अभेदरूपकालंकारेण कनककलशवत् पीनौ–कठिनौ वृत्तौ श्रीदेव्याः स्तनौ वर्त्तेते इत्यर्थः सूचितः, पुनः किंवि० ?(आइअपत्तिअत्ति) आयुक्ताभिः–यथास्थानस्थापिताभिः, पत्रिकाभिः–मरकतपत्रैः ' पानां ' इतिलोकप्रसिद्धैः (विभूसिएणं) विभूषितेन–अलङ्कृतेन (सुभगजालुज्ज-

श्रीदेवीव-र्णनं सू.३६

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [३६] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [३८]

लेणं) सुभगानि-दृष्टिसुखकराणि यानि जालानि-मुक्तागुच्छानि तैः उज्ज्वलेन, एवंविधेन (मुत्ताकलावएणं) मुक्ताकलापकेन-मौक्तिकहारेण शोभितां, अत्र शोभितां इतिपदं सूत्रे अनुक्तं अपि अध्याहार्यं, एवं अग्रे विशेषणद्वयेऽपि, पुनः किंवि० ? (उरत्थदीणारमालविरइएणं) उरःस्थया-हृदयस्थितया, दीनारमालया-सौवर्णिकमालया विराजितेन (कंठमणिसुत्तएणं) कण्ठमणिसूत्रकेन च-कण्ठस्थरत्नमयद्वरकेण, शोभितां इति पूर्ववत्, पुनः किंवि० ? (कुंडलजुअलुल्लसंतअंसोवसत्तसोभंतसप्पभेणं) तत्र ईदृशेन शोभागुणसमुदयेन-कान्तिगुणप्राग्भारेण शोभितां इति योजना, अथ कीदृशेन शोभागुणसमुदयेन ?, अत्र ' अंसोवसत्त ' इतिपदं प्राक् योज्यं ततः ' अंसोवसत्त'त्ति अंसयोः-स्कन्धयोः, उपसक्तं-लग्नं, यत् कुण्डलयोर्युगलं तस्य ' उल्लसंत'त्ति-उल्लसन्ती ' सोभंत 'त्ति-शोभमाना अत एव ' स'त्ति सती-समीचीना ' पभ 'त्ति प्रभा-कान्तिर्यस्मिन् एवंविधेन (सोभागुणसमुदएणं) शोभागुणसमुदयेन, पुनः कीदृशेन शो० ? (आणणकुडुंबिएणं) आननस्य-मुखस्य कौटुम्बिकेनेव, यथा राजा कौटुम्बिकैः-सेवकैः शोभते एवं श्रीदेव्या आननं तेन शोभागुणसमुदयेनेति भावः, अत्र 'उल्लसंत'त्ति 'सोभन्ते'त्यादीनि शोभागुणसमुदयस्य विशेषणानि 'अंसोवसत्ते'ति च कुण्डलयुगलविशेषणं, ननु तर्हि प्रभागुणसमुदयविशेषणयोर्मध्ये कुण्डलयुगलविशेषणं कथं न्यस्तं ? तथा 'अंसोवसत्ते' त्यस्य कुण्डलयुगलात् परनिपातश्च कथं ? अंसोवसत्तकुंडलजुयलुल्लसंतेति पाठः कथं न कृत इति चेद्, उच्यते, प्राकृतत्वात् अन्यविशेषणमध्येऽप्यन्यविशेषणावतारो विशेषणस्य परनिपातश्च भवति, एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३६] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [३८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प. सू. ८

सर्वत्र विशेषणपरनिपाते हेतुर्ज्ञेयः, पुनः किंविशिष्टां श्रीदेवतां ?-(कमलामलविसालरमणिज्जलोअणिं) कमलवत् अमले-निर्मले विशाले-विस्तीर्णे रमणीये-मनोहरे च लोचने यस्याः सा तथा तां, पुनः किंवि० ?-(कमलपज्जलंतकरगहिअत्ति) तत्र पूर्ववत् प्राकृतत्वात् विशेषणस्य परनिपातः, ततः प्रज्वलन्तौ-देदीप्यमानौ यौ करौ-हस्तौ ताभ्यां गृहीते ये कमले ताभ्यां (मुक्कतोयं) मुक्तं-क्षरत् तोयं-मकरन्दरूपं जलं यस्याः सा तथा तां, अयमर्थः-श्रीदेव्या तावद् द्वयोः करयोः प्रत्येकं कमलं गृहीतमस्ति, तस्माच्च मकरन्दबिन्दवः श्रवन्तीति, पुनः किंवि० ?-(लीलावायत्ति) लीलया न तु प्रस्वेदापनोदाय प्रस्वेदस्य दिव्यशरीरेष्वभावात्, लीलया वायत्ति-वातोदीरणार्थं (कयपक्खएणं) कृन्तः-अवधूतो यः पक्षकः-तालवृन्तं तेन शोभितां, अत्रापि शोभितां इति पदं अध्याहार्यं, पुनः किंवि० ?-(सुविसदत्ति) सुविशदः-सुविविक्तो न पुनर्जटाजूटवत् परस्परसंलग्नः (कसिणत्ति) कृष्णः-श्यामवर्णः (घणत्ति) घनः-अविरलो न तु मध्ये मध्ये रिक्तः (सण्हत्ति) सूक्ष्मो न तु शूकररोमवत्स्थूलः (लंबंतत्ति) लम्बमानः (केसहत्थं) केशहस्तो-वेणिर्यस्याः सा तथा तां, पुनः किंवि० ?-(पउमद्दहकमलवासिणिं) पद्मद्रहस्थ यत्कमलं पूर्वोक्तस्वरूपं तत्र निवसन्तीं (सिरिं) श्रियं-श्रीदेवतां, इदं विशेष्यं, पुनः किंवि० ?-(भगवइं) भगवतीं-ऐश्वर्यादियुतां (पिच्छइ) प्रेक्षते इदं क्रियापदं, पुनः किंवि० ?-(हिमवंतसेलसिहरे) हिमवन्नामा पर्वतस्तस्य शिखरे

४ श्रीदेव्य-भिषेकः सू. ३६

५

१०

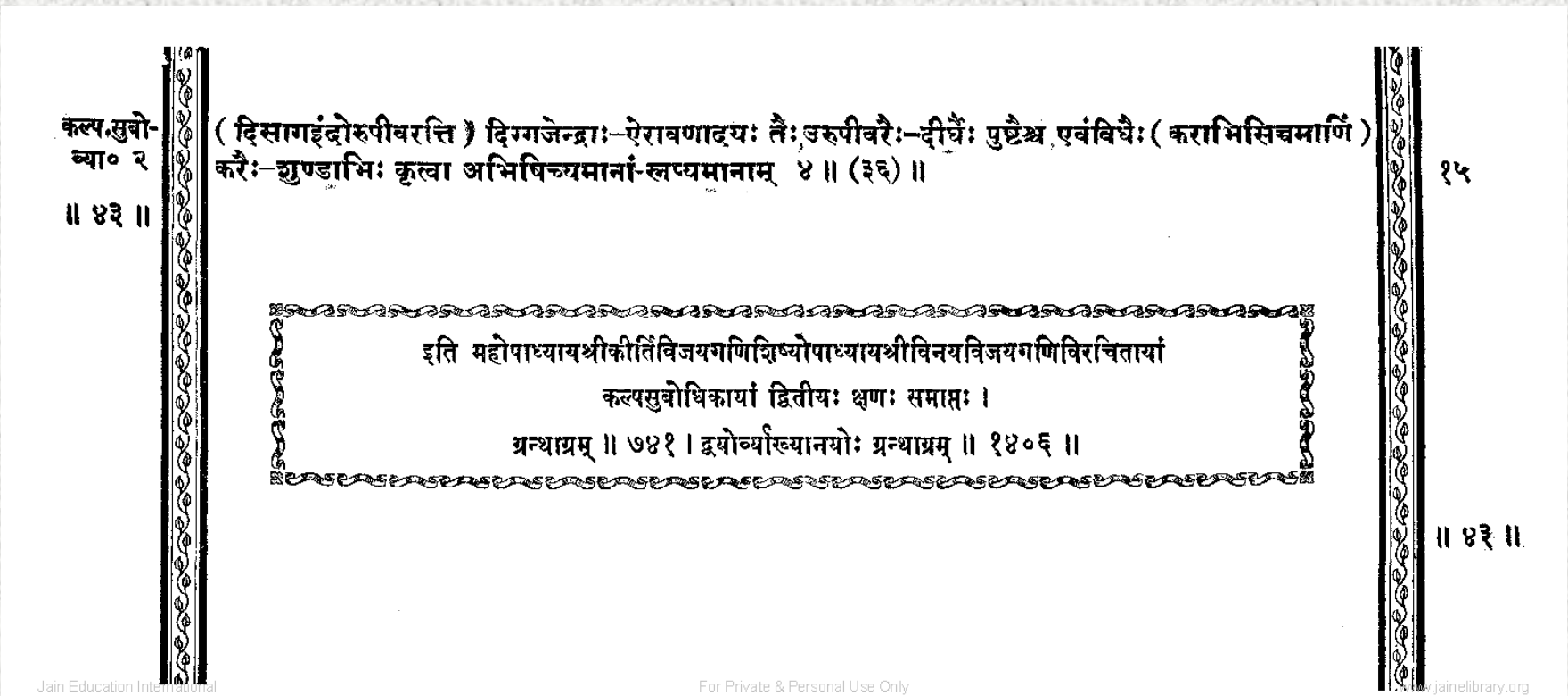
१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [३६] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [३८]



कल्प.सुबो-ध्या० २ ॥ ४३ ॥

(दिसागइंदोरुपीवरत्ति) दिग्गजेन्द्राः–ऐरावणादयः तैः उरुपीवरैः–दीर्घैः पुष्टैश्च एवंविधैः (कराभिसिच्चमाणिं) करैः–शुण्डाभिः कृत्वा अभिषिच्यमानां-स्नप्यमानाम् ४ ॥ (३६) ॥

१५

इति महोपाध्यायश्रीकीर्तिविजयगणिशिष्योपाध्यायश्रीविनयविजयगणिविरचितायां कल्पसुबोधिकायां द्वितीयः क्षणः समाप्तः ।

ग्रन्थाग्रम् ॥ ७४१ । द्वयोर्व्याख्यानयोः ग्रन्थाग्रम् ॥ १४०६ ॥

॥ ४३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीयं व्याख्यानं समाप्तं

प्रत सूत्रांक [३७] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [३९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

॥ अथ तृतीयं व्याख्यानं प्रारभ्यते ॥

५ पुष्पदाम सू. ३७

(तओ पुणो) ततः पुनर्नभस्तलादवपतद् दाम–पुष्पमाल्यं त्रिशला पञ्चमे स्वप्ने पश्यति इति योजना, अथ किंविशिष्टं पुष्पदाम ?–(सरसत्ति) सरसानि–सद्यस्कानि(कुसुमत्ति) कुसुमानि–पुष्पाणि येषु एवंविधानि यानि (मंदारदामत्ति) मन्दारदामानि–कल्पवृक्षमाल्यानि तैः (रमणिज्जभूअं) रमणीयभूतं–अतिमनोहरमित्यर्थः, पुनः किंवि० ?–(चंपगासोगत्ति) चम्पकः प्रतीतः, अशोकोऽपि प्रतीतः, तथा (पुन्नागनागपियंगुसिरिसत्ति) पुन्नाग-नागप्रियङ्गुशिरीषाः वृक्षविशेषाः तथा (मुग्गरत्ति) मुद्गरः प्रतीतः(मल्लिआजाइजूहिअत्ति)मल्लिकाजातियूथिका-वल्लीविशेषाः प्रतीताः (अंकोल्लत्ति) अङ्कोल्लः प्रतीतः (कोज्जकोरिंटत्ति) कोज्जकोरण्टौ अपि वृक्षविशेषौ (पत्तद-मणयत्ति) दमनकपत्राणि तथा(नवमालिअत्ति)नवमालिका लताविशेषः(बउलत्ति) बउलसिरी इति नामा बकु-लवृक्षविशेषः (तिलयत्ति) तिलकनामा वृक्षविशेषः (वासंतिअत्ति) वासन्तिकाऽपि लताविशेषः (पउम्मुप्पलत्ति) पद्मानि–सूर्यविकाशिकमलानि, उत्पलानि–चन्द्रविकाशिकमलानि (पाडलकुंदाइमुत्तत्ति) पाटलकुन्दादिमुक्ताः वृक्षविशेषाः (सहकारत्ति) सहकारः प्रतीतः, एतेषां चम्पकाशोकादीनां सहकारान्तानां कुसुमानां–पुष्पाणां (सुरभिगंधिं) सुरभिः–घ्राणतर्पणो गन्धो यत्र तत्तथा, पुनः किंवि० ?–(अणुवममणोहरेणं गंधेणं) अनुपमो-

५ १० १२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीयं व्याख्यानं आरभ्यते

*** भगवन्त महावीरस्य च्यवन-अवसरे माता-त्रिशालायाः दृष्टः १४ स्वप्नानाम् वर्णनं वर्तते

प्रत सूत्रांक [३७] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [३९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

य उपमानरहितः अद्वितीय इतियावत् मनोहरश्च-चित्ताह्लादकः एवंविधेन गन्धेन (दस दिसाओवि वास-यंतं) दशापि दिशः वासयत्-सुरभीकुर्वत्, पुनः किंवि० ?-(सव्वोउअसुरभिकुसुममल्लधवलत्ति) सर्वर्तुकं यत् सुरभि-सुगन्धं पुष्पमाल्यं तेन धवलं, अयमर्थः-षण्णां अपि ऋतूनां सम्बन्धिन्यः पुष्पमालास्तत्र दामनि वर्त्तन्ते इति, तथा (विलसंतत्ति) दीप्यमाना अत एव (कंतत्ति) कान्ता-मनोहरा ये (बहुवन्नभत्तिचित्तं) बहवो वर्णा-रक्तपीतादयस्तेषां 'भत्ति'त्ति-रचना तया चित्रं-आश्चर्यकारि अथवा चित्रयुक्तं इव, ततश्च विशेषणद्व-यस्य कर्मधारयः कर्त्तव्यः, अनेन च विशेषणेन तत्र पुष्पदामनि भूयान् धवल एव वर्णो वर्त्तते स्तोकस्तोकाश्च अन्येऽपि वर्णा वर्त्तन्ते इत्यर्थः सूचितः, पुनः किंवि० ?-(छप्पयमहुअरिभमरगणगुमगुमायंतनिलिंतगुंजंतदेस-भागं) अत्रापि विशेषणस्य परनिपातो गुमगुमायमानो-मधुरं शब्दं कुर्वन् अन्यस्थानात् आगत्य तत्र दामनि लयं प्राप्नुवन्-अव्यक्तं शब्दविशेषं कुर्वन् एवंविधो यः षट्पद१मधुकरी२भ्रमरा३णां-भ्रमरजातिविशेषाणां यो गणः-समूहः स देशभागेषु-शिखाग्रभागपार्श्वद्वयाऽधोभागादिकेषु देशभागेषु यत्र तत्तथा, कोऽर्थः ?-तद्दाम सौरभ्यातिशयात् सर्वभागेषु भ्रमरैः सेवितमस्तीति भावः, अत्र षट्पदमधुकरीभ्रमराणां च वर्णादि-भिर्भेदो ज्ञेयः (दामं) पुष्पदाम, इदं विशेष्यं (पिच्छइ) प्रेक्षते इति क्रियापदं, पुनः किंवि० ?-(नभंगण-तणलाओ) नभोऽङ्गणतलात् (उवयंतं) अवपतत्-उत्तरत् ५ ॥ (३७) ॥

(ससिं च) ततः पुनः सा त्रिशलादेवी षष्ठे स्वप्ने शशिनं पश्यति, अथ कीदृशं ?-(गोखीरफेणदगरयर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [३८] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [४०]

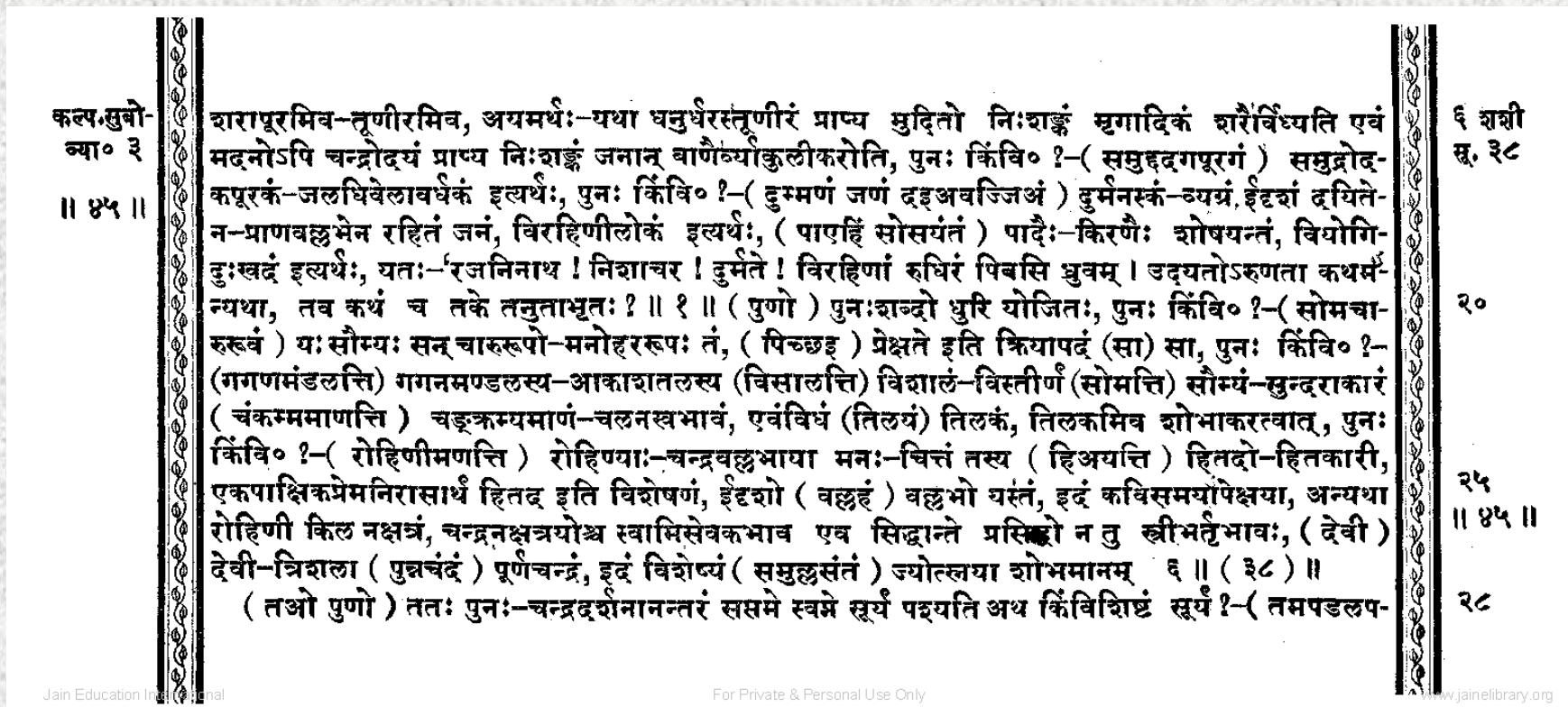
ययकलसपंडुरं) गोक्षीरं–धेनुदुग्धं फेनं प्रसिद्धं दकरजांसि–जलकणाः रजतकलशो–रूप्यघटः तद्वत् पाण्डुरं– उज्ज्वलं, पुनः किंवि० ?–(सुभं) शुभं–सौम्यं, पुनः किंवि० ?–(हिअयनयणकंतं) अत्र लोकानां इति शेषः, ततश्च लोकानां हृदयनयनयोः कान्तं–वल्लभं, पुनः किंवि० ?–(पडिपुण्णं) प्रतिपूर्णं–पूर्णमासीसत्कं, पुनः किंवि० ? (तिमिरनिकरत्ति) तिमिराणां–अन्धकाराणां निकरेण–समूहेन (घणगुहिरत्ति) घना—निबिडा गम्भीरा ये वनगह्वरादयस्तेषां (वितिमिरकरं) अन्धकाराभावकरं, वनगह्वरस्थितान्धकारनाशकं इत्यर्थः, यदुक्तं–'विरम तिमिर ! साहसादमुष्मा–द्यदि रविरस्तमितः स्वतस्ततः किम् ?। कलयसि न पुरो महोमहोर्मिस्फुटतरकैरविता-न्तरिक्षमिन्दुम् ?॥१॥' पुनः किंवि० ?–(पमाणपक्खंतत्ति) प्रमाणपक्षौ—वर्षमासादिमानकारिणौ यौ पक्षौ–शु-क्लकृष्णपक्षौ तयोः अन्तः–मध्ये पूर्णिमायां इत्यर्थः तत्र (रायलेहं) राजन्त्यः–शोभमानाः, लेखाः–कला यस्य स तथा तं, पुनः किंवि० ?–(कुमुअवणविबोहगं) कुमुदवनानां–चन्द्रविकाशिकमलवनानां विबोधकं–विका-शकं, यतः—'दिनकरतापव्यापप्रपन्नमूर्च्छानि कुमुदगहनानि । उत्तस्थुरमृतदीधितिकान्तिसुधासेकतस्त्वरितम् ॥ १ ॥' पुनः किंवि० ?–(निसासोहगं) निशाशोभकं–रात्रिशोभाकारकं, पुनः किंवि० ?–(सुपरिमट्ठदप्पण तलोवमं) सुपरिमृष्टं–सम्यक्प्रकारेण रक्षादिना उज्ज्वलितं यत् दर्पणतलं तेन उपमा यस्य स तथा तं, पुनः किंवि० ?–(हंसपडुवन्नं) हंसवत् पटुवर्णं–उज्ज्वलवर्णं इत्यर्थः, पुनः किंवि० ?–(जोइससुहमंडगं) ज्योतिषां सुखमण्डकं, पुनः किंवि० ?–(तमरिपुं) अन्धकारवैरिणं, पुनः किंवि० ?–(मयणसरापूरगं) मदनस्य–कामस्य

६ शशी सू. ३८ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३८] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [४०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-ध्या० ३
॥ ४५ ॥

शरापूरमिव-तूणीरमिव, अयमर्थः-यथा धनुर्धरस्तूणीरं प्राप्य मुदितो निःशङ्कं मृगादिकं शरैर्विध्यति एवं मदनोऽपि चन्द्रोदयं प्राप्य निःशङ्कं जनान् बाणैर्व्याकुलीकरोति, पुनः किंवि० ?-(समुद्ददगपूरगं) समुद्रोद्-कपूरकं-जलधिवेलावर्धकं इत्यर्थः, पुनः किंवि० ?-(दुम्मणं जणं दइअवज्जिअं) दुर्मनस्कं-व्यग्रं,ईदृशं दयिते-न-प्राणवल्लभेन रहितं जनं, विरहिणीलोकं इत्यर्थः, (पाएहिं सोसयंतं) पादैः-किरणैः शोषयन्तं, वियोगि-दुःखदं इत्यर्थः, यतः-'रजनिनाथ ! निशाचर ! दुर्मते ! विरहिणां रुधिरं पिबसि ध्रुवम् । उदयतोऽरुणता कथमे-न्यथा, तव कथं च तके तनुताभृतः ? ॥ १ ॥ (पुणो) पुनःशब्दो धुरि योजितः, पुनः किंवि० ?-(सोमचा-रुरूवं) यः सौम्यः सन् चारुरूपो-मनोहररूपः तं, (पिच्छइ) प्रेक्षते इति क्रियापदं (सा) सा, पुनः किंवि० ?-(गगणमंडलत्ति) गगनमण्डलस्य-आकाशतलस्य (विसालत्ति) विशालं-विस्तीर्णं (सोमत्ति) सौम्यं-सुन्दराकारं (चंकम्ममाणत्ति) चङ्क्रम्यमाणं-चलनस्वभावं, एवंविधं (तिलयं) तिलकं, तिलकमिव शोभाकरत्वात्, पुनः किंवि० ?-(रोहिणीमणत्ति) रोहिण्याः-चन्द्रवल्लभाया मनः-चित्तं तस्य (हिअयत्ति) हितदो-हितकारी, एकपाक्षिकप्रेमनिरासार्थं हितद इति विशेषणं, ईदृशो (वल्लहं) वल्लभो यस्तं, इदं कविसमयापेक्षया, अन्यथा रोहिणी किल नक्षत्रं, चन्द्रनक्षत्रयोश्च स्वामिसेवकभाव एव सिद्धान्ते प्रसिद्धो न तु स्त्रीभर्तृभावः, (देवी) देवी-त्रिशला (पुन्नचंदं) पूर्णचन्द्रं, इदं विशेष्यं (समुल्लसंतं) ज्योत्स्नया शोभमानम् ६ ॥ (३८) ॥

(तओ पुणो) ततः पुनः-चन्द्रदर्शनानन्तरं सप्तमे स्वप्ने सूर्यं पश्यति अथ किंविशिष्टं सूर्यं ?-(तमपडलप-

६ शशी सू. ३८
२०
२५
॥ ४५ ॥
२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [३९] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [४१]

रिप्फुडं) तमःपटलं–अन्धकारसमूहस्तस्य परिस्फोटकं–नाशकं इत्यर्थः (चेव) निश्चयेन पुनः किंवि० ?–(तेअसा पज्जलंतरूवं) तेजसैव प्रज्ज्वलत्–जाज्वल्यमानं रूपं यस्य स तथा तं, स्वभावतस्तु सूर्यबिम्बवर्त्तिनो बादरपृथ्वीकायिकाः शीतला एव, किन्त्वातपनामकर्मोदयात्तेजसैव एते जनं व्याकुलीकुर्वन्तीति ज्ञेयं, पुनः किंवि० ?–(रत्तासोगत्ति) रक्ताशोकः–अशोकवृक्षविशेषः (पगासकिंसुअत्ति) प्रकाशकिंशुकः–पुष्पितपलाशः (सुअमुहगुंजद्धत्ति) शुकमुखं गुञ्जार्धं च प्रसिद्धं (रागसरिसं) एतेषां वस्तूनां यो रागो–रक्तत्वं तेन सदृशं, पूर्वोक्तवस्तुवत् रक्तवर्णं इत्यर्थः, पुनः किंवि० ?–(कमलवणालंकरणं) कमलवनानां अलङ्करणं–शोभाकारकं विकाशकं इतियावत्, विकसितानि हि तानि अलङ्कृतानीव विभान्ति, पुनः किंवि० ?–(अंकणं जोइसस्स) ज्योतिषस्य–ज्योतिश्चक्रस्य,अङ्कनं–मेषादिराशिसंक्रमणादिना लक्षणज्ञापकं, पुनः किंवि० ?–(अंबरतलपईवं) अम्बरतले प्रदीपं–आकाशतलप्रकाशकं, पुनः किंवि० ?–(हिमपडलगलग्गहं) हिमपटलस्य–हिमसमूहस्य गलग्रहं–गलहस्तदायकं, हिमस्फोटकमित्यर्थः, पुनः किंवि० ?–(गहगणोरुनायगं) ग्रहगणस्य—ग्रहसमूहस्य उरुः–महान् नायको यः स तथा तं, पुनः किंवि० ?–(रत्तिविणासं) रात्रिविनाशं–रात्रिविनाशकारणं इत्यर्थः, पुनः किंवि० ?–(उदयत्थमणेसु मुहुत्तं सुहदंसणं) उदयास्तसमययोः–उदयवेलायां अस्तवेलायां च मुहूर्त्तं यावत् सुखदर्शनं–सुखेन अवलोकनीयं इत्यर्थः, (दुन्निरिक्खरूवं) अन्यस्मिन् काले दुर्निरीक्ष्यरूपं–सम्मुखं विलोकयितुं न शक्यते इत्यर्थः, पुनः किंवि ?–(रत्तिमुद्धंतत्ति) रात्रौ उद्धताः–स्वेच्छाचारिणः, मकारोऽत्र प्राकु-

७ सूर्यस्वप्नः सू. ३९

५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [३९] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [४१]

तत्वात्, एवंविधा ये (दुप्पयारप्पमद्दणं) दुष्प्र=चाराः-चौरादयोऽन्यायकारिणस्तान् प्रमर्दयति यस्तं, अन्यायकारिप्रचारनिवारकं इत्यर्थः, पुनः किंवि० ?-(सीअवेगमहणं) शीतवेगमथनं, आतपेन शीतवेगनिवारणात्, (पिच्छइ) प्रेक्षते इति क्रियापदं प्राग्योजितं, पुनः किंवि० ?-(मेरुगिरिसययपरिवट्टयं) मेरुगिरेः सततं परिवर्त्तकं मेरुं आश्रित्य प्रदक्षिणया भ्रमन्तं इतियावत्, पुनः किंवि० ?-(विसालं) विशालं-विस्तीर्णमण्डलं (सूरं) सूर्यं इत्यपि विशेष्यं योजितं, पुनः किंवि० ?-(रस्सीसहस्सपयलिअत्ति) रश्मिसहस्रेण-किरणदशशत्या कृत्वा प्रदलिता-प्रस्फोटिता (दित्तसोहं) दीप्तानां-चन्द्रतारादीनां शोभा येन स तथा तं, येन स्वकिरणैः सर्वेषां, अपि प्रभा विलुप्ताऽस्तीति भावः, अत्र सहस्रकिरणाभिधानं तु लोकप्रसिद्धत्वात्, अन्यथा कालविशेषे अधिका अपि तस्य किरणा भवन्ति, तथा चोक्तं लौकिकशास्त्रेषु-'ऋतुभेदात्पुनस्तस्यातिरिच्यन्तेऽपि रश्मयः॥ शतानि द्वादश १२०० मधौ, त्रयोदश १३०० तु माधवे ॥ १ ॥ चतुर्दश १४०० पुनर्ज्येष्ठे, नभोनभस्ययोस्तथा १४००-१४००। पंचदशैव १५०० त्वाषाढे, षोडशैव १६०० तथाऽऽश्विने ॥ २ ॥ कार्तिके त्वेकादश च ११००, शतान्येवं ११०० तपस्यपि। मार्गे च दश सार्धानि १०५०, शतान्येवं १०५० च फाल्गुने ॥ ३ ॥ पौष एव परं मासि, सहस्रं १००० किरणा रवेः ७ ॥ (३९) ॥

चैत्र	वैशाख	ज्येष्ठे	आषाढे	श्रावणे	भाद्रपदे	आश्विने	आर्तिके	मार्गे	पौषे	माघे	फाल्गुने
१२००	१३००	१४००	१५००	१४००	१४००	१६००	११००	१०५०	१०००	११००	१०५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४०] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [४२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

(तओ पुणो) ततः पुनः सा त्रिशला अष्टमे स्वप्ने ध्वजं पश्यति, किंविशिष्टं ध्वजं ?–(जच्चकणगलट्ठिपाइट्ठिअं) जात्यं–उत्तमजातीयं यत् कनकं–सुवर्णं तस्य या यष्टिस्तत्र प्रतिष्ठितं, सुवर्णमयदण्डशिखरे स्थितं इत्यर्थः, पुनः किंवि० ?–(समूहनीलरत्तपीअसुक्किल्लत्ति) समूहीभूतानि बहूनीत्यर्थः नीलरक्तपीतशुक्लानि कृष्णनीलयोरैक्यात् पञ्चवर्णमनोहराणीत्यर्थः (सुकुमाल्लल्लसिअत्ति) सुकुमालानि उल्लसन्ति–वातेन लहलहायमानानि इत्यर्थः एवंविधानि यानि (मोरपिच्छकयमुद्धयं) मयूरपिच्छानि तैः कृता मूर्धजा इव–केशा इव यस्य स तथा तं, अयमर्थः–यथा मनुष्यशिरसि वेणिर्भवति तथा तस्य ध्वजस्य वेणिस्थाने मयूरपिच्छसमूहः स्थापितोऽस्तीति (धयं) ध्वजं इदं विशेष्यं, पुनः किंवि० ? (अहिअसस्सिरीअं) अधिकसश्रीकं–अतिशोभितं इत्यर्थः, पुनः किंवि० ?–एवंविधेन सिंहेन राजमानं इति विशेषणयोजना, अथ कीदृशेन सिंहेन ?–(फलिअसंखंकत्ति) स्फटिकं–रत्नविशेषः शङ्खः–प्रसिद्धः अङ्कोऽपि–रत्नविशेषः (कुंददगरयत्ति) कुन्दस्य–धवलपुष्पविशेषस्य माल्यं दकरजांसि–जलकणाः (रययकलसत्ति) रजतकलशो–रूप्यघटः (पंडुरेण) उक्तसर्ववस्तुवत् उज्ज्वलवर्णेन, (मत्थयत्थेण) मस्तकस्थितेन चिह्नतया ध्वजशिरसि आलेखितेनेत्यर्थः (सीहेण) सिंहेन इति विशेष्यं, पुनः कीदृशेन सिंहेन ?–(रायमाणेण) राजमानेन सुन्दरत्वात् शोभमानेनेत्यर्थः (रायमाणं) राजमानं इति तु योजितं, पुनः कीदृशेन सिंहेन ?–(भित्तुं) भेत्तुं–द्विधाकर्तुं, किं ?–(गगणतलमंडलं) आकाशतलमण्डलं (चेव) उत्प्रेक्षायां (ववसिएणं) सोद्यमेनेव, अयमर्थः–ध्वजस्तावद्वायुतरङ्गेण कम्पते, कम्पमाने च ध्वजे सिंहोऽपि

८ ध्वजस्वप्नः सू. ४०

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [४०] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [४२]

गगनं प्रति उच्छलति, तथा च उत्प्रेक्ष्यते–अयं सिंहः किं गगनतलं भेत्तुं उद्यमं करोतीति ?, (पिच्छइ) प्रेक्षते इति क्रियापदं, अथ पुनः किंविशिष्टं ध्वजं ?–(सिवत्ति) शिवः–सौम्यः सुखकारी अत एव (मउअत्ति) मृदुको–मन्द-मन्द इतियावत् एवंविधो यो (मारुअत्ति) मारुतो–वायुस्तस्य (लयत्ति) लयः–आश्लेषो मिलनमितियावत् तेन (आहयत्ति) आहत–आन्दोलितो यः, तत एव (कंपमाणं) चलनस्वभावो यः स तथा तं, पुनः किंवि० ?–(अइप्पमाणं) अतिप्रमाणं–महान्तं इत्यर्थः, पुनः किंवि० ?–(जणपिच्छणिज्जरूवं) जनानां प्रेक्षणीयं–द्रष्टुं योग्यं, रूपं–स्वरूपं यस्य स तथा तं ८ ॥ (४०) ॥

(तओ पुणो) ततः पुनः सा त्रिशला क्षत्रियाणी नवमे स्वप्ने रजतपूर्णकलशं–रूप्यमयं पूर्णकुम्भं पश्यति, अथ किंविशिष्टं रजतपूर्णकलशं ?–(जचकंचणुज्जलंतरूवं) जात्यकाञ्चनवत्–उत्तमसुवर्णवत् उत्–प्राबल्येन दीप्यमानं रूपं यस्य स तथा तं, यथा किल जात्यकाञ्चनस्य रूपं अतिनिर्मलं भवति तथा तस्य कलशस्यापि रूपं इति तात्पर्यं, पुनः किंवि० ?–(निम्मलजलपुन्नमुत्तमं) निर्मलेन जलेन पूर्णं अत एव उत्तमं–शुभसूचकं, पुनः किंवि० ?–(दिप्पमाणसोहं)दीप्यमाना शोभा यस्य स तथा तं, पुनः किंवि० ?–(कमलकलावपरिरायमाणं) कमलकलापेन–कमल-समूहेन,परिराजमानं–सर्वतः शोभमानं, पुनः किंवि० ?–(पडिपुन्नत्ति) प्रतिपूर्णा न तु न्यूना एवंविधा ये (सव्वमंगलभेअत्ति) सर्वमङ्गलभेदा—मङ्गलप्रकारास्तेषां (समागमं) समागमः–सङ्केतस्थानमिव, यथा सङ्केतकारिणो जनाः सङ्केतस्थाने अवश्यं प्राप्यन्ते तथा तस्मिन् कलशे दृष्टे अवश्यं सर्वे मङ्गलभेदाः प्राप्यन्ते इति भावः, पुनः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४१] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [४३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

किंवि० ?-(पवररयणपरिरायंतकमलट्ठिअं) प्रवररत्नैः परिराजमानं यत् कमलं तत्र स्थितं, रत्नमयविकसित-कमलोपरि स कलशो मुक्तोऽस्तीति भावः, पुनः किंवि० ?-(नयणभूसणकरं) नयनानां भूषणकरं-आनन्द-करमित्यर्थः, नयनयोर्हि आनन्द एव भूषणं यथा पद्मस्य विकाशः पुनः किंवि० ?-(पभासमाणं) प्रभासमानं-दीप्यमानं प्रभया वाऽसमानं-निरुपमं, पुनः किंवि० ?-(सव्वओ चेव दीवयंतं) सर्वतः-सर्वदिशं निश्चयेन दीपयन्तं, पुनः किंवि० ?-(सोमलच्छित्ति) सौम्या-प्रशस्ता या लक्ष्मीस्तस्याः (निभेलणं) गृहं, अयं देश्यः शब्दः, पुनः किंवि० ?-(सव्वपावपरिवज्जिअं) सर्वैः पापैः-अमङ्गलैः परिवर्जितं-रहितं, अत एव (सुभं भासुरं) शुभं भासुरं-दीप्यमानं (सिरिवरं) श्रिया-शोभया प्रधानं, पुनः किंवि० ?-(सव्वोउअसुरभिकु-सुमत्ति) सर्वर्तुकानां-सर्वऋतुजातानां, सुरभिकुसुमानां-सुगन्धिपुष्पाणां सम्बन्धीनि (आसत्तमल्लदामं) आसक्तानि-कण्ठे स्थापितानि माल्यदामानि यस्मिन् कलशे स तथा तं, (पिच्छइ) प्रेक्षते इति क्रियापदं (सा) सा त्रिशला (रययपुन्नकलसं) रजतस्य पूर्णकलशं इदं विशेष्यम् ॥ ९ ॥ ४१ ॥

(तओ पुणो) ततः पुनः सा त्रिशला दशमे स्वप्ने पद्मसरः पश्यति, अथ किंविशिष्टं पद्मसरः ?-(रविकि-रणतरुणबोहिअत्ति) प्राकृतत्वाद्विशेषणस्य परनिपातात् तरुणो-नूतनो यो रविस्तस्य ये किरणास्तैर्बोधितानि यानि (सहस्सपत्तत्ति) सहस्रपत्राणि-महापद्मानि तैः (सुरभितरत्ति) अत्यन्तं सुगन्धि (पिंजरजलं) पीतं रक्तं च जलं यस्य तत्तथा, पुनः किंवि० ?-(जलचरपहकरत्ति) जलचरा-जलजीवास्तेषां 'पहकर'त्ति समूहस्तेन

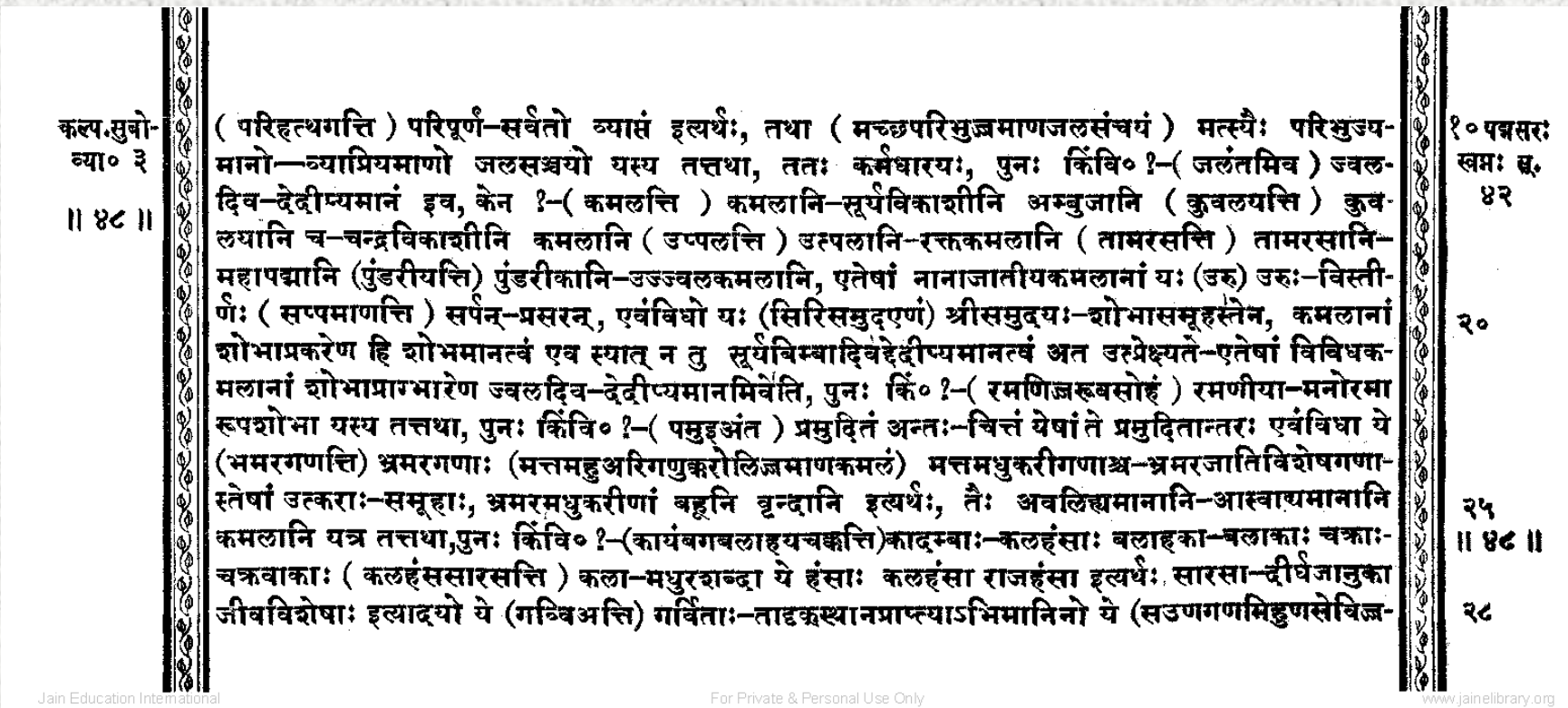
१०पद्मसरः स्वप्नः सू. ४२ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४२] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [४४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-व्या० ३

॥ ४८ ॥

(परिहत्थगत्ति) परिपूर्ण–सर्वतो व्याप्तं इत्यर्थः, तथा (मच्छपरिभुज्जमाणजलसंचयं) मत्स्यैः परिभुज्यमानो—व्याप्रियमाणो जलसञ्चयो यस्य तत्तथा, ततः कर्मधारयः, पुनः किंवि० ?–(जलंतमिव) ज्वलदिव–देदीप्यमानं इव, केन ?–(कमलत्ति) कमलानि–सूर्यविकाशीनि अम्बुजानि (कुवलयत्ति) कुवलयानि च–चन्द्रविकाशीनि कमलानि (उप्पलत्ति) उत्पलानि–रक्तकमलानि (तामरसत्ति) तामरसानि–महापद्मानि (पुंडरीयत्ति) पुंडरीकानि–उज्ज्वलकमलानि, एतेषां नानाजातीयकमलानां यः (उरु) उरुः–विस्तीर्णः (सप्पमाणत्ति) सर्पन्–प्रसरन्, एवंविधो यः (सिरिसमुदएणं) श्रीसमुदयः–शोभासमूहस्तेन, कमलानां शोभाप्रकरेण हि शोभमानत्वं एव स्यात् न तु सूर्यबिम्बादिवदेदीप्यमानत्वं अत उत्प्रेक्ष्यते–एतेषां विविधकमलानां शोभाप्राग्भारेण ज्वलदिव–देदीप्यमानमिवेति, पुनः किं० ?–(रमणिज्जरूवसोहं) रमणीया–मनोरमा रूपशोभा यस्य तत्तथा, पुनः किंवि० ?–(पमुइअंत) प्रमुदितं अन्तः–चित्तं येषां ते प्रमुदितान्तरः एवंविधा ये (भमरगणत्ति) भ्रमरगणाः (मत्तमहुअरिगणुक्करोलिज्जमाणकमलं) मत्तमधुकरीगणाश्च–भ्रमरजातिविशेषगणास्तेषां उत्कराः–समूहाः, भ्रमरमधुकरीणां बहूनि वृन्दानि इत्यर्थः, तैः अवलिह्यमानानि–आस्वाद्यमानानि कमलानि यत्र तत्तथा,पुनः किंवि० ?–(कायंबगबलाहयचक्कत्ति)कादम्बाः–कलहंसाः बलाहका–बलाकाः चक्राः–चक्रवाकाः (कलहंससारसत्ति) कला–मधुरशब्दा ये हंसाः कलहंसा राजहंसा इत्यर्थः, सारसा–दीर्घजानुका जीवविशेषाः इत्यादयो ये (गव्विअत्ति) गर्विताः–तादृक्स्थानप्राप्त्याऽभिमानिनो ये (सउणगणमिहुणसेविज्ज-

१० पद्मसरः खण्डः सू. ४२

२०

२५

॥ ४८ ॥

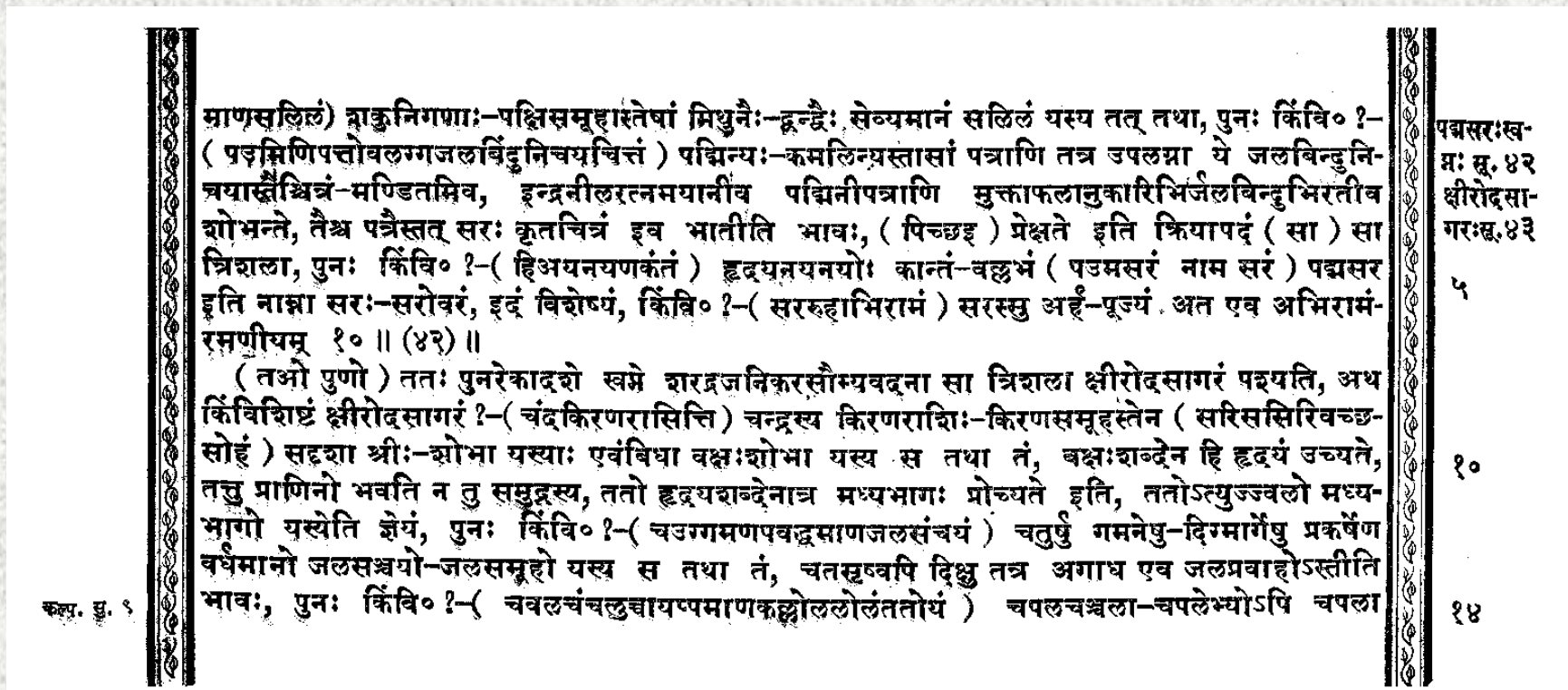
२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४२] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [४४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



माणसलिलं) शाकुनिगणाः–पक्षिसमूहास्तेषां मिथुनैः–द्वन्द्वैः सेव्यमानं सलिलं यस्य तत् तथा, पुनः किंवि० ?–(पउमिणिपत्तोवलग्गजलबिंदुनिचयचित्तं) पद्मिन्यः–कमलिन्यस्तासां पत्राणि तत्र उपलग्ना ये जलबिन्दुनिचयास्तैश्चित्रं–मण्डितमिव, इन्द्रनीलरत्नमयानीव पद्मिनीपत्राणि मुक्ताफलानुकारिभिर्जलबिन्दुभिरतीव शोभन्ते, तैश्च पत्रैस्तत् सरः कृतचित्रं इव भातीति भावः, (पिच्छइ) प्रेक्षते इति क्रियापदं (सा) सा त्रिशला, पुनः किंवि० ?–(हिअयनयणकंतं) हृदयनयनयोः कान्तं–वल्लभं (पउमसरं नाम सरं) पद्मसर इति नाम्ना सरः–सरोवरं, इदं विशेष्यं, किंवि० ?–(सररुहाभिरामं) सरस्सु अर्हं–पूज्यं अत एव अभिरामं–रमणीयम् १० ॥ (४२) ॥

(तओ पुणो) ततः पुनरेकादशे स्वप्ने शरद्रजनिकरसौम्यवदना सा त्रिशला क्षीरोदसागरं पश्यति, अथ किंविशिष्टं क्षीरोदसागरं ?–(चंदकिरणरासित्ति) चन्द्रस्य किरणराशिः–किरणसमूहस्तेन (सरिससिरिवच्छसोहं) सदृशा श्रीः–शोभा यस्याः एवंविधा वक्षःशोभा यस्य स तथा तं, वक्षःशब्देन हि हृदयं उच्यते, तच्च प्राणिनो भवति न तु समुद्रस्य, ततो हृदयशब्देनात्र मध्यभागः प्रोच्यते इति, ततोऽत्युज्ज्वलो मध्यभागो यस्येति ज्ञेयं, पुनः किंवि० ?–(चउग्गमणपवड्ढमाणजलसंचयं) चतुर्षु गमनेषु–दिग्मार्गेषु प्रकर्षेण वर्धमानो जलसञ्चयो–जलसमूहो यस्य स तथा तं, चतसृष्वपि दिक्षु तत्र अगाध एव जलप्रवाहोऽस्तीति भावः, पुनः किंवि० ?–(चवलचंचलुच्चायप्पमाणकल्लोललोलंततोयं) चपलचञ्चला–चपलेभ्योऽपि चपला

कल्प. सू. ९

पद्मसरःखण्डः सू. ४२ क्षीरोदसागरःसू.४३

५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [४३] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [४५]

अतिचपला इतियावत् तथा उच्चं आत्मप्रमाणं येषामेवंविधा ये कल्लोलास्तैर्लोलत्–पुनः पुनरेकीभूय पृथग्भवत् एवंविधं तोयं–पानीयं यस्य स तथा तं, पुनः किंवि० ?–(पडुपवणाहयत्ति) पटुना–अमन्देन पवनेन आहता–आस्फोटिताः सन्तः अत एव (चलिअत्ति) चलिता–धावितुं प्रवृत्ताः तत एव (चवलत्ति) चपलाः (पागडत्ति) प्रकटाः (तरंगत्ति) एवंविधास्तरङ्गाः–कल्लोलाः तथा (रंगंतभंगत्ति) रङ्गंत–इतस्ततो नृत्यन्तः एवंविधा 'भंग'त्ति कल्लोलविशेषाः तथा (खोखुब्भमाणत्ति) अतिक्षुभ्यन्तः–भयभ्रान्ता इव भ्रमन्तः (सोभंतत्ति) शोभमानाः (निम्मलत्ति) निर्मलाः–स्वच्छाः (उक्कडत्ति) उत्कटाः—उद्भूताः (उम्मीत्ति) ऊर्मयो–विच्छित्तिमन्तः कल्लोलाः, ततः एतैः सर्वैः पूर्वोक्तैः कल्लोलप्रकारैः (सहसंबंधत्ति) सह यः सम्बन्धो–मिलनं तेन (धावमाणावनियत्त-भासुरतराभिरामं) धावमानः–त्वरितं तीराभिमुखं प्रसर्पन् अपनिवर्त्तमानः–तटात् पश्चाद्वलमानः सन् भासु-रतरः–अत्यन्तं दीप्रोऽत एव अभिरामो–मनोहरो यः स तथा तं, पुनः किंवि० ?–(महामगरमच्छत्ति) महान्तो मकरा मत्स्याश्च प्रसिद्धाः तथा (तिमितिमिंगिलनिरुद्धतिलितिलियाभिघायत्ति) तिमयः १ तिमिङ्गिलाः २ निरुद्धाः ३ तिलितिलिका ४ श्च जलचरजीवविशेषाः, अथैतेषां अभिघातेन–पुच्छाच्छोटनेन उत्पन्नः (कप्पूरफेणपसरं) कर्पूरवदुज्ज्वलः फेनप्रसरो यस्य स तथा तं, पुनः किंवि० ?–(महानईतुरियवेगसमागय-भमत्ति) महत्यो नद्यो महानद्यो–गङ्गाद्यास्तासां ये त्वरितवेगाः–शीघ्रं आगमनानि तैः आगतभ्रम–उत्पन्नभ्रमणो यो (गंगावत्तत्ति) गङ्गावर्त्तनामा आवर्त्तविशेषस्तत्र (गुप्पमाणुच्चलंतत्ति) व्याकुलीभवत् अत एव उच्छलत्–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४३] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [४५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

आवर्त्तपतितत्वेन अन्यत्र निर्गमावकाशाभावात् ऊर्ध्वं उच्छलत् (पच्चोनियत्तन्ति) प्रत्यवनिवृत्तं–ऊर्ध्वं उच्छल्य तत्रैव पुनः पतितं, अत एव (भममाणलोलसलिलं) तत्र आवर्त्ते एव भ्रमत् तत एव च लोलं–स्वभावतश्चञ्चलं, एवंविधं सलिलं–पानीयं यत्र स तथा तं, (पिच्छइ) प्रेक्षते इति क्रियापदं (खीरोअसायरं) क्षीरोदसागरं इदं विशेष्यं (सरयरयणिकरसोमवयणा) शरत्कालीनः रजनीकरः–चन्द्रस्तद्वत् सौम्यं वदनं यस्याः, एवंविधा त्रिशला ११ ॥ (४३) ॥

(तओ पुणो) ततः सा त्रिशला द्वादशे स्वप्ने विमानवरपुण्डरीकं प्रेक्षते, अथ किंविशिष्टं विमानवरपुंडरीकं ?–(तरुणसूरमंडलसमप्पहं) तरुणो–नूतनो यः सूर्यस्तस्य मण्डलं–बिम्बं तेन समा प्रभा–कांतिर्यस्य तत्तथा, पुनः किंवि० ? (दिप्पमाणसोहं) दीप्यमाना शोभा यस्य तत्तथा, पुनः किंवि० ? (उत्तमकंचणमहामणिसमूहपवरतेअट्ठसहस्सत्ति) उत्तमैः काञ्चनमहामणिसमूहैः–सुवर्णरत्नप्रकरैः प्रवरा ये अष्टाधिकसहस्रसंख्याः तेकाः–स्तम्भाः तैः (दिप्पंतनहपईवं) दीप्यमानं सत् नभ–आकाशं प्रदीपयति यत् तत् तथा, पुनः किंवि० ?–(कणगपयरलंबमाणमुत्तासमुज्जलंति) कनकप्रतरेषु–सुवर्णपत्रेषु लम्बमानाभिर्मुक्ताभिः समुज्ज्वलं–प्राबल्येन दीप्तिमत्, पुनः किंवि० ? (जलंतदिव्वदामंति) ज्वलन्ति–दीप्यमानानि देवसम्बन्धीनि अर्थाल्लम्बितानि दामानि–पुष्पमाल्यानि यत्र तत्तथा, पुनः किंवि० ?–(इहामिगउसभतुरगत्ति) इहामृगा–वृका 'वरगडा जीव इति लोके' ऋषभा–वृषभाः तुरगा–अश्वाः (नरमगरविहगत्ति) नरा–मनुष्याः मकराः विहगाः-

विमानस्वरूपः सू. ४४

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४४] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [४६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

॥ ५० ॥

पक्षिणः (वालगकिन्नररुरुसरभचमरसंसत्तत्ति) व्यालकाः–सर्पाः, किन्नरा–देवजातिविशेषाः, रुरवो–मृगभेदाः शरभा–अष्टापदाः, चमर्यो–धेनवः, संसक्ताः–श्वापदविशेषाः (कुंजरवणलयपउमलयत्ति) कुञ्जरा–हस्तिनः, वनलता–अशोकलताद्याः, पद्मलताः–पद्मिन्यः, एतेषां सर्वेषां या (भत्तिचित्तं) भक्ती–रचना चित्राणि इति-यावत् तैः चित्रं–आश्चर्यकारि, पुनः किंवि० ?–(गंधव्वोपवज्जमाणसंपुन्नघोसं) गान्धर्वशब्देन इह गीतं उच्यते उपवाद्यमानशब्देन वादित्राण्युच्यन्ते, ततो गान्धर्वोपवाद्यमानानां–गीतवादित्राणां सम्पूर्णो घोषः–शब्दो यत्र तत्तथा, पुनः किंवि० ?–(निचं सजलघणविउलजलहरत्ति) नित्यं–निरन्तरं सजलो–जलसम्पूर्णः घनो–निबिडो विपुलः–पृथुलः एवंविधो यो जलधरो–मेघस्तस्य यत् (गज्जिअसद्दाणुणाइणा) गर्जितशब्दो–गर्जारव इत्यर्थः तस्य अनुनादिना–सदृशेन एवंविधेन (देवदुंदुहिमहारवेणंति) देवसम्बन्धिदुन्दुभिमहाशब्देन (सयलमवि जीवलोअं पूरयंतं) सकलमपि जीवलोकं पूरयत् शब्दव्याप्तं कुर्वत् इत्यर्थः, पुनः किंवि० ?–(काला-गुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कत्ति) कृष्णागुरु १ प्रवरकुन्दुरुष्क २ तुरुष्काः ३ प्राग्व्याख्याताः तथा (डज्झंतमाणधूव-वासंगत्ति) दह्यमानधूपो–दशाङ्गादिर्धूपो वासाङ्गानि–सुगन्धद्रव्याणि एतेषां सर्वेषां यो (मघमघंतत्ति) मघम-घायमानो (गन्धुद्धुआभिरामं) उद्धुत–इतस्ततः प्रसृतश्च यो गन्धस्तेन अभिरामं, पुनः किंवि० ?–(निचा-लोअं) नित्यं आलोकः–उद्योतो यत्र तत्तथा, पुनः किंवि० ?–(सेअं) श्वेतं–उज्ज्वलं अत एव (सेअप्पभं) श्वेता–उज्ज्वला प्रभा–कान्तिर्यस्य तत्तथा, पुनः किंवि० ?–(सुरवराभिरामं) सुरवरैः प्रधानं–शोभितं, न तु

२०

२५

॥ ५० ॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [४५] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [४७]

रिक्तं, (पिच्छइ) प्रेक्षते इति क्रियापदं (सा) सा त्रिशला इति प्राग्योजितं, पुनः किंवि० ?-(साओवभोगं) सातस्य-सातवेद्यनीयस्य कर्मण उपभोगो यत्र तत् सातोपभोगं, ईदृशं (विमाणवरपुंडरीयं) विमानवरपुण्डरीकं-विमानवरेषु पुण्डरीकमिव अत्युत्तमत्वात्, इदं विशेष्यं १२ ॥ (४४) ॥

(तओ पुणो) ततः पुनः सा त्रिशला त्रयोदशे स्वप्ने रत्ननिकरराशिं पश्यति, अथ किंविशिष्टं रत्ननिकरराशिं ?-(पुलगवेरिंदनीलत्ति) पुलकं १ वज्रं २ इन्द्रनीलं-नीलरत्नं ३ (सासगत्ति) सस्यकं-रत्नविशेषः ४ (कक्केअणत्ति) कर्केतनं ५ (लोहियक्खत्ति) लोहिताक्षं ६ (मरगयत्ति) मरकतं ७ (मसारगल्लत्ति) मसारगल्लं ८ (पवालत्ति) प्रवालं ९ (फलिहत्ति) स्फटिकं १० (सोगंधियत्ति) सौगन्धिकं ११ (हंसगब्भत्ति) हंसगर्भं १२ (अंजणत्ति) अञ्जनं-अञ्जनप्रभं श्यामरत्नं १३ (चंदप्पहत्ति) चन्द्रप्रभः-चन्द्रकान्तरत्नं १४ (वररयणेहिं) एभी रत्नप्रकारैः (महिअलपइट्ठिअं) महीतलप्रतिष्ठितं (गगणमंडलंतं पभासयंतं) महीतले स्थितमपि गगनमण्डलस्थान्तं यावत् प्रभासयन्तं, लोकप्रसिद्धस्य आकाशस्यापि शिखरं स्वकान्त्या शोभयन्तं इत्यर्थः, पुनः किंवि० ?-(तुंगं) उच्चं, किंप्रमाणं ? इत्याह—(मेरुगिरिसन्निगासं) मेरुगिरिसदृशं, (पिच्छइ) प्रेक्षते इति क्रियापदं (सा) सा त्रिशला (रयणनिकरराशिं) रत्ननिकराणां राशिः-उच्छ्रितः समूहस्तं, इदं विशेष्यम् १३॥(४५)॥

(सिहिं च) सिंहिं चेति पदं प्रागुक्तगाथागतं ' तओ पुणो ' इत्यर्थसूचकं, (सा) ततः सा त्रिशला चतुर्दशे स्वप्ने ईदृशं शिखिनं-अग्निं पश्यति, अथ किंविशिष्टं शिखिनं ?-(विउलुज्जलपिंगलमहुघयपरिसिचमाणत्ति)

रत्नोच्चयस्वप्नः सू. ४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४६] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [४८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

विपुला–विस्तीर्णा, तथा उज्ज्वलपिंगलेन मधुघृतेन परिषिच्यमाना–उज्ज्वलेन घृतेन पिङ्गलेन च मधुना सिच्यमाना अत एव (निद्धूमत्ति) निर्धूमा (धगधगाइअत्ति) धगधगितिकुर्वत्यो (जलंतजालुज्जलाभिरामं) ज्वलन्त्यो–दीप्यमाना या ज्वालास्ताभिः उज्ज्वलं अत एव अभिरामं, पुनः किंवि० ?–(तरतमजोगजुत्तेहिं) तरतमयोगयुक्तैः (जालपयरेहिं) ज्वालाप्रकरैः (अन्नुन्नमिव अणुपइन्नं) अन्योऽन्यं अनुप्रकीर्णं इव, तस्य सर्वा अपि ज्वाला अन्योऽन्यं प्रविष्टा इव सन्तीति भावः, (पिच्छइ) प्रेक्षते इति क्रियापदं, पुनः किंवि० ?–(जालुज्जलणगत्ति) ज्वालानां ऊर्ध्वं ज्वलनं ज्वालोज्ज्वलनं, स्वार्थिककप्रत्यये च ज्वालोज्ज्वलनकं, अत्र तृतीयैकवचनलोपः तेन ज्वालोज्ज्वलनकेन (अंबरं व कत्थइ पयंतं) क्वचित्प्रदेशे अम्बरं–आकाशं पचन्तं इव, अभ्रंलिहत्वेन आकाशपचनसमर्थं इवेत्यर्थः, पुनः किंवि० ?–(अइवेगचंचलं) अतिवेगेन चञ्चलं (सिहिं) शिखिनं–अग्निं, इदं विशेषणम् १४ ॥ (४६) ॥

(इमे एयारिसे) इमान् एतादृशान् (सुभे) शुभान्–कल्याणहेतून् (सोमे) उभया–कीर्त्या सहितान् (पियदंसणे) प्रियदर्शनान्–दर्शनमात्रेण प्रीतिकरान् (सुरूवे) सुरूपान् (सुविणे) स्वप्नान् (दट्ठूण सयणमज्झे पडिबुद्धा) शयनमध्ये–निद्रामध्ये दृष्ट्वा प्रतिबुद्धा–जागरिता सती (अरविंदलोयणा) अरविन्दलोचना त्रिशला (हरिसपुलइअंगी) हर्षपुलकिताङ्गी–प्रमोदभररोमाञ्चितगात्री ॥ अत्र प्रसङ्गेन एतेषां स्वप्नानां गर्भकाले सकलजिनराजजननीविलोकनीयत्वं दर्शयन्नाह—(एए चउद्दस सुविणे) एतान् चतुर्दश स्वप्नान्

अग्रिमसूत्रः सू. ४६ जिनजननी-दृश्यता सू. ४७

२०

२५

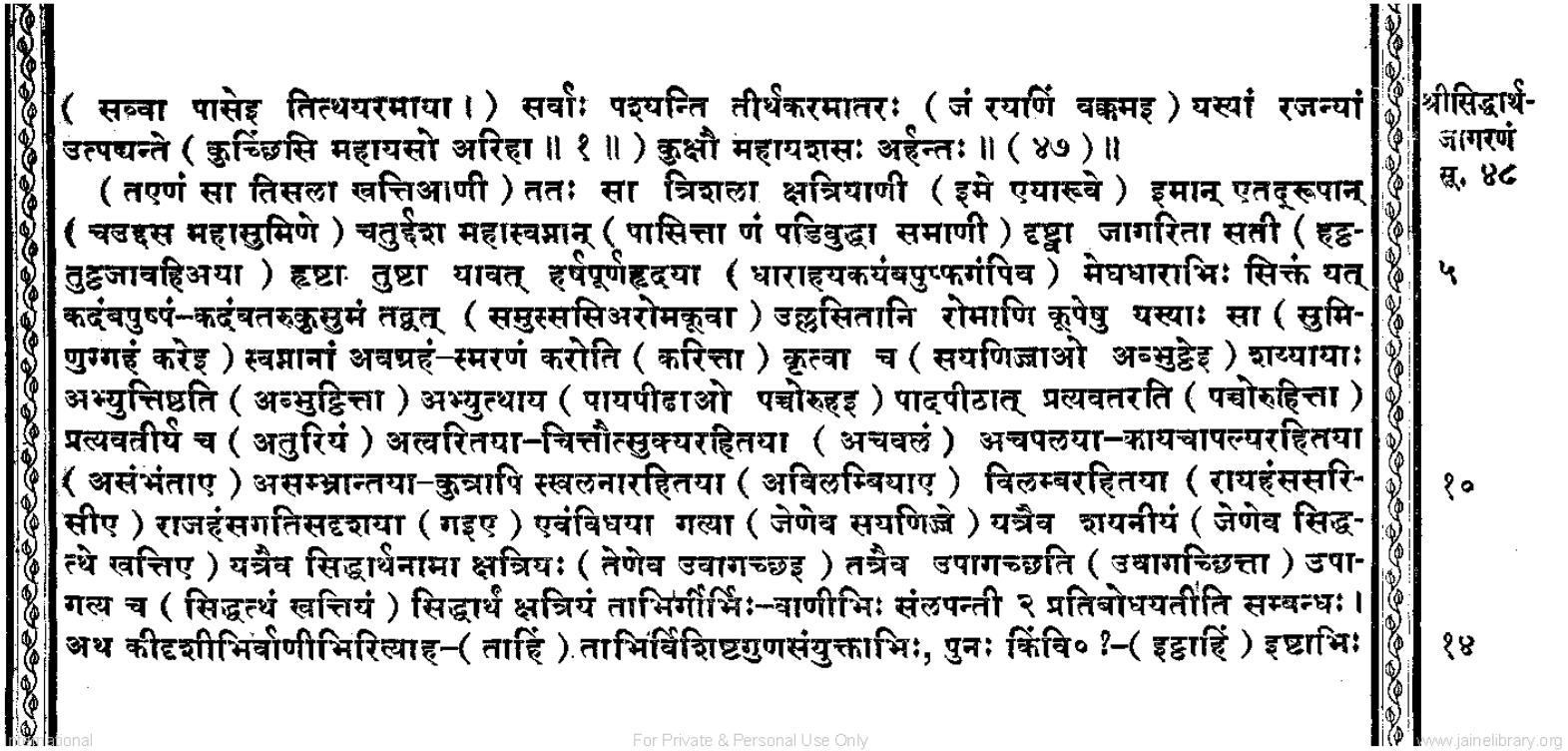
॥ ५१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४८] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [५०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



(सव्वा पासेइ तित्थयरमाया ।) सर्वाः पश्यन्ति तीर्थकरमातरः (जं रयणिं वक्कमइ) यस्यां रजन्यां उत्पद्यन्ते (कुच्छिंसि महायसो अरिहा ॥ १ ॥) कुक्षौ महायशसः अर्हन्तः ॥ (४७) ॥
(तएणं सा तिसला खत्तिआणी) ततः सा त्रिशला क्षत्रियाणी (इमे एयारूवे) इमान् एतद्रूपान् (चउद्दस महासुमिणे) चतुर्दश महास्वप्नान् (पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी) दृष्ट्वा जागरिता सती (हट्ठ-तुट्ठजावहिअया) हृष्टा तुष्टा यावत् हर्षपूर्णहृदया (धाराहयकयंबपुप्फगंपिव) मेघधाराभिः सिक्तं यत् कदंबपुष्पं-कदंबतरुकुसुमं तद्वत् (समुस्ससिअरोमकूवा) उल्लसितानि रोमाणि कूपेषु यस्याः सा (सुमिणुग्गहं करेइ) स्वप्नानां अवग्रहं-स्मरणं करोति (करित्ता) कृत्वा च (सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ) शय्यायाः अभ्युत्तिष्ठति (अब्भुट्ठित्ता) अभ्युत्थाय (पायपीढाओ पच्चोरुहइ) पादपीठात् प्रत्यवतरति (पच्चोरुहित्ता) प्रत्यवतीर्य च (अतुरियं) अत्वरितया-चित्तौत्सुक्यरहितया (अचवलं) अचपलया-कायचापल्यरहितया (असंभंताए) असम्भ्रान्तया-कुत्रापि स्खलनारहितया (अविलम्बियाए) विलम्बरहितया (रायहंससरिसीए) राजहंसगतिसदृशया (गइए) एवंविधया गत्या (जेणेव सयणिज्जे) यत्रैव शयनीयं (जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए) यत्रैव सिद्धार्थनामा क्षत्रियः (तेणेव उवागच्छइ) तत्रैव उपागच्छति (उवागच्छित्ता) उपागत्य च (सिद्धत्थं खत्तियं) सिद्धार्थं क्षत्रियं ताभिर्गीर्भिः-वाणीभिः संलपन्ती २ प्रतिबोधयतीति सम्बन्धः । अथ कीदृशीभिर्वाणीभिरित्याह-(ताहिं) ताभिर्विशिष्टगुणसंयुक्ताभिः, पुनः किंवि० ?-(इट्ठाहिं) इष्टाभिः

श्रीसिद्धार्थ-जागरणं सू. ४८

५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** स्वप्न-दर्शनान्तर माता त्रिशालाया: जागरण एवं राजा सिद्धार्थ सह कृत: स्वप्न-विषयक-संवाद:

प्रत सूत्रांक [४८] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [५०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

तस्य वल्लभाभिः, पुनः किंवि० ?–(कंताहिं) कान्ताभिः–सर्वदा वाञ्छिताभिः अत एव (पियाहिं) प्रियाभिः–अद्वेष्याभिः, पुनः किंवि० ?–(मणुण्णाहिं) मनोज्ञाभिः–मनोविनोदकारिणीभिः, अत एव (मणामाहिं) मनोऽमाभिः–मनसा अभ्यन्ते–पुनः पुनर्गम्यन्ते न तु कदापि विस्मार्यन्ते एवंविधाभिः, पुनः किंवि० ?–(उरालाहिं) उदाराभिः–सुन्दरध्वनिवर्णसंयुताभिः, पुनः किंवि० ? (कल्लाणाहिं) कल्याणानि–समृद्धयस्तत्कारिणीभिः, पुनः किंवि० ?–(सिवाहिं) शिवाभिः–उपद्रवहरीभिः तथाविधवर्णसंयुक्तत्वात्, अत एव (धन्नाहिं) धन्याभिः–धनप्रापिकाभिः, पुनः किंवि० ?–(मंगल्लाहिं) मङ्गलकरणे प्रवीणाभिः, पुनः किंवि० ? (सस्सिरीआहिं) सश्रीकाभिः–अलङ्कारविराजिताभिः, पुनः किंवि० ?–(हिअयगमणिज्जाहिं) कोमलतया सुबोधतया च हृदयङ्गमाभिः, पुनः किंवि० ?–(हिअयपल्हायणिज्जाहिं) हृदयप्रह्लादनीयाभिः–हृदुतशोकाद्युच्छेदिकाभिः, पुनः किंवि० ?–(मिअमहुरमंजुलाहिं) मिताः—अल्पशब्दाः बह्वर्थाश्च मधुराः—श्रोत्रसुखकारिण्यः, मञ्जुलाः–सुललितवर्णमनोहराः. ततः पदत्रयस्य कर्मधारये मितमधुरमञ्जुलाभिरिति (गिराहिं) एवंविधाभिः वाणीभिः (संलवमाणी २) संलपन्ती–वदन्ती (पडिबोहेइ) जागरयति ॥ (४८) ॥

(तए णं) ततोऽनन्तरं जागरणानन्तरं (सा तिसला खत्तिआणी) सा त्रिशला क्षत्रियाणी (सिद्धत्थेणं रन्ना) सिद्धार्थेन राज्ञा (अब्भणुण्णाया समाणी) अभ्यनुज्ञाता सती (नाणामणिकणगरयणभत्तिचित्तंसि) नानामणिकनकरत्नानां भक्तिभिः–रचनाभिः, चित्रे–आश्चर्यकारिणि (भद्दासणंसि निसीयइ) भद्रासने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [४९] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [५१]

निषीदति (निसीइत्ता) निषद्य च (आसत्था) मार्गजनितश्रमापगमेन आश्वस्ततां उपगता, अत एव (वीसत्था) विश्वस्ता क्षोभाभावेन (सुहासणवरगया) सुखासनवरं गता, सुखेन उपविष्टा सती (सिद्धत्थं खत्तियं) सिद्धार्थं क्षत्रियं (ताहिं इट्ठाहिं) ताभिः इष्टाभिः (जाव संलवमाणी २) यावत् पूर्वोक्तस्वरूपाभिर्वाणीभिः (एवं वयासी) एवं अवादीत् ॥ (४९) ॥ तत् किमित्याह—

(एवं खलु अहं सामी) एवं निश्चयेन अहं हे स्वामिन् ! (अज्ज तंसि तारिसगंसि) अद्य तस्मिन् तादृशे (सयणिज्जंसि) पल्यङ्के (वण्णओ) वर्णकः पूर्वोक्तः (जाव पडिबुद्धा) यावत् जागरिता तावद्वाच्यः, (तंजहा) तद्यथा (गयवसहगाहा) 'गयवसह' इति गाथाप्यत्र वाच्या (तं एएसिं सामी) तस्मात् एतेषां हे स्वामिन् ! (उरालाणं) प्रशस्तानां (चउद्दसण्हं महासुमिणाणं) चतुर्दशानां महास्वप्नानां (के मन्ने) मन्ये इति वितर्कार्थो निपातः, ततः कः ? अहं विचारयामि (कल्लाणे) कल्याणकारी (फलवित्तिविसेसे भविस्सइ) फलवृत्तिविशेषो भविष्यतीति ॥ (५०) ॥

(तए णं से सिद्धत्थे राया) ततः स सिद्धार्थो राजा (तिसलाए खत्तिआणीए) त्रिशलायाः क्षत्रियाण्याः (अंतिए) अन्तिके-पार्श्वात् (एअमट्ठं) एनमर्थं (सुच्चा) श्रुत्वा श्रोत्रेण (निसम्मत्ति) निशम्य-हृदयेनावधार्य (हट्ठतुट्ठजावहियए) हृष्टस्तुष्टः यावत् हर्षपूर्णहृदयः (धाराहयनीवसुरहिकुसुमत्ति) धारासिक्तो यो नीपवृक्षः तस्य सुगन्धि पुष्पं तद्वत् (चंचुमालइयरोमकूवे) उल्लसितानि रोमाणि कूपेषु यस्य स तथा, एवं-

स्वप्ननिवेदनं सू. ४९ फलपृच्छा सू. ५०

५ १० १५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५१] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [५३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-व्या० ३ ॥ ५३ ॥

विधः सन् (ते सुमिणे ओगिण्हइ) तान् स्वप्नान् अवगृह्णाति–चेतसि धरति (ओगिण्हित्ता) अवगृह्य च (ईहं अणुपविसइ) ईहां—सदर्थविचारणालक्षणां अनुप्रविशति (अणुपविसित्ता) अनुप्रविश्य च (अप्पणो साहाविएणं) आत्मनः स्वभावतः उत्पन्नेन तथा (मइपुव्वएणं) मतिपूर्वकेण एवंविधेन (बुद्धिविण्णाणेणं) बुद्धिविज्ञानेन कृत्वा (तेसिं सुमिणाणं) तेषां स्वप्नानां (अत्थुग्गहं करेइ) अर्थावग्रहं—अर्थनिश्चयं करोति (करित्ता) अर्थनिश्चयं कृत्वा च (तिसलं खत्तियाणिं) त्रिशलां क्षत्रियाणीं प्रति (ताहिं इट्ठाहिं) ताभिः इष्टाभिः (जाव सस्सिरीयाहिं) यावत् सश्रीकाभिः (वग्गूहिं संलवमाणे २) एवंविधाभिः वाग्भिः संलपन् सन् (एवं वयासी) एवं अवादीत् ॥ (५१) ॥

किमित्याह—(उराला णं तुमे देवाणुप्पिए सुमिणा दिट्ठा) उदाराः—प्रशस्ताः त्वया हे देवानुप्रिये !–सरलस्वभावे स्वप्नाः दृष्टाः (कल्लाणा णं तुमे देवाणुप्पिए सुमिणा दिट्ठा) तथा कल्याणकारिणः त्वया हे देवानुप्रिये स्वप्ना दृष्टाः (एवं) अनेनाभिलापेन (सिवा धन्ना मंगल्ला) उपद्रवहराः धनप्रापकाः मङ्गलकारकाः (सस्सिरिया) शोभया सहिताः (आरुग्गतुट्ठिदीहाउत्ति) नीरोगत्वं चित्तानन्दः चिरजीवित्वं (कल्लाणमंगल्लकारगा णं) कल्याणं—समृद्धिः मङ्गलं–वाञ्छितप्राप्तिः एतेषां वस्तूनां कारकाः (तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा) त्वया हे देवानुप्रिये ! स्वप्नाः दृष्टाः । अथ तेषां स्वप्नानां महिम्ना किं भविष्यतीत्याह–(अत्थलाभो देवाणुप्पिए) अर्थो–मणिकनकादिः तस्य लाभः हे देवानुप्रिये ! (भोगलाभो देवाणुप्पिए) भोगाः–शब्दादय-

मत्यादि-भिरर्थनिश्चयः सू. ५१ फलकथनम् सू. ५२ २० २५ ॥ ५३ ॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** राजा सिद्धार्थ एवं निमित्तकै: कृत स्वप्न-फ़ल्-वर्णनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [५२] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [५४]

स्तेषां लाभः हे देवानुप्रिये ! (पुत्तलाभो देवाणुप्पिए) पुत्रस्य लाभः हे देवानुप्रिये ! (सुक्खलाभो देवाणुप्पिए) सौख्यं-मनसो निवृत्तिस्तस्य लाभः हे देवानुप्रिये ! (रज्जलाभो देवाणुप्पिए) राज्यं—स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गसैन्यलक्षणं सप्ताङ्गं तस्य लाभो भविष्यतीति ॥ अथ सामान्येन फलान्युक्त्वा विशेषतो मुख्यं फलमाह—(एवं खलु तुमे देवाणुप्पिए !) अनेन प्रकारेण निश्चयेन त्वं हे देवानुप्रिये ! हे त्रिशले ! (नवण्हं मासाणं) नवसु मासेषु (बहुपडिपुन्नाणं) बहुप्रतिपूर्णेषु सत्सु (अद्धट्ठमाण राइंदियाणं) अर्द्धाष्टमरात्रिदिवसाधिकेषु (विइक्कंताणं) व्यतिक्रान्तेषु सुरूपं दारकं-पुत्रं प्रजनिष्यसीति सम्बन्धः, किंविशिष्टं ?-(अम्हं कुलकेउं) अस्माकं कुले केतुरिव केतुः-चिन्हं ध्वजस्तत्सदृशं अत्यद्भुतं इत्यर्थः (अम्हं कुलदीवं) अस्माकं कुले दीप इव दीपस्तं प्रकाशकं मङ्गलकारकं च (कुलपव्वयं) कुले पर्वत इव पर्वतः अपराभवनीयः स्थिरश्च, कुलस्य आधार इत्यर्थः, (कुलवडिंसयं) कुले अवतंसक इव-मुकुट इव यस्तं, शोभाकरत्वात्, अत एव (कुलतिलयं) कुलतिलकं मस्तकधार्यत्वात् (कुलकित्तिकरं) कुलकीर्त्तिकरं शुभाचारित्वात् (कुलवित्तिकरं) कुलस्य वृत्तिः-निर्वाहस्तस्य कारकं (कुलदिणयरं) प्रकाशकत्वात् कुले दिनकरसमानं (कुलआधारं) कुलाधारः-पृथ्वीवत् कुलस्याधारं (कुलनंदिकरं) कुलस्य नन्दिः-वृद्धिस्तस्याः करं-कारकं (कुलजसकरं) कुलस्य यशः-सर्वदिग्गामिनी ख्यातिः तस्य कारकं, 'एकदिग्गामिनी कीर्तिः, सर्वदिग्गामुकं यशः ' इति वचनात् (कुलपायवं) छायाकरत्वात् आश्रयणीयत्वाच्च कुले पादपसमानं,

भाविपुत्र वर्णनं सू. ५२ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [५२] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [५४]

कल्प.सुबो-ध्या० ३

॥ ५४ ॥

पादपः–वृक्षः (कुलविवद्धणकरं) कुलस्य विवर्धनं–सर्वतो वृद्धिस्तस्य करं–कारकं (सुकुमालपाणिपायं) सुकुमालं पाणिपादं यस्य स तथा तं (अहीणपडिपुन्नपंचिंदियसरीरं) लक्षणोपेतानि तथा स्वरूपेणापि पूर्णानि एवंविधानि पञ्चेन्द्रियाणि यत्र एवंविधं शरीरं यस्य स तथा तं (लक्खणवंजणगुणोववेयं) लक्षणानां व्यञ्जनानां च ये गुणाः तैः उपपेतं–सहितं (माणुम्माणपमाणपडिपुन्नसुजायसव्वंगसुंदरंगं) मानेन उन्मानेन प्रमाणेन च प्रतिपूर्णानि तथा सुजातानि–शोभायुक्तानि एवंविधानि सर्वाणि अङ्गानि यत्र एवंविधं सुन्दरं अङ्गं–शरीरं यस्य स तथा तं (ससिसोमागारं) चन्द्रवत् सौम्याकारं (कंतं) वल्लभं (पियदंसणं) प्रियं दर्शनं यस्य स तथा तं (सुरूपं) शोभनरूपं (दारयं) एवंभूतं पुत्रं (पयाहिसि) प्रजनिष्यसि ॥ (५२) ॥

(सेऽविय णं दारए) सोऽपि च बालकः (उम्मुक्कबालभावे) उन्मुक्तो बालभावो येन सः (विन्नायपरिणयमित्ते) विज्ञातं–विज्ञानं तत् परिणतमात्रं यस्य स तथा, परिपक्वविज्ञान इत्यर्थः (जुव्वणमणुपत्ते) यौवनं अनुप्राप्तः सन् (सूरे) शूरः–दाने अङ्गीकृतनिर्वाहे च समर्थ इत्यर्थः (वीरे) वीरः संग्रामे समर्थः (विक्कंते) विक्रान्तः–परमण्डलाक्रमणसमर्थः पराक्रमवानित्यर्थः (विच्छिण्णविउलबलवाहणे) विस्तीर्णादपि विपुले अतिविस्तीर्णे इत्यर्थः एवंविधे बलवाहने यस्य स तथा, तत्र बलं–सेना वाहनं–गवादिकं (रज्जवई राया भविस्सइ) राज्यस्य स्वामी एवंविधो राजा भविष्यति ॥ (५३) ॥

(तं उराला णं जाव सुमिणा दिट्ठा) तस्मात् प्रशस्ताः यावत् त्वया स्वप्नाः दृष्टाः (दुवंपि तचंपि अणुवू-

शौर्यादिवर्णनं सू.५३

२०

२५

॥ ५४ ॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [५४] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [५६]

हह) एवं वारद्वयं वारत्रयं प्रशंसति (तए णं सा त्रिसला खत्तियाणी) ततोऽनन्तरं सा त्रिशला क्षत्रिया- तथाकृतिः
णी (सिद्धत्थस्स रन्नो) सिद्धार्थस्य राज्ञः (अंतिए एयमट्ठं सुच्चा) पार्श्वे एतं अर्थं श्रुत्वा (निसम्म) प्रतिजागर-
निशम्य-अवधार्य (हट्ठतुट्ठजाव हिअया) हृष्टा तुष्टा यावत् हर्षपूर्णहृदया (करयलपरिग्गहियं) करतलाभ्यां णं च सू.
कृतं (जाव मत्थए अंजलिं कट्टु) यावत् मस्तके अञ्जलिं कृत्वा (एवं वयासी) एवं अवादीत् ॥ (५४) ॥ ५५-५६
(एवमेयं सामी !) एवं एतत् हे स्वामिन् ! (तहमेयं सामी) तथैतत् हे स्वामिन् ! (अवितहमेयं सामी) ५
यथास्थितं एतत् हे स्वामिन् ! (असंदिद्धमेयं सामी) संदेहरहितं एतत् हे स्वामिन् ! (इच्छियमेयं सामी)
वाञ्छितं एतत् हे स्वामिन् ! (पडिच्छियमेयं सामी) युष्मन्मुखात्पतदेव गृहीतं एतत् हे स्वामिन् ! (इच्छि-
यपडिच्छियमेयं सामी) वाञ्छितं सत् पुनः पुनः वाञ्छितं एतत् हे स्वामिन् ! (सच्चे णं एस अट्ठे) सत्यः एषोऽर्थः
(से जहेयं तुब्भे वयहत्ति कट्टु) स यथा—येन प्रकारेण इमं अर्थं यूयं वदथ इति उक्त्वा (ते सुमिणे सम्मं
पडिच्छइ) तान् स्वप्नान् सम्यक् प्रतीच्छति—अङ्गीकरोति (पडिच्छित्ता) अङ्गीकृत्य च (सिद्धत्थेणं रन्ना) १०
सिद्धार्थेन राज्ञा (अब्भणुन्नाया समाणी) अभ्यनुज्ञाता—स्वस्थानं गन्तुमनुमता (नाणामणिरयणभत्तिचि-
त्ताओ भद्दासणाओ) नानामणिरत्नभक्तिभिश्चित्रात् भद्रासनात् (अब्भुट्ठेइ) अभ्युत्तिष्ठति, (अब्भुट्ठित्ता)
अभ्युत्थाय च (अतुरियमचवलमसंभंताए) अत्वरितया अचपलया असम्भ्रान्तया (अविलंबियाए) विल-
म्बरहितया (रायहंससरिसीए गइए) राजहंससदृशया गत्या (जेणेव सए सयणिज्जे) यत्रैव स्वकं शयनीयं १४

कल्प.सु. १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [५६] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [५८]

कल्प.सुबो-ध्या० ३ ॥ ५५ ॥

(तेणेव उवागच्छइ) तत्रैव उपागच्छति (उवागच्छित्ता) उपागत्य च (एवं वयासी) एवं अवादीत्–(५५)॥ (मा मे एए उत्तमा) मा इति निषेधे लोके ' रखे ' इति, मम एते उत्तमाः–स्वरूपतः सुन्दराः (पहाणा) सत्फलदायकत्वात् प्रधानाः अत एव (मंगल्ला) मङ्गलकारिणः (सुमिणा दिट्ठा) स्वप्नाः दृष्टाः (अन्नेहिं पावसुमिणेहिं) अन्यैः पापस्वप्नैः (पडिहम्मिस्संतित्तिकट्टु) मा प्रतिहन्यन्तां–विफलीक्रियन्तां इतिकृत्वा (देवयगुरुजणसंबद्धाहिं) देवगुरुजनसम्बद्धाभिः अत एव (पसत्थाहिं) प्रशस्ताभिः (मंगल्लाहिं) मङ्गलकारिणीभिः (धम्मियाहिं) धार्मिकाभिः (कहाहिं) कथाभिः (सुमिणजागरियं जागरमाणी) स्वप्नजागरिकां–स्वप्नसंरक्षणार्थं जागरिका स्वप्नजागरिका तां जाग्रती (पडिजागरमाणी विहरइ) तान् स्वप्नानेव स्वापनिवारणेन प्रतिचरन्ती आस्ते इत्यर्थः ॥ (५६) ॥

(तए णं सिद्धत्थे खत्तिए) ततः सिद्धार्थः क्षत्रियः (पच्चूसकालसमयंसि) प्रभातकालसमये (कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ) कौटुम्बिकपुरुषान्–सेवकान् आकारयति (सद्दावित्ता) आकार्य च (एवं वयासी) एवं अवादीत् ॥ (५७) ॥ किमित्याह–

(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया !) क्षिप्रमेव–शीघ्रमेव अरे सेवकाः ! (अज्ज सविसेसं) अद्य उत्सवदिनत्वात् विशेषप्रकारेण (बाहिरियं उवट्ठाणसालं) बाह्यां उपस्थानशालां ' कचेरी ' इति लोके, किंविशिष्टां ? (गंधोदयसित्तं) सुगन्धोदकेन सिक्तां (सुइसंमज्जिओवलित्तं) शुचिं–पवित्रां, संमार्जितां कचवरापनयनेन उप-

कौटुम्बिक-काकारणं सू. ५७

२०

२५

॥ ५५ ॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [५८] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [६०]

लिसां छगणादिना, ततः पदत्रयस्य कर्मधारयः, (सुगंधवरपंचवण्णपुप्फोवयारकलियं) सुगन्धानां वराणां पञ्चवर्णानां च पुष्पाणां य उपचारस्तेन कलितां (कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कडज्झंतधूवमघमघंतगंधुद्धूयाभिरामं) तथा दह्यमाना ये कृष्णागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्कधूपास्तेषां मघमघायमानो यो गन्धस्तेन उद्धूताभिरामां (सुगंधवरगंधियं) तथा सुगन्धवराणां–चूर्णादीनां गन्धो यत्र तथा तां (गंधवट्टिभूयं) गन्धद्रव्यगुटिकासमानां (करेह) एवंविधां उपस्थानशालां कुरुत स्वयं (कारवेह) अन्यैः कारयत (करित्ता कारवित्ता य) कृत्वा कारयित्वा च तत्र (सीहासणं रयावेह रयावित्ता) सिंहासनं रचयत रचयित्वा (मम एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह) मम एतां आज्ञां शीघ्रमेव प्रत्यर्पयत ॥ (५८) ॥

(तए णं ते कोडुंबियपुरिसा) ततोऽनन्तरं ते कौटुम्बिकपुरुषाः (सिद्धत्थेणं रन्ना) सिद्धार्थेन राज्ञा (एवं वुत्ता समाणा) एवं उक्ताः सन्तः (हट्ठतुट्ठजावहिअया) हृष्टास्तुष्टा इत्यादि पूर्ववत् हर्षपूर्णहृदयाः (जावअंजलिं कट्टु) यावत् अञ्जलिं कृत्वा (एवं सामित्ति) हे स्वामिन् ! यथा यूयं आदिशथ तत्तथैव अस्माभिरवश्यं कर्त्तव्यं इत्युक्त्वा (आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति) आज्ञया विनयेन वचनं प्रतिशृण्वन्ति (पडिसुणित्ता) प्रतिश्रुत्य च (सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतिआओ) सिद्धार्थस्य क्षत्रियस्य पार्श्वात् (पडिनिक्खमंति) बहिस्तान्निष्क्रामन्ति (पडिनिक्खमित्ता) तथा कृत्वा (जेणेव बहिरिआ उवट्ठाणसाला) यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला (तेणेव उवागच्छंति) तत्रैव उपागच्छन्ति (उवागच्छित्ता) उपागत्य (खिप्पामेव) शीघ्रं एव

सिंहासन-रचनादि देशः सू. ५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५९] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [६१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-व्या० ३ ॥ ५६ ॥

(सविसेसं बाहिरियं उवट्ठाणसालं) विशेषप्रकारेण बाह्यां उपस्थानशालां (गंधोदयसित्तं सुइं) गन्धोदकेन सिक्तां तथा शुचिं च कृत्वा (जाव सीहासणं रयावेंति) यावत् तत्र सिंहासनं रचयन्ति (रयावित्ता) रचयित्वा (जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए) यत्रैव सिद्धार्थः क्षत्रियः (तेणेव उवागच्छंति) तत्रैव उपागच्छन्ति (उवागच्छित्ता) उपागत्य (करयल जाव मत्थए अंजलिं कट्टु) करतलाभ्यां यावत् मस्तके अञ्जलिं कृत्वा (सिद्धत्थस्स खत्तियस्स) सिद्धार्थस्य क्षत्रियस्य (तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति) तां आज्ञां प्रत्यर्पयन्ति, तत्तथैव सर्वं कृत्वा अस्माभिर्भवदादेशः कृत इति निवेदयन्तीत्यर्थः ॥ (५९) ॥

(तए णं सिद्धत्थे खत्तिए) ततः स सिद्धार्थः क्षत्रियः (कल्लं पाउप्पभाए रयणीए) कल्ये–आगामिनि दिने 'प्रादुरित्यव्ययं प्रकाशे' ततः प्रकटप्रभातायां एवंविधायां रजन्यां जातायां सत्यां (फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियंमि) फुल्लं–विकसितं यत् उत्पलं–पद्मं कमलश्च–हरिणविशेषस्तयोः सुकुमालं उन्मिलितं—विकसनं दलानां नयनयोश्च यस्मिन्नेवंविधे (अहापंडुरे पभाए) अथ–रजनीविभातानन्तरं पाण्डुरे–उज्ज्वले प्रभाते, अयमर्थः–यस्मिन्प्रभाते पद्मानां दलविकासेन विकसनं जातं हरिणानां च नयनविकासेनेति, तस्मिन् प्रभाते जाते, पूर्वं रजनी विभाता तत ईषत्प्रकाशो जातः ततश्च पाण्डुरं–उज्ज्वलं प्रभातं जातं ततश्च क्रमेण सूर्ये उद्गते सति, अथ किंविशिष्टे सूर्ये ? (रत्तासोगप्पगासत्ति) रक्तस्य अशोकस्य यः प्रकाशः–प्रभासमूहः (किंसुअत्ति) किंशुकं च–पलाशपुष्पं (सुअमुहत्ति) शुकमुखं–शुकचञ्चुपुटं (गुंजद्धरागत्ति) गुञ्जाया अर्धं कृष्णभा-

सिंहासनरचनादि सू. ५९उत्थानं सू. ६० २० २५ ॥ ५६ ॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [६०] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [६२]

गार्दैन्यभागलक्षणं एतेषां यो रागो–रक्तत्वं तथा (बंधुजीवगत्ति) बन्धुजीवकं–पुष्पविशेषः 'बपोहरीआ फुल' इति लोकप्रसिद्धं (पारावयचलणनयणत्ति) पारापतस्य चरणनयनं (परहुअसुरत्तलोअणत्ति) परभृतस्य–कोकिलस्य सुरक्तं–कोपादिना रक्तीकृते ये लोचने (जासुअणकुसुमरासित्ति) जपापुष्पस्य 'जासूद' इति लोकप्रसिद्धस्य यो राशिः–समूहस्तथा (हिंगुलनिअराइरेगरेहंतसरिसे) हिंगुलनिकरश्च प्रसिद्धः, एतेभ्यः सर्ववस्तुभ्यः अतिरेकेण राजमानः सन् सदृशः, अत्र यः अतिरेकेण राजमानः स सदृशः कथं भवतीत्याशङ्कायां रक्तत्वमात्रेण सदृशः कान्त्या तु अतिरेकेण राजमान इति वृद्धाः, अथवा रक्ताशोकप्रकाशादीनां हिङ्गुलनिकरान्तानां यो राजमानोऽतिरेकः–प्रकर्षस्तत्सदृश इति, पुनः किंविशिष्टे सूर्ये ? (कमलायरसंडविबोहए) कमलानां आकरा–उत्पत्तिस्थानानि ये पद्महृदादयस्तेषु यानि खण्डानि कमलवनानि तेषां विकाशके (उट्ठियंमि सूरे) एवंविधे अभ्युदिते सूर्ये सति, पुनः किंवि० ? (सहस्सरस्सिंमि) सहस्ररश्मौ, पुनः किंवि० ? (दिणयरे) दिनकरे–दिनकरणशीले, पुनः किंवि० ? (तेअसा जलंते) तेजसा देदीप्यमाने (तस्स य करपहरापरद्धंमि अंधयारे) तस्य च–श्रीसूर्यस्य करप्रहारैः–किरणाभिघातैः अन्धकारे अपराद्धे–विनाशिते सति, अथ च (बालायवकुंकुमेणं खचियव्व जीवलोए) बालातपः प्रसिद्धः स कुङ्कुममिव तेन जीवलोके–मनुष्यलोके खचिते–व्याप्ते सति, कोऽर्थः ?–यथा कुङ्कुमेन किञ्चिद्वस्तु पिञ्जरीक्रियते तथा बालातपेन जीवलोके पिञ्जरीकृते सति (सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ) शयनीयात् अभ्युत्तिष्ठति ॥ (६०) ॥

नृपस्योत्थानं सू. ६०

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [६१] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [६३]

कल्प.सुबो-ध्या० ३

॥ ५७ ॥

(सयणिज्जाओ अब्भुट्ठित्ता) स सिद्धार्थः शयनीयादभ्युत्थाय (पायपीढाओ पच्चोरुहइ) पादपीठात् प्रत्यवतरति (पच्चोरुहित्ता) प्रत्यवतीर्य (जेणेव अट्टणसाला) यत्रैव अट्टनशाला–परिश्रमशाला (तेणेव उवागच्छइ) तत्रैव उपागच्छति (उवागच्छित्ता) उपागत्य च (अट्टणसालं अणुपविसइ) अट्टनशालां अनुप्रविशति (अणुपविसित्ता) अनुप्रविश्य च (अणेगवायामत्ति) अनेकानि व्यायामाय–परिश्रमाय (जोग्ग-वग्गणत्ति) योग्या–अभ्यासः 'खुरली तु श्रमो योग्याऽभ्यास' इति वचनात् वल्गनं–अन्योऽन्यं उपर्युपरि पतनं (वामद्दणत्ति) व्यामर्दनं–परस्परेण बाह्याभ्यङ्गमोटनं (मल्लजुद्धकरणेहिं) मल्लयुद्धानि प्रतीतानि, करणानि च–अङ्ग-गभङ्गविशेषाः मल्लशास्त्रोक्ताः एतैः कृत्वा (संते परिस्संते) श्रान्तः–सामान्येन श्रमं उपगतः, परिश्रान्तः–सर्वाङ्गीणश्रमं प्राप्तः, एवंविधः सन् (सयपागसहस्सपागेहिं) शतवारं नवनवौषधरसेन पक्वानि, अथवा यस्य पाके शतं सौवर्णा लगन्ति तानि शतपाकानि एवं सहस्रपाकानि एवंविधैः (सुगंधवरतिल्लमाइएहिं) सुगन्ध-वरतैलादिभिः, आदिशब्दात् कर्पूरपानीयादीनि ग्राह्याणि, अथ कीदृशैः तैलादिभिः ? (पीणणिज्जेहिं) प्रीणनीयैः–रसरुधिरादिधातुसमताकारिभिः (दीवणिज्जेहिं) दीपनीयैः–अग्निदीपिकरैः (मयणिज्जेहिं) मदनीयैः–कामवृद्धिकरैः (विंहणिज्जेहिं) बृंहणीयैः–मांसपुष्टिकरैः (दप्पणिज्जेहिं) दर्पणीयैः–बलकारिभिः (सव्विंदियगायपल्हायणिज्जेहिं) सर्वाणि इन्द्रियाणि गात्राणि च तेषां प्रह्लादनीयैः–आप्यायनाकारिभिः एतादृशैः तैलादिभिः (अब्भंगिए समाणे) अभ्यङ्गितः सन् (तिल्लचम्मंसि) तैलचर्मणि, तैलाभ्यङ्गानन्तरं

अट्टनशा-लागमादि सू. ६१

२०

२५

॥ ५७ ॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [६१] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [६३]

एवंविधैः पुरुषैः संवाहितः सन् अपगतपरिश्रमो जात इति योगः, अथ किंविशिष्टैः पुरुषैः ? (निउणेहिं) निपुणैः–उपायविचक्षणैः, पुनः किंवि० ? (पडिपुन्नपाणिपायसुकुमालकोमलतलेहिं) प्रतिपूर्णस्य पाणिपादस्य सुकुमालकोमलानि–अत्यन्तकोमलानि तलानि येषां ते तथा तैः अत्र किरणावलीकारेण दीपिकाकारेण च प्रतिपूर्णानां पाणिपादानां इति प्रयोगो लिखितः स तु चिन्त्यः 'प्राणितूर्यागाणा' मितिसूत्रेणावश्यं हैमव्याकरणमते एकवद्भावभवनात्, पुनः किंवि० ? (अब्भंगणपरिमद्दणुव्वलणकरणगुणनिम्माएहिं) अभ्यङ्गनं–तैलादिना म्रक्षणं परिमर्दनं–तस्य तैलस्य मर्दनं उद्वलनं–तस्य तैलस्य बहिःकर्षणं उद्वर्तनं वा, एतेषां करणे ये गुणविशेषास्तेषु निर्मातैः–विशिष्टाभ्यासवद्भिः पुनः किंवि० ? (छेएहिं) छेकैः–अवसरज्ञैः पुनः किंवि० ? (दक्खेहिं) दक्षैः–त्वरितत्वरितकार्यकारिभिः, पुनः किंवि० ? (पट्ठेहिं) प्रष्टैः–मर्दनकारिणां अग्रेसरैः पुनः किंवि० ? (कुसलेहिं) कुशलैः–विवेकिभिः, पुनः किंवि० ? (मेहाविहिं) मेधाविभिः–अपूर्वविज्ञानग्रहणसमर्थैः, पुनः किंवि० ? (जिअपरिस्समेहिं) जितपरिश्रमैः–बहुपरिश्रमकरणेऽपि श्रममनाप्नुवद्भिः (पुरिसेहिं) एवंविधैः पुरुषैः (अट्ठिसुहाए) अस्थ्नां सुखकारिण्या (मंससुहाए) मांसस्य सुखकारिण्या (तयासुहाए) त्वचः सुखकारिण्या (रोमसुहाए) रोम्णां सुखकारिण्या (चउव्विहाए) इत्येवंरूपया चतुष्प्रकारया (सुहपरिकम्मणाए) सुखा–सुखकारिणी परिकर्मणा–अङ्गशुश्रूषा यस्यां सा तथा एवंविधया (संबाहणाए) सम्बाधनया–विश्रामणया (संबाहिए समाणे) संवाहितः–कृतविश्रामणः सन् (अवगयपरि-

अट्ठनशालागमादि सू. ६१

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [६२] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [६४]

कल्प.सुबो-ध्या० ३ ॥ ५८ ॥

स्समे) अपगतपरिश्रमः (अट्टणसालाओ पडिनिक्खमइ) अट्टनशालायाः प्रतिनिष्क्रामति ॥ (६१) ॥ (अट्टणसालाओ पडिनिक्खमित्ता) अट्टनशालायाः प्रतिनिष्क्रम्य (जेणेव मज्जणघरे) यत्रैव मज्जनगृहं (तेणेव उवागच्छइ) तत्रैव उपागच्छति (उवागच्छित्ता) उपागत्य (मज्जणघरं अणुपविसइ) मज्जनगृहं अनुप्रविशति (अणुपविसित्ता) अनुप्रविश्य (समुत्तजालाकुलाभिरामे) समुक्त-मुक्ताफलयुक्तं यत् जालं-गवाक्षस्तेन आकुलो-व्याप्तोऽभिरामश्च तस्मिन् (विचित्तमणिरयणकुट्टिमतले) विचित्राणां मणिरत्नानां बद्धभूभागो यस्य स तथा तस्मिन् (रमणिज्जे) रमणीये (ण्हाणमंडवंसि) एवंविधे स्नानमण्डपे (नाणा-मणिरयणभत्तिचित्तंसि) तथा नानामणिरत्नभक्तिभिः चित्रे (ण्हाणपीढंसि) एवंविधे स्नानपीठे (सुहनि-सन्ने) सुखेन निषण्णः-उपविष्टः सुखनिषण्णः सन् (पुप्फोदएहि य) पुष्पोदकैः-पुष्परसमिश्रैर्जलैः (गंधो-दएहि य) गन्धोदकैः- श्रीखण्डादिरसमिश्रैर्जलैः (उण्होदएहि य) उष्णोदकैः (सुहोदएहि य) शुभोदकैः-तीर्थजलैः (सुद्धोदएहि य) शुद्धोदकैः- स्वभावनिर्मलोदकैः एवंप्रकारैर्विविधपानीयैः कृत्वा (कल्लाणकरणप-वरमज्जणविहियमज्जिए) कल्याणकरणे प्रवरः-प्रवीण एवंविधो यो मज्जनविधिस्तेन मज्जितस्तादृशैः पुरुषै-रिति शेषः (तत्थ कोउअसएहिं बहुविहेहिं) तत्र-स्नानावसरे कौतुकशतैः- रक्षादीनां शतैः बहुविधैः संयुक्ते, अथ कीदृशो राजा ? (कल्लाणगपवरमज्जणावसाणे) कल्याणकारि एवंविधं यत् प्रवरमज्जनं तस्यावसाने-प्रान्ते (पम्हलसुकुमालगंधकासाइअलूहियंगे) पक्ष्मला अत एव सुकुमाला गन्धप्रधाना काषायिका-कषायरक्ता

मज्जनादि सू. ६२

२०

२५

॥ ५८ ॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [६२] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [६४]

शाटिका तया लूक्षितं–निर्जलीकृतं अङ्गं–शरीरं यस्य स तथा, पुनः कीदृशो राजा? (अहयसुमहग्घदूसरयण- सुसंवुडे) अहतं–अव्यङ्गं सुमहार्घं–बहुमूल्यं ईदृशं यत् दूष्यरत्नं– वस्त्ररत्नं तेन सुष्ठु संवृतः, परिहितदूष्यरत्न इत्यर्थः, पुनः किंवि० ? (सरससुरभिगोसीसचंदणाणुलित्तगत्ते) सरसेन सुरभिणा च गोशीर्षचन्दनेन अनु- लिप्तं गात्रं यस्य स तथा, पुनः किंवि० ? (सुहमालावन्नगविलेवणे) तत्र माला–पुष्पमाला वर्णकविलेपनं च– मण्डनकारि कुङ्कुमादिविलेपनं तत् उभयं शुचि–पवित्रं यस्य स तथा, पुनः किंवि० ? (आविद्धमणिसुवन्ने) आविद्धानि–परिहितानि,मणिसुवर्णानि–लक्षणया मणिसुवर्णमयानि भूषणानि . येन स तथा, पुनः किंवि० ? (कप्पियहारद्धहारतिसरयत्ति) कल्पिता–विन्यस्ता ये हारादयः, तत्र हारः–अष्टादशसरिकः अर्धहारो–नवस- रिकस्त्रिसरिकं च प्रतीतं तथा (पालंबपलंबमाणत्ति) प्रलम्बमानः प्रालम्बो–झुम्बनकं (कडिसुत्तत्ति) कटिसूत्रं च- कट्याभरणं एतैः कृत्वा (सुकयसोहे) सुष्ठु कृता शोभा यस्य स तथा, पुनः किंवि० ? (पिणद्धगेविज्जे) पिन- द्धानि–परिहितानि ग्रैवेयानि–ग्रीवाभरणानि येन स तथा, पुनः किंवि० ? (अंगुलिज्जगललियकयाभरणे) अङ्गुलीयकानि–अङ्गुल्याभरणानि ललितानि यानि कचाभरणानि–केशमण्डनानि पुष्पादीनि यस्य स तथा, पुनः किंवि० ? (वरकडगतुडिअथंभिअभुए) वरैः–प्रधानैः कटकैः–वलयैः त्रुटिकैश्च–बाह्याभरणैः स्तम्भितौ इव भुजौ यस्य स तथा, पुनः किंवि० ? (अहिअरूवसस्सिरीए) अधिकरूपेण सश्रीको यः स तथा, पुनः किंवि० ? (कुंडलुज्जोइआणणे) कुण्डलाभ्यामुद्योतितमाननं–मुखं यस्य स तथा, पुनः किंवि० ? (मउडदित्तसिरए)

मज्जनादि सू. ६२ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [६२] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [६४]

कल्प.सुबो-ध्या० ३

॥ ५९ ॥

मज्जनादि सू. ६२

मुकुटेन दीप्तं शिरो यस्य स तथा, पुनः किंवि० ? (हारुच्छयसुकयरइयवच्छे) हारेण अवस्तृतं–आच्छादितं अत एव सुष्ठु कृतरतिकं–द्रष्टृणां प्रमोददायि एवंविधं वक्षो–हृदयं यस्य स तथा, पुनः किंवि० ? (मुद्दिया-पिंगलंगुलिए) मुद्रिकाभिः पिङ्गलाः–पीतवर्णा अङ्गुलयो यस्य स तथा, पुनः किंवि० ? (पालंबपलंबमाणसु-कयपडउत्तरिज्जे) प्रलम्बेन–दीर्घेण अत एव प्रलम्बमानेन ईदृशेन पटेन सुष्ठु कृतः उत्तरासङ्गो येन स तथा, पुनः किंवि० ? (नाणामणिकणगरयणविमलत्ति) नानाप्रकारैर्मणिकनकरत्नैर्विमलानि–दीप्तिमन्ति अत एव (महरिहत्ति) महार्हाणि (निउणोवचियत्ति) निपुणेन शिल्पिना उपचितानि–परिकर्मितानि (मिसिमिसिंतत्ति) देदीप्यमानानि एवंविधानि (विरइयत्ति) विरचितानि (सुसिलिट्ठत्ति) सुश्लिष्टानि–सुयोजितसन्धीनि अत एव (विसिट्ठत्ति) विशिष्टानि–अन्येभ्योऽतिरमणीयानि (लट्ठत्ति) लष्टानि–मनोहराणि एवंविधानि (आविद्धवीरव-लए) आविद्धानि–परिहितानि वीरवलयानि–वीरत्वगर्वसूचकानि वलयानि येन स तथा, यः कश्चिद्वीरंमन्यः स मां विजित्य इमानि मोचयतु इतिबुद्ध्या धृतवीरवलय इत्यर्थः, उपसंहरति–(किंबहुणा) बहुना वर्णकवा-क्येन किं ? (कप्परुक्खए विव अलंकियविभूसिए) कल्पवृक्ष इव अलङ्कृतविभूषितः, तत्र कल्पवृक्षः अलङ्कृतः पत्रादिभिः विभूषितश्च पुष्पादिभिः राजा तु अलङ्कृतो मुकुटादिभिः, विभूषितो वस्त्रादिभिः, ईदृशो (नरिंदे) नरेन्द्रः (सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं) कोरिंटवृक्षसम्बन्धीनि माल्यानि–पुष्पा-णि मालायै हितानीति व्युत्पत्तेस्तेषां दामभिः सहितेन छत्रेण ध्रियमाणेन (सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं)

२०

२५

॥ ५९ ॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [६२] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [६४]

श्वेतवरचामरैरुद्धूयमानैश्च शोभित इति शेषः, पुनः किंवि० ? (मंगलजयसद्दकयालोए) मङ्गलभूतो जय-
शब्दः कृत आलोके—दर्शने यस्य स तथा, यस्य दर्शने लोकैर्जयजयशब्दः क्रियमाणोऽस्तीति ज्ञेयं, पुनः
किंवि० ? (अणेगगणनायगत्ति) अनेके ये गणनायकाः—स्वस्वसमुदायस्वामिनः (दंडनायगत्ति) दण्डनायकाः
तन्त्रपालाः स्वराष्ट्रचिन्ताकर्त्तारः इत्यर्थः (रायत्ति) राजानो—माण्डलिकाः (ईसरत्ति) ईश्वराः—युवराजाः 'पाट-
वीकुंवर' इति लोके, अत्र किरणावलीकारेण दीपिकाकारेण च ईश्वरा युवराजान इति प्रयोगो लिखितः, ५
स तु चिन्त्यः, अदूसमासान्तागमनेन युवराजा इति प्रयोगभवनात् (तलवरत्ति) तलवराः—तुष्टभूपालप्रदत्तपट्ट-
बन्धविभूषिता राजस्थानीयाः (माडंबियत्ति) माडम्बिकाः—मडम्बस्वामिनः (कोडुंबियत्ति) कौटुम्बिकाः—कति-
पयकुटुम्बस्वामिनः (मंतित्ति) मन्त्रिणो—राज्याधिष्ठायकाः सचिवाः (महामंतित्ति) महामन्त्रिणः त एव विशे-
षाधिकारवन्तः (गणगत्ति) गणकाः—ज्योतिषिकाः (दोवारियत्ति) दौवारिकाः—प्रतिहाराः (अमच्चत्ति) अमात्याः—
सहजन्मानो मन्त्रिणः (चेडत्ति) चेटा—दासाः (पीढमद्दत्ति) पीठमर्दकाः—पीठं—आसनं मर्दयन्तीति पीठमर्दकाः- १०
आसन्नसेवकाः वयस्या इत्यर्थः (नगरत्ति) नागरा—नगरवासिनो लोकाः (निगमत्ति) निगमा—वणिजः (सिट्ठित्ति)
श्रेष्ठिनो—नगरमुख्यव्यवहारिणः (सेणावइत्ति) सेनापतयः चतुरङ्गसेनाधिकारिणः (सत्थवाहत्ति) सार्थवाहाः—
सार्थनायकाः (दूअत्ति) दूताः—अन्येषां गत्वा राजादेशनिवेदकाः (संधिवालत्ति) सन्धिपालाः—सन्धिरक्षकाः
(सद्धिं संपरिवुडे) एतैः सर्वैः सार्धं संपरिवृतः, ईदृशो नरपतिर्मज्जनगृहात् प्रतिनिष्क्रामतीति योगः, अथ १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६२] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [६४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-व्या० ३ ॥ ६० ॥

मज्जनगृहान्निष्क्रमणे उपमां आह—(धवलमहामेहनिग्गए इव) धवलमहामेघनिर्गत इव—यथा (गहगण-दिप्पंतरिक्खतारागणाण मज्झे ससिव्व) ग्रहसमूहदीप्यमानऋक्षतारागणानां मध्ये वर्त्तमानः शशीव, अत्र ग्रहगणऋक्षतारागणतुल्यः पूर्वोक्तः परिवारः शशितुल्यस्तु राजेति, कीदृशो नृपः ? (पियदंसणे) प्रियं दर्शनं यस्य स तथा, यथा हि वार्दलान्निर्गतो नक्षत्रादिपरिवृतश्च शशी प्रियदर्शनो भवति तथा सोऽपि नरपतिरिति भावः, पुनः कीदृशो नृपः ? (नरवइत्ति) नरपतिः—प्रजापालकः (नरिंदे) नरेन्द्रः—नरेषु इन्द्रसमानः (नरवसहे) नरवृषभः—धराभारधुरन्धरत्वान्नरेषु वृषभसमानः (नरसीहे) नरसिंहो—दुस्सहपराक्रमत्वात् नरेषु सिंहसमानः, पुनः किंवि० ? (अब्भहियरायतेयलच्छीए दिप्पमाणे) दीप्यमानः, कया ?—अभ्यधिकराजतेजोलक्ष्म्या, एवंविधो नृपतिः (मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ) मज्जनगृहात्—स्नानमन्दिरात् प्रतिनिष्क्रामति ॥ (६२) ॥

(मज्जणघराओ पडिनिक्खमित्ता) स्नानमन्दिरात् प्रतिनिष्क्रम्य (जेणेव बहिरिया उवट्ठाणसाला) यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला (तेणेव उवागच्छइ) तत्रैव उपागच्छति (उवागच्छित्ता) उपागत्य (सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे निसीअइ) सिंहासने पूर्वाभिमुखो निषीदति—उपविशति ॥ (६३) ॥

(सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे निसीइत्ता) सिंहासने पूर्वाभिमुखो निषद्य—उपविश्य (अप्पणो) आत्मनः सकाशात् (उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए) ईशानकोणे दिग्भागे (अट्ठ भद्दासणाइं) अष्ट भद्रासनानि, अथ

सिंहासने उपवेशः सू. ६३

२०

२५

॥ ६० ॥

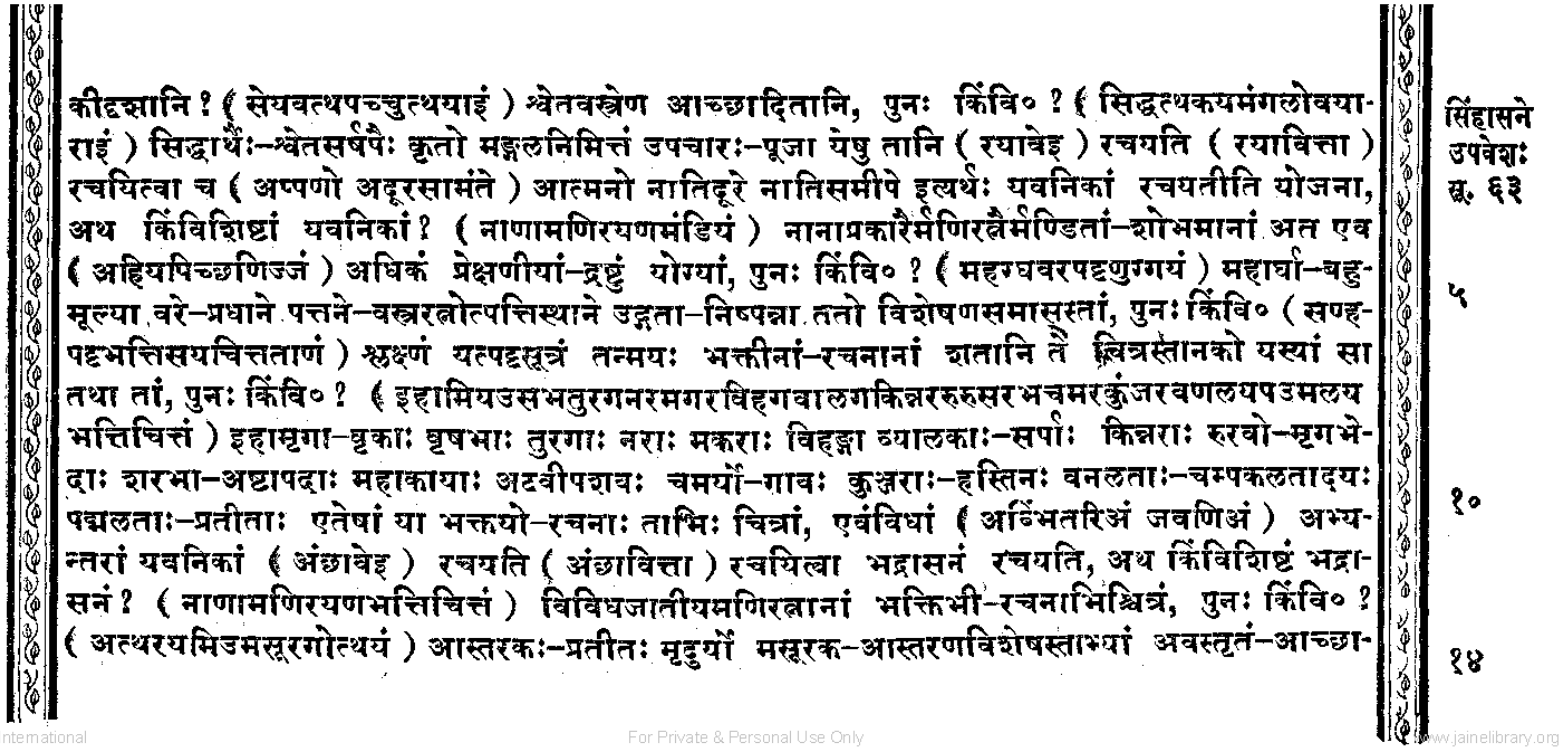
२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [६४] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [६६]



कीदृशानि ? (सेयवत्थपच्चुत्थयाइं) श्वेतवस्त्रेण आच्छादितानि, पुनः किंवि० ? (सिद्धत्थकयमंगलोवयाराइं) सिद्धार्थैः–श्वेतसर्षपैः कृतो मङ्गलनिमित्तं उपचारः–पूजा येषु तानि (रयावेइ) रचयति (रयावित्ता) रचयित्वा च (अप्पणो अदूरसामंते) आत्मनो नातिदूरे नातिसमीपे इत्यर्थः यवनिकां रचयतीति योजना, अथ किंविशिष्टां यवनिकां ? (नाणामणिरयणमंडियं) नानाप्रकारैर्मणिरत्नैर्मण्डितां–शोभमानां अत एव (अहियपिच्छणिज्जं) अधिकं प्रेक्षणीयां–द्रष्टुं योग्यां, पुनः किंवि० ? (महग्घवरपट्टणुग्गयं) महार्घा–बहुमूल्या वरे–प्रधाने पत्तने–वस्त्ररत्नोत्पत्तिस्थाने उद्गता–निष्पन्ना ततो विशेषणसमासस्तां, पुनः किंवि० (सण्हपट्टभत्तिसयचित्ततातं) श्लक्ष्णं यत्पट्टसूत्रं तन्मयः भक्तीनां–रचनानां शतानि तैः चित्रस्तानको यस्यां सा तथा तां, पुनः किंवि० ? (इहामियउसभतुरगनरमगरविहगवालगकिन्नररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलय भत्तिचित्तं) इहामृगा–वृकाः वृषभाः तुरगाः नराः मकराः विहङ्गा व्यालकाः–सर्पाः किन्नराः रुरवो–मृगभेदाः शरभा–अष्टापदाः महाकायाः अटवीपशवः चमर्यो–गावः कुञ्जराः–हस्तिनः वनलताः–चम्पकलतादयः पद्मलताः–प्रतीताः एतेषां या भक्तयो–रचनाः ताभिः चित्रां, एवंविधां (अब्भिंतरिअं जवणिअं) अभ्यन्तरां यवनिकां (अंछावेइ) रचयति (अंछावित्ता) रचयित्वा भद्रासनं रचयति, अथ किंविशिष्टं भद्रासनं ? (नाणामणिरयणभत्तिचित्तं) विविधजातीयमणिरत्नानां भक्तिभी–रचनाभिश्चित्रं, पुनः किंवि० ? (अत्थरयमिउमसूरगोत्थयं) आस्तरकः–प्रतीतः मृदुर्यो मसूरक–आस्तरणविशेषस्ताभ्यां अवस्तृतं–आच्छा-

सिंहासने उपवेशः सू. ६३

५

१०

१४

कल्प.सु. ११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [६४] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [६६]

कल्प.सुबो-ध्या० ३

॥ ६१ ॥

दितं यद्वा अस्तरजसा-निर्मलेन मृदुना-कोमलेन मसूरकेण-चाकलो गादी इति जनप्रसिद्धेन आच्छादितं पुनः किंवि० ? (सेअवत्थपच्चुत्थयं) श्वेतेन वस्त्रेण प्रत्यवस्तृतं-उपरि आच्छादितं, पुनः किंवि० ? (सुमउअं) सुतरां मृदुकं-अतिकोमलं, पुनः किंवि० ? (अंगसुहफरिसगं) अङ्गस्य सुखः-सुखकारी स्पर्शो यस्य स तथा, अत एव (विसिट्ठं) विशिष्टं-शोभनं (तिसलाए खत्तिआणीए) त्रिशलायै क्षत्रियाण्यै तद्योग्यं इत्यर्थः, ईदृशं (भद्दासणं रयावेइ) भद्रासनं रचयति (रयावित्ता) रचयित्वा च (कोडुंबिअपुरिसे सद्दावेइ) कौटुम्बिक-पुरुषान् शब्दयति (सद्दावित्ता) शब्दयित्वा च (एवं वयासी) एवं अवादीत् ॥ ६४ ॥ किमित्याह—

(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ!) शीघ्रमेव भो देवानुप्रियाः-सेवकाः ! स्वप्नलक्षणपाठकान् शब्दयत, अथ किंविशिष्टान् स्वप्नलक्षणपाठकान् ? (अट्ठंगमहानिमित्तसुत्तत्थधारए) अष्ट अङ्गानि यत्र एवंविधं यत् महा-निमित्तं-निमित्तशास्त्रं भाविपदार्थसूचकस्वप्नादिफलव्युत्पादको ग्रन्थस्तस्य सूत्रार्थौ धारयन्ति ये ते तथा तान्, तत्र निमित्तस्य अष्ट अङ्गानि इमानि-अङ्गं १ स्वप्नं २ स्वरं ३ चैव, भौमं ४ व्यञ्जन ५ लक्षणे ६ । उत्पाद ७-मन्तरिक्षं च ८, निमित्तं स्मृतमष्टधा ॥ १ ॥ तत्र पुंसां दक्षिणाङ्गे, स्त्रीणां वामाङ्गे स्फुरणं सुन्दरमित्यादयङ्ग-विद्या १ स्वप्नानां उत्तममध्यमाधमविचारः स्वप्नविद्या २ दुर्गादीनां स्वरपरिज्ञानं स्वरविद्या ३ भौमं-भूमिक-म्पादिविज्ञानं ४ व्यञ्जनं-मषीतिलकादि ५ लक्षणं-करचरणरेखादि सामुद्रिकोक्तं ६ उत्पात-उल्कापातादिः ७ अन्तरिक्षं-ग्रहाणां उदयास्तादिपरिज्ञानम् ८ पुनः किंवि० ? (विविहसत्थकुसले) विविधानि यानि

सिंहासने उपवेशः सू. ६३

१५ २० २५ ॥ ६१ ॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६५] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [६७]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

शास्त्राणि तत्र कुशलाः तान् (सुविणलक्खणपाढए) एवंविधान् स्वप्नलक्षणपाठकान् (सद्दावेह) आकारयत ॥ (तए णं ते कोडुंबियपुरिसा) ततः ते कौटुम्बिकाः पुरुषाः (सिद्धत्थेणं रन्ना एवं वुत्ता समाणा) सिद्धार्थेन राज्ञा एवं उक्ताः सन्तः (हट्ठतुट्ठ जाव हिअया) हृष्टतुष्टाः यावत् हर्षपूर्णहृदयाः (करयल जाव पडिसुणंति) करतलाभ्यां यावत् प्रतिशृण्वन्ति, यावत्करणात् " करयलपरिग्गहिअं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अञ्जलिं कट्टु, एवं देवो तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति " इति वाच्यं, आज्ञया विनयेन वचनं प्रतिशृण्वन्ति ॥ (६५) ॥

(पडिसुणित्ता) प्रतिश्रुत्य (सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतिआओ) सिद्धार्थस्य क्षत्रियस्य पार्श्वात् (पडिनिक्खमंति) बहिः निस्सरन्ति (पडिनिक्खमित्ता) प्रतिनिष्क्रम्य (कुंडग्गामं नयरं) क्षत्रियकुंडग्रामस्य नगरस्य (मज्झंमज्झेणं) मध्यभागेन (जेणेव सुमिणलक्खणपाढगाणं गेहाइं) यत्रैव स्वप्नलक्षणपाठकानां गृहाणि सन्ति (तेणेव उवागच्छंति) तत्रैव उपागच्छन्ति (उवागच्छित्ता) उपागत्य (सुविणलक्खणपाढए सद्दाविंति) स्वप्नलक्षणपाठकान् शब्दयन्ति ॥ (६६) ॥

(तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा) ततः–अनन्तरं ते स्वप्नलक्षणपाठकाः (सिद्धत्थस्स खत्तियस्स) सिद्धार्थस्य क्षत्रियस्य (कोडुंबियपुरिसेहिं) कौटुम्बिकपुरुषैः (सद्दाविया समाणा) आकारिताः सन्तः (हट्ठतुट्ठजावहिअया) हृष्टाः तुष्टाः यावत् हृदयाः, पुनः किंविशिष्टास्ते ? (ण्हाया) स्नाताः, पुनः किंवि० ? (कयबलिकम्मा) कृतं

स्वप्नपाठकाकारणागमने सू. ६६–६७ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६७] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [६९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

बलिकर्म–पूजा यैस्ते, पुनः किंवि० ? (कयकोउयमंगलपायच्छित्ता) कौतुकानि–तिलकादीनि मङ्गलानि–दधि-दूर्वाक्षतानि तान्येव प्रायश्चित्तानि–दुःस्वप्नादिविध्वंसकानि कृतानि यैस्ते तथा, पुनः किंवि० ? (सुद्धप्पवे-साइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवराइं परिहिया) शुद्धानि–उज्ज्वलानि प्रवेश्यानि–राजसभाप्रवेशयोग्यानि उत्सवा-दिमङ्गलसूचकानि एवंविधानि प्रवरवस्त्राणि परिहितानि यैस्ते तथा, पुनः किंवि० ? (अप्पमहग्घाभरणालं-कियसरीरा) अल्पानि–स्तोकानि अथ च महार्घाणि–बहुमूल्यानि एवंविधानि यानि आभरणानि तैः अल-ङ्कृतं शरीरं येषां ते तथा, पुनः किंवि० ? (सिद्धत्थयहरियालियाकयमंगलमुद्धाणा) सिद्धार्थाः–श्वेतसर्षपाः हरितालिका–दूर्वा तद् उभयं कृतं मङ्गलनिमित्तं मूर्धनि यैस्ते तथा, एवंविधाः सन्तः (सएहिं सएहिं गेहेहिंतो निग्गच्छंति) स्वकेभ्यः स्वकेभ्यो गेहेभ्यः निर्गच्छन्ति (निग्गच्छित्ता) निर्गत्य च (खत्तियकुंडग्गामं नयरं मज्झंमज्झेणं) क्षत्रियकुंडस्य ग्रामस्य नगरस्य मध्यंमध्येन (जेणेव सिद्धत्थस्स रन्नो) यत्रैव सिद्धार्थस्य राज्ञः (भवणवरवडिंसगपडिदुवारे) भवनवरावतंसकप्रतिद्वारं, भवनवरेषु–भवनश्रेष्ठेषु अवतंसक इव–मुकुट इव भवनवरावतंसकस्तस्य प्रतिद्वारं–मूलद्वारं (तेणेव उवागच्छंति) तत्रैव उपागच्छन्ति (उवागच्छित्ता) उपागत्य च (भवणवरवडिंसगपडिदुवारे) भवनवरावतंसकप्रतिद्वारे (एगओ मिलंति) एकत्र मिलन्ति–सम्म-तीभवन्ति, सर्वसम्मतमेकं पुरस्कृत्य अन्ये तदनुयायिनो भवन्तीति तत्त्वं ॥ यतः—सर्वेऽपि यत्र नेतारः, सर्वे पण्डितमानिनः। सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति, तद्वृन्दमवसीदति ॥ १ ॥ दृष्टान्तश्च अत्र पञ्चशतसुभटानां, तद्यथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [६७] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [६९]

काचित्सुभटानां पञ्चशती परस्परमसम्बद्धा सेवानिमित्तं कस्यचिद्राज्ञः पुरो ययौ, राज्ञा च मन्त्रिवचसा परिक्षार्थं एकैव शय्या प्रेषिता, ते च सर्वेऽपि अहमिन्द्रा लघुवृद्धव्यवहाररहिताः परस्परं विवदमानाः सर्वैरपि एषा शय्या व्यापार्या इति बुद्ध्या शय्यां मध्ये मुक्त्वा तदभिमुखपादाः शयितवन्तः, प्रातश्च प्रच्छन्नमुक्तपुरुषैर्यथावद्यतिकरे निवेदिते कथं एते स्थितिरहिताः परस्परं असम्बद्धाः युद्धादि करिष्यन्तीति राज्ञा निर्भर्त्स्य निष्कासिता इति । ततस्ते स्वप्नपाठकाः (एगओ मिलित्ता) एकत्र मिलित्वा (जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला) यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला (जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए) यत्रैव सिद्धार्थः क्षत्रियः (तेणेव उवागच्छन्ति) तत्रैवोपागच्छन्ति (उवागच्छित्ता) उपागत्य (करयलजाव अंजलिं कट्टु) करतलाभ्यां यावत् अञ्जलिं कृत्वा (सिद्धत्थं खत्तियं) सिद्धार्थं क्षत्रियं प्रति (जएणं विजएणं वद्धावेंति) जयेन विजयेन त्वं वर्धस्व इत्याशीर्वादं दत्तवन्तः, स चैवं-दीर्घायुर्भव वृत्तवान् भव भव श्रीमान् यशस्वी भव, प्रज्ञावान् भव भूरिसत्त्वकरुणादानैकशौण्डो भव । भोगाढ्यो भव भाग्यवान् भव महासौभाग्यशाली भव, प्रौढश्रीर्भव कीर्त्तिमान् भव सदा विश्वोपजीव्यो भव ॥ १ ॥ अत्र किरणावलिदीपिकाकाराभ्यां कोटिंभरस्त्वं भवेति पाठो लिखितस्तत्र कोटिंभर इति प्रयोगश्चिन्त्यः । कल्याणमस्तु शिवमस्तु धनागमोऽस्तु, दीर्घायुरस्तु सुतजन्मसमृद्धिरस्तु । वैरिक्षयोऽस्तु नरनाथ ! सदा जयोऽस्तु, युष्मत्कुले च सततं जिनभक्तिरस्तु ॥ २ ॥ (६७) ॥

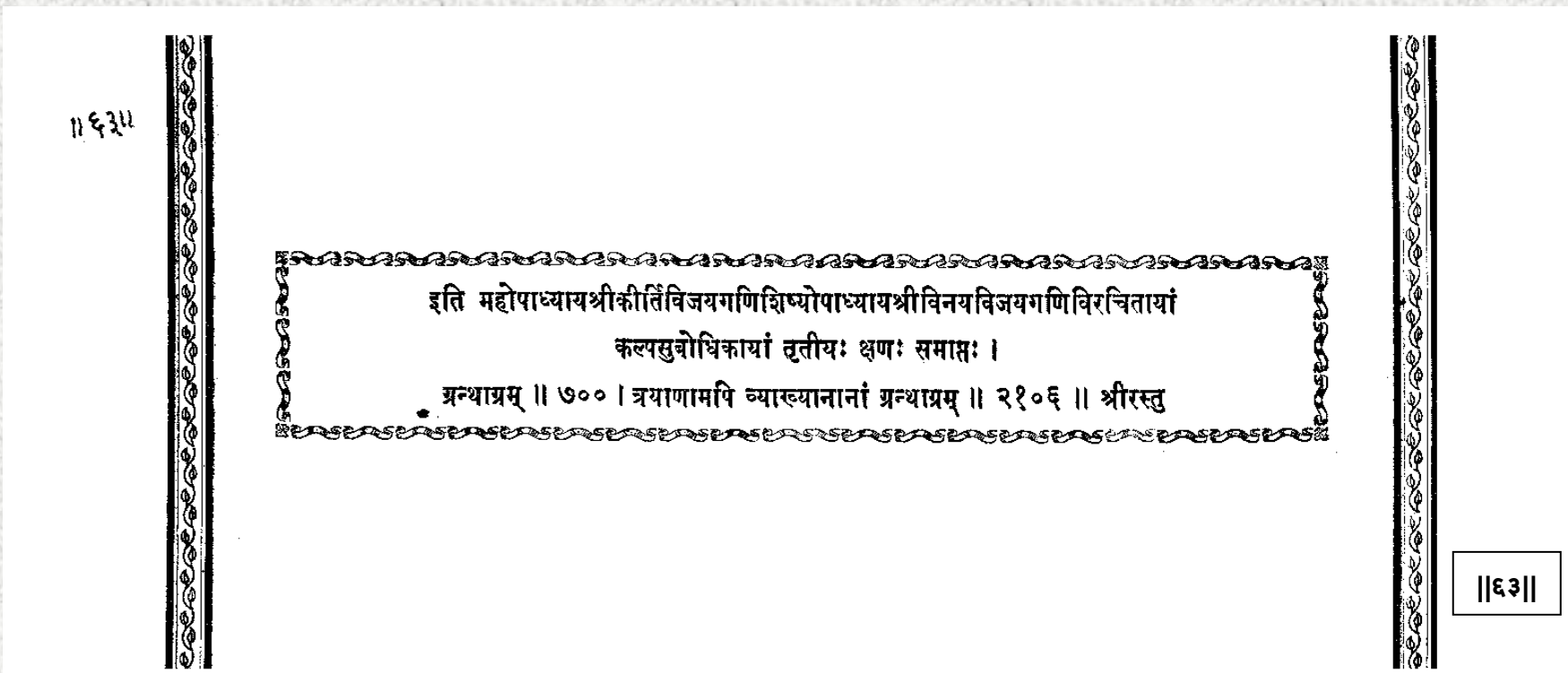
स्वप्नपाठकागमः सू. ६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [६७] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [६९]



॥६३॥

इति महोपाध्यायश्रीकीर्तिविजयगणिशिष्योपाध्यायश्रीविनयविजयगणिविरचितायां
कल्पसुबोधिकायां तृतीयः क्षणः समाप्तः ।
ग्रन्थाग्रम् ॥ ७०० । त्रयाणामपि व्याख्यानानां ग्रन्थाग्रम् ॥ २१०६ ॥ श्रीरस्तु

॥६३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीयं व्याख्यानं समाप्तं

प्रत सूत्रांक [६८] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [७०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

॥ अथ चतुर्थं व्याख्यानं प्रारभ्यते ॥

स्वप्नपाठकानामुपवेशनं सत्कारः सू. ६८–६९

(तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा) ततस्ते स्वप्नलक्षणपाठकाः (सिद्धत्थेणं रन्ना वंदिअत्ति) सिद्धार्थेन राज्ञा वन्दिताः गुणस्तुतिकरणेन (पूइअत्ति) पूजिताः पुष्पादिभिः (सक्कारिअत्ति) सत्कारिताः फलवस्त्रादिदानेन (सम्माणिआ समाणा) सन्मानिताः अभ्युत्थानादिभिः, एवंविधाः सन्तः (पत्तेयं पत्तेयं पुव्वनत्थेसु भद्दासणेसु निसीअंति) प्रत्येकं प्रत्येकं पूर्वन्यस्तेषु भद्रासनेषु निषीदन्ति ॥ (६८) ॥

(तए णं सिद्धत्थे खत्तिए) ततः सिद्धार्थः क्षत्रियः (तिसलं खत्तिआणिं) त्रिशलां क्षत्रियाणीं (जवणिअंतरियं ठावेइ) यवनिकान्तरितां स्थापयति (ठावित्ता) स्थापयित्वा (पुप्फफलपडिपुन्नहत्थे) पुष्पैः-प्रतीतैः फलैः-नालिकेरादिभिः प्रतिपूर्णौ हस्तौ यस्य स तथा, यतः-रिक्तपाणिर्न पश्येच्च, राजानं दैवतं गुरुम्। निमित्तज्ञं विशेषेण, फलेन फलमादिशेत् ॥ १ ॥ ततः पुष्पफलप्रतिपूर्णहस्तः सन् (परेणं विणएणं) उत्कृष्टेन विनयेन (ते सुविणलक्खणपाढए) तान् स्वप्नलक्षणपाठकान् (एवं वयासी) एवमवादीत्॥ (६९) ॥ किमित्याह—

(एवं खलु देवाणुप्पिया!) एवं निश्चयेन भो देवानुप्रियाः! (अज्ज तिसला खत्तिआणी) अद्य त्रिशला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थं व्याख्यानं आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [७०] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [७०]

कल्प.सुबो-व्या० ४ ॥ ६४ ॥

क्षत्रियाणी (तंसि तारिसगंसि) तस्मिन् तादृशे शयनीये (जाव सुत्तजागरा ओहीरमाणी) यावत् सुप्तजागरा अल्पनिद्रां कुर्वती (इमे एयारूवे) इमान् एतद्रूपान् (उराले चउद्दस महासुमिणे) प्रशस्तान् चतुर्दश महास्वप्नान् (पासित्ता णं पडिबुद्धा) दृष्ट्वा जागरिता ॥ (७०) ॥

(तंजहा) तद्यथा (गयवसहगाहा) 'गयवसह' इति गाथा चात्र वाच्या (तं एएसिं) तस्मात् एतेषां (चउद्दसण्हं महासुमिणाणं) चतुर्दशानां महास्वप्नानां (देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रियाः! (उरालाणं) प्रशस्तानां (के मन्ने) कः विचार्यामि (कल्लाणे) कल्याणकारी (फलवित्तिविसेसे भविस्सइ) फलवृत्तिविशेषः भविष्यति? ॥ (७१) ॥

(तए णं ते सुमिणलक्खणपाढगा) ततः ते स्वप्नलक्षणपाठकाः (सिद्धत्थस्स खत्तियस्स) सिद्धार्थस्य क्षत्रियस्य (अंतिए एयमट्ठं सुच्चा) पार्श्वे एनं अर्थं श्रुत्वा (निसम्म) निशम्य च (हट्ठतुट्ठ जाव हिअया) हृष्टाः तुष्टाः यावत् हर्षपूर्णहृदयाः (ते सुमिणे सम्मं ओगिण्हंति) तान् स्वप्नान् सम्यग् हृदि धरन्ति (ओगिण्हित्ता) हृदि धृत्वा (ईहं अणुपविसंति) अर्थविचारणां अनुप्रविशन्ति (अणुपविसित्ता) अनुप्रविश्य च (अन्नमन्नेणं सद्धिं संचालिंति) अन्योऽन्येन—परस्परेण सह सञ्चालयन्ति—संवादयन्ति पर्यालोचयन्तीत्यर्थः (संचालित्ता) सञ्चाल्य च (तेसिं सुमिणाणं) तेषां स्वप्नानां (लद्धट्ठा) लब्धोऽर्थो यैस्ते लब्धार्थाः—खबुद्ध्याऽवगतार्थाः (गहियट्ठा) परस्परतो गृहीतार्थाः (पुच्छियट्ठा) संशये सति परस्परं पृष्टार्थाः, तत एव (वि-

स्वप्नानां कथनं फल-प्रश्नो वि-चारः सू. ७०-७१-७२ १५ २० ॥ ६४ ॥ २५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** स्वप्न-फ़ल-पाठकै: कथित-स्वप्न-फ़ल-वर्णनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [७२] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [७२]

णिच्छियट्ठा) विनिश्चितार्थाः, अत एव (अहिगयट्ठा) अभिगतार्थाः—अवधारितार्थाः सन्तः (सिद्धत्थस्स रन्नो पुरओ) सिद्धार्थस्य राज्ञः पुरतः (सुमिणसत्थाइं उच्चारेमाणा उच्चारेमाणा) स्वप्नशास्त्राण्युच्चारयन्तः (सिद्धत्थं खत्तियं) सिद्धार्थं क्षत्रियं (एवं वयासी) एवमवादिषुः, स्वप्नशास्त्राणि पुनरेवं—अनुभूतः १ श्रुतो २ दृष्टः ३, प्रकृतेश्च विकारजः ४ । स्वभावतः समुद्भूत ५ श्चिन्तासन्ततिसम्भवः ६ ॥ १ ॥ देवताद्युपदेशोत्थो ७, धर्मकर्मप्रभावजः ८ । पापोद्रेकसमुत्थश्च ९, स्वप्नः स्यान्नवधा नृणाम् ॥ २ ॥ प्रकारैरादिमैः षड्भिरशुभश्च शुभोऽपि वा । दृष्टो निरर्थकः स्वप्नः, सत्यस्तु त्रिभिरुत्तरैः ॥ ३ ॥ रात्रेश्चतुर्षु यामेषु, दृष्टः स्वप्नः फलप्रदः । मासैर्द्वादशभिः षड्भिस्त्रिभिरेकेन च क्रमात् ॥ ४ ॥ निशाऽन्त्यघटिकायुग्मे, दशाहात्फलति ध्रुवम् । दृष्टः सूर्योदये स्वप्नः, सद्यः फलति निश्चितम् ॥ ५ ॥ मालास्वप्नोऽहि दृष्टश्च, तथाऽऽधिव्याधिसम्भवः । मलमूत्रादिपीडोत्थः, स्वप्नः सर्वो निरर्थकः ॥ ६ ॥ धर्मरतः समधातुर्यः स्थिरचित्तो जितेन्द्रियः सदयः । प्रायस्तस्य प्रार्थितमर्थं स्वप्नः प्रसाधयति ॥ ७ ॥ न आख्यः कुस्वप्नो गुर्वादेस्तदितरः पुनः आख्यः । योग्यश्राव्याभावे गोरपि कर्णे प्रविश्य वदेत् ॥ ८ ॥ इष्टं दृष्ट्वा स्वप्नं न सुप्यते नाप्यते फलं तस्य । नेया निशाऽपि सुधिया जिनराजस्तवनसंस्तवतः ॥ ९ ॥ स्वप्नमनिष्टं दृष्ट्वा सुप्यात्पुनरपि निशामवाप्यापि । नायं कथ्यः कथमपि केषांचित् फलति न स यस्मात् ॥ १० ॥ पूर्वमनिष्टं दृष्ट्वा स्वप्नं यः प्रेक्षते शुभं पश्चात् । स तु फलदस्तस्य भवेद् द्रष्टव्यं तद्वदिष्टेऽपि ॥ ११ ॥ स्वप्ने मानवमृगपतितुरङ्गमातङ्गवृषभसिंहीभिः । युक्तं रथमारूढो यो गच्छति भूपतिः स भवेत् ॥ १२ ॥

स्वप्नविचारः ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७२] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [७२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

अपहारो हयवारणयानासनसदननिवसनादीनाम्। नृपशङ्काशोककरो बन्धुविरोधार्थहानिकरः ॥१३॥ यः सूर्या-चन्द्रमसोर्बिम्बं ग्रसते समग्रमपि पुरुषः। कलयति दीनोऽपि महीं ससुवर्णां सार्णवां नियतम् ॥ १४ ॥ हरणं प्रहरणभूषणमणिमौक्तिककनकरूप्यकुप्यानाम्। धनमानम्लानिकरं दारुणमरणावहं बहुशः ॥ १५ ॥ आरूढः शुभ्रमिभं नदीतटे शालिभोजनं कुरुते। भुङ्क्ते भूमीमखिलां स जातिहीनोऽपि धर्मधनः ॥ १६ ॥ निजभार्यायाहरणे वसुनाशः परिभवे च संक्लेशः। गोत्रस्त्रीणां तु नृणां जायेते बन्धुवधबन्धौ ॥ १७ ॥ शुभ्रेण दक्षिणस्यां यः फणिना दश्यते निजभुजायाम्। आसादयति सहस्रं कनकस्य स पञ्चरात्रेण ॥ १८ ॥ जायेत यस्य हरणं निजशयनोपानहां पुनः स्वप्ने। तस्य म्रियते दयिता निविडा स्वशरीरपीडा च ॥ १९ ॥ यो मानुषस्य मस्तक-चरणभुजानां च भक्षणं कुरुते। राज्यं कनकसहस्रं तदर्धमाप्नोत्यसौ क्रमशः ॥ २० ॥ द्वारपरिघस्य शयनप्रेङ्खो-लनपादुकानिकेतानाम्। भञ्जनमपि यः पश्यति तस्यापि कलत्रनाशः स्यात् ॥ २१ ॥ कमलाकररत्नाकरजलस-म्पूर्णापगाः सुहृन्मरणम्। यः पश्यति लभतेऽसावनिमित्तं वित्तमतिविपुलम् ॥ २२ ॥ अतितप्तं पानीयं सगो-मयं गडुलमौषधेन युतम्। यः पिबति सोऽपि नियतं म्रियतेऽतीसाररोगेण ॥ २३ ॥ देवस्य प्रतिमाया यात्रा-स्नपनोपहारपूजादीन्। यो विदधाति स्वप्ने तस्य भवेत् सर्वतो वृद्धिः ॥ २४ ॥ स्वप्ने हृदयसरस्यां यस्य प्रादुर्भ-वन्ति पद्मानि। कुष्ठविनष्टशरीरो यमवसतिं याति स त्वरितम् ॥ २५ ॥ आज्यं प्राज्यं स्वप्ने यो विन्दति वीक्षते यशस्तस्य। तस्याभ्यवहरणं वा क्षीरान्नेनैव सह शस्तम् ॥ २६ ॥ हसने शोचनमचिरात् प्रवर्त्तने नर्त्तने च वध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [७२] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [७२]

बन्धौ । पठने कलहश्च नृणामेतत् प्राज्ञेन विज्ञेयम् ॥ २७ ॥ कृष्णं कृत्स्नमशस्तं मुक्त्वा गोवाजिराजगजदेवान् । सकलं शुक्लं च शुभं त्यक्त्वा कर्पासलवणादीन् ॥ २८ ॥ दृष्टाः स्वप्ना ये स्वं प्रति तेऽत्र शुभाशुभा नृणां स्वस्य । ये प्रत्यपरं तस्य ज्ञेयास्ते स्वस्य नो किञ्चित् ॥ २९ ॥ दुःस्वप्ने देवगुरून् पूजयति करोति शक्तितश्च तपः । सततं धर्मरतानां दुःस्वप्नो भवति सुस्वप्नः ॥ ३० ॥ स्वप्नविचारः

तथा सिद्धान्तेऽपि-"इत्थी वा पुरिसो वा सुविणन्ते एगं महन्तं खीरकुम्भं वा दहिकुंभ वा घयकुम्भं वा महुकुम्भं वा पासमाणे पासइ उप्पाडेमाणे उप्पाडेइ उप्पाडिअमिति अप्पाणं मन्नइ तक्खणामेव बुज्झइ तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ जाव अन्तं करेइ ॥ इत्थी वा पुरिसो वा सुमिणन्ते एगं महन्तं हिरण्णरासिं वा रयणरासिं वा सुवण्णरासिं वा वयररासिं वा पासमाणे पासइ दुरूहमाणे दुरूहइ दुरूढमिति अप्पाणं मन्नइ तक्खणामेव बुज्झइ तेणेव भवग्गहणेणं जाव अन्तं करेइ, एवमेव अयरासिं तउअरासिं तम्बरासिं सीसगरासिंति सूत्राणि वाच्यानि, नवरं दुचेणं सिज्झइ (भ० ५८१) इति वाच्यम् ॥ (७२) ॥

(एवं खलु देवाणुप्पिया) एवं निश्चयेन हे देवानुप्रिय !–हे सिद्धार्थराजन् ! (अम्हं सुमिणसत्थे) अस्माकं स्वप्नशास्त्रे (बायालीसं सुमिणा) द्विचत्वारिंशत् स्वप्नाः–सामान्यफलाः (तीसं महासुमिणा) त्रिंशत् महास्वप्नाः–उत्तमफलदायकाः (बावत्तरिं सव्वसुमिणा दिट्ठा) द्वासप्ततिः सर्वे स्वप्नाः कथिताः (तत्थ णं देवाणुप्पिया) तत्र च हे देवानुप्रिय ! (अरहंतमायरो वा) अर्हन्मातरो वा (चक्कवट्टिमायरो वा) चक्रवर्त्ति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [७३] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [७३]

मातरो वा (अरहंतंसि वा) अर्हति वा (चक्कहरंसि वा) चक्रधरे वा (गब्भं वक्कममाणंसि) गर्भं व्युत्क्रामति–प्रविशति सति (एएसिं तीसाए महासुमिणाणं) एतेषां त्रिंशतः महास्वप्नानां मध्ये (इमे चउद्दस महासुमिणे) इमान् चतुर्दश महास्वप्नान् (पासित्ता णं पडिबुज्झंति) दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्ते–जाग्रति ॥ (७३) (तंजहा) तद्यथा–(गयवसहगाहा) ' गयवसह ' इति गाथा वाच्या ॥ (७४) ॥

(वासुदेवमायरो वा) वासुदेवमातरो वा (वासुदेवंसि) वासुदेवे (गब्भं वक्कममाणंसि) गर्भं व्युत्क्रामति सति (एएसिं चउद्दसण्हं महासुमिणाणं) एतेषां चतुर्दशानां महास्वप्नानां मध्ये (अण्णयरे सत्त सुमिणे) अन्यतरान् सप्त स्वप्नान् (पासित्ता णं पडिबुज्झंति) दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्ते ॥ (७५) ॥

(बलदेवमायरो वा) बलदेवमातरो वा (बलदेवंसि) बलदेवे (गब्भं वक्कममाणंसि) गर्भं व्युत्क्रामति सति (एएसिं चउद्दसण्हं महासुमिणाणं) एतेषां चतुर्दशानां महास्वप्नानां मध्ये (अण्णयरे चत्तारि महासुमिणे) अन्यतरान् चतुरः महास्वप्नान् (पासित्ताणं पडिबुज्झंति) दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्ते ॥ (७६) ॥

(मंडलियमायरो वा) माण्डलिको–देशाधिपतिः तस्य मातरो वा (मण्डलियंसि) माण्डलिके (गब्भं वक्कममाणंसि) गर्भं व्युत्क्रामति (एएसिं चउद्दसण्हं महासुमिणाणं) एतेषां चतुर्दशानां महास्वप्नानां मध्ये (अण्णयरं एगं महासुमिणं) अन्यतरं एकं महास्वप्नं (पासित्ताणं पडिबुज्झंति) दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्ते ॥ (७७) ॥

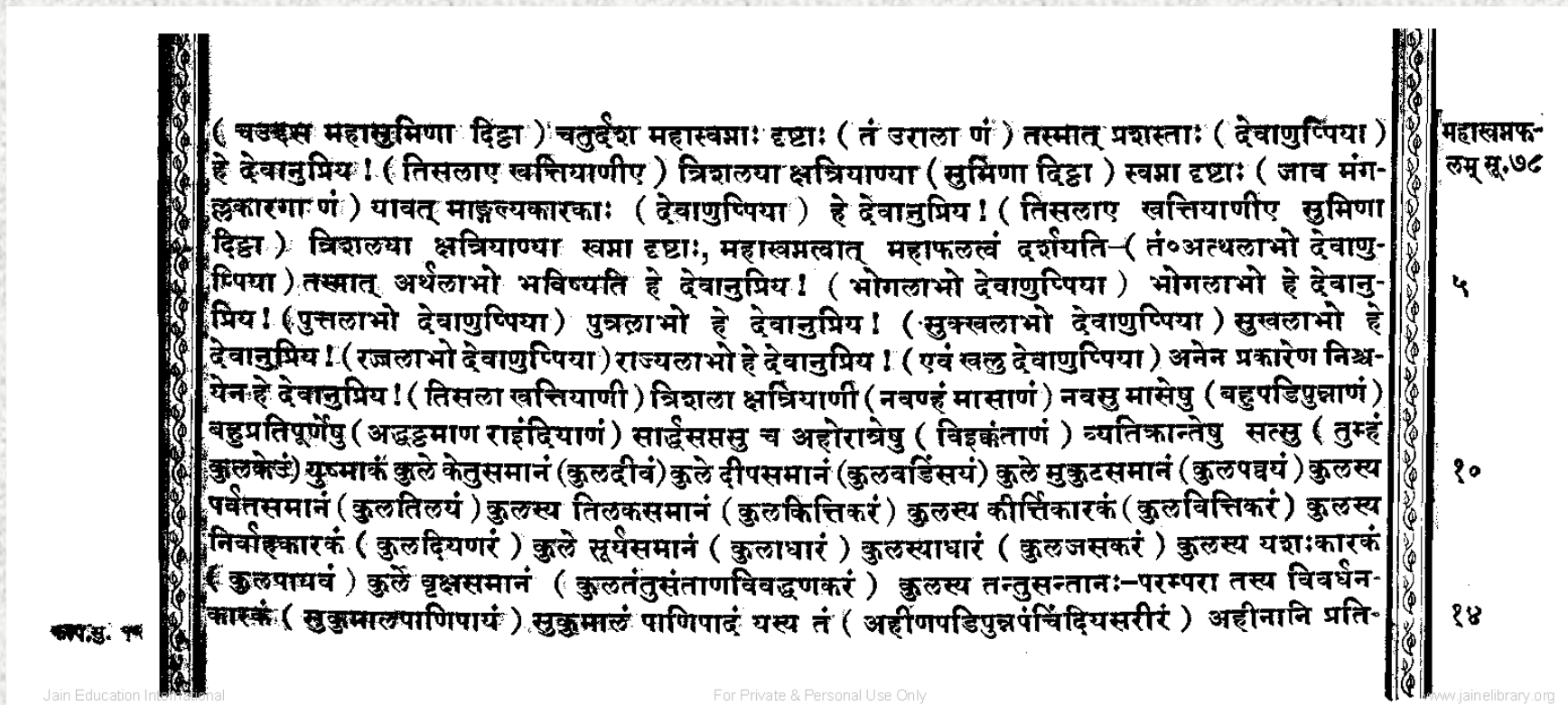
(इमे य णं देवाणुप्पिया) इमे च हे देवानुप्रिय ! (तिसलाए खत्तियाणीए) त्रिशलया क्षत्रियाण्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [७८] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [७७]



(चउद्दस महासुमिणा दिट्ठा) चतुर्दश महास्वप्नाः दृष्टाः (तं उराला णं) तस्मात् प्रशस्ताः (देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रिय ! (तिसलाए खत्तियाणीए) त्रिशलया क्षत्रियाण्या (सुमिणा दिट्ठा) स्वप्ना दृष्टाः (जाव मंगल्लकारगा णं) यावत् माङ्गल्यकारकाः (देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रिय ! (तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा) त्रिशलया क्षत्रियाण्या स्वप्ना दृष्टाः, महास्वप्नत्वात् महाफलत्वं दर्शयति–(तं०अत्थलाभो देवाणुप्पिया) तस्मात् अर्थलाभो भविष्यति हे देवानुप्रिय ! (भोगलाभो देवाणुप्पिया) भोगलाभो हे देवानुप्रिय ! (पुत्तलाभो देवाणुप्पिया) पुत्रलाभो हे देवानुप्रिय ! (सुक्खलाभो देवाणुप्पिया) सुखलाभो हे देवानुप्रिय ! (रज्जलाभो देवाणुप्पिया) राज्यलाभो हे देवानुप्रिय ! (एवं खलु देवाणुप्पिया) अनेन प्रकारेण निश्चयेन हे देवानुप्रिय ! (तिसला खत्तियाणी) त्रिशला क्षत्रियाणी (नवण्हं मासाणं) नवसु मासेषु (बहुपडिपुन्नाणं) बहुप्रतिपूर्णेषु (अद्धट्ठमाण राइंदियाणं) सार्द्धसप्तसु च अहोरात्रेषु (विइक्कंताणं) व्यतिक्रान्तेषु सत्सु (तुम्हं कुलकेउं) युष्माकं कुले केतुसमानं (कुलदीवं) कुले दीपसमानं (कुलवडिंसयं) कुले मुकुटसमानं (कुलपव्वयं) कुलस्य पर्वतसमानं (कुलतिलयं) कुलस्य तिलकसमानं (कुलकित्तिकरं) कुलस्य कीर्त्तिकारकं (कुलवित्तिकरं) कुलस्य निर्वाहकारकं (कुलदियणरं) कुले सूर्यसमानं (कुलाधारं) कुलस्याधारं (कुलजसकरं) कुलस्य यशःकारकं (कुलपायवं) कुले वृक्षसमानं (कुलतंतुसंताणविवद्धणकरं) कुलस्य तन्तुसन्तानः–परम्परा तस्य विवर्धनकारकं (सुकुमालपाणिपायं) सुकुमालं पाणिपादं यस्य तं (अहीणपडिपुन्नपंचिंदियसरीरं) अहीनानि प्रति-

महास्वप्नफलम् सू.७८

५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७८] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [७७]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

पूर्णानि च पञ्चेन्द्रियाणि यत्र एवंविधं शरीरं यस्य स तथा तं (लक्खणवंजणगुणोववेयं) लक्षणव्यञ्जनानां गुणैरुपपेतं (माणुम्माणपमाणपडिपुन्नसुजायसव्वंगसुंदरंगं) मानोन्मानप्रमाणैः प्रतिपूर्णानि सुजातानि च सर्वाङ्गानि यत्र एवंविधं सुन्दरं अङ्गं यस्य स तथा तं (ससिसोमागारं) चन्द्रवत् सौम्याकारं (कंतं) वल्लभं (पियदंसणं) प्रियं दर्शनं यस्य स तथा तं (सुरूवं) सुरूपं (दारयं पयाहिसि) एवंविधं दारकं-पुत्रं प्रजनिष्यति ॥ (७८) ॥

(सेऽवि य णं दारए) सोऽपि च दारकः (उम्मुक्कबालभावे) उन्मुक्तबालभावः (विण्णायपरिणयमित्ते) विज्ञानं परिपक्वं यस्य स तथा तं (जोव्वणगमणुप्पत्ते) यौवनावस्थामनुप्राप्तः सन् (सूरे वीरे विक्कंते) दानादिषु शूरः सङ्ग्रामे वीरः परमण्डलाक्रमणसमर्थः (विच्छिण्णविपुलबलवाहणे) विस्तीर्णविपुले बलवाहने यस्य स तथा तं (चाउरंतचक्कवट्टी रज्जवई राया भविस्सइ) चतुरन्तस्वामी एवंविधश्चक्रवर्त्ती राज्यस्वामी राजा भविष्यति (जिणे वा तिलुक्कनायगे धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी) जिनो वा त्रैलोक्यनायको धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्त्ती, तत्र जिनत्वे चतुर्दशानां अपि स्वप्नानां पृथक् पृथक् फलानि इमानि—चतुर्दन्तहस्तिदर्शनाच्चतुर्धा धर्मं कथयिष्यति १ वृषभदर्शनाद् भरतक्षेत्रे बोधिबीजं वपस्यति २ सिंहदर्शनात् मदनादिदुर्गजभज्यमानं भव्यवनं रक्षिष्यति ३ लक्ष्मीदर्शनाद् वार्षिकदानं दत्त्वा तीर्थकरलक्ष्मीं भोक्ष्यते ४ दामदर्शनात् त्रिभुवनस्य मस्तकधार्यो भविष्यति ५ चन्द्रदर्शनात् कुवलये मुदं दास्यति ६ सूर्यदर्शनाद्भामण्डलभूषितो भविष्यति ७

२०

२५

॥ ६७ ॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [७९] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [७८]

ध्वजदर्शनाद्धर्मध्वजभूषितो भविष्यति ८ कलशदर्शनात् धर्मप्रासादशिखरे स्थास्यति ९ पद्मसरोदर्शनात् सुरसञ्चारितकमलस्थापितचरणो भविष्यति १० रत्नाकरदर्शनात् कैवल्यरत्नस्थानं भविष्यति ११ विमानदर्शनाद् वैमानिकानामपि पूज्यो भविष्यति १२ रत्नराशिदर्शनाद् रत्नप्राकारभूषितो भविष्यति १३ निर्धूमाग्निदर्शनाद् भव्यकनकशुद्धिकारी भविष्यति १४ चतुर्दशानामपि समुदितफलं तु चतुर्दशरज्ज्वात्मकलोकाग्रस्थायी भविष्यतीति ॥ (७९) ॥

(तं उराला णं देवाणुप्पिआ) तस्मात् उदाराः हे देवानुप्रिय ! (तिसलाए खत्तिआणीए सुमिणा दिट्ठा) त्रिशलया क्षत्रियाण्या स्वप्नाः दृष्टाः (जाव मंगल्लकारगा णं) यावत् माङ्गल्यकारकाः (देवाणुप्पिआ) हे देवानुप्रिय ! (तिसलाए खत्तिआणीए सुमिणा दिट्ठा) त्रिशलया क्षत्रियाण्या स्वप्नाः दृष्टाः ॥ (८०) ॥

(तए णं सिद्धत्थे राया) ततोऽनन्तरं सिद्धार्थो राजा (तेसिं सुमिणलक्खणपाढगाणं) तेषां स्वप्नलक्षणपाठकानां (अंतिए एयमट्ठं सुच्चा निसम्म) पार्श्वे एनं अर्थं श्रुत्वा निशम्य च (हट्ठतुट्ठ जाव हियए) हृष्टः तुष्टः यावत् हर्षपूर्णहृदयः (करयल जाव) करतलाभ्यां यावत् अञ्जलिं कृत्वा (ते सुमिणलक्खणपाढए) तान् स्वप्नलक्षणपाठकान् (एवं वयासी) एवं अवादीत् ॥ (८१) ॥

(एवमेयं देवाणुप्पिआ) एवं एतत् हे देवानुप्रियाः ! हे पाठकाः ! (तहमेयं देवाणुप्पिआ) तथैतत् हे पाठकाः ! (अवितहमेयं देवाणुप्पिआ) यथास्थितं एतत् भो पाठकाः ! (इच्छियमेअं देवाणुप्पिा) वाञ्छितं

स्वप्नश्लाघा हर्षः फलतथाकारः सू. ८०-८१-८२

५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [८२] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [८१]

एतत् भोः पाठकाः ! (पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिआ) युष्मन्मुखात् पतदेव गृहीतं एतद् भोः पाठकाः ! (इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया) वाञ्छितं सत् पुनः पुनर्वाञ्छितं एतद् भोः पाठकाः ! (सच्चेणं एस अट्ठे) सत्यः एषोऽर्थः (से जहेयं तुब्भे वयहत्ति कट्टु) येन प्रकारेण इमं अर्थं यूयं वदथ इति उक्त्वा (ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ) तान् स्वप्नान् सम्यक् प्रतीच्छति- (पडिच्छित्ता) तथा कृत्वा (ते सुमिणलक्खणपाढए) तान् स्वप्नलक्षणपाठकान् (विउलेणं असणेणं) विपुलेन अशनेन–शाल्यादिना (पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारेणं) पुष्पैः–अग्रथितैर्जात्यादिपुष्पैः वस्त्रैः प्रतीतैः गन्धैः–वासचूर्णैः माल्यैः–ग्रथितपुष्पैः अलङ्कारैः–मुकुटादिभिः (सक्कारेइ सम्माणेइ) सत्कारयति सन्मानयति च विनयवचनप्रतिपत्त्या (सक्कारित्ता सम्माणित्ता) सत्कार्य सन्मान्य च (विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलइ) विपुलं जीविकार्हं–आजन्म निर्वाहयोग्यं प्रीतिदानं ददाति (दलित्ता पडिविसज्जेइ) प्रीतिदानं दत्त्वा च प्रतिविसर्जयति ॥ (८२) ॥

(तए णं सिद्धत्थे खत्तिए) ततः सिद्धार्थः क्षत्रियः (सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ) सिंहासनात् अभ्युत्तिष्ठति (अब्भुट्ठित्ता) अभ्युत्थाय (जेणेव तिसला खत्तियाणी) यत्रैव त्रिशला क्षत्रियाणी (जवणियंतरिया) यवनिकान्तरिता (तेणेव उवागच्छइ) तत्रैव उपागच्छति (उवागच्छित्ता) उपागत्य च (तिसलं खत्तियाणिं) त्रिशलां क्षत्रियाणीं (एवं वयासी) एवं अवादीत् ॥(८३)॥ (एवं खलु देवाणुप्पिए) एवं खलु हे त्रिशले ! (सुमिणसत्थंसि बायालीसं सुमिणा) स्वप्नशास्त्रे द्विचत्वारिंशत् स्वप्नाः (तीसं महासुमिणा) त्रिंशत् महा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [८४] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [८३]

स्वप्नाः इत्यत आरभ्य (जाव एगं महासुमिणं पासित्ता णं पडिबुज्झंति) यावत् एकं महास्वप्नं दृष्ट्वा प्रतिबुद्धयन्ते इति पूर्वपाठः उक्तः ॥ (८४) ॥ (इमे य णं तुमे देवाणुप्पिए) इमे च त्वया हे प्रियशले ! (चउद्दस महासुमिणा दिट्ठा) चतुर्दश महास्वप्नाः दृष्टाः (तं उराला णं तुमे देवाणुप्पिए) तस्मात् उदाराः त्वया हे प्रियशले ! (सुमिणा दिट्ठा) स्वप्नाः दृष्टाः (जाव जिणे वा तेलुक्कनायगे) यावत् तीर्थंकरो वा त्रैलोक्यनायकः (धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी) धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती भविष्यति ॥ (८५) ॥ (तए णं सा तिसला खत्तियाणी) ततः सा त्रिशला क्षत्रियाणी (एयमट्ठं सोच्चा निसम्म) एनं अर्थं श्रुत्वा निशम्य (हट्ठतुट्ठ जावहियया) हृष्टा तुष्टा यावत् हर्षपूर्णहृदया (करयल जाव) करतलाभ्यां यावत् अञ्जलिं कृत्वा (ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ) तान् स्वप्नान् सम्यक् प्रतीच्छति–हृदि धत्ते ॥ (८६) ॥ (पडिच्छित्ता) प्रतीच्छय च (सिद्धत्थेणं रन्ना) सिद्धार्थेन राज्ञा (अब्भणुन्नाया समाणी) अभ्यनुज्ञाता सती (नाणामणिरयणभत्तिचित्ताओ) नानामणिरत्नभक्तिचित्रात् (भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ) भद्रासनात् अभ्युत्तिष्ठति (अब्भुट्ठित्ता) अभ्युत्थाय (अतुरियमचवलं) अत्वरितया अचपलया (जाव रायहंससरिसीए गइए) यावत् राजहंससदृशया गत्या (जेणेव सए भवणे) यत्रैव स्वकं मन्दिरं (तेणेव उवागच्छइ) तत्रैव उपागच्छति (उवागच्छित्ता) उपागत्य (सयं भवणमणुपविट्ठा) स्वकं मन्दिरं अनुप्रविष्टा ॥ (८७) ॥

(जप्पभिइं च णं समणे भगवं महावीरे) यतः प्रभृति–यस्मादिनात् आरभ्य श्रमणो भगवान् महावीरः

गमनं स्वप्नतत्फल श्रावणं प्रतीच्छनं सू. ८२–८७ ५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८८] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [८६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

(तंसि रायकुलंसि साहरिए) तस्मिन् राजकुले संहृतः (तप्पभिइं च णं) ततः प्रभृति–तस्मादिनादारभ्य (बहवे वेसमणकुंडधारिणो) बहवः वैश्रमणो–धनदः तस्य कुण्डः–आयत्तता तस्य धारिणः अर्थात् वैश्रमणायत्ताः (तिरियजंभगा देवा) तिर्यग्लोकवासिनो जृम्भकजातीयाः तिर्यग्जृम्भकाः उच्यन्ते, एवंविधाः देवाः (सक्कवयणेणं) शक्रवचनेन, शक्रेण वैश्रमणाय उक्तं वैश्रमणेन तिर्यग्जृम्भकेभ्य इति भावः (से जाइं इमाइं) 'से'त्ति अथशब्दार्थे, अथ ते तिर्यग्जृम्भका देवाः यानि इमानि वक्ष्यमाणस्वरूपाणि (पुरा पोराणाइं) पुरा–पूर्वं निक्षिप्तानि अत एव पुराणानि–चिरन्तनानि (महानिहाणाइं भवंति) महानिधानानि भवन्ति (तंजहा) तद्यथा, तानि कीदृशानि ?–(पहीणसामिआइं) प्रहीणस्वामिकानि–अल्पीभूतस्वामिकानीत्यर्थः, अत एव (पहीणसेउआइं) प्रहीणसेक्तृकानि, सेक्ता-हि उपरि धनक्षेप्ता स तु स्वाम्येव भवति, पुनः किंवि० ? (पहीणगोत्तागाराइं) येषां महानिधानानां धनिकसम्बन्धीनि गोत्राणि अगाराणि च प्रहीणानि–विरलीभूतानि भवन्ति तानि प्रहीणगोत्रागाराणि एवं (उच्छिन्नसामिआइं) उच्छिन्नः–सर्वथा अभावं प्राप्तः स्वामी येषां तानि उच्छिन्नस्वामिकानि (उच्छिन्नसेउआइं) उच्छिन्नसेक्तृकाणि (उच्छिन्नगोत्तागाराइं) उच्छिन्नगोत्रागाराणि, अथ केषु केषु स्थानेषु तानि वर्त्तन्ते ? इत्याह—(गामागरनगरखेडकव्वडमडंबदोणमुहपट्टणासमसंवाहसंनिवेसेसु) ग्रामाः–करवन्तः, आकराः–लोहाद्युत्पत्तिभूमयः, नगराणि–कररहितानि, खेटानि–धूलिप्राकारोपेतानि, कर्बटानि–कुनगराणि, मडम्बानि–सर्वतोऽर्धयोजनात्परतोऽवस्थितग्रामाणि, द्रोण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [८८] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [८६]

मुखानि–यत्र जलस्थलपथावुभावपि भवतः, पत्तनानि–जलस्थलमार्गयोरन्यतरेण मार्गेण युक्तानि, आश्रमाः–तीर्थस्थानानि तापसस्थानानि वा, संबाहाः–समभूमौ कृषिं कृत्वा कृषीवला यत्र धान्यं रक्षार्थं स्थापयन्ति, सन्निवेशाः–सार्थकटकादीनां उत्तरणस्थानानि एतेषां द्वन्द्वः तेषु, तथा (सिंघाडएसु वा) शृङ्गाटकेषु–शृङ्गाटकफलाकारत्रिकोणस्थानेषु वा (तिएसु वा) त्रिकेषु–मार्गत्रयमिलनस्थानेषु वा (चउक्केसु वा) चतुष्केषु–मार्गचतुष्टयमिलनस्थानेषु वा (चच्चरेसु वा) चत्वरेषु–बहुमार्गमिलनस्थानेषु वा (चउम्मुहेसु वा) चतुर्मुखेषु–देवकुलच्छत्रिकादिषु वा (महापहेसु वा) महापथेषु–राजमार्गेषु वा, तथा (गामट्ठाणेसु वा) ग्रामस्थानानि–उद्वसग्रामस्थानानि तेषु वा (नगरट्ठाणेसु वा) उद्वसनगरस्थानानि तेषु वा (गामनिद्धमणेसु वा) ग्रामसम्बन्धीनि निर्धमनानि–जलनिर्गमाः 'खाल' इति प्रसिद्धास्तेषु (नगरनिद्धमणेसु वा) एवं नगरनिर्धमनेषु वा (आवणेसु वा) आपणा–हट्टास्तेषु (देवकुलेसु वा) देवकुलानि–यक्षाद्यायतनानि तेषु (सभासु वा) सभासु–जनोपवेशनस्थानेषु (पवासु वा) प्रपासु–पानीयशालासु (आरामेसु वा) आरामेषु–कदल्याद्याच्छादितेषु स्त्रीपुंसयोः क्रीडास्थानेषु (उज्जाणेसु वा) उद्यानेषु–पुष्पफलोपेतवृक्षशोभितेषु बहुजनभोग्येषु उद्यानिकास्थानेषु इत्यर्थः (वणेसु वा) वनेषु–एकजातीयवृक्षसमुदायेषु (वणसंडेसु वा) वनखण्डेषु–अनेकजातीयोत्तमवृक्षसमुदायेषु (सुसाणसुन्नागारगिरिकंदरत्ति) श्मशानं शून्यागारं–शून्यगृहं गिरिकन्दरा–प्रतीता पर्वतगुहेत्यर्थः (संतिसेलोवट्ठाणभवणगिहेसु वा) अत्र गृहशब्दः प्रत्येकं योज्यः, ततः शान्तिगृहाः–शान्ति-

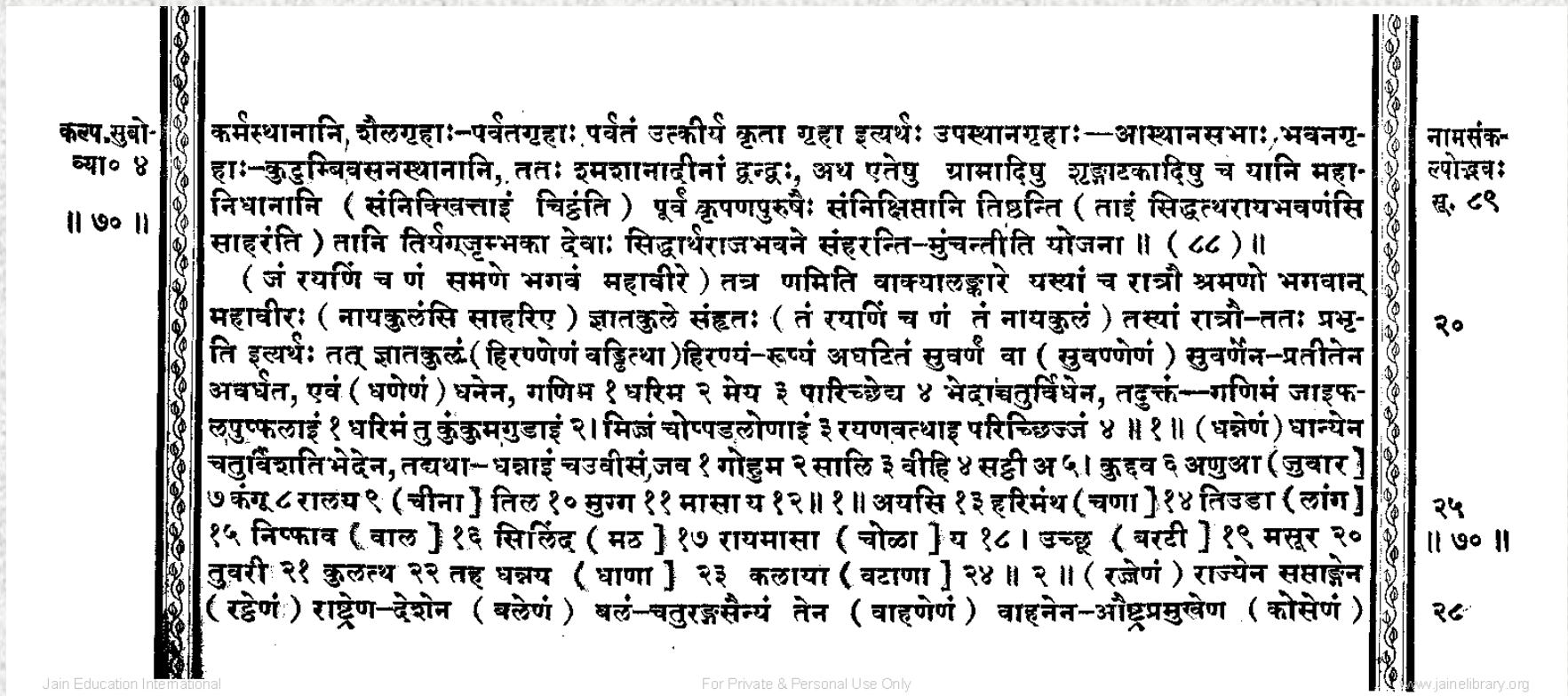
निधानसंक्रमः सू.८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८८] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [८६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-व्या० ४ ॥ ७० ॥

कर्मस्थानानि, शैलगृहाः–पर्वतगृहाः पर्वतं उत्कीर्य कृता गृहा इत्यर्थः उपस्थानगृहाः—आस्थानसभाः, भवनगृहाः–कुटुम्बिवसनस्थानानि, ततः श्मशानादीनां द्वन्द्वः, अथ एतेषु ग्रामादिषु शृङ्गाटकादिषु च यानि महानिधानानि (संनिक्खित्ताइं चिट्ठंति) पूर्वं कृपणपुरुषैः संनिक्षिप्तानि तिष्ठन्ति (ताइं सिद्धत्थरायभवणंसि साहरंति) तानि तिर्यग्जृम्भका देवाः सिद्धार्थराजभवने संहरन्ति–मुंचन्तीति योजना ॥ (८८) ॥

(जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे) तत्र णमिति वाक्यालङ्कारे यस्यां च रात्रौ श्रमणो भगवान् महावीरः (नायकुलंसि साहरिए) ज्ञातकुले संहृतः (तं रयणिं च णं तं नायकुलं) तस्यां रात्रौ–ततः प्रभृति इत्यर्थः तत् ज्ञातकुलं (हिरण्णेणं वड्ढित्था) हिरण्यं–रूप्यं अघटितं सुवर्णं वा (सुवण्णेणं) सुवर्णेन–प्रतीतेन अवर्धत, एवं (धणेणं) धनेन, गणिम १ धरिम २ मेय ३ पारिच्छेद्य ४ भेदाच्चतुर्विधेन, तदुक्तं—गणिमं जाइफलपुप्फलाइं १ धरिमं तु कुंकुमगुडाइं २। मिज्जं चोप्पडलोणाइं ३ रयणवत्थाइ परिच्छिज्जं ४ ॥ १ ॥ (धन्नेणं) धान्येन चतुर्विंशतिभेदेन, तद्यथा– धन्नाइं चउवीसं,जव १ गोहुम २ सालि ३ वीहि ४ सट्ठी अ ५। कुद्दव ६ अणुआ (जुवार] ७ कंगू ८ रालय ९ (चीना] तिल १० मुग्ग ११ मासा य १२ ॥ १ ॥ अयसि १३ हरिमंथ (चणा] १४ तिउडा (लांग] १५ निप्फाव (वाल] १६ सिलिंद (मठ] १७ रायमासा (चोळा] य १८। उच्छु (बरटी] १९ मसूर २० तुवरी २१ कुलत्थ २२ तह धन्नय (धाणा] २३ कलाया (वटाणा] २४ ॥ २ ॥ (रज्जेणं) राज्येन ससाङ्गेन (रट्ठेणं) राष्ट्रेण–देशेन (बलेणं) बलं–चतुरङ्गसैन्यं तेन (वाहणेणं) वाहनेन–औष्ट्रप्रमुखेण (कोसेणं)

नामसंकल्पोद्भवः सू. ८९ २० २५ ॥ ७० ॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र भगवतः 'वर्धमान" इति नामकरणे माता-पितरो: संकल्पः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [८९] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [८७]

कोशेन—भाण्डागारेण (कोट्ठागारेणं) कोष्ठागारेण—धान्यगृहेण (पुरेणं) नगरेण (अंतेउरेणं) अन्तःपुरेण—प्रतीतेन (जणवएणं) जानपदेन—देशवासिलोकेन (जसवाएणं वड्ढित्था) यशोवादेन—साधुवादेन च अवर्धत (विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइएणं) विपुलं—विस्तीर्णं धनं—गवादिकं कनकं घटितघटितप्रकाराभ्यां द्विविधं रत्नानि—कर्केतनादीनि मणयः—चन्द्रकान्ताद्याः मौक्तिकानि—प्रतीतानि शङ्खा—दक्षिणावर्ताः शिला—राजपट्टादिकाः प्रवालानि—विद्रुमाणि रक्तरत्नानि—पद्मरागादीनि आदिशब्दाद्वस्त्रकम्बलादिपरिग्रहस्तेन, तथा (संतसारसावइज्जेणं) सत्—विद्यमानं न स्विन्द्रजालादिवत्स्वरूपतोऽविद्यमानं, एवंविधं यत् सारस्वापतेयं—प्रधानद्रव्यं तेन, तथा (पीइसक्कारसमुदएणं) प्रीतिः—मानसी तुष्टिः सत्कारो—वस्त्रादिभिः स्वजनकृता भक्तिस्तत्समुदयेन च तद् ज्ञातकुलं (अईव अईव अभिवड्ढित्था) अतीव अतीव अभ्यवर्द्धत, (तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स) ततः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (अम्मापिऊणं) मातापित्रोः (अयमेयारूवे अब्भत्थिए जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था) अयं एतद्रूपः आत्मविषयः यावत् संकल्पः समुदपद्यत ॥(८९)॥ कोऽसौ ? इत्याह—(जप्पभिइं च णं) यतः प्रभृति (अम्हं एस दारए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते) अस्माकं एष दारकः कुक्षौ गर्भतया उत्पन्नः (तप्पभिइं च णं) ततः प्रभृति (अम्हे हिरण्णेणं वड्ढामो) वयं हिरण्येन वर्धामहे (सुवण्णेणं वड्ढामो) सुवर्णेन वर्धामहे (धणेणं धन्नेणं जाव संतसारसावइज्जेणं) धनेन धान्येन यावत् विद्यमानसारस्वापतेयेन (पीइसक्कारेणं अईव अईव अभिवड्ढामो) प्रीति-

नामसंकल्पोद्भवः सू. ८९

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९०] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [८८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

सत्कारेण च अतीव अतीव अभिवर्धामहे (जया णं अम्हं एस दारए भविस्सइ) तस्मात् यदा अस्माकं एष दारकः जातो भविष्यति (तया णं अम्हे एयस्स) तदा वयं एतस्य दारकस्य (एयाणुरूवं) एतदनुरूपं-धनादिवृद्धेरनुरूपं अत एव (गुण्णं गुणनिप्फन्नं नामधिज्जं करिस्सामो) गुणेभ्य आगतं तत एव गुणनिष्पन्नं नामधेयं करिष्यामः, किं तदित्याह-(वद्धमाणत्ति) वर्धमान इति ॥ (९०) ॥

(तए णं समणे भगवं महावीरे) ततः श्रमणो भगवान् महावीरः (माउअणुकंपणट्ठाए) मयि परिस्पन्दमाने मातुः कष्टं मा भूदिति मातुः अनुकम्पनार्थं-मातुर्भक्त्यर्थं अन्येनापि मातुर्भक्तिरेवं कर्त्तव्या इति दर्शनार्थं च (निच्चले) निश्चलः (निप्फंदे) निष्पन्दः किंचिदपि चलनाभावात् अत एव (निरेयणे) निरेजनो-निष्कम्पः (अल्लीणत्ति) आ ईषल्लीनः अङ्गोपनात् (पल्लीणत्ति) प्रकर्षेण लीनः उपाङ्गोपनात् अत एव (गुत्ते यावि होत्था) गुप्तः, ततः पदत्रयस्य कर्मधारयः, 'यावित्ति' विशेषणसमुच्चये अभवत्, अत्र कविः-एकान्ते किमु मोहराजविजये मन्त्रं प्रकुर्वन्निव, ध्यानं किञ्चिदगोचरं विरचयल्लेकः परब्रह्मणे । किं कल्याणरसं प्रसाधयति वा देवो विलुप्यात्मकं, रूपं कामविनिग्रहाय जननीकुक्षावसौ वः श्रिये ॥ १ ॥ (९१) ॥

(तए णं से तिसलाए खत्तियाणीए) ततो-भगवतो निश्चलावस्थानानन्तरं तस्यास्त्रिशलाक्षत्रियाण्याः (अयमेयारूवे जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था) अयं एतद्रूपः यावत् अध्यवसायः समुत्पन्नः, कोऽसौ ? इत्याह— (हडे मे से गब्भे) हृतः मे-मदीयः स गर्भः किं केनचिद्देवादिना हृतः ? (मडे मे से गब्भे) अथवा स मे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [९२] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [९०]

गर्भः किं मृतः ? (चुए मे से गब्भे) अथवा स मे गर्भः किं च्युतो ? गर्भस्वभावात् परिभ्रष्टः (गलिए मे से गब्भे) अथवा स मे गर्भः किं गलितः ?–द्रवीभूय क्षरितः यस्मात्कारणात् (एस मे गब्भे पुव्विं एयइ) एष मे गर्भः पूर्वं एजते–पूर्वं कम्पमानोऽभूत् (इयाणिं नो एयइत्ति कट्टु) इदानीं नैजते–न कम्पते इतिकृत्वा–इतिहेतोः (ओहयमणसंकप्पा) उपहतः–कलुषीभूतो मनःसंकल्पो यस्याः सा तथा (चिंतासोगसागरं पविट्ठा) चिन्ता–गर्भहरणादिविकल्पसम्भवा अर्त्तिस्तया यः शोकः स एव सागरः–समुद्रस्तत्र प्रविष्टा–बूडिता अत एव (करयलपल्हत्थमुही) करतले पर्यस्तं–स्थापितं मुखं यया सा तथा (अट्टज्झाणोवगया) आर्तध्यानोपगता (भूमीगयदिट्ठिया झियाअइ) भूमिगतदृष्टिका ध्यायति, अथ सा त्रिशला तदानीं यद् ध्यायति स्म तल्लिख्यते—सत्यमिदं यदि भविता मदीयगर्भस्य कथमपीह तदा । निष्पुण्यकजीवानामवधिरिति ख्यातिमत्यभवम् ॥ १ ॥ यद्वा चिन्तारत्नं न हि नन्दति भाग्यहीनजनसदने । नापि च रत्ननिधानं दरिद्रगृहसङ्गतीभवति ॥ २ ॥ कल्पतरुर्मरुभूमौ न प्रादुर्भवति भूम्यभाग्यवशात् । न हि निष्पुण्यपिपासितनृणां पीयूषसामग्री ॥ ३ ॥ हा धिग् धिग् दैवं प्रति किं चक्रे तेन सततवक्रेण ? । यन्मम मनोरथतरुर्मूलादुन्मूलितोऽनेन ॥ ४ ॥ आत्तं दत्त्वापि च मे लोचनयुगलं कलङ्कविकलमेलम् । दत्त्वा पुनरुद्दालितमधमेनानेन निधिरत्नम् ॥ ५ ॥ आरोप्य मेरुशिखरं प्रपातिता पापिनाऽमुनाऽहमियम् । परिवेष्याप्याकृष्टं भोजनभाजनमलज्जेन ॥६॥ यद्वा मयाऽपराद्धं भवान्तरेऽस्मिन् भवेऽपि किं धातः!। यस्मादेवं कुर्वन्नुचितानुचितं न चिन्तयसि॥७॥

त्रिशलाशोकः सू.९२

५

१०

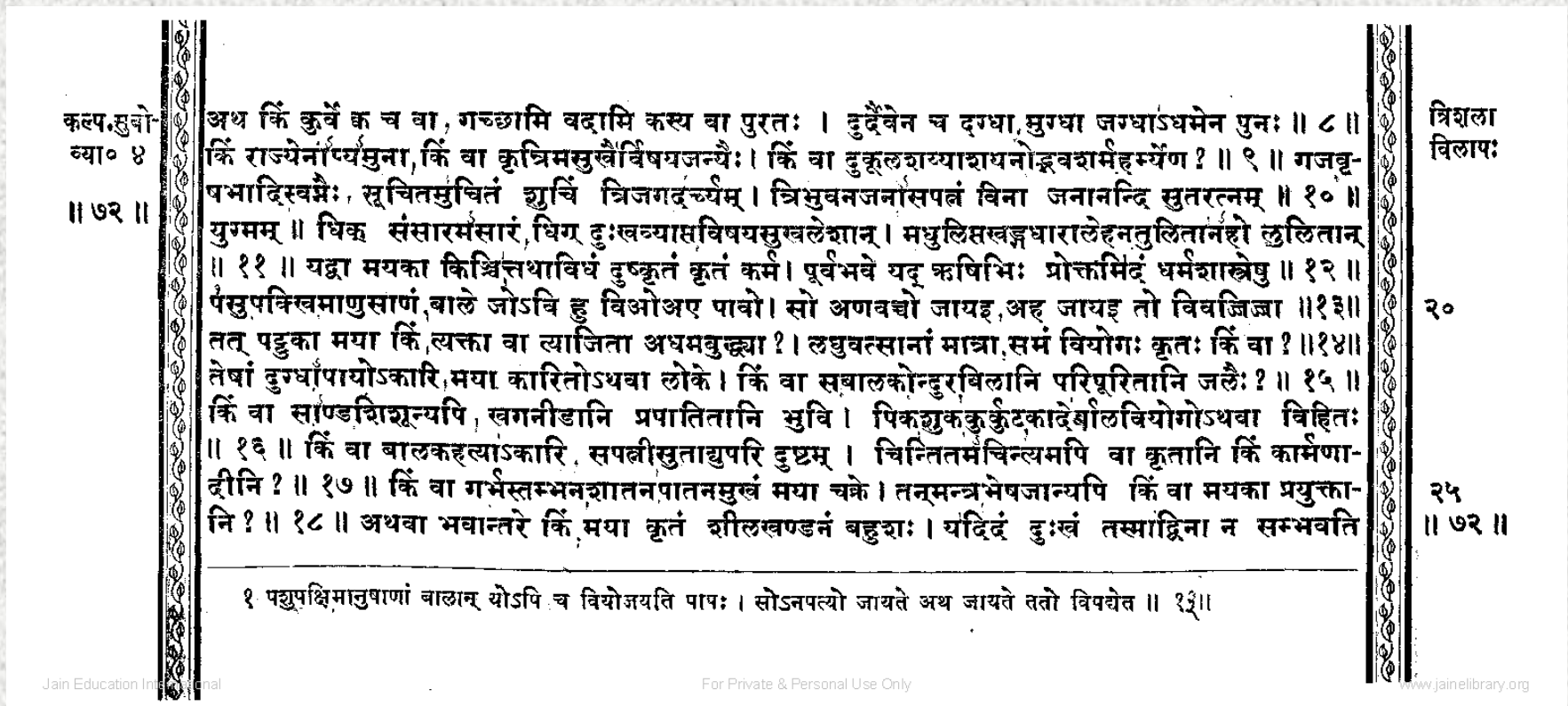
१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९२] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [९०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-व्या० ४ ॥ ७२ ॥

अथ किं कुर्वे क्व च वा, गच्छामि वदामि कस्य वा पुरतः । दुर्दैवेन च दग्धा,मुग्धा जग्धाऽधमेन पुनः ॥ ८ ॥ किं राज्येनार्प्यसुना,किं वा कृत्रिमसुखैर्विषयजन्यैः। किं वा दुकूलशय्याशयनोद्भवशर्महर्म्येण ? ॥ ९ ॥ गजवृषभादिस्वप्नैः, सूचितमुचितं शुचिं त्रिजगदर्च्यम् । त्रिभुवनजनासपत्नं विना जनानन्दि सुतरत्नम् ॥ १० ॥ युग्मम् ॥ धिक् संसारमसारं,धिग् दुःखव्यासविषयसुखलेशान्। मधुलिप्तखड्गधारालेहनतुलितानहो लुलितान् ॥ ११ ॥ यद्वा मयका किञ्चित्तथाविधं दुष्कृतं कृतं कर्म। पूर्वभवे यद् ऋषिभिः प्रोक्तमिदं धर्मशास्त्रेषु ॥ १२ ॥ पसुपक्खिमाणुसाणं,बाले जोऽवि हु विओअए पावो। सो अणवचो जायइ,अह जायइ तो विवज्जिआ ॥१३॥ तत् पट्टका मया किं,त्यक्ता वा त्याजिता अधमबुद्ध्या ?। लघुवत्सानां मात्रा,समं वियोगः कृतः किं वा ? ॥१४॥ तेषां दुग्धापायोऽकारि,मया कारितोऽथवा लोके। किं वा सबालकोन्दुरबिलानि परिपूरितानि जलैः ? ॥ १५ ॥ किं वा साण्डशिशून्यपि, खगनीडानि प्रपातितानि भुवि। पिकशुककुर्कुटकादेर्बालवियोगोऽथवा विहितः ॥ १६ ॥ किं वा बालकहत्याऽकारि, सपत्नीसुताद्युपरि दुष्टम् । चिन्तितमचिन्त्यमपि वा कृतानि किं कार्मणादीनि ? ॥ १७ ॥ किं वा गर्भस्तम्भनशातनपातनमुखं मया चक्रे। तन्मन्त्रभेषजान्यपि किं वा मयका प्रयुक्तानि ? ॥ १८ ॥ अथवा भवान्तरे किं,मया कृतं शीलखण्डनं बहुशः। यदिदं दुःखं तस्माद्विना न सम्भवति

१ पशुपक्षिमानुषाणां बालान् योऽपि च वियोजयति पापः। सोऽनपत्यो जायते अथ जायते ततो विपद्येत ॥ १३॥

त्रिशला विलापः

२०

२५

॥ ७२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९२] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [९०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

जीवानाम् ॥ १९ ॥ यतः—कुरंडरंडत्तणदुब्भगाइं, वंझत्तनिंदूविसकन्नगाइं। लहंति जम्मंतरभग्गसीला, नाऊण कुज्जा दढसीलभावं ॥ २० ॥ एवं चिन्ताऽऽक्रान्ता ध्यायन्ती म्लानकमलसमवदना। दृष्टा शिष्टेन सखीजनेन तत्कारणं पृष्टा ॥ २१ ॥ प्रोवाच साश्रुलोचनरचना निःश्वासकलितवचनेन। किं मन्दभागधेया वदामि? यज्जीवितं मेऽगात्॥ २२॥ सख्यो जगुरथ रे सखि! शान्तमंमङ्गलमशेषमन्यदिह। गर्भस्य तेऽस्ति कुशलं नवेति वद कोविदे! सत्यम् ॥२३॥ सा प्रोचे गर्भस्य च कुशले किमकुशलमस्ति मे? सख्यः!। इत्याद्युक्त्वा मूर्च्छामापन्ना पतति भूपीठे ॥ २४ ॥ शीतलवातप्रभृतिभिरुपचारैर्बहुतरैः सखीभिः सा। संप्रापितचैतन्योत्तिष्ठति विलपति च पुनरेवम् ॥ २५ ॥ गरुए अणोरपारे रयणनिहाणे अ सायरे पत्तो। छिद्दघडो न भरिज्जइ ता किं दोसो जलनिहिस्स? ॥ २६ ॥ पत्ते वसन्तमासे रिद्धिं पावन्ति सयलवणराई। जं न करीरे पत्तं ता किं दोसो वसंतस्स? ॥ २७ ॥ उत्तुंगो सरलतरू बहुफलभारेण नमिअसव्वंगो। कुज्जो फलं न पावइ ता किं दोसो तरुव-

१ कुरण्डत्वरण्डत्वदुर्भगत्वानि वन्ध्यात्वनिन्दु(मृतापत्यप्रसूः)विषकन्यकत्वादि। लभन्ते जन्मान्तरभग्नशीला ज्ञात्वा कुर्यात् दृढं शीलभावं ॥ २० ॥ २ गुरुकेऽनर्वाक्पारे रत्ननिधाने च सागरे प्राप्तः। छिद्रघटो न भ्रियते तर्हि किं दोषो जलनिधेः? ॥ २६ ॥ प्राप्ते वसन्तमासे ऋद्धिं प्राप्नोति सकलवनराजी। यन्न करीरे पत्रं तर्हि किं दोषो वसन्तस्य? ॥ २७ ॥ उत्तुङ्गः सरलतरुर्बहुफलभारेणनतसर्वाङ्गः। कुब्जः फलं न प्राप्नोति तर्हि किं दोषस्तरुवरस्य? ॥ २८ ॥

कल्प.सू. १३

त्रिशला-विलापः ५ ९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [९२] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [९०]

रस्स ? ॥ २८ ॥ समीहितं यन्न लभामहे वयं, प्रभो ! न दोषस्तव कर्मणो मम । दिवाऽप्युलूको यदि नावलोकते, तदा स दोषः कथमंशुमालिनः ? ॥ २९ ॥ अथ मे मरणं शरणं किं करणं विफलजीवितव्येन ? । तत् श्रुत्वेति व्यलपत् सख्यादिः सकलपरिवारः ॥ ३० ॥ हा किमुपस्थितमेतत् निष्कारणवैरिविधिनियोगेन । हा कुलदेव्यः क्व गताः ? यदुदासीनाः स्थिता यूयम् ॥ ३१ ॥ अथ तत्र प्रत्यूहे विचक्षणाः कारयन्ति कुलवृद्धाः । शान्तिकपौष्टिकमन्त्रोपयाचितादीनि कृत्यानि ॥ ३२ ॥ पृच्छन्ति च दैवज्ञान् निषेधयन्त्यपि च नाटकादीनि । अतिगाढशब्दविरचितवचनानि निवारयन्त्यपि च ॥ ३३ ॥ राजाऽपि लोककलितः शोकाकुलितोऽजनिष्ट शिष्टमतिः । किंकर्त्तव्यविमूढाः संजाता मन्त्रिणः सर्वे ॥ ३४ ॥ अस्मिन्नवसरे च तत्सिद्धार्थराजभवनं यादृशं जातं तत् सूत्रकृत् स्वयं आह—(तंपि य सिद्धत्थरायवरभवणं) तदपि सिद्धार्थराजवरभवनं (उवरयमुइंगतंतीतलतालनाडइज्जजणमणुन्नं) मृदङ्गो–भंभलस्तन्त्री–वीणा तलताला–हस्तालाः यद्वा तला–हस्ताः तालाः–कंसिकाः नाटकीया–नाटकहिता जनाः पात्राणीति भावः एतेषां यत् मनोज्ञत्वं तत् उपरतं–निवृत्तं यस्मिन् एवंविधं अत एव (दीणविमणं विहरइ) दीनं सत् विमनस्कं–व्यग्रचेतस्कं विहरति–आस्ते ॥ (९२) ॥ (तए णं से समणे भगवं महावीरे) तं तथाविधं पूर्वोदितं व्यतिकरं अवधिना अवधार्य भगवान् चिन्तयति–किं कुर्मः कस्य वा ब्रूमो ?, मोहस्य गतिरीदृशी । दुषेर्धातोरिवास्माकं, दोषनिष्पत्तये गुणः ॥ १ ॥ मया मातुः प्रमोदाय, कृतं जातं तु खेदकृत् । भाविनः कलिकालस्य, सूचकं लक्षणं ह्यदः ॥ २ ॥ पञ्चमारे गुणो यस्माद्, भावी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [९३] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [९१]

दोषकरो नृणाम् । नालिकेराम्भसि न्यस्तः, कर्पूरो मृतये यथा ॥ ३ ॥ इत्येवंप्रकारेण स श्रमणो भगवान् महावीरो (माऊअ अयमेयारूवं) मातुरिमं एतद्रूपं (अब्भत्थियं पत्थियं मणोगयं) आत्मविषयं प्रार्थितं मनोगतं (संकप्पं समुप्पन्नं विजाणित्ता) संकल्पं समुत्पन्नं अवधिना विज्ञाय (एगदेसेणं एयइ) एकदेशेन–अङ्गुल्यादिना एजते–कम्पते (तए णं सा तिसला खत्तिआणी) ततः सा त्रिशला क्षत्रियाणी (हट्ठ तुट्ठ जाव हिअया) हृष्टतुष्टादिविशेषणविशिष्टायावत् हर्षपूर्णहृदया (एवं वयासी) एवं अवादीत् ॥ (९३) ॥

अथ किं अवादीत् ? इत्याह–(नो खलु मे गब्भे हडे) नैव निश्चयेन मे गर्भो हृतोऽस्ति (जाव नो गलिए) यावत् नैव गलितः (एस मे गब्भे पुव्विं नो एयइ) एष मे गर्भः पूर्वं न कम्पमानोऽभूत् (इयाणिं एयइत्तिकट्टु) इदानीं कम्पते इतिकृत्वा (हट्ठतुट्ठ जाव हियया एवं विहरइ) हृष्टा तुष्टा यावत् हर्षपूर्णहृदया, ईदृशी सती विहरति, अथ हर्षिता त्रिशलादेवी यथाऽचेष्टत तथा लिख्यते–प्रोल्लसितनयनयुगला स्मेरकपोला प्रफुल्लमुखकमला । विज्ञातगर्भकुशला रोमाञ्चितकञ्चुका त्रिशला ॥ १ ॥ प्रोवाच मधुरवाचा गर्भे मे विद्यतेऽथ कल्याणम् । हा धिग् मयकानुचितं, चिन्तिततमतिमोहमतिकतया ॥ २ ॥ सन्त्यथ मम भाग्यानि त्रिभुवनमान्या तथा च धन्याऽहं । श्लाघ्यं च जीवितं मे कृतार्थतामाप मे जन्म ॥ ३ ॥ श्रीजिनपदाः प्रसेदुः कृताः प्रसादाश्च गोत्रदेवीभिः । जिनधर्मकल्पवृक्षस्त्वाजन्माराधितः फलितः ॥ ४ ॥ एवं सहर्षचित्तां देवीमालोक्य

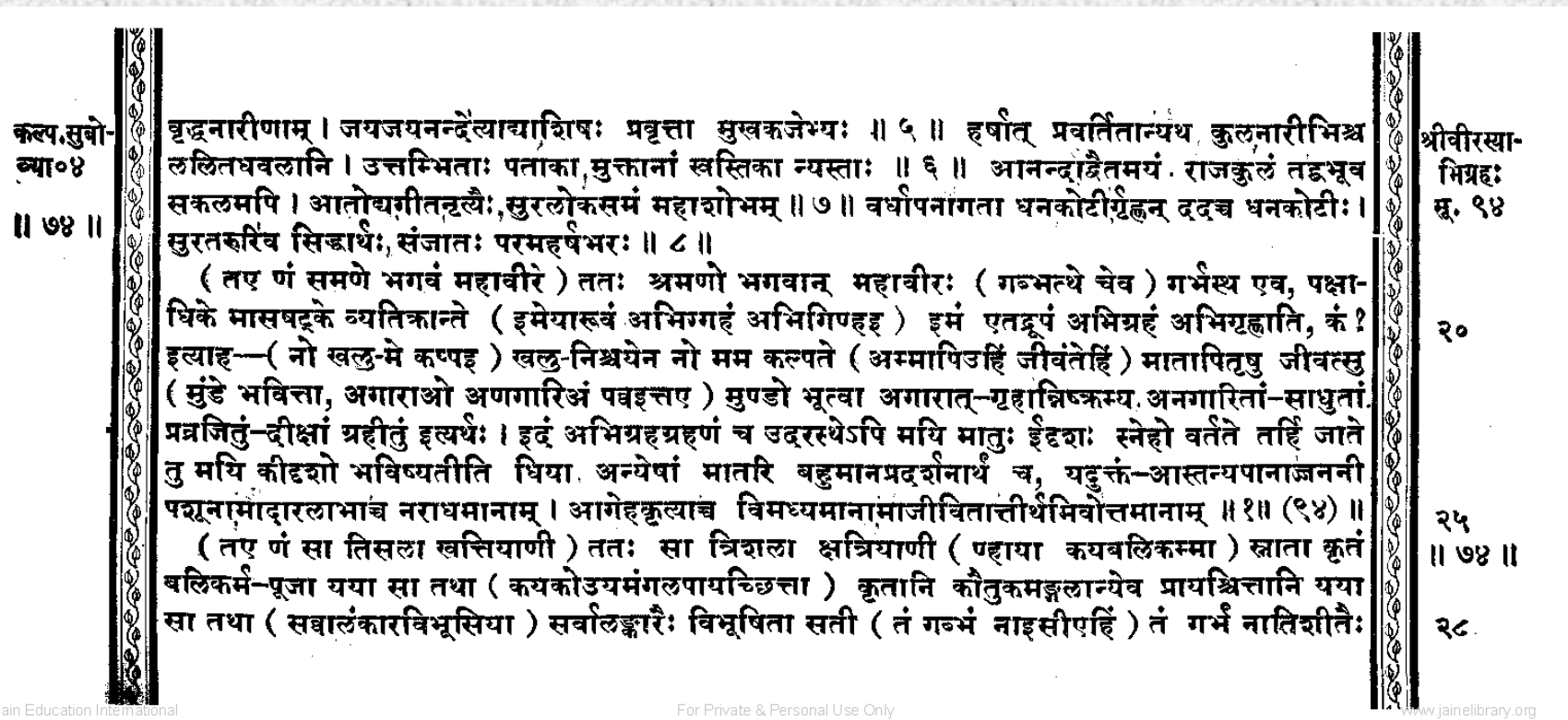
हर्षचेष्टा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९४] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [९३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-ध्या०४ ॥ ७४ ॥

वृद्धनारीणाम् । जयजयनन्देत्याद्याशिषः प्रवृत्ता सुखकजेभ्यः ॥ ५ ॥ हर्षात् प्रवर्तितान्यथ कुलनारीभिश्च ललितधवलानि । उत्तम्भिताः पताका मुक्तानां स्वस्तिका न्यस्ताः ॥ ६ ॥ आनन्दाद्वैतमयं राजकुलं तद्बभूव सकलमपि । आतोद्यगीतनृत्यैः, सुरलोकसमं महाशोभम् ॥ ७ ॥ वर्धापनागता धनकोटीर्गृह्णन् ददच्च धनकोटीः । सुरतरुरिव सिद्धार्थः, संजातः परमहर्षभरः ॥ ८ ॥

(तए णं समणे भगवं महावीरे) ततः श्रमणो भगवान् महावीरः (गब्भत्थे चेव) गर्भस्थ एव, पक्षाधिके मासषट्के व्यतिक्रान्ते (इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ) इमं एतद्रूपं अभिग्रहं अभिगृह्णाति, कं ? इत्याह—(नो खलु-मे कप्पइ) खलु-निश्चयेन नो मम कल्पते (अम्मापिउहिं जीवंतेहिं) मातापितृषु जीवत्सु (मुंडे भवित्ता, अगाराओ अणगारिअं पवइत्तए) मुण्डो भूत्वा अगारात्—गृहान्निष्क्रम्य अनगारितां—साधुतां प्रव्रजितुं—दीक्षां ग्रहीतुं इत्यर्थः । इदं अभिग्रहग्रहणं च उदरस्थेऽपि मयि मातुः ईदृशः स्नेहो वर्तते तर्हि जाते तु मयि कीदृशो भविष्यतीति धिया अन्येषां मातरि बहुमानप्रदर्शनार्थं च, यदुक्तं—आस्तन्यपानाज्जननी पशूनामादारलाभाच्च नराधमानाम् । आगेहकृत्याच्च विमध्यमानामाजीवितात्तीर्थमिवोत्तमानाम् ॥१॥ (९४) ॥

(तए णं सा तिसला खत्तियाणी) ततः सा त्रिशला क्षत्रियाणी (पहाया कयबलिकम्मा) स्नाता कृतं बलिकर्म—पूजा यया सा तथा (कयकोउयमंगलपायच्छित्ता) कृतानि कौतुकमङ्गलान्येव प्रायश्चित्तानि यया सा तथा (सव्वालंकारविभूसिया) सर्वालङ्कारैः विभूषिता सती (तं गब्भं नाइसीएहिं) तं गर्भं नातिशीतैः

श्रीवीरस्वाभिग्रहः सू. ९४

२०

२५

॥ ७४ ॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** भगवन्त महावीरेण गर्भवास-स्थिते कृत अभिग्रह:

प्रत सूत्रांक [९५] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [९४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

(नाइउण्हेहिं) नात्युष्णैः (नाइतित्तेहिं) नातितिक्तैः (नाइकडुएहिं) नातिकटुकैः (नाइकसाएहिं) नातिकषायैः (नाइअंबिलेहिं) नात्यम्लैः (नाइमहुरेहिं) नातिमधुरैः (नाइनिद्धेहिं) नातिस्निग्धैः (नाइलुक्खेहिं) नातिरूक्षैः (नाइउल्लेहिं) नात्यार्द्रैः (नाइसुक्केहिं) नातिशुष्कैः (सव्वटुभयमाणसुहेहिं) सर्वर्तुषु-ऋतौ ऋतौ भज्यमानाः-सेव्यमाना ये सुखहेतवो-गुणकारिणस्तैः, तदुक्तं—वर्षासु लवणममृतं शरदि जलं गोपयश्च हेमन्ते। शिशिरे चाऽऽमलकरसो घृतं वसन्ते गुडश्चान्ते ॥ १ ॥ एवंविधैः (भोयणाच्छायणगंधमल्लेहिं) भोजनाच्छादनगन्धमाल्यैः, तत्र भोजनं-प्रतीतं आच्छादनं-वस्त्रं गन्धाः-पुटवासादयः माल्यानि-पुष्पमालास्तैर्गर्भं पोषयतीति शेषः, तत्र नातिशीतलादय एव आहारादयो गर्भस्य हिताः, न तु अतिशीतलादयः, ते हि केचिद्वातिकाः केचित् पैत्तिकाः केचित् श्लेष्मकराश्च, ते च अहिताः, यदुक्तं वाग्भटे—वातलैश्च भवेद् गर्भः, कुब्जान्धजडवामनः। पित्तलैः स्खलतिः पिङ्गः, श्वित्री पाण्डुः कफात्मभिः ॥ १ ॥ तथा-अतिलवणं नेत्रहरं अतिशीतं मारुतं प्रकोपयति। अत्युष्णं हरति बलं अतिकामं जीवितं हरति ॥ २ ॥ अन्यच-'मैथुन १ यान २ वाहन ३ मार्गगमन ४ प्रस्खलन ५ प्रपातन ६ प्रपीडन ७ प्रधावना ८ ऽभिघात ९ विषमशयन १० विषमासनो-११ पवास १२ वेगविघाता १३ ऽतिरूक्षा १४ तितिक्ता १५ तिकटुका १६ तिभोजना १७ तिरोगा १८ तिशोका १९ तिक्षारसेवा २० तिसार २१ वमन २२ विरचेन २३ प्रेङ्खोलना २४-जीर्ण २५ प्रभृतिभिर्गर्भो बन्धनान्मुच्यते, ततो नातिशीतलाद्यैराहारादयैस्तं गर्भं सा पोषयतीति युक्तम् ॥

गर्भपोषणम् सू. ९५ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [९५] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [९४]

अथ सा त्रिशला कथंभूता ?-(ववगयरोगसोगमोहभयपरिस्समा) रोगा-ज्वराद्याः, शोक-इष्टवियोगादिज-नितः मोहो-मूर्च्छा भयं-भीतिः, परिश्रमो-व्यायामः एते व्यपगता यस्याः सा तथा, रोगादिरहिता इति भावः ॥ यत एते गर्भस्य अहितकारिणः, तदुक्तं सुश्रुते—'दिवा स्वपत्याः स्त्रियाः स्वापशीलो गर्भः अञ्जना-दन्धः रोदनाद्विकृतदृष्टिः स्नानानुलेपनाद् दुःशीलः तैलाभ्यङ्गात् कुष्ठी नखापकर्त्तनात् कुनखी प्रधावनाच्चञ्चलः हसनात् श्यामदन्तौष्ठतालुजिह्वः अतिकथनाच्च प्रलापी अतिशब्दश्रवणाद्बधिरः अवलेखनात् स्खलतिः व्यञ्जनक्षेपणादिमारुतायाससेवनादुन्मत्तः स्यात्, तथा च कुलवृद्धास्त्रिशलां शिक्षयन्ति-मन्दं सञ्चर मन्दमेव निगद व्यायुञ्च कोपक्रमं, पथ्यं भुङ्क्ष्व बधान नीविमनघां मा माऽट्टहासं कृथाः । आकाशे भव मा सुशेष्व शयने नीचैर्बहिर्गच्छ मा, देवी गर्भभरालसा निजसखीवर्गेण सा शिक्ष्यते ॥ १ ॥ अथ सा त्रिशला पुनः किं कुर्वती ? (जं तस्स गब्भस्स हिअं मिअं पत्थं गब्भपोसणं) यत्तस्य गर्भस्य हितं तदपि मितं न तु न्यूनं अधिकं वा पथ्यं-आरोग्यकारणं अत एव गर्भपोषकं (तं देसे य काले य आहारमाहारेमाणी) तदपि देशे-उचितस्थाने न तु आकाशादौ तदपि काले-भोजनसमये न तु अकाले, आहारं आहारयन्ती (विवित्तमउ-एहिं सयणासणेहिं) विविक्तानि-दोषरहितानि मृदुकानि-कोमलानि यानि शयनासनानि तैः, तथा (पइ-रिक्कसुहाए) प्रतिरिक्ता-अन्यजनापेक्षया निर्जना अत एव सुखा-सुखकारिणी तया (मणाणुकूलाए विहार-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९५] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [९४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

भूमीए) मनोऽनुकूलया–मनःप्रमोददायिन्या एवंविधया विहारभूम्या–चङ्क्रमणासनादिभूम्या कृत्वा, अथ सा त्रिशला किंविशिष्टा सती तं गर्भं परिवहति ? (पसत्थदोहला) प्रशस्ता दोहदा–गर्भप्रभावोद्भूता मनोरथा यस्याः सा तथा, ते चैवं—जानात्यमारिपटहं पटु घोषयामि, दानं ददामि सुगुरून् परिपूजयामि । तीर्थेश्वरार्चनमहं रचयामि सङ्घे, वात्सल्यमुत्सवभृतं बहुधा करोमि ॥ १ ॥ सिंहासने समुपविश्य वरातपत्रा, संवीज्यमानकरणा सितचामराभ्यां । आज्ञेश्वरत्वमुदितोऽनुभवामि सम्यग्, भूपालमौलिमणिलालितपादपीठा ॥ २ ॥ आरुह्य कुञ्जरशिरः प्रचलत्पताका, वादित्रनादपरिपूरितदिग्विभागा । लोकैः स्तुता जयजयेतिरवैः प्रमोदादुद्यानकेलिमनघां कलयामि जाने ॥ ३ ॥ इत्यादि, पुनः सा किंवि० ? (संपुन्नदोहला) सम्पूर्णदोहदा, सिद्धार्थराजेन सर्वमनोरथपूरणात्, अत एव (सम्माणियदोहला) सन्मानितदोहदा, पूर्णीकृत्य तेषां निवर्त्तितत्वात्, तत एव (अविमाणिअदोहला) अविमानितदोहदा, कस्यापि दोहदस्य अवगणनाभावात्, पुनः किंवि० ? (वुच्छिन्नदोहला) व्युच्छिन्नदोहदा पूर्णवाञ्छितत्वात्, अत एव (ववणीयदोहला) व्यपनीतदोहदा, सर्वथा असद्दोहदा (सुहंसुहेणं) सुखंसुखेन–गर्भानाबाधया (आसइ) आश्रयति–आश्रयणीयं स्तम्भादिकं अवलम्बते (सयइ) शेते–निद्रां करोति (चिट्ठइ) तिष्ठति–ऊर्ध्वं तिष्ठति (निसीयइ) निषीदति–आसने उपविशति (तुअट्टइ) त्वगवर्त्तयति–निद्रां विना शय्यायां शेते इत्यर्थः (विहरइ) विह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९६] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [९६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० ४ ॥ ७६ ॥

रति–कुट्टिमतले विचरति, अनेन प्रकारेण (सुहंसुहेणं तं गब्भं परिवहइ) सुखंसुखेन तं गर्भं परिवहतीति भावः ॥ ॥ (९५) ॥

(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (जे से गिम्हाणं पढमे मासे) योऽसौ उष्णकालस्य प्रथमो मासः (दुच्चे पक्खे) द्वितीयः पक्षः (चित्तसुद्धे) चैत्रमासस्य शुक्लपक्षः (तस्स णं चित्तसुद्धस्स) तस्य चैत्रशुद्धस्य (तेरसीदिवसेणं) त्रयोदशीदिवसे (नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं) नवसु मासेषु बहुप्रतिपूर्णेषु (अद्धट्ठमाणं राइंदिआणं विइक्कंताणं) अर्धाष्टमरात्रिंदिवाधिकेषु, सार्धसप्तदिनाधिकेषु नवसु मासेषु व्यतिक्रान्तेषु इति भावः, तदुक्तं–"[1]दुण्हं वरमहिलाणं गब्भे वसिऊण गब्भसुकुमालो। नवमासे पडिपुण्णे सत्त य दिवसे समइरेगे ॥१॥" इदं च गर्भस्थितिमानं न सर्वेषां तुल्यं, तथा चोक्तं—"दु १ चउत्थ २ नवम ३ बारस ४ तेरस ५ पन्नरस ६ सेस (१८ गब्भठिई। मासा अड नव तदुवरि उसहाउ कमेणिमे दिवसा ॥ १ ॥ चउ १ पणवीसं २ छद्दिण ३ अडवीसं ४ छच्च ५ छचि ६ गुणवीसं ७। सग ८ छवीसं ९ छ १० च्छय ११ वीसि १२ गवीसं १३ छ १४ छवीसं १५ ॥ २ ॥ छ १६ प्पण १७ अड १८ सत्त १९ ट्ठय २० अड २१ ट्ठय २२ छ २३ सत्त २४ होन्ति गब्भदिण-" त्ति ॥ सप्ततिशतस्थानके श्रीसोमतिलकसूरिकृते ॥

१ द्वयोर्वरमहिलयोर्गर्भे उषित्वा गर्भसुकुमालः। नव मासान् प्रतिपूर्णान् सप्त च दिवसान् समतिरेकान् ॥ १ ॥

श्रीवीरस्य जन्म सू. ९६ २० ॥ ७६ ॥ २५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** भगवन्त महावीरस्य जन्म एवं २४ तीर्थकराणां गर्भ-स्थिते: निर्देश:

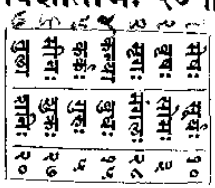
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [९६] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [९६]

सुखावबोधाय चास्य यंत्रम्–

ऋष-	अकि-	संभव-	अभिन-	सुमति-	पद्म-	सुपा-	चन्द्र	सुवि-	शीत-	श्रेया-	वासु-	विमल-	अनन्त-	धर्म-	शान्ति-	कुन्थु-	अर-	मल्ली-	मुनि-	नमि-	नेमि-	पा-	वीर-	
९	८	९	८	९	९	९	९	८	९	९	८	८	९	८	९	९	९	९	९	९	९	९	९	मा.
४	२५	६	२८	६	६	१९	७	२६	६	६	२०	२१	६	२६	६	५	८	७	८	८	८	६	७	दि.



(उच्चट्ठाणगएसु गहेसु) तदानीं ग्रहेषु उच्चस्थानस्थितेषु, ग्रहाणां उच्चत्वं चैवम्–अर्कांद्युच्चान्यज १ वृष २-मृग ३ कन्या ४ कर्क ५ मीन ६ वणिजोऽजं शौः। दिग् १० दहना ३ ष्टाविंशति २८ तिथी १५ षु ५ नक्षत्र २७-विंशतिभिः २० ॥ १ ॥ अयं भावः–मेषादिराशिस्थाः सूर्यादय उच्चास्तत्रापि दशादीनंशान् यावत् परमोच्चाः। एषां फलं तु—सुखी १ भोगी २ धनी ३ नेता ४, जायते मण्डलाधिपः ५। नृपति ६-श्चक्रवर्त्ती च ७, क्रमादुच्चग्रहे फलम् ॥ १ ॥ तिहिं[1] उच्चेहिं नरिंदो पञ्चहिं तह होइ अद्ध-चक्की अ। छहिं होइ चक्कवट्टी सत्तहिं तित्थङ्करो होइ ॥ २ ॥ (पढमे चंदजोए) प्रथमे–प्रधाने चन्द्रयोगे सति (सोमासु दिसासु) सौम्यासु–रजोवृष्ट्यादिरहितासु दिक्षु वर्त्तमानासु, पुनः किंविशिष्टासु दिक्षु? (वितिमिरासु) अन्धकाररहितासु, भगवज्जन्मसमये सर्वत्र उद्योतसद्भावात्, पुनः

१ त्रिभिरुच्चैर्नरेन्द्रः पञ्चभिस्तथा भवत्यर्धचक्री। षड्भिर्भवति चक्रवर्त्ती सप्तभिस्तीर्थङ्करो भवति ॥ १ ॥

श्रीवीरस्य जन्म सू. ९६

५

८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९६] गाथा ||१..|| दीप अनुक्रम [९६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

किंवि० ? (विसुद्धासु) विशुद्धासु, दिग्दाहाद्यभावात्, (जइएसु सव्वसउणेसु) सर्वेषु शकुनेषु–काकोलूक-दुर्गादिषु जयिकेषु–जयकारकेषु सत्सु (पयाहिणाणुकूलंसि) प्रदक्षिणे प्रदक्षिणावर्त्तत्वात् अनुकूले सुरभि-शीतत्वात् सुखप्रदे (भूमिसप्पंसि) मृदुत्वात् भूमिसर्पिणि, प्रचण्डो हि वायुः उच्चैः सर्पति, एवंविधे (मारु-अंसि) मारुते–वायौ (पवायंसि) प्रवातुं आरब्धे सति (निप्फण्णमेइणीयंसि कालंसि) निष्पन्ना, कोऽर्थः ?–निष्पन्नसर्वशस्या मेदिनी यत्र एवंविधे काले सति (पमुइअपक्कीलिएसु जणवएसु) प्रमुदितेषु सुभिक्षादिना प्रक्रीडितेषु–प्रक्रीडितुं आरब्धेषु वसन्तोत्सवादिना, एवंविधेषु जनपदेषु–जनपदवासिषु लोकेषु सत्सु (पुव्वर-त्तावरत्तकालसमयंसि) पूर्वरात्रापररात्रकालसमये (हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं चंदेणं जोगमुवागएणं) उत्तरफा-ल्गुनीभिः समं योगं उपागते चन्द्रे सति (आरोग्गाऽऽरोग्गं) आरोग्या-आबाधारहिता सा त्रिशला आरोग्यं–आबाधारहितं (दारयं पयाया) दारकं–पुत्रं प्रजाता–सुषुवे इति भावः ॥ (९६) ॥

इति महोपाध्यायश्रीकीर्तिविजयगणिशिष्यभुजिष्योपाध्यायश्रीविनयविजयगणिविरचितायां
कल्पसुबोधिकायां चतुर्थः क्षणः समाप्तः ।
ग्रन्थाग्रम् ४६९ । चतुर्णामपि व्याख्यानानां ग्रन्थाग्रम् ॥ २५७५ ॥ श्रीरस्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थं व्याख्यानं समाप्तं

प्रत सूत्रांक [९७] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [९८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

॥ अथ पञ्चमं व्याख्यानं प्रारभ्यते ॥

श्रीवीरजन्मोत्सवः सू. ९७

(जं रयणिं च णं) यस्यां च रात्रौ (समणे भगवं महावीरे जाए) श्रमणो भगवान् महावीरः जातः (सा णं रयणी बहूहिं देवेहिं देवीहि य) सा रजनी बहुभिर्देवैः-शक्रादिभिर्बहीभिर्देवीभिः-दिक्कुमारीदिभिश्च (ओवयंतेहिं) अवपतद्भिः-जन्मोत्सवार्थं स्वर्गाद्भुवमागच्छद्भिः (उप्पयंतेहिं) उत्पतद्भिः-ऊर्ध्वं गच्छद्भिर्मेरुशिखरगमनाय, तैः कृत्वा (उप्पिंजलमाणभूआ) भृशं आकुला इव (कहकहगभूया यावि हुत्था) हर्षाट्टहासादिना कहकहकभूतेव-अव्यक्तवर्णकोलाहलमयीव, एवंविधा सा रात्रिः अभवत् (९७) अनेन च सूत्रेण सुरकृतः सविस्तरो जन्मोत्सवः सूचितः। स चायं-अचेतना अपि दिशः, प्रसेदुर्मुदिता इव। वायवोऽपि सुखस्पर्शा, मन्दं मन्दं ववुस्तदा ॥ १ ॥ उद्योतस्त्रिजगत्यासीद्दध्वान दिवि दुन्दुभिः। नारका अप्यमोदन्त, भूरप्युच्छ्वासमासदत् ॥ २ ॥ तत्र तीर्थकृतां जन्मनः सूतिकर्मणि प्रथमतः षट्पञ्चाशद्दिक्कुमार्यः समागत्य शाश्वतिकं स्वाचारं कुर्वन्ति, तद्यथा-दिक्कुमार्योऽष्टाधोलोकवासिन्यः कम्पितासनाः। अर्हज्जन्मावधेर्ज्ञात्वाऽभ्येयुस्तत्सूतिवेश्मनि ॥ ३ ॥ भोगङ्करा १ भोगवती २, सुभोगा ३ भोगमालिनी ४। सुवत्सा ५ वत्समित्रा च ६, पुष्पमाला ७ त्वनिन्दिता ८ ॥ ४ ॥ नत्वा प्रभुं तदम्बां चेशाने सूतिगृहं व्यधुः। संवर्त्तनाशोधयन् क्ष्मामायोजनमितो गृहात् ॥ ५ ॥ मेघङ्करा १ मेघवती २, सुमेघा ३ मेघमालिनी ४। तोयधारा

५ १० १३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

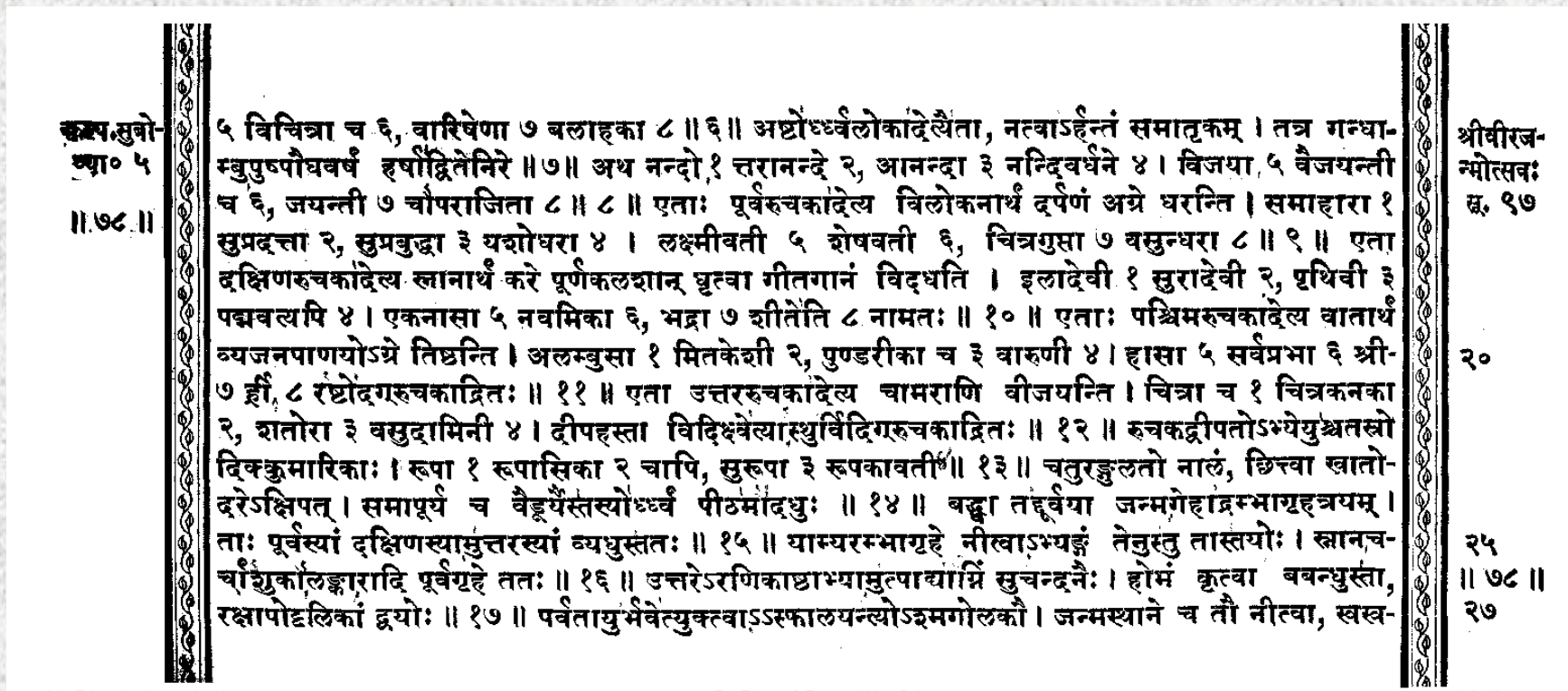
पंचमं व्याख्यानं आरभ्यते

*** भगवन्त महावीरस्य जन्म-कल्याणक-वर्णनं

प्रत सूत्रांक [९८] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [९९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-धि० ५ ॥७८॥

५ विचित्रा च ६, वारिषेणा ७ बलाहका ८ ॥ ६ ॥ अष्टोर्ध्वलोकादेत्यैता, नत्वाऽर्हन्तं समातृकम् । तत्र गन्धाम्बुपुष्पौघवर्षं हर्षोद्वितेनिरे ॥ ७ ॥ अथ नन्दो १ त्तरानन्दे २, आनन्दा ३ नन्दिवर्धने ४ । विजया ५ वैजयन्ती च ६, जयन्ती ७ चौपराजिता ८ ॥ ८ ॥ एताः पूर्वरुचकादेत्य विलोकनार्थं दर्पणं अग्रे धरन्ति । समाहारा १ सुप्रदत्ता २, सुप्रबुद्धा ३ यशोधरा ४ । लक्ष्मीवती ५ शेषवती ६, चित्रगुप्ता ७ वसुन्धरा ८ ॥ ९ ॥ एता दक्षिणरुचकादेत्य स्नानार्थं करे पूर्णकलशान् धृत्वा गीतगानं विदधति । इलादेवी १ सुरादेवी २, पृथिवी ३ पद्मवत्यपि ४ । एकनासा ५ नवमिका ६, भद्रा ७ शीतेति ८ नामतः ॥ १० ॥ एताः पश्चिमरुचकादेत्य वातार्थं व्यजनपाणयोऽग्रे तिष्ठन्ति । अलम्बुसा १ मितकेशी २, पुण्डरीका च ३ वारुणी ४ । हासा ५ सर्वप्रभा ६ श्री-७ र्ही, ८ रष्टोदग्रुचकाद्रितः ॥ ११ ॥ एता उत्तररुचकादेत्य चामराणि वीजयन्ति । चित्रा च १ चित्रकनका २, शतोरा ३ वसुदामिनी ४ । दीपहस्ता विदिक्ष्वेत्यास्थुर्विदिग्रुचकाद्रितः ॥ १२ ॥ रुचकद्वीपतोऽभ्येयुश्चतस्रो दिक्कुमारिकाः । रूपा १ रूपासिका २ चापि, सुरूपा ३ रूपकावती ॥ १३ ॥ चतुरङ्गुलतो नालं, छित्त्वा खातोदरेऽक्षिपत् । समापूर्य च वैडूर्यैस्तस्योर्ध्वं पीठमादधुः ॥ १४ ॥ बद्ध्वा तद्भूर्वया जन्मगेहाद्रम्भागृहत्रयम् । ताः पूर्वस्यां दक्षिणस्यामुत्तरस्यां व्यधुस्ततः ॥ १५ ॥ याम्यरम्भागृहे नीत्वाऽभ्यङ्गं तेनुस्तु तास्तयोः । स्नानचौशुकालङ्कारादि पूर्वगृहे ततः ॥ १६ ॥ उत्तरेऽरणिकाष्ठाभ्यामुत्पाद्याग्निं सुचन्दनैः । होमं कृत्वा बबन्धुस्ता, रक्षापोटलिकां द्वयोः ॥ १७ ॥ पर्वतायुर्भवेत्युक्त्वाऽऽस्फालयन्त्योऽश्मगोलकौ । जन्मस्थाने च तौ नीत्वा, स्वस्व-

श्रीवीरजन्मोत्सवः सू. ९७

२०

२५

॥ ७८ ॥

२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [९८] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [९९]

दिक्कुमारी-कृतीजन्मो-त्सवः

दिक्षु स्थिता जगुः ॥ १८ ॥ एताश्च—सामानिकानां प्रत्येकं, चत्वारिंशच्चतैर्युताः । महत्तराभिः प्रत्येकं, तथा चतसृभिर्युताः ॥ १९ ॥ अङ्गरक्षैः षोडशभिः, सहस्रैः सप्तभिस्तथा । कटकैस्तदधीशैश्च, सुरैश्चान्यैर्महर्द्धिभिः ॥ २० ॥ आभियोगिकदेवकृतैर्योजनप्रमाणैर्विमानैः अत्रायान्तीति दिक्कुमारिकामहोत्सवः ॥ ततः सिंहासनं शक्रं, चचालाचलनिश्चलम् । प्रयुज्यावधिं ज्ञात्वा, जन्मान्तिमजिनेशितुः ॥ १ ॥ वज्रैकयोजनां घण्टां, सुघोषां नैगमेषिणा । अवादयत्ततो घण्टारेणुः सर्वविमानगाः ॥ २ ॥ शक्रादेशं ततः सोऽथैः, सुरेभ्योऽज्ञापयत्स्वयम् । तेन प्रमुदिता देवाश्चलनोपक्रमं व्यधुः ॥ ३ ॥ पालकाख्यामरकृतं, लक्षयोजनसंमितम् । विमानं पालकं नामाऽध्यारोहत्त्रिदशेश्वरः ॥ ४ ॥ पालकविमाने इन्द्रसिंहासनस्य अग्रे अग्रमहिषीणां अष्टौ भद्रासनानि, वामतश्चतुरशीतिसहस्रसामानिकसुराणां तावन्ति भद्रासनानि, दक्षिणतो द्वादशसहस्राभ्यन्तरपार्षदानां तावन्ति भद्रासनानि, चतुर्दशसहस्रमध्यमपार्षदानां तावन्त्येव भद्रासनानि, एवं षोडशसहस्रबाह्यपार्षदानामपि षोडशसहस्रभद्रासनानि, पृष्ठतः सप्तानीकाधिपतीनां सप्त भद्रासनानि, चतसृषु दिक्षु प्रत्येकं चतुरशीतिसहस्रात्मरक्षकदेवानां चतुरशीतिसहस्रभद्रासनानि, तथा—अन्यैरपि घनैर्दैवैर्वृतः सिंहासनस्थितः । गीयमानगुणोऽचालीदपरेऽपि सुरास्ततः ॥५॥ देवेन्द्रशासनात् केचित्, केचिन्मित्रानुवर्त्तनात् । पत्नीभिः प्रेरिताः केचित्, केचिदात्मीयभावतः ॥६॥ केऽपि कौतुकतः केऽपि, विस्मयात् केऽपि भक्तितः । चेलुरेवं सुराः सर्वे, विविधैर्वाहनैर्युताः॥७॥विविधैस्तूर्यनिर्घोषैर्घण्टानां क्वणितैरपि । कोलाहलेन देवानां, शब्दाद्वैतं तदाऽजनि॥८॥सिंहस्थो वक्ति

कल्प.सु. १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९८] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [९९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

हस्तिस्थं, दूरे स्वीयं गजं कुरु। हनिष्यत्यन्यथा नूनं, दुर्द्धरो मम केसरी ॥९॥ वाजिस्थं कासरारूढो, गरुडस्थो हि सर्प-
गम्। छागस्थं चित्रकस्थोऽथ, वदत्येवं तदादरात् ॥ १० ॥ सुराणां कोटिकोटीभिर्विमानैर्वाहनैर्घनैः। विस्ती-
र्णोऽपि नभोमार्गोऽतिसंकीर्णोऽभवत्तदा ॥ ११ ॥ मित्रं केऽपि परित्यज्य, दक्षत्वेनाग्रतो ययुः। प्रतीक्षस्व
क्षणं भ्रातर्मामत्रेत्यपरोऽवदत् ॥ १२ ॥ केचिद्वदन्ति भो देवाः, संकीर्णाः पर्ववासराः। भवन्त्येवंविधा नूनं,
तस्मान्मौनं विधत्त भोः ॥ १३ ॥ नभस्यागच्छतां तेषां, शीर्षे चन्द्रकरैः स्थितैः। शोभन्ते निर्जरास्तत्र, सजरा
इव केवलम् ॥ १४ ॥ मस्तके घटिकाकाराः, कंठे ग्रैवेयकोपमाः। स्वेदबिन्दुसमा देहे, सुराणां तारका बभुः
॥ १५ ॥ नन्दीश्वरे विमानानि, संक्षिप्याऽऽगात् सुराधिपः। जिनेन्द्रं च जिनाम्बां च, त्रिः प्रादक्षिणयत्ततः
॥ १६ ॥ वन्दित्वा च नमस्यित्वेत्येवं देवेश्वरोऽवदत्। नमोऽस्तु ते रत्नकुक्षिधारिके! विश्वदीपिके! ॥ १७ ॥
अहं शक्रोऽस्मि देवेन्द्रः, कल्पादाद्यादिहागमम्। प्रभोरन्तिमदेवस्य, करिष्ये जननोत्सवम् ॥ १८ ॥ ॥ भेतव्यं
देवि! तन्नैवेत्युक्त्वाऽवस्वापिनीं ददौ। कृत्वा जिनप्रतिबिम्बं, जिनाम्बासन्निधौ न्यधात् ॥ १९ ॥ भगवन्तं तीर्थ-
करं, गृहीत्वा करसम्पुटे। विचक्रे पञ्चधा रूपं, सर्वश्रेयोऽर्थिकः स्वयम् ॥ २० ॥ एको गृहीततीर्थेशः, पार्श्वे द्वौ
चारुचामरौ। एको गृहीतातपत्रः, एको वज्रधरः पुनः ॥ २१ ॥ अग्रगः पृष्ठगं स्तौति, पृष्ठस्थोऽप्यग्रगं पुनः।
नेत्रे पश्चात् समीहन्ते, केचनाग्रेतनाः सुराः ॥ २२ ॥ शक्रः सुमेरुशृङ्गस्थं, गत्वाऽथो पाण्डुकं वनम्। मेरुचूला-
दक्षिणेनातिपाण्डुकम्बलासने ॥ २३ ॥ कृत्वोत्सङ्गे जिनं पूर्वाभिमुखोऽसौ निषीदति। समस्ता अपि देवेन्द्राः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [९८] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [९९]

स्वामिपादान्तमैयरुः ॥ २४ ॥ दश वैमानिकाः, विंशतिर्भवनपतयः, द्वात्रिंशद्व्यन्तराः, द्वौ ज्योतिष्कौ इति चतुः-षष्टिरिन्द्राणां ॥ सौवर्णा राजता रात्नाः, स्वर्णरूप्यमया अपि । स्वर्णरत्नमयाश्चापि, रूप्यरत्नमया अपि ॥ २५ ॥ स्वर्णरूप्यरत्नमया, अपि मृत्तिकामया अपि । कुम्भाः प्रत्येकमष्टाढ्यं, सहस्रं योजनाऽऽननाः ॥२६॥ यतः–पंणविसजो-अण तुङ्गो बारस य जोअणाइं वित्थारो । जोअणमेगं नालुअ, इगकोडिअ सट्ठिलक्खाइं ॥ २७ ॥ एवं भृङ्गारद-र्पणरत्नकरण्डकसुप्रतिष्ठकस्थालपात्रिकापुष्पचङ्गेरिकादिपूजोपकरणानि कुम्भवर्दष्टप्रकाराणि प्रत्येकमष्टोत्तरसह-स्रमानानि,तथा मागधादितीर्थानां मृदं जलं च गङ्गादीनां पद्मानि च जलं च पद्मह्रदादीनां क्षुल्लहिमवद्वर्षधरवैताढ्य-विजयवक्षस्कारादिपर्वतेभ्यः सिद्धार्थपुष्पगन्धान् सर्वौषधीश्च आभियोगिकसुरैरच्युतेन्द्र आनाययत्, क्षीरनीरघ-टैर्वक्षःस्थलस्थैस्त्रिदशा बभुः । संसारौघं तरीतुं द्राग्, धृतकुम्भा इव स्फुटम् ॥ २८ ॥ सिञ्चन्त इव भावद्भुं, क्षिपन्तो वा निजं मलम् । कलशं स्थापयन्तो वा, धर्मचैत्ये सुरा बभुः ॥ २९ ॥ संशयं त्रिदशेशस्य, मत्वा वीरोऽमराचलम् । वामाङ्गुष्ठाङ्गसम्पर्कात्, समन्तादप्यचीचलत् ॥ ३० ॥ कम्पमाने गिरौ तत्र, चकम्पेऽथ वसुन्धरा । शृङ्गाणि सर्वतः पेतुश्चुक्षुभुः सागरा अपि ॥ ३१ ॥ ब्रह्माण्डस्फोटसदृशो, शब्दाद्वैते प्रसर्पति । रुष्टः

देवकृतो जन्मोत्सवः ५ १० ११

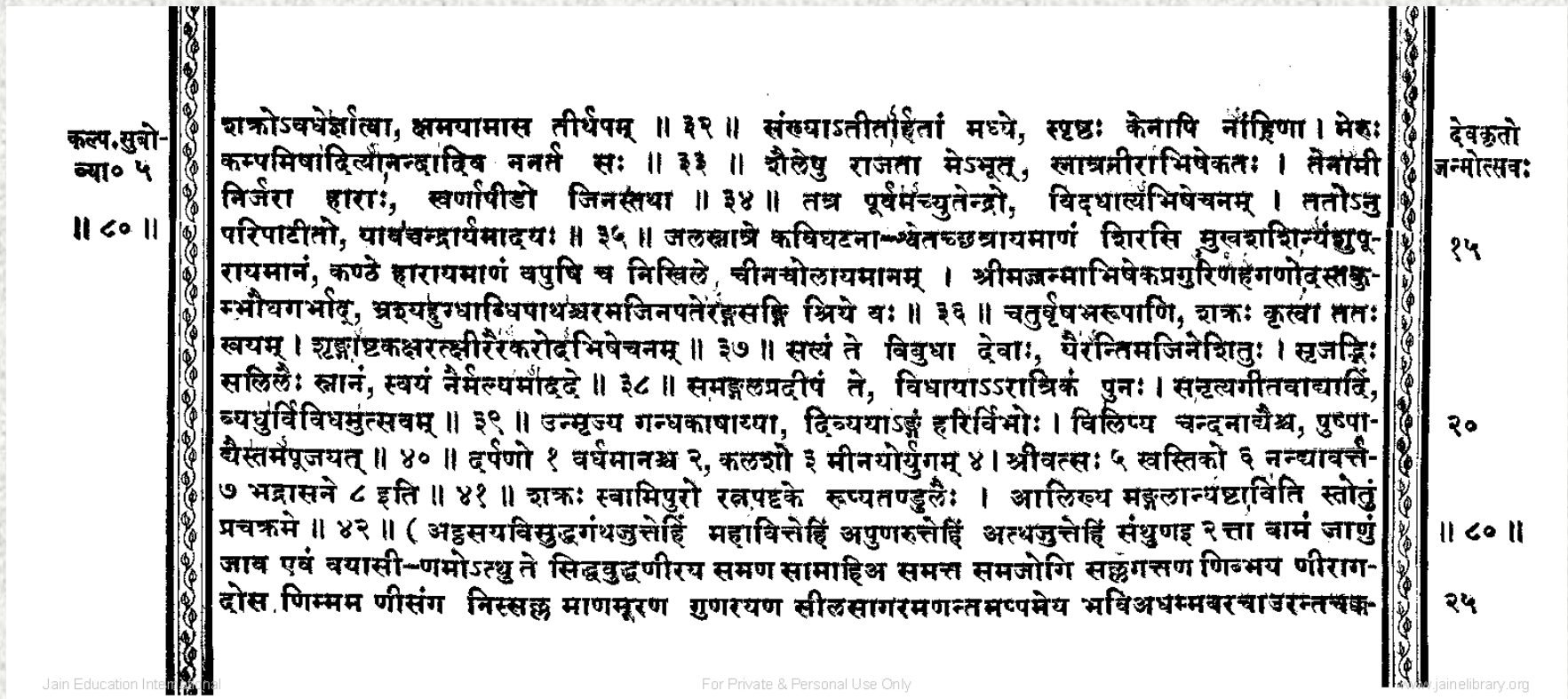
१ नवमदशमयोरेकादशद्वादशयोश्चैकैकेन्द्रस्वामिकत्वात् २ किन्नराद्या अष्ट अणपण्णीप्रभृतयोऽष्टेतिषोडशभेदानां तेषां द्विद्वीन्द्रस्वामिक-त्वात् ३ पञ्चविंशतिं योजनान्युच्चत्वं द्वादश योजनानि विस्तारः योजनमेकं नालं कोट्येका षष्टिर्लक्षाः ॥२९॥ कलशाः सौवर्णाद्याः प्रत्येकं सहस्रं तथा च ८००० अष्टवारा ६४००० अभिषेकाः २५० तथा च १६०००००० । सार्धं शतद्वयमभिषेकाणामेवं ६२ इन्द्राः १३२ चन्द्रसूर्याः १ सामानिकः ३३ त्रायस्त्रिंशाः ३ पार्षद्याः १ आत्मरक्षकः ४ लोकपालाः ७ अनीकाधिपाः १ प्रकीर्णकः ५ इन्द्राण्यः १ आभियोगिकः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९८] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [९९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-व्या० ५ ॥ ८० ॥

शक्रोऽवधेर्ज्ञात्वा, क्षमयामास तीर्थपम् ॥ ३२ ॥ संख्याऽतीतार्हतां मध्ये, स्पृष्टः केनापि नाँहिणा । मेरुः कम्पमिषादित्यानन्दादिव ननर्त सः ॥ ३३ ॥ शैलेषु राजता मेऽभूत्, स्नात्रनीराभिषेकतः । तेनामी निर्जरा हाराः, स्वर्णापीडो जिनस्तथा ॥ ३४ ॥ तत्र पूर्वमच्युतेन्द्रो, विदधात्यभिषेचनम् । ततोऽनु परिपाटीतो, यावच्चन्द्रार्यमादयः ॥ ३५ ॥ जलस्नात्रे कविघटना–श्वेतच्छत्रायमाणं शिरसि मुखशशिन्यंशुपू-रायमानं, कण्ठे हारायमाणं वपुषि च निखिले चीनचोलायमानम् । श्रीमज्जन्माभिषेकप्रगुरिणहगणोद्वस्तकु-म्भौघगर्भोद्, भ्रश्यद्बुध्नाब्धिपाथश्चरमजिनपतेरङ्गसङ्गि श्रिये वः ॥ ३६ ॥ चतुर्वृषभरूपाणि, शक्रः कृत्वा ततः स्वयम् । शृङ्गाष्टकक्षरत्क्षीरैरेकरोदभिषेचनम् ॥ ३७ ॥ सत्यं ते विबुधा देवाः, यैरन्तिमजिनेशितुः । सृजद्भिः सलिलैः स्नानं, स्वयं नैर्मल्यमाददे ॥ ३८ ॥ समङ्गलप्रदीपं ते, विधायाऽऽरात्रिकं पुनः । सनृत्यगीतवाद्यादि, व्यधुर्विविधमुत्सवम् ॥ ३९ ॥ उन्मृज्य गन्धकाषाय्या, दिव्ययाऽङ्गं हरिर्विभोः । विलिप्य चन्दनाद्यैश्च, पुष्पा-द्यैस्तमपूजयत् ॥ ४० ॥ दर्पणो १ वर्धमानश्च २, कलशौ ३ मीनयोर्युगम् ४ । श्रीवत्सः ५ स्वस्तिको ६ नन्द्यावर्त्त-७ भद्रासने ८ इति ॥ ४१ ॥ शक्रः स्वामिपुरो रत्नपट्टके रूप्यतण्डुलैः । आलिख्य मङ्गलान्यष्टावितिं स्तोतुं प्रचक्रमे ॥ ४२ ॥ (अट्ठसयविसुद्धगंथजुत्तेहिं महावित्तेहिं अपुणरुत्तेहिं अत्थजुत्तेहिं संथुणइ २त्ता वामं जाणुं जाव एवं वयासी–णमोऽत्थु ते सिद्धबुद्धणीरय समण सामाहिअ समत्त समजोगि सल्लगत्तण णिब्भय णीराग-दोस णिम्मम णीसंग निस्सल्ल माणमूरण गुणरयण सीलसागरमणन्तमप्पमेय भविअधम्मवरचाउरन्तचक्क-

देवकृतो जन्मोत्सवः

१५

२०

॥ ८० ॥

२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [९८] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [९९]

वही ! णमोऽत्थु ते अरहओ) शक्रोऽथ जिनमानीय, विभुरुध्याम्बाऽन्तिके ततः । संजहार प्रतीबिम्बावस्वा- पिन्यौ स्वशक्तितः ॥ ४३ ॥ कुण्डले क्षौमयुग्मं चोच्छीर्षे मुक्त्वा हरिर्व्यधात् । श्रीदामरत्नदामाख्यमुल्लोचे स्वर्णकन्दुकम् ॥ ४४ ॥ द्वात्रिंशद्रत्नरैरूप्यकोटिवृष्टिं विरच्य सः । बादमाघोषयामासे, सुरैरित्याभियोगिकैः ॥ ४५ ॥ स्वामिनः स्वामिमातुश्च, करिष्यत्यशुभं मनः । ससधाऽऽर्यमञ्जरीव, शिरस्तस्य स्फुटिष्यति ॥ ४६ ॥ स्वाम्यङ्गुष्ठेऽमृतं न्यस्येत्यर्हज्जन्मोत्सवं सुराः । नन्दीश्वरेऽष्टाह्निकां च, कृत्वा जग्मुर्यथाऽऽगतम् ॥ ४७ ॥ इति देवकृतः श्रीमहावीरजन्मोत्सवः ॥ अस्मिन्नवसरे राज्ञे, दासी नाम्ना प्रियंवदा । तं पुत्रजननोदन्तं, गत्वा शीघ्रं न्यवेदयत् ॥ १ ॥ सिद्धार्थोऽपि तदाकर्ण्य, प्रमोदभरमेदुरः । हर्षगद्गदगी रोमोद्गमदन्तुरभूघनः ॥ २ ॥ विना किरीटं तस्यै स्वां, सर्वाङ्गालङ्कृतिं ददौ । तां धौतमस्तकां चक्रे, दासत्वापगमाय सः ॥ ३ ॥

(जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे जाए) यस्यां च रजन्यां श्रमणो भगवान् महावीरः जातः (तं रयणिं च णं) तस्यां रजन्यां (बहवे वेसमणकुंडधारी) बहवः वैश्रमणस्य आज्ञाधारिणः (तिरियजंभगा देवा) एवंविधाः तिर्यग्जृम्भकाः देवाः (सिद्धत्थरायभवणंसि) सिद्धार्थराजमन्दिरे (हिरण्णवासं च) रूप्यवृष्टिं च (सुवण्णवासं च) सुवर्णवृष्टिं च (वयरवासं च) वज्राणि–हीरकाः तेषां वृष्टिं च (वत्थवासं च) वस्त्राणां वृष्टिं च (आभरणवासं च) आभरणवृष्टिं च (पत्तवासं च) पत्राणि नागवल्लीप्रमुखाणां तेषां वृष्टिं च (पुप्फवासं च) पुष्पाणां वृष्टिं च (फलवासं च) फलानि–नालिकेरादीनि तेषां वृष्टिं च (बीयवासं

हिरण्यादि-वृष्टिःसू.९८ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९९] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [१००]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० ५

॥ ८१ ॥

च) बीजानि–शाल्यादीनि तेषां वृष्टिं च (मल्लवासं च) मालत्यानां वृष्टिं च (गंधवासं च) गन्धाः–कोष्ठपुटादयस्तेषां वृष्टिं च (चुण्णवासं च) चूर्णानि–वासयोगास्तेषां वृष्टिं च (वण्णवासं च) वर्णाः–हिङ्गुलादयस्तेषां वृष्टिं च (वसुहारवासं च) वसुधारा–निरन्तरा द्रव्यश्रेणिस्तस्याः वृष्टिं च (वासिंसु) अवर्षयन् (९८) ॥

(तए णं से सिद्धत्थे खत्तिए) ततोऽनन्तरं स सिद्धार्थः क्षत्रियः (भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिएहिं देवेहिं) भवनपतयः व्यन्तराः ज्योतिष्काः वैमानिकाः ततः समासस्तैः एवंविधैः देवैः (तित्थयरजम्मणासेयमहिमाए कयाए समाणीए) तीर्थङ्करस्य यो जन्माभिषेकस्तस्य महिम्नि–उत्सवे कृते सति (पच्चूसकालसमयंसि) प्रभातकालसमये (नगरगुत्तिए सद्दावेइ) नगरगोप्तृकान्–आरक्षकान् शब्दयति, आकारयतीत्यर्थः (सद्दावित्ता) शब्दयित्वा च (एवं वयासी) एवं अवादीत् ॥ (९९) ॥

(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया) क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! (खत्तियकुंडग्गामे नयरे) क्षत्रियकुण्डग्रामे नगरे (चारगसोहणं करेह) चारकशब्देन कारागारं उच्यते तस्य शोधनं–शुद्धिं कुरुत, बन्दिमोचनं कुरुत इत्यर्थः, यत उक्तं—"युवराजाभिषेके च, परराष्ट्रापमर्दने । पुत्रजन्मनि वा मोक्षो, बद्धानां प्रविधीयते ॥१॥" किञ्च–(माणुम्माणवद्धणं करेह) तत्र मानं–रसधान्यविषयं, उन्मानं–तुलारूपं तयोर्वर्द्धनं कुरुत (करित्ता) कृत्वा च (कुंडपुरं नयरं सब्भिंतरबाहिरिअं) अभ्यन्तरे बहिश्च यथोक्तविशेषणविशिष्टं कुण्डपुरनगरं कुरुत कारयत, अथ किंविशिष्टं ? (आसिअसित्तं) आसिक्तं सुगन्धजलच्छटादानेन (संमज्जिओवलित्तं) संमार्जितं

उत्सवादेशः मानादिवृद्धिः सू. ९९–१००

१५

२०

२५

॥ ८१ ॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१००] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [१०१]

कचवरापनयनेन, उपलिसं छगणादिना ततः कर्मधारयः, पुनः किंवि० ? (सिंघाडगतिअचउक्कचच्चरचउम्मुह-महापहपहेसु) शृङ्गाटकं–त्रिकोणं स्थानं, त्रिकं–मार्गत्रयसंगमः, चतुष्कं–मार्गचतुष्टयसङ्गमः, चत्वरं–अनेकमार्गसङ्गमः, चतुर्मुखं–देवकुलादि, महापन्था–राजमार्गः, पन्थानः–सामान्यमार्गाः, एतेषु स्थानेषु (सित्तत्ति) सिक्तानि जलेन अत एव (सुइत्ति) शुचीनि–पवित्राणि (संमट्ठत्ति) संमृष्टानि–कचवरापनयनेन समीकृतानि (रत्थंतरावणवीहियं) रथ्यान्तराणि–मार्गमध्यानि तथा आपणवीथयश्च–हट्टमार्गा यस्मिन् तत्तथा, पुनः किंवि० ? (मंचाइमंचकलिअं) मञ्चा–महोत्सवविलोककजनानां उपवेशननिमित्तं मालकाः, अतिमञ्चकाः–तेषां अपि उपरि कृता मालकास्तैः कलितं, पुनः किंवि० ? (नाणाविहरागभूसिअझयपडागमंडिअं) नानाविधैः रागैर्विभूषिता ये ध्वजाः–सिंहादिरूपोपलक्षिता बृहत्पटाः, पताकाश्च–लघ्व्यस्ताभिर्मण्डितं–विभूषितं, पुनः किंवि० ? (लाउल्लोइअमहियं) छगणादिना भूमौ लेपनं, सेढिकादिना भित्त्यादौ धवलीकरणं, ताभ्यां महितं इव–पूजितं इव, पुनः किंवि० ? (गोसीससरसरत्तचंदणदद्दरदिन्नपंचंगुलितलं) गोशीर्षं–चंदनविशेषः तथा सरसं यत् रक्तचन्दनं तथा दर्दरनामपर्वतजातं चन्दनं तैः दत्ताः पञ्चाङ्गुलितला–हस्तकाः कुड्यादिषु यत्र तत्तथा, पुनः किंवि० ? (उवचियचंदणकलसं) उपनिहिता गृहान्तश्चतुष्केषु चन्दनकलशाः यत्र तत्तथा (चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागं) चन्दनघटैः सुकृतानि–रमणीयानि तोरणानि च प्रतिद्वारदेशभागं–द्वारस्य द्वारस्य देशभागे यस्मिन् तत्तथा, पुनः किंवि० ? (आसत्तोसत्तविपुलवट्टवग्घारियमल्लदामक-

मानवृक्षादि सू.१००

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१००] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [१०१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

लावं) आसक्तो-भूमिलग्नः, उत्सक्तश्च-उपरिलग्नो, विपुलो-विस्तीर्णो वर्तुलः प्रलम्बितो माल्यदामकलापः-पुष्पमालासमूहो यस्मिन् तत्तथा, पुनः किंवि० ? (पंचवण्णसरससुरहिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं) पञ्चवर्णाः सरसाः सुरभयो ये मुक्ताः पुष्पपुञ्जास्तैर्य उपचारो-भूमेः पूजा तया कलितं, पुनः किंवि० ? (कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कडज्झंतधूवमघमघंतगंधुद्धुआभिरामं) दह्यमानाः ये कृष्णागरुप्रवरकुन्दुरुक्कतुरुष्कधूपाः तेषां मघमघायमानो यो गन्धः तेन उद्धुयाभिरामन्ति-अत्यन्तमनोहरं, पुनः किंवि० ? (सुगंधवरगंधियं) सुगन्धवराः-चूर्णानि तेषां गन्धो यत्र तत्तथा तं, पुनः किंवि० ? (गंधवट्टिभूयं) गन्धवृत्तिभूतं-गन्धद्रव्यगुटिकासमानं, पुनः किंवि० ? (नडनट्टगजल्लमल्लमुट्ठियवेलंबगकहगपवगकहगतुंबवीणियलासगआरक्खगलंखमंखतूणइल्लतुंबवीणियभुयगतालायराणुचरियं) नटा-नाटयितारः, नर्त्तकाः-स्वयं नृत्यकुर्सारः जल्ला-वरत्राखेलकाः मल्लाः-प्रतीताः, मौष्टिका-ये मुष्टिभिः प्रहरन्ति ते मल्लजातीयाः (वेलंबगत्ति) विडम्बका-विदूषका जनानां हास्यकारिणः, ये समुखविकारमुत्प्लुत्य नृत्यन्ति ते वा (पवगत्ति) प्लवका-ये उत्प्लवनेन गर्त्तादिकमुल्लङ्घयन्ति नद्यादिकं वा तरन्ति (कहगत्ति) सरसकथावक्तारः (पाढगत्ति) सूक्तादीनां पाठकाः (लासगत्ति) लासका ये रासकान् ददति (आरक्खगत्ति) आरक्षकाः-तलवराः (लंखत्ति) लङ्खा-वंशाग्रखेलकाः (मंखत्ति) मङ्खाः-चित्रफलकहस्ता भिक्षुका 'गौरीपुत्रा' इति प्रसिद्धाः (तूणइल्लत्ति) तूणाभिधानवाद्यविशेषवादकाः भिक्षुविशेषाः (तुंबवीणियत्ति) तुम्बवीणिका-वीणावादकाः तथा (अणेगतालायराणुचरियं) अनेके ये तालाचराः-तालादानेन प्रेक्षाकारिणस्तालान् कुट्टयन्तो वा ये कथां कथयन्ति तैः अनुचरितं-संयुक्तं, एवंविधं क्षत्रियकुण्ड-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१०१] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [१०२]

ग्रामं नगरं (करेह कारवेह) कुरुत स्वयं, कारयत अन्यैः (करित्ता कारवित्ता य) कृत्वा कारयित्वा च (जूअसहस्सं मुसलसहस्सं च उस्सवेह) यूपाः-युगानि तेषां सहस्रं तथा मुशलानि-प्रतीतानि तेषां सहस्रं ऊर्ध्वीकुरुत, युगमुसलोर्ध्वीकरणेन च तत्रोत्सवे प्रवर्त्तमाने शकटखेटनकण्डनादिनिषेधः प्रतीयते इति वृद्धाः (उस्सवित्ता) तथा कृत्वा च (मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह) मम एतां आज्ञां प्रत्यर्पयत, कार्यं कृत्वा कृतं इति मम कथयतेत्यर्थः ॥ (१००) ॥

(तए णं ते कोडुंबियपुरिसा) ततः ते कौटुम्बिकपुरुषाः (सिद्धत्थेणं रन्ना) सिद्धार्थेन राज्ञा (एवं वुत्ता समाणा) एवं उक्ताः सन्तः (हट्ठतुट्ठ जाव हिअया) हृष्टाः तुष्टाः यावत् हर्षपूर्णहृदयाः (करयल जाव पडिसुणित्ता) करतलाभ्यां यावत् अञ्जलिं कृत्वा प्रतिश्रुत्य-अङ्गीकृत्य (खिप्पामेव कुंडपुरे नयरे) शीघ्रमेव क्षत्रियकुण्डग्रामे नगरे (चारगसोहणं जाव उस्सवित्ता) बन्दिगृहशोधनं-बन्दिमोचनं यावत् मुशलसहस्रं चोर्द्धीकृत्य (जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए) यत्रैव सिद्धार्थः क्षत्रियः (तेणेव उवागच्छंति) तत्रैव उपागच्छन्ति (उवागच्छित्ता) उपागत्य च (सिद्धत्थस्स खत्तिअस्स) सिद्धार्थस्य क्षत्रियस्य (तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति) तां आज्ञां प्रत्यर्पयन्ति-कृत्वा निवेदयन्ति ॥ (१०१) ॥

(तए णं सिद्धत्थे राया) ततोऽनन्तरं सिद्धार्थो राजा (जेणेव अट्टणसाला) यत्रैव अट्टनशाला-परिश्रमस्थानं (तेणेव उवागच्छइ) तत्रैव उपागच्छति (उवागच्छित्ता) उपागत्य (जाव सव्वोरोहेणं) अत्र यावत्-

बन्दिमोचनं सू.१०१ ५ १० १५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१०२] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [१०४]

कल्प.सुबो-ध्या० ५

॥ ८३ ॥

शब्दात् 'सविड्ढीए सवजुइए सववलेणं सववाहणेणं सवसमुदएणं' इत्येतानि पदानि वाच्यानि, तेषां चायमर्थः—'सविड्ढीए'त्ति सर्वया ऋद्ध्या युक्त इति गम्यं, एवं सर्वेष्वपि विशेषणेषु वाच्यं, सर्वया युक्त्या—उचितवस्तुसंयोगेन आभरणादिद्युत्या वा, सर्वेण बलेन—सैन्येन, सर्वेण वाहनेन—शिबिकातुरगादिना, सर्वेण समुदयेन—परिवारादिसमूहेन, एवं यावत्शब्दसूचितं अभिधाय ततः 'सवोरोहेणं' इत्यादि वाच्यं, तत्र 'सवोरोहेणंति' सर्वावरोधेन, सर्वेण अन्तःपुरेणेत्यर्थः (सवपुप्फगंधवत्थमल्लालंकारविभूसाए) सर्वया पुष्पगन्धवस्त्रमाल्यालङ्काराणां विभूषया युक्तः (सवतुडियसद्दनिनाएणं) सर्ववादित्राणि तेषां शब्दो निनादः—प्रतिरवश्च तेन युक्तः (महया इड्ढीए) महत्या ऋद्ध्या—छत्रादिरूपया युक्तः (महया जुईए) महत्या युक्त्या—उचिताडम्बरेण युक्तः (महया बलेणं) महता बलेन—चतुरङ्गसैन्येन युक्तः (महया वाहणेणं) महता वाहनेन—शिबिकादिना युक्तः (महया समुदएणं) महता समुदयेन—स्वकीयपरिवारादिसमूहेन युक्तः (महया वरतुडियजमगसमगप्पवाइएणं) महत्—विस्तीर्णं यत् वराणां—प्रधानानां तुटितानां—वादित्राणां जमगसमगं—युगपत् प्रवादितं—शब्दस्तेन, तथा (संखपणवभेरिझल्लरिखरमुहिहुडुक्कमुरजमुइंगदुदुंहिनिग्घोसनाइयरवेणं) शङ्खः—प्रतीतः, पणवो—मृत्पटहः, भेरी-ढक्का, झल्लरी—प्रतीता, खरमुखी—काहला, हुडुक्का—तिवलितुल्यो वाद्यविशेषः, मुरुजो—मर्दलः, मृदंगः—मृन्मयः स एव, दुन्दुभिः—देववाद्यं, एतेषां यो निर्घोषो—महाशब्दो, नादितं च—प्रतिशब्दस्तद्रूपो यो रवस्तेन, एवंरूपया सकलसामग्र्या युक्तः सिद्धार्थो राजा दश दिवसान् यावत् स्थितिपतितां—कुलमर्यादां महोत्सवरूपां करो-

करशुल्का-दिवर्जनम् सू. १०२ १५ २० २५ ॥ ८३ ॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१०२] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [१०४]

तीति योजना ॥ अथ किंविशिष्टां स्थितिपतितामित्याह—(उस्सुक्कं) उच्छुल्कां, शुल्कं-विक्रेतव्यक्रयाणकं प्रति मण्डपिकायां राजग्राह्यं द्रव्यं 'दाण' इति लोके तेन रहितां, पुनः किंवि० ? (उक्करं) उत्करां, करो-गवादीन् प्रति प्रतिवर्षं राजग्राह्यं द्रव्यं तेन रहितां, अत एव (उक्किट्ठं) उत्कृष्टां,सर्वेषां हर्षहेतुत्वात्, पुनः किंवि० ? (अदिज्जं) अदेयां, यत् यस्य युज्यते तत्सर्वं तेन हृतः ग्राह्यं न तु मूल्यं देयं मूल्यं तु तस्य राजा ददातीति भावः, अत एव (अमिज्जं) अमेयां अमितानेकवस्तुयोगात्, अथवा अदेयां विक्रयनिषेधात्, अमेयां क्रयविक्रयनिषेधात्, पुनः किंवि० ? (अभडपवेसं) नास्ति कस्यापि गृहे राजाज्ञादायिनां भटानां-राजपुरुषाणां प्रवेशो यत्र सा तथा तां, पुनः किंवि० ? (अदंडकोदंडिमं) दण्डो-यथाऽपराधं राजग्राह्यं धनं कुदण्डो-महत्यपराधे अल्पं राजग्राह्यं धनं ताभ्यां रहितां, पुनः किंवि० ? (अधरिमं) धरिमं-ऋणं तेन रहितां, ऋणस्य राज्ञा दत्तत्वात्, पुनः किंवि० ? (गणियावरनाडइज्जकलियं) गणिकावरैः नाटकीयैः-नाटक-प्रतिबद्धैः पात्रैः कलितां, पुनः किंवि० ? (अणेगतालायराणुचरियं) अनेकैस्तालाचरैः-प्रेक्षाकारिभिः अनु-चरितां-सेवितां, पुनः किंवि० ? (अणुद्धुयमुइंगं) अनुद्धृता-वादकैः अपरित्यक्ता मृदङ्गा यस्यां सा तथा तां, पुनः किंवि० ? (अमिलायमल्लदामं) अम्लानानि माल्यदामानि यस्यां सा तथा तां, पुनः किंवि० ? (पमुइ-यपक्कीलिअसपुरजणजाणवयं) प्रमुदिताः-प्रमोदवन्तः, अत एव प्रक्रीडिताः-क्रीडितुं आरब्धाः पुरजनस-

करशुल्का-दिवर्जनम् सू. १०२

५ १० १३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१०३] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [१०५]

कल्प.सुबो-व्या० ५ ॥ ८४ ॥

हिता.जानपदा-देशलोका यत्र सा तथा तां (दस दिवस ठिइवडियं करेइ) दश दिवसान् यावत् एवंविधां स्थितिपतितां-उत्सवरूपां कुलमर्यादां करोति ॥ (१०२) ॥

(तए णं सिद्धत्थे राया) ततः स सिद्धार्थो राजा (दसाहियाए ठिइवडियाए वट्टमाणीए) दशाहिकायां-दशदिवसप्रमाणायां स्थितिपतितायां वर्त्तमानायां (सइए अ) शतपरिमाणान् (साहस्सिए अ) सहस्रंपरिमाणान् (सयसाहस्सिए अ) लक्षप्रमाणान् (जाए अ) यागान्-अर्हत्प्रतिमापूजाः, कुर्वन् कारयंश्चेतिशेषः, भगवन्मातापित्रोः श्रीपार्श्वनाथसन्तानीयश्रावकत्वात् यजधातोश्च देवपूजार्थत्वात् यागशब्देन प्रतिमापूजा एव ग्राह्या, अन्यस्य यज्ञस्य असम्भवात्, श्रीपार्श्वनाथसंतानीयश्रावकत्वं चानयोराचाराङ्गे प्रतिपादितं (दाए अ) दायान्-पर्वदिवसादौ दानानि (भाए य) लब्धद्रव्यविभागान् मानितद्रव्यांशान् वा (दलमाणे अ) ददत् स्वयं (दवावेमाणे अ) दापयन् सेवकैः (सइए य साहस्सिए य सयसाहस्सिए य) शतप्रमाणान् सहस्रप्रमाणान् लक्षप्रमाणान्, एवंविधान् (लंभे पडिच्छमाणे अ पडिच्छावेमाणे य) लाभान् ' वधामणा ' इति लोके प्रतीच्छन्-स्वयं गृह्णन् प्रतिग्राहयन् सेवकादिभिः (एवं विहरइ) अनेन प्रकारेण च विहरति-आस्ते ॥(१०३)॥

(तएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स) ततः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (अम्मापियरो पढमे दिवसे) मातापितरौ प्रथमे दिवसे (ठिइवडियं करेंति) स्थितिपतितां कुरुतः (तइए दिवसे चंदसूरदंसणियं करेंति) तृतीये दिवसे चन्द्रसूर्यदर्शनिकां-उत्सवविशेषं कुरुतः, तद्विधिश्चार्यं—जन्मदिनादिनद्वयातिक्रमे गृहस्थगुरुरं-

स्थितिपतितायां देवपूजादि सू. १०३ २० २५ ॥ ८४ ॥ २७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१०४] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [१०६]

हंत्प्रतिमाग्रे रूप्यमयीं चन्द्रमूर्त्तिं प्रतिष्ठाप्य अर्चित्वा विधिना स्थापयेत्, ततः स्नातां सुवस्त्राभरणां सपुत्रां मातरं चन्द्रोदये प्रत्यक्षं चन्द्रसन्मुखं नीत्वा–ओँ अर्हं चन्द्रोऽसि निशाकरोऽसि नक्षत्रपतिरसि सुधाकरोऽसि औषधीगर्भोऽसि अस्य कुलस्य वृद्धिं कुरु कुरु स्वाहा' इत्यादिचन्द्रमन्त्रमुच्चारयंश्चन्द्रं दर्शयेत्, सपुत्रा माता च गुरुं प्रणमति, गुरुश्चाशीर्वादं ददाति, स चायं–सर्वौषधीमिश्रमरीचिराजिः, सर्वापदां संहरणप्रवीणः। करोतु वृद्धिं सकलेऽपि वंशे, युष्माकमिन्दुः सततं प्रसन्नः ॥ १ ॥ एवं सूर्यस्यापि दर्शनं, नवरं मूर्त्तिः स्वर्णमयी ताम्रमयी वा, मन्त्रश्च–ओँ अर्हं सूर्योऽसि दिनकरोऽसि तमोऽपहोऽसि सहस्रकिरणोऽसि जगच्चक्षुरसि प्रसीद' आशीर्वादश्चायं–सर्वसुरासुरवन्द्यः, कारयिताऽपूर्वसर्वकार्याणाम् । भूयात्त्रिजगच्चक्षुर्मङ्गलदस्ते सपुत्रायाः ॥ १ ॥ इति चन्द्रसूर्यदर्शनविधिः, साम्प्रतं च तत्स्थाने शिशोर्दर्पणो दर्श्यते ॥ (छट्ठे दिवसे धम्मजागरियं जागरेन्ति) ततः षष्ठे दिवसे 'धम्मजागरियं'ति धर्मेण–कुलधर्मेण षष्ठ्यां रात्रौ जागरणं धर्मजागरिका तां जागृतः, षष्ठे दिने जागरणमहोत्सवं कुरुत इति भावः, एवं च (एक्कारसमे दिवसे वइक्कंते) एकादशे दिवसे व्यतिक्रान्ते सति (निव्वत्तिए असुइजम्मकम्मकरणे) अशुचीनां–जन्मकर्मणां–नालच्छेदादीनां करणे निर्वर्तिते–समापिते सति (संपत्ते बारसाहे दिवसे) द्वादशे च दिवसे सम्प्राप्ते सति भगवन्मातापितरौ (विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेंति) विपुलं–बहु अशनं पानं खादिमं स्वादिमं च उपस्कारयतः–प्रगुणीकारयतः (उवक्खडावित्ता) उपस्कारयित्वा च (मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरिजणं) मित्राणि–

कल्प.सू. १५

दशाहिकी मर्यादा सू. १०४ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१०४] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [१०६]

कल्प.सुबो-ध्या० ५ ॥ ८५ ॥

सुहृदादयः, ज्ञातयः–सजातीयाः, निजकाः–स्वकीयाः पुत्रादयः, स्वजनाः–पितृव्यादयः, सम्बन्धिनः–पुत्रपुत्रीणां श्वशुरादयः, परिजनो–दासीदासादिः (नायए खत्तिए य) ज्ञातक्षत्रियाः–श्रीऋषभदेवसजातीयास्तान् (आमंतेइ २ त्ता) आमन्त्रयति आमन्त्र्य च (तओ पच्छा पहाया कयबलिकम्मा) ततः पश्चात् स्नातौ कृता पूजा याभ्यां तथा तौ (कयकोउअमंगलपायच्छित्ता) कृतानि कौतुकमङ्गलानि तान्येव प्रायश्चित्तानि याभ्यां तथा तौ (सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं पवराइं वत्थाइं परिहिया) शुद्धानि–श्वेतानि सभाप्रवेशयोग्यानि, माङ्गल्यानि–उत्सवसूचकानि, प्रवराणि–श्रेष्ठानि वस्त्राणि परिहितौ (अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा) अल्पानि–स्तोकानि बहुमूल्यानि यानि आभरणानि तैः अलङ्कृतं–शोभितं शरीरं याभ्यां तथा तौ, एवंविधौ भगवन्मातापितरौ (भोअणवेलाए भोअणमंडवंसि) भोजनवेलायां भोजनमण्डपे (सुहासणवरगया) सुखासनवराणि गतौ सुखासीनौ इत्यर्थः (तेणं मित्तनाइनियगसंबंधिपरियणेणं) तेन मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनेन (नाएहिं खत्तिएहिं सद्धिं) ज्ञातजातीयैः क्षत्रियैः सार्द्धं (तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं) तं विपुलं अशनं पानं खादिमं स्वादिमं च (आसाएमाणा) आ–ईषत् स्वादयन्तौ बहु त्यजन्तौ इक्ष्वादेरिव (विसाएमाणा) विशेषेण स्वादयन्तौ अल्पं त्यजन्तौ खर्जूरादेरिव (परिभुंजेमाणा) सर्वमपि भुञ्जानौ अल्पं अपि अत्यजन्तौ भोज्यादेरिव (परिभाएमाणा) परिभाजयन्तौ–परस्परं यच्छन्तौ (एवं वा विहरंति) अनेन प्रकारेण भुञ्जानौ तिष्ठत इति भावः ॥ (१०४) ॥

दशाहिकी मर्यादी सू. १०४ ॥ ८५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१०५] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [१०७]

(जिमियभुत्तुत्तरागयावि य णं समाणा) ततः जिमितौ भुक्त्युत्तरं-भोजनानन्तरं आगतौ-उपवेशनस्थाने समागतौ अपि च निश्चयेन एवंविधौ सन्तौ (आयंता चोक्खा परमसुइभूया) आचान्तौ-शुद्धोदकेन कृताचमनौ ततश्च लेपसिक्थाद्यपनयनेन चोक्षौ अत एव परमपवित्रीभूतौ सन्तौ (तं मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरियणं) तं मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनं (नायए खत्तिए अ) ज्ञातजातीयांश्च क्षत्रियान् (विउलेणं पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारेणं) विपुलेन पुष्पवस्त्रगन्धमालालङ्कारादिना (सक्कारेंति सम्माणेंति) सत्कारयतः सन्मानयतः (सक्कारित्ता सम्माणित्ता) सत्कार्य सन्मान्य च (तस्सेव मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरियणस्स) तस्यैव मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनस्य (नायाणं खत्तिआण य पुरओ) ज्ञातजातीयानां क्षत्रियाणां च पुरतः (एवं वयासी) एवं अवादिष्टाम् ॥ (१०५) ॥

(पुव्विंपि णं देवाणुप्पिया) पूर्वमपि भो देवानुप्रियाः !-भोः स्वजनाः ! (अम्हं एयंसि दारगंसि गब्भं वक्कंतंसि समाणंसि) अस्माकं एतस्मिन् दारके गर्भे उत्पन्ने सति (इमे एयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था) अयं एतद्रूपः आत्मविषयः यावत् संकल्पः समुत्पन्नोऽभूत्, कोऽसौ ? इत्याह-(जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते) यतः प्रभृति अस्माकं एष दारकः कुक्षौ गर्भतया उत्पन्नः (तप्पभिइं च णं अम्हे) तत्प्रभृति वयं (हिरण्णेणं वड्ढामो) हिरण्येन-रूप्येन वर्धामहे (सुवण्णेणं वड्ढामो) सुवर्णेन वर्धामहे (धणेणं धन्नेणं रज्जेणं जाव सावइज्जेणं) धनेन धान्येन राज्येन यावत् स्वापतेयेन-द्रव्येण (पीइस-

अभिप्राय-कथनं गुण-नामकरणम् सू. १०५-७

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०७] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [११२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-व्या० ५

॥ ८६ ॥

कारेणं अईव अईव अभिवद्धामो) प्रीतिसत्कारेण अतीव अतीव अभिवर्धामहे (सामंतरायाणो वसमागया य) स्वदेशसमीपवर्त्तिनः राजानः वश्यं-आयत्तत्वं आगताः ॥ (१०६) ॥

(तं जया णं अम्हं एस दारए जाए भविस्सइ) तस्मात् यदा अस्माकं एष दारको जातो भविष्यति (तया णं अम्हे एयस्स दारगस्स) तदा वयं एतस्य दारकस्य (इमं एयाणुरूवं गुण्णं गुणनिप्फण्णं) इमं एतदनुरूपं गुणेभ्यः आगतं, गुणैर्निष्पन्नं (नामधिज्जं करिस्सामो वद्धमाणुत्ति) एवंविधं अभिधानं करिष्यामः 'वर्द्धमान' इति (ता अम्हं अज्ज मणोरहसंपत्ती जाया) 'ता' इति सा पूर्वोत्पन्ना अस्माकं अद्य मनोरथस्य संपत्तिः जाता (तं होउ णं अम्हं कुमारे वद्धमाणे नामेणं) तस्मात् भवतु अस्माकं कुमारः 'वर्द्धमानः' नाम्ना ॥ (१०७) ॥

(समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (कासवगुत्तेणं) काश्यप इति नामकं गोत्रं यस्य स तथा (तस्स णं तओ नामधिज्जा एवमाहिज्जंति) तस्य भगवतः त्रीणि अभिधानानि एवं आख्यायन्ते, (तंजहा) तद्यथा-(अम्मापिउसंतिए वद्धमाणे) मातापितृसत्कं-मातापितृदत्तं 'वर्द्धमान' इति प्रथमं नाम १ (सहसमुइयाए समणे) सहसमुदिता-सहभाविनी तपःकरणादिशक्तिः तया श्रमण इति द्वितीयं नाम २ (अयले भयभेरवाणं) भयभैरवयोर्विषये अचलो-निष्प्रकम्पः, तत्र भयं-अकस्माद्भयं विद्युदादिजातं, भैरवं तु सिंहादिकं, तथा (परिसहोवसग्गाणं) परिषहाः-क्षुत्पिपासादयो द्वाविंशतिः २२

श्रीवीरस्य नामत्रयं सू. १०८

२०

२५

॥ ८६ ॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** भगवंत महावीरस्य त्रयाणां नामानां वर्णनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१०८] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [११२]

उपसर्गाश्च दिव्यादयश्चत्वारः सप्रभेदास्तु षोडश १६ तेषां (खंतीखमे) क्षान्त्या–क्षमया क्षमते न त्वसमर्थतया यः स क्षान्तिक्षमः (पडिमाणं पालए) प्रतिमानां–भद्रादीनां एकरात्रिक्यादीनां वा अभिग्रहविशेषाणां पालकः (धीमं) धीमान् ज्ञानत्रयाभिरामत्वात् (अरइरइसहे) अरतिरती सहते, न तु तत्र हर्षविषादौ कुरुते इति भावः (दविए) द्रव्यं तत्त्वज्ञानां भाजनं, रागद्वेषरहित इति वृद्धाः (वीरिअसंपन्ने) वीर्य–पराक्रमस्तेन संपन्नः, यतो भगवान् एवंविधस्ततो (देवेहिं से णामं कयं समणे भगवं महावीरे) देवैः से इति–तस्य भगवतो नाम कृतं श्रमणो भगवान् महावीर इति तृतीयम् ॥ (१०८) ॥

तदिदं नाम देवैः कृतं, कथं कृतं ? इत्यत्र वृद्धसंप्रदायः–अथैवं पूर्वोक्तयुक्त्या सुरासुरनरेश्वरैः कृतजन्मोत्सवो भगवान् द्वितीयाशशीव मन्दाराङ्कुर इव वृद्धिं प्राप्नुवन् क्रमेण एवंविधो जातः–द्विजराजमुखो गजराजगतिः, अरुणोष्ठपुटः सितदन्ततितिः । शितिकेशभरोऽम्बुजमञ्जुकरः, सुरभिश्वसितः प्रभयोल्लसितः ॥ १ ॥ मतिमान् श्रुतवान् प्रथितावधियुक्, पृथुपूर्वभवस्मरणो गतरुक् । मतिकान्तिधृतिप्रभृतिस्वगुणैर्जगतोऽप्यधिको जगतीतिलकः ॥ २ ॥ स चैकदा कौतुकरहितोऽपि तेषां उपरोधात् समानवयोभिः कुमारैः सह क्रीडां कुर्वाण आमलकीक्रीडानिमित्तं पुराद् बहिर्जगाम, तत्र च कुमारा वृक्षारोहणादिप्रकारेण क्रीडन्ति स्म, अत्रान्तरे सौधर्मेन्द्रः सभायां श्रीवीरस्य धैर्यगुणं वर्णयन्नास्ते, यदुत–पश्यत भो देवाः! साम्प्रतं मनुष्यलोके श्रीवर्द्धमानकुमारो बालोऽप्यबालपराक्रमः शक्रादिभिर्देवैरपि भाषयितुं अशक्यः कटरे बालस्यापि धैर्यं, तदाकर्ण्य च कश्चित्

आमलकी-क्रीडा ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

मिथ्यादृग् देवश्चिन्तयामास–अहो शक्रस्य प्रभुत्वाभिमानेन निरङ्कुशा निर्विचारा पुम्भिकापातेन नगराक्रमणमिवाश्रद्धेया च वचनचातुरी, यदिमं मनुष्यकीटपरमाणुं अपि इयन्तं प्रकर्षं प्रापयति, तदद्यैव तत्र गत्वा तं भीषयित्वा शक्रवचनं वृथा करोमि इति विचिन्त्य मर्त्यलोकमागत्य शिंशपामुशलस्थूलेन लोलजिह्वायुगलेन भयङ्करफूत्कारेण क्रूरतराकारेण प्रसरत्कोपेन पृथुफटाटोपेन दीप्रमणिना महाफणिना तं क्रीडातरुं आवेष्टितवान्, तद्दर्शनाच्च पलायितेषु सर्वेषु बालेषु मनागप्यभीतमनाः श्रीवर्द्धमानकुमारः स्वयं तत्र गत्वा तं फणिनं करेण गृहीत्वा दूरं निक्षिप्तवान्, ततः पुनः संगतैः कुमारैः कन्दुकक्रीडारसे प्रस्तुते सति स देवोऽपि कुमाररूपं विकुर्व्य तां क्रीडां कर्तुं प्रववृते, तत्र चायं पणः–पराजितेन जितः स्वस्कन्धे आरोपणीय इति, क्षणाच्च पराजितं मया जितं वर्धमानेनेति वदन् श्रीवीरं स्कन्धे समारोप्य भगवद्भापनाय सप्ततालप्रमाणशरीरः संजातो, भगवानपि तत्स्वरूपं विज्ञाय वज्रकठिनया मुष्ट्या तत्पृष्ठं जघान, सोऽपि तत्प्रहारवेदनापीडितो मशक इव संकोचं प्राप, ततश्च शक्रवचनं सत्यं मन्यमानः प्रकटितस्वरूपः सर्वं पूर्वव्यतिकरं निवेद्य भूयो भूयो निजं अपराधं क्षमयित्वा स्वस्थानं जगाम स देवः, तदा च सन्तुष्टचित्तेन शक्रेण 'श्रीवीर' इति भगवतो नाम कृतं, यदुक्तं—[1]बालत्तणेऽवि सूरो पयईए गुरुपरक्कमो भयवं। वीरत्ति कयं नामं सक्केणं तुट्ठचित्तेणं ॥ १ ॥

इत्यामलकीक्रीडा ॥ अथ तं मातापितरौ विज्ञौ ज्ञात्वाऽष्टवर्षमतिमोहात्। वरमेमितालङ्कारैरुपनयतो लेखशा-

१ बालत्वेऽपि शूरः प्रकृत्या गुरुपराक्रमो भगवान्। वीर इति कृतं नाम शक्रेण तुष्टचित्तेन ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१०९] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [११३]

लायाम् ॥ १ ॥ लग्नदिवसव्यवस्थितिपुरस्सरं परमहर्षसंपन्नौ । प्रौढोत्सवान्महार्हान् , वितेनतुर्घनधनव्ययतः ॥ २ ॥ तथाहि—गजतुरगसमूहैः स्फारकेयूरहारैः, कनकघटितमुद्राकुण्डलैः कङ्कणाद्यैः । रुचिरतरदुकूलैः पञ्च वर्णैस्तदानीं, स्वजनमुखनरेन्द्राः सत्क्रियन्ते स्म भक्त्या ॥ ३ ॥ तथा–पण्डितयोग्यं नानावस्त्रालङ्कारनालिकेरादि । अथ लेखशालिकानां दानार्थमनेकवस्तूनि ॥४॥ तथाहि–पूगीफलशृङ्गाटकखर्जूरसितोपलास्तथा खण्डा । चारुकुलीचारुबीजाद्राक्षादिसुखाशिकावृन्दम् ॥ ५ ॥ सौवर्णराजराजतमिश्राणि च पुस्तकोपकरणानि । कमनीयमषीभाजनलेखनिकापट्टिकादीनि ॥ ६ ॥ वाग्देवीप्रतिमार्चाकृतये सौवर्णभूषणं भव्यम् । नव्यबहुरत्नखचितं छात्राणां विविधवस्त्राणि ॥७॥ इत्यादिसमग्रपठनसामग्रीसहितः कुलवृद्धाभिस्तीर्थोदकैः स्नपितः परिहितप्रचुरालङ्कारभासुरः शिरोधृतमेघाडम्बरच्छत्रश्चतुश्चामरवीजिताङ्गश्चतुरङ्गसैन्यपरिवृतो वाद्यमानानेकवादित्रः पण्डितगेहं उपाजगाम, पण्डितोऽपि भूपालपुत्रपाठनोचितां पर्वपरिधेयक्षीरोदकधौतिकहेमयज्ञोपवीतकेसरतिलकादिसामग्रीं यावत् करोति तावत् पिप्पलपर्णवत् गजकर्णवत् कपटिध्यानवत् नृपतिमानवत् चलाचलसिंहासनः शक्रोऽवधिना ज्ञाततत्स्वरूपो देवान् इत्थं अवादीत्–अहो ! महच्चित्रं ! यद्भगवतोऽपि लेखशालायां मोचनं, यतः—साऽऽम्रे वन्दनमालिका स मधुरीकारः सुधायाः स च, ब्राह्म्याः पाठविधिः स शुभ्रिमगुणारोपः सुधादीधितौ । कल्याणे कनकच्छटाप्रकटनं पाण्डित्यसंपत्तये, शास्त्राध्यापनमर्हतोऽपि यदिदं सल्लेखशालाकृते ॥ १ ॥ मातुः पुरो मातुलवर्णनं तत्, लङ्कानगर्यां लहरीयकं तत् । तत्प्राभृतं लावणमम्बुराशेः, प्रभोः

लेखशाला-मोचनं ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१०९] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [११३]

कल्प.सुबो-ध्या० ५

॥ ८८ ॥

पुरो यद्वचसां विलासः ॥ २ ॥ यतः—अनध्ययनविद्वांसो, निर्द्रव्यपरमेश्वराः । अनलङ्कारसुभगाः, पान्तु युष्मान् जिनेश्वराः ॥ १ ॥ इत्यादि वदन् कृतब्राह्मणरूपस्त्वरितं यत्र भगवान् तिष्ठति तत्र पण्डितगेहे समाजगाम, आगत्य च पण्डितयोग्ये आसने भगवन्तं उपवेश्य पण्डितमनोगतान् संदेहान् पप्रच्छ, श्रीवीरोऽपि बालोऽयं किं वक्ष्यतीत्युत्कर्णेषु सकललोकेषु सर्वाणि उत्तराणि ददौ, ततो जैनेन्द्रं व्याकरणं जज्ञे, यतः—सक्को अ तस्समक्खं भगवन्तं आसणे निवेसित्ता । सद्दस्स लक्खणं पुच्छि वागरणं अवयवा इंदं ॥ १ ॥ सर्वे जना विस्मयं प्रापुः—अहो बालेनापि वर्द्धमानकुमारेण एतावती विद्या कुत्राधीता ?, पण्डितोऽपि चिन्तयामास—आबालकालादपि मामकीनान्, यान् संशयान् कोऽपि निरासयन्न । विभेद तांस्तान्निखिलान् स एष, बालोऽपि भोः ! पश्यत चित्रमेतत् ॥ १ ॥ किञ्च—अहो ईदृशस्य विद्याविशारदस्यापि ईदृशं गाम्भीर्यं, अथवा युक्तमेवेदं ईदृशस्य महात्मनः, यतः—गर्जति शरदि न वर्षति वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः । नीचो वदति न कुरुते न वदति साधुः करोत्येव ॥ १ ॥ तथा—असारस्य पदार्थस्य, प्रायेणाडम्बरो महान् । न हि स्वर्णे ध्वनिस्तादृग्, यादृक् कांस्ये प्रजायते ॥ २ ॥ इत्यादि चिन्तयन्तं पण्डितं शक्रः प्रोवाच—मनुष्यमात्रं शिशुरेष विप्र !, नाशङ्कनीयो भवता स्वचित्ते । विश्वत्रयीनायक एष वीरो, जिनेश्वरो वाङ्मयपारदृश्वा ॥ ३ ॥ इत्यादि श्रीवर्धमानस्तुतिं निर्माय शक्रः स्वस्थानं जगाम, भगवानपि सकलज्ञातक्षत्रियपरिकलितः स्वगृहमागात्, इति श्रीले-

१ शक्रश्च तत्समक्षं भगवन्तं आसने निवेश्य । शब्दस्य लक्षणमपृच्छत् व्याकरणं अवयवा ऐन्द्रं ॥ १ ॥

लेखशाला-मोचनं

२०

२५

॥ ८८ ॥

२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१०९] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [११३]

खशालाकरणं ॥ एवं बाल्यावस्थानिवृत्तौ संप्राप्तयौवनो भोगसमर्थो भगवान् मातापितृभ्यां शुभे मुहूर्त्ते समरवीरनृपपुत्रीं यशोदां परिणायितः, तया च सह सुखमनुभवतो भगवतः पुत्री जाता, साऽपि प्रवरनरपतिसुतस्य जमालेः परिणायिता, तस्या अपि च शेषवती नाम्नी पुत्री, सा च भगवतो 'नत्तूई' दौहित्रीत्यर्थः (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (पिया कासवगोत्तेणं) पिता, कीदृशः ?-काश्यपः गोत्रेण कृत्वा (तस्स णं तओ नामधिज्जा) तस्य त्रीणि नामधेयानि (एवमाहिज्जंति) एवं आख्यायन्ते (तंजहा-सिद्धत्थे इ वा सिज्जंसे इ वा जसंसे इ वा) तद्यथा-सिद्धार्थ इति वा श्रेयांस इति वा यशस्वी इति वा (समणस्स णं भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (माया वासिट्ठस्सगुत्तेणं) माता वाशिष्ठगोत्रेण (तीसे तओ नामधिज्जा) तस्याः त्रीणि नामधेयानि (एवमाहिज्जंति) एवं आख्यायन्ते (तंजहा-तिसला इ वा विदेहदिन्ना इ वा पीइकारिणी इ वा) तद्यथा-त्रिशला इति वा विदेहदिन्ना इति वा प्रीतिकारिणीति वा (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (पित्तिज्जे सुपासे) पितृव्यः 'काको' इति सुपार्श्वः (जिट्ठे भाया नंदिवद्धणे) ज्येष्ठो भ्राता नन्दिवर्धनः (भगिणी सुदंसणा) भगिनी सुदर्शना (भारिया जसोया कोडिण्णागुत्तेणं) भार्या यशोदा, सा कीदृशी ?-कौण्डिन्या गोत्रेण (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (धूआ कासवगोत्तेणं) पुत्री काश्यपगोत्रेण (तीसे दो नामधिज्जा, एवमाहिज्जंति) तस्या द्वे नामधेये, एवं आख्यायेते (तंजहा-अणोज्जा इ वा पियदंसणा इ वा)

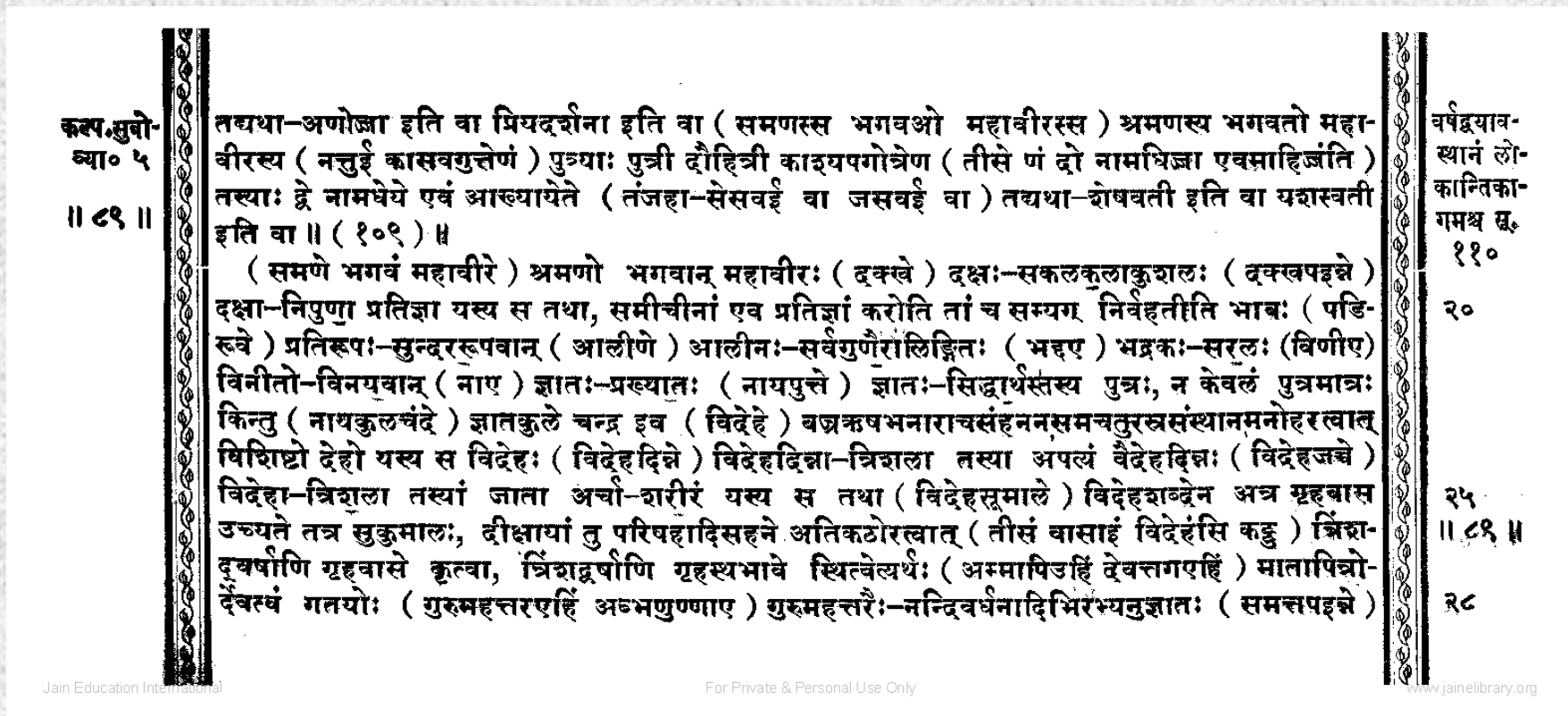
श्रीवीरस्य पित्रादीनां नामानि सू. १०९ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०९] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [११३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-ध्या० ५ ॥ ८९ ॥

तद्यथा–अणोज्जा इति वा प्रियदर्शना इति वा (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (नत्तुई कासवगुत्तेणं) पुत्र्याः पुत्री दौहित्री काश्यपगोत्रेण (तीसे णं दो नामधिज्जा एवमाहिज्जंति) तस्याः द्वे नामधेये एवं आख्यायेते (तंजहा–सेसवई वा जसवई वा) तद्यथा–शेषवती इति वा यशस्वती इति वा ॥ (१०९) ॥

(समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (दक्खे) दक्षः–सकलकुलाकुशलः (दक्खपइन्ने) दक्षा–निपुणा प्रतिज्ञा यस्य स तथा, समीचीनां एव प्रतिज्ञां करोति तां च सम्यग् निर्वहतीति भावः (पडिरूवे) प्रतिरूपः–सुन्दररूपवान् (आलीणे) आलीनः–सर्वगुणैरालिङ्गितः (भद्दए) भद्रकः–सरलः (विणीए) विनीतो–विनयवान् (नाए) ज्ञातः–प्रख्यातः (नायपुत्ते) ज्ञातः–सिद्धार्थस्तस्य पुत्रः, न केवलं पुत्रमात्रः किन्तु (नायकुलचंदे) ज्ञातकुले चन्द्र इव (विदेहे) वज्रऋषभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानमनोहरत्वात् विशिष्टो देहो यस्य स विदेहः (विदेहदिन्ने) विदेहदिन्ना–त्रिशला तस्या अपत्यं वैदेहदिन्नः (विदेहजच्चे) विदेहा–त्रिशला तस्यां जाता अर्चा–शरीरं यस्य स तथा (विदेहसूमाले) विदेहशब्देन अत्र गृहवास उच्यते तत्र सुकुमालः, दीक्षायां तु परिषहादिसहने अतिकठोरत्वात् (तीसं वासाइं विदेहंसि कट्टु) त्रिंशद्वर्षाणि गृहवासे कृत्वा, त्रिंशद्वर्षाणि गृहस्थभावे स्थित्वेत्यर्थः (अम्मापिउहिं देवत्तगएहिं) मातापित्रोर्देवत्वं गतयोः (गुरुमहत्तरएहिं अब्भणुण्णाए) गुरुमहत्तरैः–नन्दिवर्धनादिभिरभ्यनुज्ञातः (समत्तपइन्ने)

वर्षद्वयावस्थानं लोकान्तिकागमश्च सू. ११०

॥ ८९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** भगवंत महावीरस्य दीक्षा-कल्याणकस्य वर्णनं

प्रत सूत्रांक [११०] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [११३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

समाप्तप्रतिज्ञश्च, मातापित्रोर्जीवतोः नाहं प्रव्रजिष्यामीति गर्भगृहीतायाः प्रतिज्ञायाः पूरणात्, स व्यतिकरस्त्वेवं—अष्टाविंशतिवर्षातिक्रमे भगवतो मातापितरौ आवश्यकाभिप्रायेण तुर्यं स्वर्गं आचाराङ्गाभिप्रायेण तु अनशनेन अच्युतं गतौ, ततो भगवता ज्येष्ठभ्राता पृष्टः—राजन्! ममाभिग्रहः सम्पूर्णोऽस्ति ततोऽहं प्रव्रजिष्यामि, ततो नन्दिवर्धनः प्रोवाच—भ्रातः! मम मातापितृविरहदुःखितस्य अनया वार्तया किं क्षते क्षारं क्षिपसि?, ततो भगवता प्रोक्तं—पिअंमाइभाइभइणीभज्जापुत्तत्तणेण सव्वेऽवि। जीवा जाया बहुसो जीवस्स उ एगमेगस्स ॥ १ ॥ ततः कुत्र कुत्र प्रतिबन्धः क्रियते? इति निशम्य नन्दिवर्धनोऽवोचत्—भ्रातरहं अपि इदं जानामि, किंतु प्राणतोऽपि प्रियस्य तव विरहो मां अतितमां पीडयति, ततो मदुपरोधाद्वर्षद्वयं गृहे तिष्ठ, भगवानपि एवं भवतु, किंतु राजन्! मदर्थं न कोऽपि आरम्भः कार्यः, प्रासुकाशनपानेनाहं स्थास्यामि इत्यवोचत्, राज्ञापि तथा प्रतिपन्ने समधिकं वर्षद्वयं वस्त्रालङ्कारविभूषितोऽपि प्रासुकैषणीयाहारः सचित्तं जलं अपिबन् भगवान् गृहे स्थितः, ततः प्रभृति भगवता अचित्तजलेनापि सर्वस्नानं न कृतं ब्रह्मचर्यं च यावज्जीवं पालितं, दीक्षोत्सवे तु सचित्तोदकेनापि स्नानं कृतं, तथाकल्पत्वात्, एवं भगवन्तं वैरङ्गिकं विलोक्य चतुर्दशस्वप्नसूचितत्वाच्चक्रवर्त्तिधिया सेवमानाः श्रेणिकचण्डप्रद्योतादयो राजकुमाराः स्वं स्वं स्थानं जग्मुः ॥ (पुणरवि लोअंतिएहिं) पुनरपि इति विशेषद्योतने, एकं तावत् समाप्तप्रतिज्ञः स्वयमेव भगवान् वर्त्तते,

१ पितृमातृभ्रातृभगिनीभार्यापुत्रत्वेन सर्वेऽपि। जीवा जाता बहुशः जीवस्य एकैकस्य ॥ १ ॥

वर्षद्वयावस्थानं लोकान्तिकागमश्च सू. ११० ५ १० १३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११०] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [११३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

पुनरपि लोकान्तिकैर्देवैर्बोधित इति विशेषो द्योत्यते, लोकान्ते–संसारान्ते भवाः लोकान्तिका, एकावतारत्वात्, अन्यथा ब्रह्मलोकवासिनां तेषां लोकान्तभवत्वं विरुद्ध्यते, ते च नवविधाः, यदुक्तं–सारस्सय १-माइच्चा २ वण्ही ३ वरुणा य ४ गद्दतोया य ५। तुडिआ ६ अव्वाबाहा ७ अग्गिच्चा ८ चेव रिट्ठा य ९ ॥ १ ॥ एए देवनिकाया भयवं बोहिन्ति जिणवरिंदं तु । सव्वजगज्जीवहियं भयवं! तित्थं पवत्तेहि ॥ २ ॥ यद्यपि स्वयम्बुद्धो भगवांस्तदुपदेशं नापेक्षते तथापि तेषां अयं आचारो वर्त्तते, तदेवाह–(जीयकप्पिएहिं देवेहिं) जीतेन–अवश्यंभावेन कल्पः–आचारो जीतकल्पः सोऽस्ति येषां ते जीतकल्पिकाः एवंविधा ते देवाः विभक्तिपरावर्त्तनात् (ताहिं इट्ठाहिं) ताभिः इष्टाभिः (जाव वग्गूहिं) यावत्शब्दात् ' कंताहिं मणुन्नाहिं ' इत्यादि पूर्वोक्तः पाठो वाच्यः, एवंविधाभिर्वाग्भिः (अणवरयं) निरन्तरं भगवन्तं (अभिनंदमाणा य) अभिनन्दयन्तः–समृद्धिमन्तं आचक्षाणाः (अभिथुवमाणा य) अभिष्टुवन्तः–स्तुतिं कुर्वन्तः सन्तः (एवं वयासी) एवं अवादिषुः ॥ (११०) ॥

१ सप्ताष्टभवा इति प्रवचनसारोद्धारे, लोकस्य–ब्रह्मलोकस्य अन्ते–समीपे भवा लोकान्तिका इतिव्युत्पत्तेरौपपातिकादौ दर्शनाच्च नायमेकान्तः, लोकप्रकाशे स्वयमपि तथोक्तं २ सारस्वता आदित्या वह्नयो वरुणाश्च गर्दतोयाश्च। तुटिता अव्याबाधा आग्नेयाश्चैव रिष्टाश्च ॥१॥ एते देवनिकाया भगवन्तं बोधयन्ति जिनवरेन्द्रं तु । सर्वं जगज्जीवहितं भगवन्! तीर्थं प्रवर्तय ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१११] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [११४]

कल्प.सु. १६

(जय जय नंदा) जयं लभस्व २, सम्भ्रमे द्विर्वचनं, नन्दति–समृद्धो भवतीति नन्दस्तस्य सम्बोधनं हे नन्द !, दीर्घत्वं प्राकृतत्वात्, एवं (जय जय भद्दा) जय जय भद्र !–कल्याणवन् ! (भद्दं ते) ते–तव भद्रं भवतु (जय जय खत्तियवरवसहा) जय जय क्षत्रियवरवृषभ ! (बुज्झाहि भगवं लोगनाह) बुध्यस्व भगवन् ! लोकनाथ ! (सयलजगज्जीवहियं) सकलजगज्जीवहितं (पवत्तेहि धम्मतित्थं) प्रवर्तय धर्मतीर्थं, यत इदं (हियसुहनिस्से-यसकरं) हितं–हितकारकं सुखं–शर्म निःश्रेयसं–मोक्षस्तत्करं (सव्वलोए सव्वजीवाणं) सर्वलोके सर्वजीवानां (भविस्सइत्तिकट्टु जयजयसद्दं पउंजंति) भविष्यतीतिकृत्वा–इत्युक्त्वा जयजयशब्दं प्रयुञ्जन्ति ॥ (१११) ॥

(पुव्विंपि णं) इदं पदं 'गिहत्थधम्माओ' इत्यस्यादौ योज्यं, (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (माणुस्सगाओ गिहत्थधम्माओ) मनुष्ययोग्यात् एवंविधात् गृहस्थधर्मात्–गृहव्यवहारात् विवाहादेः पूर्वमपि (अणुत्तरे आभोइए) अनुपमं आभोगः-प्रयोजनं यस्य तत् आभोगिकं (अप्पडिवाई नाण-दंसणे हुत्था) अप्रतिपाति–आकेवलोत्पत्तेः स्थिरं एवंविधं ज्ञानदर्शनं–अवधिज्ञानं अवधिदर्शनं च अभूत् (तए णं समणे भगवं महावीरे) ततः श्रमणो भगवान् महावीरः (तेणं अणुत्तरेणं आभोइएणं) तेन अनुत्तरेण आभो-गिकेन (नाणदंसणेणं) ज्ञानदर्शनेन (अप्पणो निक्खमणकालं) आत्मनो दीक्षाकालं (आभोएइ) आभो-गयति–विलोकयति (आभोइत्ता) आभोग्य च (चिच्चा हिरण्णं) त्यक्त्वा हिरण्यं–रूप्यं (चिच्चा सुवण्णं) त्यक्त्वा सुवर्णं (चिच्चा धणं) त्यक्त्वा धनं (चिच्चा रज्जं) त्यक्त्वा राज्यं (चिच्चा रट्ठं) त्यक्त्वा राष्ट्रं–देशं (एवं

लोकान्ति-कोक्तिः सू. १११

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** दीक्षा-कल्याणक अवसरे सांवत्सरिक-दान एवं अभिषेकस्य वर्णनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११२] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [११५]

बलं वाहणं कोसं कोट्ठागारं) एवं सैन्यं वाहनं कोशं कोष्ठागारं (चिच्चा पुरं) त्यक्त्वा नगरं (चिच्चा अंतेउरं) त्यक्त्वा अन्तःपुरं (चिच्चा जणवयं) त्यक्त्वा जानपदं-देशवासिलोकं (चिच्चा विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइअं) त्यक्त्वा विपुलधनकनकरत्नमणिमौक्तिकशङ्खशिलाप्रवालरक्तरत्नप्रमुखं (संतसारसावइज्जं) सत्सारस्वापतेयं, एतत् सर्वं त्यक्त्वा, पुनः किं कृत्वा? (विच्छड्डइत्ता) विच्छर्द्य-विशेषेण त्यक्त्वा, पुनः किं कृत्वा? (विगोवइत्ता) विगोप्य-तदेव गुप्तं सद्दानातिशयात् प्रकटीकृत्येति भावः, अथवा विगोप्य-कुत्सनीयमेतदस्थिरत्वादित्युक्त्वा, पुनः किं कृत्वा? (दाणं दायारेहिं परिभाइत्ता) दीयते इति दानं-धनं तत् दायाय-दानार्थं आर्च्छन्ति-आगच्छन्तीति दायारा-याचकास्तेभ्यः परिभाज्य-विभागैर्दत्त्वा, यद्वा परिभाज्य-आलोच्य,इदं अमुकस्य देयं इदं अमुकस्यैवं विचार्येत्यर्थः,पुनः किं कृत्वा? (दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता) दानं-धनं दायिका-गोत्रिकास्तेभ्यः परिभाज्य-विभागशो दत्त्वेत्यर्थः ॥ (११२) ॥ अनेन सूत्रेण च वार्षिकदानं सूचितं, तच्चैवं—भगवान् दीक्षादिवसात् प्राग्वर्षेऽवशिष्यमाणे प्रातःकाले वार्षिकं दानं दातुं प्रवर्त्तते, सूर्योदयादारभ्य कल्पवर्त्तवेलापर्यन्तं अष्टलक्षाधिकां एकां कोटिं सौवर्णिकानां प्रतिदिनं ददाति, वृणुत वरं वृणुत वरं इत्युद्घोषणापूर्वकं यो यन्मार्गयति तस्मै तद्दीयते, तच्च सर्वं देवाः शक्रादेशेन पूरयन्ति, एवं च वर्षेण यद्धनं दत्तं तदुच्यते—तिन्नेव य कोडिसया अट्ठासीई य हुंति कोडीओ । असीइं च सयसहस्सं

१ त्रीण्येव च कोटिशतानि अष्टाशीतिश्च भवन्ति कोटयः । अशीतिश्च शतसहस्राणि एतत् संवत्सरे दत्तं ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११३] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [११६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

एयं संवच्छरे दिन्नं ॥ १ ॥ तथा च कवयः–तत्तद्वार्षिकदानवर्षविरमद्दारिद्र्यदावानलाः, सद्यः सञ्जितवाजिराजिवसनालङ्कारदुर्लक्ष्यभाः । सम्प्राप्ताः स्वगृहेऽर्थिनः सशपथं प्रत्याययन्तोऽङ्गनाः, स्वामिन्! षिङ्जनैर्निरुद्धहसितैः के यूयमित्यूचिरे ॥ १ ॥ एवं च दानं दत्त्वा पुनर्भगवता नन्दिवर्धनः पृष्टः–राजंस्तव सत्कोऽपि अवधिः पूर्णस्तदेहं दीक्षां गृह्णामि, ततो नन्दिनाऽपि ध्वजहट्टालङ्कारतोरणादिभिः कुण्डपुरं सुरलोकसमं कृतं, ततो नन्दिराजः शक्रादयश्च कनकमयान् १ रूप्यमयान् २ मणिमयान् ३ कनकरूप्यमयान् ४ कनकमणिमयान् ५ रूप्यमणिमयान् ६ कनकरूप्यमणिमयान् ७ मृन्मयांश्च ८ प्रत्येकं अष्टोत्तरसहस्रं कलशान् यावत् अन्यामपि च सकलां सामग्रीं कारयन्ति, ततोऽच्युतेन्द्राद्यैश्चतुःषष्ट्या सुरेन्द्रैरभिषेके कृते सुरकृताः कलशा दिव्यानुभावेन नृपकारितकलशेषु प्रविष्टास्तेतस्तेऽत्यन्तं शोभितवन्तः, ततः श्रीनन्दिराजः स्वामिनं पूर्वाभिमुखं निवेश्य सुरानीतक्षीरोदनीरैः सर्वतीर्थमृत्तिकादिभिः सर्वकषायैश्चाभिषेकं करोति, इन्द्राश्च सर्वेऽपि भृङ्गारादर्शादिहस्ता जयजयशब्दं प्रयुञ्जानाः पुरतस्तिष्ठन्ति, ततश्च भगवान् स्नातो गन्धकाषाय्या रूक्षिताङ्गः सुरचन्दनानुलिप्तगात्रः कल्पतरुपुष्पमालामनोहरकण्ठपीठः कनकखचिताञ्चलखच्छोज्ज्वललक्षमूल्यसदृशश्वेतवस्त्रावृतशरीरो हारविराजद्वक्षःस्थलः केयूरकटकमण्डितभुजः कुण्डललालितगल्लतलः श्रीनन्दिराजकारितां पञ्चाशद्धनुरायतां पञ्चविंशतिधनुर्विस्तीर्णां षट्त्रिंशद्धनुरुच्चां बहुस्तम्भशतसंनिविष्टां मणिकनकविचित्रां दिव्यानुभावतः सुरकृतताहक्शिबिकामनुप्रविष्टां चन्द्रप्रभाभिधां शिबिकां आरूढो दीक्षाग्रहणार्थं प्रतस्थे, शेषं सूत्रकृत् स्वयं वक्ष्यति ।

दीक्षाभिषेकः सू.११३ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११३] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [११६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (जे से हेमंताणं) योऽसौ शीतकालस्य (पढमे मासे पढमे पक्खे) प्रथमो मासः प्रथमः पक्षः (मग्गसिरबहुले) मार्गशीर्षमासस्य कृष्णपक्षः (तस्स णं मग्गसिरबहुलस्स) तस्य मार्गशीर्षबहुलस्य (दसमीपक्खेणं) दशमीदिवसे (पाईणगामिणीए छायाए)पूर्वदिग्गामिन्यां छायायां (पोरिसीए अभिनिविट्ठाए) पौरुष्यां–पाश्चात्यपौरुष्यां अभिनिर्वृत्तायां–जातायां,कथम्भूतायां?– (पमाणपत्ताए)प्रमाणप्राप्तायां नतु न्यूनाधिकायां (सुव्वएणं दिवसेणं) सुव्रताख्ये दिवसे (विजएणं मुहुत्तेणं) विजयाख्ये मुहूर्त्ते (चंदप्पभाए सिबिआए) चन्द्रप्रभायां पूर्वोक्तायां शिबिकायां कृतषष्ठतपाः विशुद्ध्यमानलेश्याकः पूर्वाभिमुखः सिंहासने निषीदति, शिबिकारूढस्य च प्रभोर्दक्षिणतः कुलमहत्तरिका हंसलक्षणं पटशाटकमादाय, वामपार्श्वे च प्रभोरम्बधात्री दीक्षोपकरणमादाय,पृष्ठे चैका वरतरुणी स्फारशृङ्गारा धवलच्छत्रहस्ता, ईशानकोणे चैका पूर्णकलशहस्ता अग्निकोणे चैका मणिमयतालवृन्तहस्ता भद्रासने निषीदंति, ततः श्रीनन्दिनृपादिष्टाः पुरुषाः यावत् शिबिकामुत्पाटयन्ति तावत् शक्रो दाक्षिणात्यां उपरितनीं बाहां ईशानेन्द्र औत्तराहां उपरितनीं बाहां चमरेन्द्रो दाक्षिणात्यां अधस्तनीं बाहां बलीन्द्र औत्तराहां अधस्तनीं बाहां शेषाश्च भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकेन्द्राश्चञ्चलकुण्डलाद्याभरणकिरणरमणीयाः पञ्चवर्णपुष्पवृष्टिं कुर्वन्तो दुन्दुभींस्ताडयन्तो यथार्हं शिबिकां उत्पाटयन्ति, ततः शक्रेशानौ तां बाहां त्यक्त्वा भगवतश्चामराणि वीजयतः, तदा च भगवति शिबिकारूढे प्रस्थिते सति शरदि

दीक्षाभिषेकः सू.११३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११३] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [११६]

पद्मसर इव पुष्पितं अतसीवनमिव कर्णिकारवनमिव चम्पकवनमिव तिलकवनमिव रमणीयं गगनतलं सुरवरै- दीक्षाभिषे-
रभूत्, किञ्च–निरन्तरं वाद्यमानभम्भाभेरीमृदङ्गदुन्दुभिशङ्खाद्यनेकवाद्यध्वनिर्गगनतले भूतले च प्रससार, तन्नाद- कः सू.११३
ेन च नगरवासिन्यस्त्यक्तस्वस्वकार्या नार्यः समागच्छन्त्यो विविधचेष्टाभिर्जमान् विस्मापयन्ति स्म, यतः—
तिन्निवि थीआं वल्लहां कलि कज्जल सिंदूर । ए पुण अतीहि वल्लहां दूध जमाइ तूर ॥ १ ॥ चेष्टाश्चेमाः—खग- ५
लुयोः काचन कज्जलाङ्कं, कस्तूरिकाभिर्नयनाञ्जनं च । गले चलन्नूपुरमंहिपीठे, ग्रैवेयकं चारु चकार बाला ॥१॥
कटीतटे कापि बबन्ध हारं, काचित् कणत्किङ्किणिकां च कण्ठे । गोशीर्षपङ्केन ररञ्ज पादावलक्तपङ्केन वपुर्ली-
लेप ॥ २ ॥ अर्धस्नाता काचन बाला, विगलत्सलिला विस्रंथवाला । तत्र प्रथममुपेता त्रासं, व्यधित न केषां
ज्ञाता हासम्? ॥ ३ ॥ कापि परिच्युतविस्रंथवसना, मूढा करधृतकेवलरसना । चित्रं तत्र गता न ललज्जे,
सर्वजने जिनवीक्षणसज्जे ॥ ४ ॥ संत्यज्य काचित्तरुणी रुदन्तं, स्वपोतमोतुं च करे विधूत्य । निवेश्य कट्यां
त्वरया व्रजन्ती, हासावकाशं न चकार केषाम्? ॥५॥ अहो महो रूपमहो महौजः, सौभाग्यमेतत् कटरे शरीरे । १०
गृह्णामि दुःखानि करस्य धातुर्यच्छिल्पमीदृग् वदति स्म काचित् ॥ ६ ॥ काचिन्महेला विकसत्कपोला, श्रीवीरव-
क्त्रेक्षणगाढलोला । विस्रस्य दूरं पतितानि तानि,नाज्ञासिषुः काञ्चनभूषणानि ॥७॥ हस्ताम्बुजाभ्यां शुचिमौक्ति-
कौघैरवाकिरन् काञ्चन चञ्चलाक्ष्यः । काश्चिज्जगुर्मङ्गुलमङ्गलानि, प्रमोदपूर्णा ननृतुश्च काश्चित् ॥ ८ ॥ इत्थं नाग- १३

१ त्रीण्यपि स्त्रीणां वल्लभानि कलिः कज्जलं सिन्दूरम् । एतानि पुनः अतीव वल्लभानि दुग्धं जामाता तूर्यम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११३] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [११६]

कल्प.सुबो-ध्या० ५ ॥ ९३ ॥

रनागरीनिरीक्ष्यमाणविभवप्रकर्षस्य भगवतः पुरतः प्रथमतो रत्नमयान्यष्टौ मङ्गलानि क्रमेण प्रस्थितानि, तद्यथा–स्वस्तिकः १ श्रीवत्सो २ नन्द्यावर्त्तो ३ वर्द्धमानकं ४ भद्रासनं ५ कलशो ६ मत्स्ययुग्मं ७ दर्पणश्च ८, ततः क्रमेण पूर्णकलशभृङ्गारचामराणि ततो महती वैजयन्ती ततश्छत्रं ततो मणिस्वर्णमयं सपादपीठं सिंहासनं ततोऽष्टशतं आरोहरहितानां वरकुञ्जरतुरगाणां ततस्तावन्तो घण्टापताकाभिरामाः शस्त्रपूर्णा रथाः ततस्तावन्तो वरपुरुषाः ततः क्रमेण हय १ गज २ रथ ३ पदात्यनीकानि ४ ततो लघुपताकासहस्रपरिमण्डितः सहस्रयोजनोच्चो महेन्द्रध्वजः ततः खड्गग्राहाः कुन्तग्राहाः पीठफलकग्राहाः ततो हासकारकाः नर्त्तनकारकाः कान्दर्पिका जयजयशब्दं प्रयुञ्जानास्तदनन्तरं बहव उग्रा भोगा राजन्याः क्षत्रियास्तलवरा माडम्बिकाः कौटुम्बिकाः श्रेष्ठिनः सार्थवाहाः देवा देव्यश्च स्वामिनः पुरतः प्रस्थिताः, तदनन्तरं (सदेवमणुआसुराए) देवमनुजासुरसहितया स्वर्गमर्त्यपातालवासिन्या (परिसाए) पर्षदा (समणुगम्ममाणत्ति) सम्यग् अनुगम्यमानं (मग्गे)अग्रतः (संखियत्ति) शाङ्खिकाः–शङ्खवादकाः (चक्कियत्ति) चाक्रिकाः–चक्रप्रहरणधारिणः (लंगलियत्ति) लाङ्गलिका–गलावलम्बितसुवर्णादिमयलाङ्गलाकारधारिणो भट्टविशेषाः (मुहमंगलियत्ति) मुखे प्रियवक्तारश्चाटुकारिण इत्यर्थः (वद्धमाणत्ति) वर्द्धमानाः–स्कन्धारोपितपुरुषाः पुरुषाः (पूसमाणत्ति) पुष्पमाणवा–मागधाः (घंटियगणे) घण्टया चरन्तीति घाण्टिका 'राउलिआ' इति लोके प्रसिद्धाः एतेषां गणैः परिवृतं च भगवन्तं प्रक्रमात् कुलमहत्तरादयः स्वजनाः (ताहिं इट्ठाहिं जाव वग्गूहिं) ताभिरिष्टादिविशेषणविशिष्टाभिर्वाग्भिः

दीक्षाभिषेक:सू. ११३ १५ २० २५ ॥ ९३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११४] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [११६]

(अभिनंदमाणा य अभिथुवमाणा य) अभिनन्दन्तः अभिष्टुवन्तश्च (एवं वयासी) एवं अवादिषुः ॥ (११३) ॥ महत्त रो-क्तिः सू. ११४

(जय जयनंदा) जय-जयवान् भव हे समृद्धिमन् ! (जय जय भद्दा ! भद्दं ते) जय-जयवान् भव हे भद्रा!-भद्रकारक! ते-तुभ्यं भद्रं अस्तु, किञ्च- (अभग्गेहिं नाणदंसणचरित्तेहिं) अभग्नैः-निरतिचारैर्ज्ञान-दर्शनचारित्रैः (अजियाइं जिणाहि इंदियाइं) अजितानि इन्द्रियाणि जय-वशीकुरु (जियं च पालेहि समण-धम्मं) जितं च-स्ववशीकृतं पालय श्रमणधर्मं (जियविग्घोऽवि अ वसाहि तं देव! सिद्धिमज्झे) जितविघ्नोऽपि च हे देव! प्रभो!-त्वं वस, कुत्र?-सिद्धिमध्ये, अत्र सिद्धिशब्देन श्रमणधर्मस्य वशीकारस्तस्य मध्यं-लक्षणया प्रकर्षस्तत्र त्वं निरन्तरायं तिष्ठेत्यर्थः (निहणाहि रागदोसमल्ले) रागद्वेषमल्लौ निजहि-निगृहाण, तयोर्निग्रहं कुरु इत्यर्थः, केन?-(तवेणं) तपसा बाह्याभ्यन्तरेण, तथा (धिइधणियबद्धकच्छे) धृतौ-संतोषे धैर्ये वा अत्यन्तं बद्धकक्षः सन् (महाहि अट्ठकम्मसत्तू) अष्टकर्मशत्रून् मर्दय, परं केनेत्याह-(झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं) ध्यानेन उत्तमेन शुक्लेनेत्यर्थः, तथा (अप्पमत्तो हराहि आराहणपडागं च वीर ! तेलुक्करंगमज्झे) हे वीर ! अप्रमत्तः सन् त्रैलोक्यं एव यो रङ्गो-मल्लयुद्धमण्डपस्तस्य मध्ये आराधनपताकां आहर-गृहाण, यथा कश्चि-न्मल्लः प्रतिमल्लं विजित्य जयपताकां गृह्णाति तथा त्वं कर्मशत्रून् विजित्य आराधनपताकां गृहाण इति भावः (पावय वितिमिरमणुत्तरं केवलवरनाणं) प्रापुहि च वितिमिरं-तिमिररहितं अनुत्तरं-अनुपमं केवलवरज्ञानं (गच्छय मुक्खं परं पयं) गच्छ च मोक्षं परमं पदं, केन? (जिणवरोवइट्ठेण मग्गेण अकुडिलेण) जिनवरो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११४] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [११६]

कल्प.सुबो-व्या० ५ ॥ ९४ ॥

पदिष्टेन अकुटिलेन मार्गेण, अथ किं कृत्वेत्याह—(हंता परीसहचमुं) हत्वा, कां ?–परीषहसेनां (जय जय खत्तियवरवसहा) जय जय क्षत्रियवरवृषभ ! (बहूइं दिवसाइं) बहून् दिवसान् (बहूइं पक्खाइं) बहून् पक्षान् (बहूइं मासाइं) बहून् मासान् (बहूइं उऊइं) बहून् ऋतून्–मासद्वयप्रमितान् हेमन्तादीन् (बहूइं अयणाइं) बहूनि अयनानि–षाण्मासिकानि दक्षिणोत्तरायणलक्षणानि (बहूइं संवच्छराइं) बहून् संवत्सरान् यावत् (अभीए परीसहोवसग्गाणं) परीषहोपसर्गेभ्योऽभीतः सन् (खंतिखमे भयभेरवाणं) भयभैरवाणां–विद्युत्सिंहादिकानां क्षान्त्या क्षमो न त्वंसामर्थ्यादिना, एवंविधः सन् त्वं जय, अपरं च–(धम्मे ते अविग्घं भवउत्तिकट्टु) ते–तव धर्मे अविघ्नं–विघ्नाभावोऽस्तु इतिकृत्वा–इत्युक्त्वा (जयजयसद्दं पउंजंति) जयजयशब्दं प्रयुञ्जन्ति ॥ (११४) ॥

(तए णं समणे भगवं महावीरे) ततः श्रमणो भगवान् महावीरः क्षत्रियकुण्डग्रामनगरमध्येन भूत्वा यत्र ज्ञातखण्डवनं यत्राशोकपादपस्तत्र उपागच्छतीति योजना, अथ किंविशिष्टः सन्? (नयणमालासहस्सेहिं) नयनमालासहस्रैः (पिच्छिज्जमाणे २) प्रेक्ष्यमाणः२–पुनः पुनः विलोक्यमानसौन्दर्यः, पुनः किंवि० ? (वयणमालासहस्सेहिं) वदनमालासहस्रैः–श्रेणिस्थितलोकानां मुखपङ्क्तिसहस्रैः (अभिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे) पुनः पुनः अभिष्टूयमानः, पुनः किंवि० ? (हिअयमालासहस्सेहिं) हृदयमालासहस्रैः (उन्नंदिज्जमाणे उन्नंदिज्जमाणे) उन्नन्द्यमानो–जयतु जीवतु इत्यादिध्यानेन समृद्धिं प्राप्यमाणः, पुनः किंवि० ? (मणोरहमालास-

महत्तरोक्तिः सू. ११४ १५ २० २५ ॥ ९४ ॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११५] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [११७]

हस्सेहिं) मनोरथमालासहस्रैः (विच्छिप्पमाणे विच्छिप्पमाणे) विशेषेण स्पृश्यमानः–वयं एतस्य सेवका अपि भवामस्तदापि वरं इति चिन्त्यमानः, पुनः किंवि० ? (कंतिरूवगुणेहिं) कान्तिरूपगुणैः (पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे) प्रार्थ्यमानः–स्वामित्वेन भर्तृत्वेन वाञ्छ्यमान इत्यर्थः, पुनः किंवि० ? (अंगुलिमालासहस्सेहिं) अङ्गुलिमालासहस्रैः (दाइज्जमाणे २) दर्श्यमानः २, पुनः किंवि०–(दाहिणहत्थेणं बहूणं नरनारीसहस्साणं) दक्षिणहस्तेन बहूनां नरनारीसहस्राणां (अंजलिमालासहस्साइं) अञ्जलिमालासहस्राणि–नमस्कारान् (पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे) प्रतीच्छन् प्रतीच्छन्–गृह्णन्२, पुनः किंवि० ?(भवणपंतिसहस्साइं) भवनपङ्क्तिसहस्राणि (समइक्कमाणे समइक्कमाणे) समतिक्रामन्२, पुनः किंवि० ? (तंतीतलतालतुडियगीयवाइयरवेणं) तन्त्री–वीणा तलतालाः– हस्तालाः त्रुटितानि–वादित्राणि गीतं–गानं वादितं–वादनं तेषां रवेण–शब्देन, पुनः कीदृशेन? (महुरेण य मणहरेणं) मधुरेण च मनोहरेण, पुनः कीदृशेन ? (जयजयसद्दघोसमीसिएणं) जयजयशब्दस्य यो घोष–उद्घोषणं तेन मिश्रितेन, पुनः कीदृशेन? (मंजुमंजुणा घोसेणं) मञ्जुमञ्जुना घोषेण च–अतिकोमलेन जनस्वरेण (पडिबुज्झमाणे पडिबुज्झमाणे) सावधानीभवन् (सविड्ढीए) सर्वर्द्ध्या–समस्तच्छत्रादिराजचिन्हरूपया (सव्वजुईए) सर्वद्युत्या–आभरणादिसम्बन्धिन्या कान्त्या(सव्वबलेणं)सर्वबलेन–हस्तितुरगादिरूपकटकेन(सव्ववाहणेणं) सर्ववाहनेन–करभवेसरशिबिकादिरूपेण (सव्वसमुदएणं) सर्वसमुदयेन–महाजनमेलापकेन (सव्वायरेणं) सर्वादरेण–सर्वौचित्यकरणेन (सव्वविभूईए) सर्वविभूत्या–सर्वसंपदा (सव्वविभूसाए) सर्वविभूषया–

दीक्षायै गमनं सू. ११५

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११५] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [११७]

कल्प.सुबो-व्या० ५ ॥ ९५ ॥

समस्तशोभया (सव्वसंभमेणं) सर्वसम्भ्रमेण–प्रमोदजनितौत्सुक्येन (सव्वसंगमेणं) सर्वसङ्गमेन–सर्वस्वजनमेलापकेन (सव्वपगइएहिं) सर्वप्रकृतिभिः–अष्टादशभिर्नैगमादिभिः नगरवास्तव्यप्रजाभिः (सव्वनाडएहिं) सर्वनाटकैः (सव्वतालायरेहिं) सर्वतालाचरैः (सव्वावरोहेणं) सर्वावरोधेन–सर्वान्तःपुरेण (सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारविभूसाए) सर्वपुष्पगन्धमाल्यालङ्कारविभूषया प्रतीतया (सव्वतुडियसद्दसण्णिनाएणं) सर्वत्रुटितशब्दानां यः शब्दः संनिनादश्च–प्रतिरवस्तेन, सर्वत्वं च स्तोकानां समुदाये स्तोकैरपि स्यात्तत आह–(महया इड्ढीए) महत्या ऋद्ध्या (महया जुईए) महत्या द्युत्या (महया बलेणं) महता बलेन (महया समुदएणं) महता समुदयेन (महया वरतुडियजमगसमगप्पवाइएणं) महता–उच्चैस्तरेण वरत्रुटितानि–प्रधानवादित्राणि तेषां जमगसमगं–समकालं प्रवादनं यत्र एवंविधेन (संखपणवपडहभेरीझल्लरीखरमुहिहुडुक्कदुंदुहिनिग्घोसनाइयरवेणं) शङ्खः–प्रतीतः पणवः–मृत्पटहः पटहः–काष्ठपटहः भेरी–ढक्का झल्लरीः–प्रतीता खरमुखी–काहला हुडुक्कः–त्रिवलितुल्यवाद्यविशेषः दुन्दुभिः–देववाद्यं तेषां निर्घोषः तथा नादितः–प्रतिशब्दः तद्रूपेण रवेण–शब्देन युक्तं, एवंरूपया ऋद्ध्या व्रताय व्रजन्तं भगवन्तं पृष्ठतश्चतुरङ्गसैन्यपरिकलितो ललितच्छत्रचामरविराजितो नन्दिवर्धननृपोऽनुगच्छति। पूर्वोक्ताडम्बरेण युक्तो भगवान् (कुंडपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं) क्षत्रियकुण्डनगरस्य मध्यभागेन (निग्गच्छइ) निर्गच्छति (निग्गच्छित्ता) निर्गत्य (जेणेव नायसंडवणे उज्जाणे) यत्रैव ज्ञातखण्डवनं इति नामकं उद्यानं अस्ति (जेणेव असोगवरपायवे) यत्रैव अशोकनामा वरपादपः–श्रेष्ठवृक्षः (तेणेव उवागच्छइ) तत्रैव उपागच्छति॥ (११५) ॥

दीक्षायै गमनं सू. ११५ १५ २० २५ ॥ ९५ ॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११६] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [११८]

(उवागच्छित्ता) उपागत्य (असोगवरपायवस्स) अशोकवरपादपस्य (अहे सीयं ठावेइ) अधस्तात् शिबिकां स्थापयति (ठावित्ता) स्थापयित्वा च (सीयाओ पच्चोरुहइ) शिबिकातः प्रत्यवतरति (पच्चोरुहित्ता) प्रत्यवतीर्य (सयमेव आभरणमल्लालङ्कारं ओमुयइ) स्वयमेव आभरणमाल्यालङ्कारान् उत्तारयति (ओमुइत्ता) उत्तार्य, तच्चैवं—अङ्गुलीभ्यश्च मुद्रावलिं पाणितो, वीरवलयं भुजाभ्यां झटित्यङ्गदे। हारमथ कण्ठतः कर्णतः कुण्डले मस्तकान्मुकुटमुन्मुञ्चति श्रीजिनः ॥ १ ॥ तानि चाभरणानि कुलमहत्तरिका हंसलक्षणपट्टशाटकेन गृह्णाति, गृहीत्वा च भगवन्तं एवं अवादीत्—' इक्ष्वागकुलसमुप्पन्नेऽसि णं तुमं जाया !, कासवगुत्तेऽसि णं तुमं जाया !, उदितोदितनायकुलनहयलमिअङ्क ! सिद्धत्थजच्चखत्तिअसुएऽसि णं तुमं जाया !, जच्चखत्तिआणीए तिसलाए सुएऽसि णं तुमं जाया !, देविन्दनरिन्दपहिअकित्तीऽसि णं तुमं जाया !, एत्थ सिग्घं चंकमिअव्वं गरुअं आलम्बेअव्वं असिधारामहव्वयं चरिअव्वं जाया ! परिक्कमिव्वं जाया !, अस्सिं च णं अट्ठे नो पमाइअव्वं,' इत्यादि उक्त्वा वन्दित्वा नमस्कृत्य एकतोऽपक्रामति। ततश्च भगवान् एकया मुष्ट्या कूर्चं चतसृभिश्च ताभिः शिरोजान्, एवं (सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ) स्वयमेव पञ्चमौष्टिकं लोचं करोति (करित्ता) तथा कृत्वा च (छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं) षष्ठेन भक्तेन अपानकेन (हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं चंदेणं जोगमुवागएणं) उत्तराफाल्गुन्यां चन्द्रयोगे सति (एगं देवदूससमादाय) शक्रेण वामस्कन्धे स्थापितं एकं देवदूष्यं आदाय (एगे) एको रागद्वेषसहायविरहात् (अबीए) अद्वितीयः, यथा हि ऋषभश्चतुःसहस्रया राज्ञां मल्लिपार्श्वौ

दीक्षाङ्गीकारः सू. ११६ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११६] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [११८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

त्रिभिस्त्रिभिः, शतैर्वासुपूज्यः षट्शत्या, शेषाश्च सहस्रेण सह प्रव्रजितास्तथा भगवान् न केनापि सहेत्यतोऽद्वितीयः (मुंडे भवित्ता) द्रव्यतः शिरःकूर्चलोचनेन भावतः क्रोधाद्यपनयनेन मुण्डो भूत्वा (अगाराओ अणगारियं पवइए) अगारात्–गृहात् निष्क्रम्य अनगारितां–साधुतां प्रव्रजितः–प्रतिपन्नः ॥ (११६) ॥ तद्विधिश्चायं–एवं पूर्वोक्तप्रकारेण कृतपञ्चमौष्टिकलोचो भगवान् यदा सामायिकं उच्चरितुं वाञ्छति तदा शक्रः सकलमपि वादित्रादिकोलाहलं निवारयति, ततः प्रभुः 'णमो सिद्धाणं' इति कथनपूर्वकं 'करेमि सामाइअं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामी' त्यादि उच्चरति, न तु 'भंते' त्ति भणति, तथाकल्पत्वात्, एवं च चारित्रग्रहणानन्तरमेव भगवतश्चतुर्थं ज्ञानं उत्पद्यते, ततः शक्रादयो देवा भगवन्तं वन्दित्वा नन्दीश्वरयात्रां कृत्वा स्वं स्वं स्थानं जग्मुः ॥

इति महोपाध्यायश्रीकीर्तिविजयगणिशिष्योपाध्यायश्रीविनयविजयगणिविरचितायां
कल्पसुबोधिकायां पञ्चमः क्षणः समाप्तः ।
ग्रन्थाग्रम् ६५० । पञ्चानामपि व्याख्यानानां ग्रन्थाग्रम् ॥ ३२२५ ॥ श्रीरस्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचमं व्याख्यानं समाप्तं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११७] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [११९]

॥ अथ षष्ठं व्याख्यानं प्रारभ्यते ॥

ततश्चतुर्ज्ञानो भगवान् बन्धुवर्गं आपृच्छ्य विहारार्थं प्रस्थितो, बन्धुवर्गोऽपि दृष्टिविषयं यावत् तत्र स्थित्वा—'त्वया विना वीर! कथं व्रजामो, गृहेऽधुना शून्यवनोपमाने? । गोष्ठीसुखं केन सहाचरामो, भोक्ष्यामहे केन सहाथ बन्धो! ॥ १ ॥ सर्वेषु कार्येषु च वीर वीरेत्यामन्त्रणाद्दर्शनतस्त्वार्य! । प्रेमप्रकर्षाद्भजाम हर्षं, निराश्रयाश्चाथ कमाश्रयामः? ॥ २ ॥ अतिप्रियं बान्धव! दर्शनं ते, सुधाऽञ्जनं भावि कदाऽस्मदीक्षणोः? । नीरागचित्तोऽपि कदाचिदस्मान्, स्मरिष्यसि प्रौढगुणाभिराम! ॥ ३ ॥' इत्यादि वदन् कष्टेन निर्वृत्य साश्रुलोचनः स्वगृहं जगाम। किञ्च–प्रभुदीक्षामहोत्सवे यद्देवैर्गोशीर्षचन्दनादिना पुष्पैश्च पूजितोऽभूत् साधिकमासचतुष्कं यावत् तदवस्थेन च तद्गन्धेन आकृष्टा भ्रमरा आगत्य गाढं त्वचं दशन्ति युवानश्च गन्धपुटीं याचन्ते, मौनवति च भगवति रुष्टास्ते दुष्टान् उपसर्गान् कुर्वन्ति, स्त्रियोऽपि भगवन्तं अद्भुतरूपं तथा सुगन्धशरीरं च निरीक्ष्य कामपरवशा अनुकूलान् उपसर्गान् कुर्वन्ति, भगवांस्तु मेरुरिव निष्प्रकम्पः सर्वं सहमानो विहरति। तस्मिन् दिने च मुहूर्त्तावशेषे कुमारग्रामं प्राप्तस्तत्र रात्रौ कायोत्सर्गेण स्थितः, इतश्च तत्र कश्चिद् गोपः सर्वं दिनं हले वृषान् वाहयित्वा सन्ध्यायां तान् प्रभुपार्श्वे मुक्त्वा गोदोहाय गृहं गतः, वृषभास्तु वने चरितुं गताः, स चागत्य प्रभुं पृष्टवान्-देवार्य! क्व मे वृषाः?, अजल्पति च प्रभौ अयं न वेत्तीति वने विलो-

स्वजननिवृत्तिः गोपोपसर्गः ५ १० १३

क.सु. १७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षष्ठं व्याख्यानं आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११७] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [११९]

॥ ९७ ॥

कितुं लग्नः, वृषास्तु रात्रिशेषे स्वयमेव प्रभुपार्श्वं आगताः, गोपोऽपि तत्रागतस्तान् दृष्ट्वा अहो ! जानताऽपि अनेन समग्रां रात्रिं अहं भ्रामित इति कोपात् सेल्हकमुत्पाट्य प्रहर्तुं धावितः, इतश्च शक्रस्तं वृत्तान्तं अवधिना ज्ञात्वा गोपं शिक्षितवान् । अथ तत्र शक्रः प्रभुं विज्ञपयामास-प्रभो ! तवोपसर्गा भूयांसः सन्ति ततो द्वादशवर्षीं यावत् वैयावृत्यनिमित्तं तवान्तिके तिष्ठामि, ततः प्रभुरवादीद्–देवेन्द्र ! कदाप्येतन्न भूतं न भवति न भविष्यति च यत् कस्यचिद्देवेन्द्रस्य असुरेन्द्रस्य वा साहाय्येन तीर्थङ्कराः केवलज्ञानं उत्पादयन्ति, किन्तु स्वपराक्रमेणैव केवलज्ञानं उत्पादयन्ति; ततः शक्रोऽपि मरणान्तोपसर्गवारणाय प्रभोर्मातृष्वस्रेयं व्यन्तरं वैयावृत्त्यकरं स्थापयित्वा त्रिदिवं जग्मिवान् । ततः प्रभुः प्रातः कोल्लाकसन्निवेशे बहुलब्राह्मणगृहे मया सपात्रो धर्मः प्रज्ञापनीय इति प्रथमपारणां गृहस्थपात्रे परमान्नेन चकार, तदा च चेलोत्क्षेपः १ गन्धोदकवृष्टिः २ दुन्दुभिनादः ३ अहो दानमहो दानमित्युद्घोषणा ४ वसुधारावृष्टि ५ श्चेति पञ्च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि, एषु वसुधाराखरूपं चेदं-"[1]अद्धत्तेरस कोडी उक्कोसा तत्थ होइ वसुहारा । अद्धत्तेरस लक्खा जहन्निआ होइ वसुहारा ॥ १ ॥" ततः प्रभुर्विहरन् मोराकसन्निवेशे दृढज्ञन्ततापसाश्रमे गतः, तत्र सिद्धार्थभूपमित्रं कुलपतिः प्रभुं उपस्थितः, प्रभुणाऽपि पूर्वाभ्यासान्मिलनाय बाहू प्रसारितौ, तस्य प्रार्थनया च एकां रात्रिं तत्र स्थित्वा नीरागचित्तोऽपि तस्याग्रहेण तत्र चतुर्मासावस्थानं अङ्गीकृत्य अन्यतो विजहार, अष्टौ मासान् विहृत्य पुनर्व-

१ अर्धत्रयोदश कोट्य उत्कर्षा तत्र भवति वसुधारा । अर्धत्रयोदश लक्षा जघन्यिका भवति वसुधारा ॥१॥

सिद्धार्थ-स्थापनं पारणके पञ्च-दिव्यानि १५ २० २५ ॥ ९७ ॥

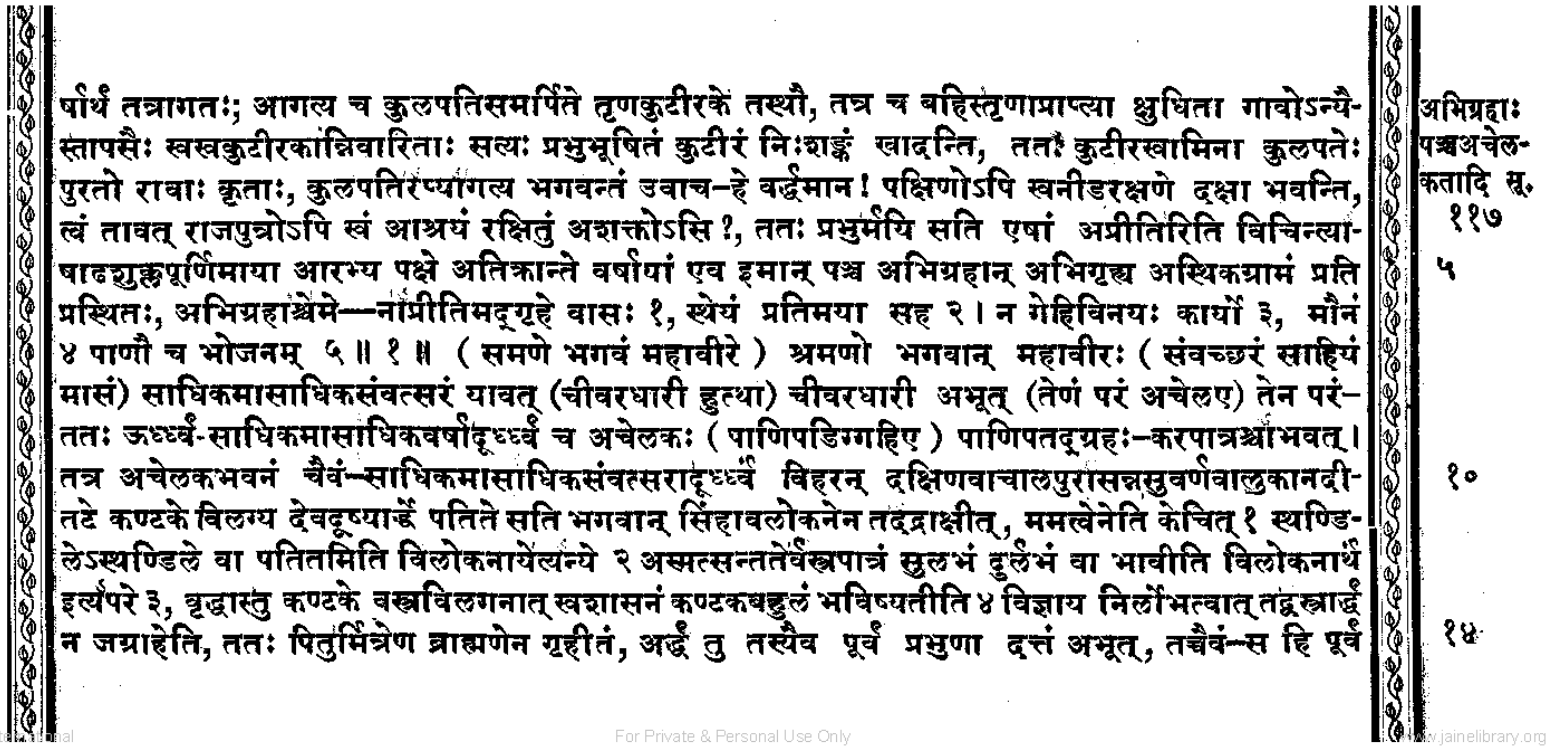
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** दिक्षाया: अनन्तरं प्रथम-भिक्षा एवं पंच-दिव्यानां प्रागत्य-वर्णनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११७] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [११९]



र्षार्थं तत्रागतः; आगत्य च कुलपतिसमर्पिते तृणकुटीरके तस्थौ, तत्र च बहिस्तृणाप्राप्त्या क्षुधिता गावोऽन्यै-
स्तापसैः स्वस्वकुटीरकान्निवारिताः सत्यः प्रभुभूषितं कुटीरं निःशङ्कं खादन्ति, ततः कुटीरस्वामिना कुलपतेः
पुरतो रावाः कृताः, कुलपतिरप्यागत्य भगवन्तं उवाच–हे वर्द्धमान! पक्षिणोऽपि स्वनीडरक्षणे दक्षा भवन्ति,
त्वं तावत् राजपुत्रोऽपि स्वं आश्रयं रक्षितुं अशक्तोऽसि?, ततः प्रभुर्मयि सति एषां अप्रीतिरिति विचिन्त्या-
षाढशुक्लपूर्णिमाया आरभ्य पक्षे अतिक्रान्ते वर्षायां एव इमान् पञ्च अभिग्रहान् अभिगृह्य अस्थिकग्रामं प्रति
प्रस्थितः, अभिग्रहाश्चेमे—नाप्रीतिमद्गृहे वासः १, स्थेयं प्रतिमया सह २। न गेहिविनयः कार्यो ३, मौनं
४ पाणौ च भोजनम् ५॥ १॥ (समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (संवच्छरं साहियं
मासं) साधिकमासाधिकसंवत्सरं यावत् (चीवरधारी हुत्था) चीवरधारी अभूत् (तेणं परं अचेलए) तेन परं–
ततः ऊर्ध्वं-साधिकमासाधिकवर्षादूर्ध्वं च अचेलकः (पाणिपडिग्गहिए) पाणिपतद्ग्रहः–करपात्रश्चाभवत्।
तत्र अचेलकभवनं चैवं–साधिकमासाधिकसंवत्सरादूर्ध्वं विहरन् दक्षिणवाचालपुरासन्नसुवर्णवालुकानदी-
तटे कण्टके विलग्य देवदूष्यार्द्धे पतिते सति भगवान् सिंहावलोकनेन तद्दृष्टवान्, ममत्वेनेति केचित् १ स्थण्डि-
लेऽस्थण्डिले वा पतितमिति विलोकनार्थमित्यन्ये २ असत्सन्ततेर्वस्त्रपात्रं सुलभं दुर्लभं वा भावीति विलोकनार्थं
इत्यपरे ३, वृद्धास्तु कण्टके वस्त्रविलगनात् स्वशासनं कण्टकबहुलं भविष्यतीति ४ विज्ञाय निर्लोभत्वात् तद्वस्त्रार्द्धं
न जग्राहेति, ततः पितुर्मित्रेण ब्राह्मणेन गृहीतं, अर्द्धं तु तस्यैव पूर्वं प्रभुणा दत्तं अभूत्, तच्चैवं–स हि पूर्वं

अभिग्रहाः पञ्चअचेलकतादि सू. ११७ ५ १० १४

Jain Education Int[illegible]al For Private & Personal Use Only [illegible].jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११७] गाथा ॥१..॥

दीप अनुक्रम [११९]

कल्प.सुबो-ध्या० ६

॥ ९८ ॥

दरिद्रो भगवतो वार्षिकदानावसरे परदेशं गतोऽभूत्, तत्रापि निर्भाग्यत्वात् किञ्चिदप्राप्य गृहमागतो भार्यया तर्जितो–रे अभाग्यशेखर! यदा भगवता श्रीवर्धमानेन सुवर्णमेधायितं तदा त्वं परदेशे गतः, अधुना पुनर्निर्धनः समागतो, याहि दूरं मुखं मा दर्शय, अथवा सांप्रतं अपि तमेव जङ्गमं कल्पतरुं याचस्व यथा तव दारिद्र्यं हरति, यतः–यैः प्राग्दत्तानि दानानि, पुनर्दातुं हि ते क्षमाः । शुष्कोऽपि हि नदीमार्गः, खन्यते सलिलार्थिभिः ॥ १ ॥ इत्यादिवाक्यैर्भार्याप्रेरितो भगवत्पार्श्वमागत्य विज्ञपयामास–प्रभो! त्वं जगदुपकारी विश्वस्यापि त्वया दारिद्र्यं निर्मूलितं अहं तु निर्भाग्यस्तस्मिन्नवसरेऽत्र नाभूवं, तत्रापि–किं किं न कयं? को को न पत्थिओ? कह कह न नामिअं सीसं? । दुब्भरउअरस्स कए, किं न कयं न कायव्वं? ॥ १ ॥ तथापि भ्रमता मया न किञ्चित् प्राप्तं, ततोऽहं निष्पुण्यो निराश्रयो निर्दैवस्त्वामेव जगद्वाञ्छितदायकं शरणायोपेतोऽस्मि, तव च विश्वदारिद्र्यहरस्य मद्दारिद्र्यहरणं कियन्मात्रं?, यतः–संपूरिताशेषमहीतलस्य, पयोधरस्याद्भुतशक्तिभाजः । किं तुम्बपात्रप्रतिपूरणाय, भवेत्प्रयासस्य कणोऽपि नूनम्? ॥ १ ॥ एवं च याचमानाय विप्राय करुणापरेण भगवता देवदूष्यवस्त्रस्य अर्द्धं दत्तं, इदं च तादृग्दानदायिनोऽपि भगवतो निष्प्रयोजनस्यापि वस्त्रस्य यदर्द्धदानं तत् भगवत्सन्ततेर्वस्त्रपात्रेषु मूर्च्छां सूचयति इति केचित् १ प्रथमं विप्रकुलोत्पन्नत्वं सूचयतीत्यपरे २ ब्राह्मणस्तु तदर्द्धं गृहीत्वा दशाञ्चलकृते तुन्नवायस्यादर्शयत्, विप्रेण तस्याग्रे सकले व्यतिकरे

१ किं किं न कृतं कः को न प्रार्थितः क क न नामितं शीर्षं । दुर्भरोदरस्य कृते किं न कृतं किं न कर्तव्यम् ॥ १ ॥

विप्राय वस्त्रदानम्

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११७] गाथा ||१..||

दीप अनुक्रम [११९]

निवेदिते सोऽप्युवाच–याहि भो ब्राह्मण! तमेव प्रभुं अनुगच्छ, स हि निर्ममः करुणाम्भोधिर्द्वितीयं अपि पुष्पाय स-
अर्द्धं दास्यति, ततस्तदर्द्धद्वयं अहं तथा संयोजयिष्यामि यथा अक्षतस्येव तस्य दीनारलक्षं मूल्यं भविष्यति, मृद्धिदानं
तेन च अर्धमर्धं विभक्तेन द्वयोरप्यावयोर्दारिद्र्यं यास्यति, इति तत्प्रेरितो विप्रोऽपि पुनः प्रभुपार्श्वमागतो
लज्जया प्रार्थयितुं अशक्तो वर्षं यावत् पृष्ठे बभ्राम, ततश्च स्वयं पतितं तदर्धं गृहीत्वा जगाम, तदेवं भगवता
सवस्त्रधर्मप्ररूपणाय साधिकमासाधिकं वर्षं यावद्वस्त्रं स्वीकृतं, सपात्रधर्मस्थापनाय च प्रथमां पारणां पात्रेण ५
कृतवान्, ततः परं तु यावज्जीवं अचेलकः पाणिपात्रश्चाभूत्। एवं च विहरतो भगवतः कदाचिद् गङ्गातटे
सूक्ष्ममृत्तिकाकर्दमप्रतिबिम्बितासु पदपङ्क्तिषु चक्रध्वजाङ्कुशादीनि लक्षणानि निरीक्ष्य पुष्पनामा सामुद्रिक-
श्चिन्तयामास–यदेयं एकाकी कोऽपि चक्रवर्त्ती गच्छति तद् गत्वाऽस्य सेवां करोमि यथा मम महानुदयो
भवतीति त्वरितं पदानुसारेण भगवत्पार्श्वमागतो, भगवन्तं निरीक्ष्य दध्यौ–अहो मया वृथैव महता कष्टेन
सामुद्रिकं अधीतं, यदि ईदृगलक्षणलक्षितोऽपि श्रमणो भूत्वा व्रतकष्टं समाचरति तदा सामुद्रिकपुस्तकं जले १०
क्षेप्यमेव, इतश्च दत्तोपयोगः शक्रः शीघ्रं तत्रागत्य भगवन्तं अभिवन्द्य पुष्पं उवाच–भो भो सामुद्रिक! मा
विषीद सत्यमेवैतत्तव शास्त्रं यदेयं अनेन लक्षणेन जगत्त्रयस्यापि पूज्यः सुरासुराणामपि स्वामी सर्वोत्तम-
संपदाश्रयस्तीर्थेश्वरो भविष्यति, किञ्च–कायः स्वेदमलामयविवर्जितः श्वासवायुरपि सुरभिः। रुधिरामिषमपि १३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥ दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० ६ ॥ ९९ ॥

धवलं गोदुग्धसहोदरं नेतुः ॥ १ ॥ इत्यादीन्यपरिमितान्यस्य बाह्याभ्यन्तराणि लक्षणानि केन गणयितुं शक्यानि ? इत्यादि वदन् पुष्पं मणिकनकादिभिः समृद्धिपात्रं विधाय शक्रः स्वस्थानं ययौ, सामुद्रिकोऽपि प्रमुदितः स्वदेशं गतः, प्रभुरप्यन्यत्र विजहार ॥ (११७) ॥

(समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (साहरेगाइं दुवालस वासाइं) सातिरेकाणि द्वादश वर्षाणि यावत् (निच्चं वोसट्ठकाए) नित्यं-दीक्षाग्रहणादनु यावज्जीवं व्युत्सृष्टकायः परिकर्मणावर्जनात् (चियत्तदेहे) त्यक्तदेहः परीषहसहनात्, एवंविधः सन् प्रभुः (जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति) ये केचित् उपसर्गा उत्पद्यन्ते, (तंजहा) तद्यथा-(दिव्वा वा) दिव्याः-देवकृताः (माणुस्सा वा) मानुष्याः-मनुष्यकृताः (तिरिक्खजोणिआ वा) तैर्यग्योनिकाः-तिर्यक्कृताः (अणुलोमा वा) अनुकूलाः-भोगार्थं प्रार्थनादिकाः (पडिलोमा वा) प्रतिकूलाः-प्रतिलोमाः ताडनादिकाः (ते उप्पन्ने सम्मं सहइ) तान् उत्पन्नान् सम्यक् सहते, भयाभावेन (खमइ) क्षमते, क्रोधाभावेन (तितिक्खइ) तितिक्षते, दैन्याकरणेन (अहियासेइ) अध्यासयति, निश्चलतया ॥(११८) ॥ तत्र देवादिकृतोपसर्गसहनं यथा-स्वामी प्रथमचतुर्मासकं मोराकसन्निवेशादागत्य शूलपाणियक्षचैत्ये स्थितः, स च यक्षः पूर्वभवे धनदेववणिजो वृषभ आसीत्, तस्य च नदीं उत्तरतः शकटपञ्चशती पङ्के निमग्ना, तदा च उल्लसितवीर्येण एकेन वृषभेण वामधुरीणेन भूत्वा यदि ममैव खण्डद्वयं विधायोभयोः पार्श्वयोर्योजयति तदाऽहं एक एव सर्वाणि उत्तारयामीति चिन्तयता सर्वाणि शाकटानि निर्व्यू-

उपसर्गसहतं सू, ११८ शूलपाण्युपसर्गः १५ २० २५ ॥ ९९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ भगवंत महावीरेण सह्य उपसर्गानां वर्णनं आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

ढानि, तथोक्तं-धवलु विसूरइ सामि! अहं गरुआं भर पिक्खेवि। हउं किं न जुत्तो दुहिं धुरिहिं खंडय दुन्नि करेवि ॥ १ ॥ स तथाविधेन पराक्रमेण त्रुटितसन्धिरशक्तशरीरो जातः, तदा च तं अशक्तं निरीक्ष्य धनदेवेन वर्धमानग्रामे गत्वा ग्रामप्रमुख्यानां तृणजलनिमित्तं द्रव्यं दत्त्वा स तत्र मुक्तः, ग्रामप्रमुखैश्च न काचिच्चिन्ता कृता, स च क्षुत्तृड्बाधितः शुभाध्यवसायान्मृत्वा व्यन्तरो जातः, तेन प्राग्भवव्यतिकरस्मरणाज्जातकोपेन तत्र मारीकरणेन अनेके जना मारिताः, कियतां च संस्कारो भवतीति तथैव मुक्तानां मृतकानां अस्थिनिकरैः स ग्रामः 'अस्थिकग्राम' इति प्रसिद्धो बभूव, ततश्च अवशिष्टलोकाराधितेन तेन प्रत्यक्षीभूय स्वग्रासादः स्वप्रतिमा च कारिता, तत्र जनाः प्रत्यहं पूजां कुर्वंति, भगवांस्तु तत्प्रतिबोधनाय तत्र चैत्ये समागतः, दुष्टोऽयं रात्रौ स्वचैत्ये स्थितं व्यापादयतीति जनैर्वार्यमाणोऽपि तत्रैव रात्रौ स्थितः, तेन च भगवतः क्षोभाय भूमेर्भेदकरोऽट्टहासः कृतः, ततो हस्तिरूपं ततः सर्परूपं ततः पिशाचरूपं च विकृत्य दुस्सहा उपसर्गाः कृताः, भगवांस्तु मनागपि न क्षुभितः, तत एकैकाऽपि या अन्यजीवितापहा तथाविधाः शिरः१कर्ण२नासिका३चक्षु४र्दन्त५पृष्ठ६नख७लक्षणेष्वङ्गेषु विविधा वेदनाः प्रारब्धाः, तथापि अकम्पितचित्तं भगवन्तं निरीक्ष्य स प्रतिबुद्धः, अस्मिन्नवसरे च स सिद्धार्थः समागत्योवाच-भो निर्भाग्य! दुर्लक्षण! शूलपाणे! किमेतदाचरितं? यत्सुरेन्द्रपूज्यस्य भगवत आशातना कृता, यदि शक्रो ज्ञास्यति तदा तव स्थानं स्फेटयिष्यति, ततः पुनर्भीतः सन्नधिकं भगवन्तं पूज-

१ धवलो विषीदति स्वामिन्! अहं गुरुं भारं प्रक्षिप्य। अहं किं न योजितो द्वयोर्धुरोः खण्डे द्वे कृत्वा ॥ १ ॥

शूलपाणु-पसर्गः ५ १० १३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

यामास, भगवतोऽग्रे गायति नृत्यति च, तदाकर्ण्य च लोकाश्चिन्तितवन्तो–यदनेन स देवार्यो हतस्ततो गायति नृत्यति च, तत्र च स्वामी देशोनान् रात्रेश्चतुरोऽपि यामान् अत्यन्तं वेदनां सोढवान् इति प्रभाते क्षणं निद्रां लेभे, तत्र च प्रभुरूर्ध्वस्थ एव दश स्वप्नान् दृष्ट्वा जागरितः, प्रभाते लोको मिलितः, उत्पलेन्द्रशर्माणौ अपि अधीताष्टाङ्गनिमित्तौ तत्रागतौ, ते भगवन्तं दिव्यगन्धचूर्णपुष्पपूजितं निरीक्ष्य प्रमुदिताः प्रणमन्ति, तत उत्पलोऽवोचत्–हे भगवन् ! ये त्वया निशाशेषे दश स्वप्ना दृष्टास्तेषां फलं त्वया तु ज्ञायत एव तदपि मया कथ्यते–यत्त्वया तालपिशाचो हतस्तेन त्वं अचिरेण मोहनीयं कर्म हनिष्यसि १ यच्च सेव्यमानः सितः पक्षी दृष्टस्तेन त्वं शुक्लध्यानं ध्यास्यसि २ यश्च चित्रकोकिलः सेवमानो दृष्टस्ततस्त्वं द्वादशाङ्गीं प्रथयिष्यसि ३ यच्च गोवर्गः सेवमानो दृष्टस्तेन साधुसाध्वीश्रावकश्राविकारूपश्चतुर्विधः संघस्त्वां सेविष्यते४यश्च त्वया स्वप्ने समुद्रस्तीर्णस्ततस्त्वं संसारं तरिष्यसि ५ यश्चोद्गच्छन् सूर्यो दृष्टस्तेन तव अचिरात् केवलज्ञानं उत्पत्स्यते ६ यच्च त्वया अन्त्रैर्मानुषोत्तरो वेष्टितस्तेन त्रिभुवने तव कीर्त्तिर्भविष्यति ७ यच्च त्वं मन्दरचूलां आरूढस्तेन त्वं सिंहासने उपविश्य देवमनुजपर्षदि धर्मं प्ररूपयिष्यसि ८ यच्च त्वया विबुधालङ्कृतं पद्मसरो दृष्टं तेन चतुर्निकायजा देवास्त्वां सेविष्यन्ति ९ यत्त्वया मालायुग्मं दृष्टं तदर्थं तु नाहं जानामि, तदा भगवता प्रोक्तं–हे उत्पल ! यन्मया दामयुग्मं दृष्टं तेन अहं द्विविधं धर्मं कथयिष्यामि–साधुधर्मं श्रावकधर्मं च, तत उत्पलो वन्दित्वा गतः, तत्र स्वामी अष्टभिः अर्द्धमासक्षपणैस्तां प्रथमां चतुर्मासीं (१) अतिक्रम्य ततः स्वामी मोरा-

१५ २० २५ ॥१००॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** भगवंत महावीरेण दृष्ट १० स्वप्नानि एवं तेषां फ़लानि

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

कसन्निवेशं गतः, तत्र प्रतिमास्थितस्य वीरस्य सत्कारार्थं सिद्धार्थो भगवद्देहं अधिष्ठाय निमित्तानि कथयति, भगवतो महिमा जायते स्म, भगवन्महिमानं दृष्ट्वा प्रद्विष्टेन अच्छन्दकेन तृणच्छेदविषये प्रश्ने कृते सिद्धार्थेन न छेत्स्यते इत्युक्ते छेदनोद्यतस्य तस्याङ्गुलीर्दत्तोपयोगः शक्रः समागत्य वज्रेण चिच्छेद, ततो रुष्टः सिद्धार्थो जनानां चौरोऽयमित्यवदत्, ततः कथमिति जनेषु पृच्छत्सु सिद्धार्थो जगौ–अनेन कर्मकरवीरघोषस्य दशपलप्रमितं वट्टलकं गृहीत्वा खर्जूरीवृक्षाधः स्थापितं, द्वितीयं इन्द्रशर्मण ऊरणको भक्षितस्तदस्थीनि स्वगृहबदर्या अधः स्थापितानि सन्ति, तृतीयं तु अवाच्यं अस्य भार्यैव कथयिष्यति, ततो जनैर्गत्वा भार्या पृष्टा, साऽपि तद्दिने तेन सह कृतकलहा कोपादुवाच–भो भो जना! अद्रष्टव्यमुखोऽयं पापात्मा यदयं स्वभगिनीमपि भुङ्क्ते, ततः स भृशं लज्जितो विजने समागत्य स्वामिनं विज्ञपयामास–स्वामिन्! त्वं विश्वपूज्यः सर्वत्र पूज्यसे, अहं तु अत्रैव जीवामीति, ततः प्रभुस्तस्याप्रीतिं विज्ञाय ततो विहरन् श्वेताम्ब्यां गच्छन् जनैर्वार्यमाणोऽपि कनकखलतापसाश्रमे चण्डकौशिकप्रतिबोधाय गतः, स च प्राग्भवे महातपस्वी साधुः, पारणके विहरणार्थं गमने जातां मण्डूकीविराधनां ईर्यापथिकीप्रतिक्रमणे गोचरचर्याप्रतिक्रमणे सायंप्रतिक्रमणे च त्रिशः क्षुल्लकेन स्मारितः सन् क्रुद्धस्तं शैक्षं हन्तुं धावितः स्तम्भेनास्फाल्य मृत्वा ज्योतिष्के देवो जातः, ततश्च्युतस्तत्राश्रमे पञ्चशततापसाधिपतिश्चण्डकौशिकाख्यो बभूव, तत्रापि राजकुमारान् स्वाश्रमफलानि गृह्णतो विलोक्य क्रुद्धस्तान्निहन्तुमुद्यतः परशुहस्तो धावन् स कूपे पतितः, सक्रोधो मृत्वा तत्रैवाश्रमे पूर्वभवनाम्ना दृष्टिविषोऽहिर्ब-

अच्छन्दक-वृत्तं चण्ड-कौशिकवृत्तं च

१०

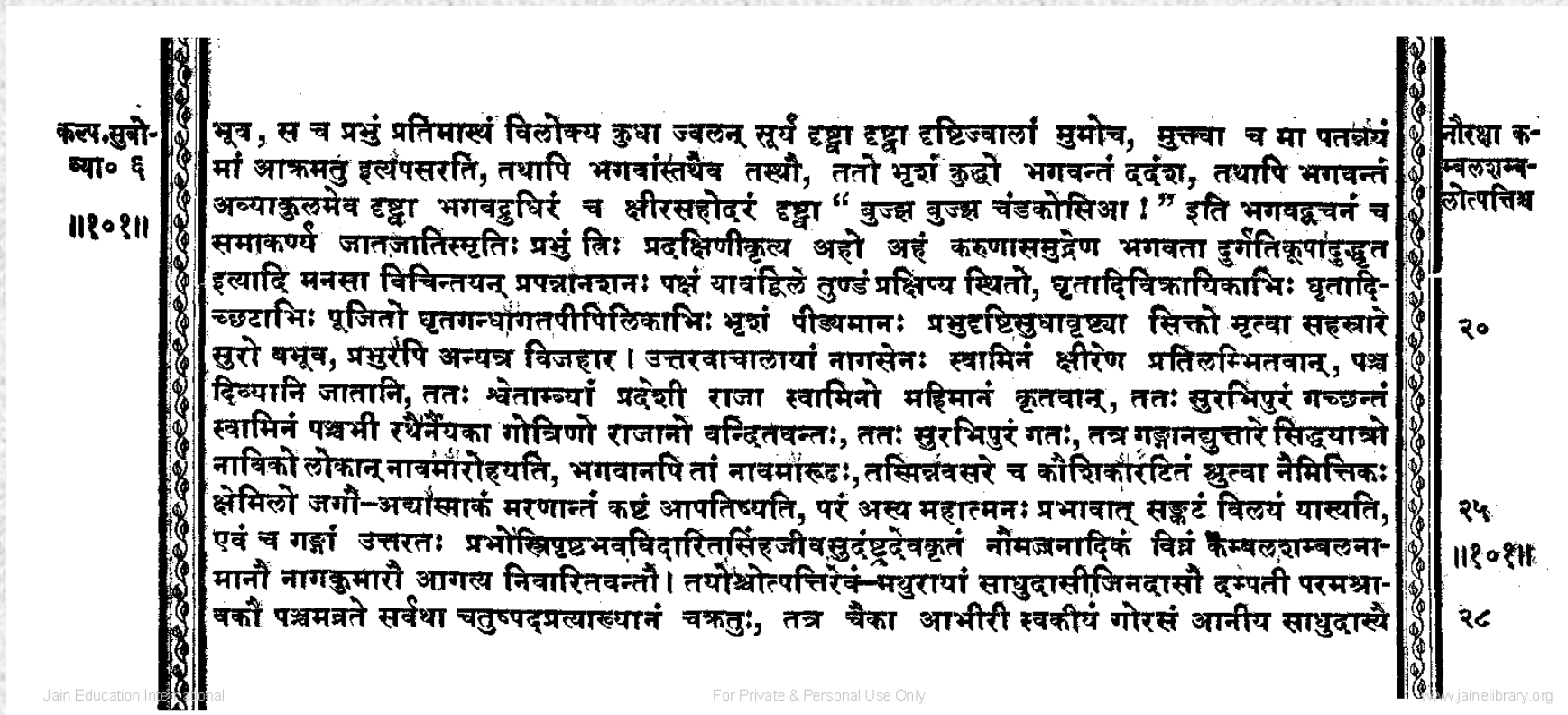
१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-ध्या० ६ ॥१०१॥

भूत्र, स च प्रभुं प्रतिमास्थं विलोक्य क्रुधा ज्वलन् सूर्यं दृष्ट्वा दृष्ट्वा दृष्टिज्वालां मुमोच, मुक्त्वा च मा पतङ्गयं मां आक्रमतु इत्यपसरति, तथापि भगवांस्तथैव तस्थौ, ततो भृशं क्रुद्धो भगवन्तं ददंश, तथापि भगवन्तं अव्याकुलमेव दृष्ट्वा भगवद्रुधिरं च क्षीरसहोदरं दृष्ट्वा "बुज्झ बुज्झ चंडकोसिआ!" इति भगवद्वचनं च समाकर्ण्य जातजातिस्मृतिः प्रभुं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य अहो अहं करुणासमुद्रेण भगवता दुर्गतिकूपादुद्धृत इत्यादि मनसा विचिन्तयन् प्रपन्नानशनः पक्षं यावद्बिले तुण्डं प्रक्षिप्य स्थितो, घृतादिविक्रायिकाभिः घृतादि-च्छटाभिः पूजितो घृतगन्धागतपीपिलिकाभिः भृशं पीड्यमानः प्रभुदृष्टिसुधावृष्ट्या सिक्तो मृत्वा सहस्रारे सुरो बभूव, प्रभुरपि अन्यत्र विजहार। उत्तरवाचालायां नागसेनः स्वामिनं क्षीरेण प्रतिलम्भितवान्, पञ्च दिव्यानि जातानि, ततः श्वेताम्ब्यां प्रदेशी राजा स्वामिनो महिमानं कृतवान्, ततः सुरभिपुरं गच्छन्तं स्वामिनं पञ्चभी रथैर्नैयका गोत्रिणो राजानो वन्दितवन्तः, ततः सुरभिपुरं गतः, तत्र गङ्गानद्युत्तारे सिद्धयात्रो नाविको लोकान् नावमारोहयति, भगवानपि तां नावमारूढः, तस्मिन्नवसरे च कौशिकारटितं श्रुत्वा नैमित्तिकः क्षेमिलो जगौ–अद्यास्माकं मरणान्तं कष्टं आपतिष्यति, परं अस्य महात्मनः प्रभावात् सङ्कटं विलयं यास्यति, एवं च गङ्गां उत्तरतः प्रभोरिपृष्ठभवविदारितसिंहजीवसुदंष्ट्रदेवकृतं नौमज्जनादिकं विघ्नं कम्बलशम्बलनामानौ नागकुमारौ आगत्य निवारितवन्तौ। तयोश्चोत्पत्तिरेवं–मथुरायां साधुदासीजिनदासौ दम्पती परमश्रावकौ पञ्चमव्रते सर्वथा चतुष्पदप्रत्याख्यानं चक्रतुः, तत्र चैका आभीरी स्वकीयं गोरसं आनीय साधुदास्यै

नौरक्षा कम्बलशम्बलोत्पत्तिश्च

२०

२५

॥१०१॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

ददाति, सा च यथोचितं मूल्यं ददाति, एवं च कालेन तयोः अत्यन्तं प्रीतिर्जाता, एकदा तया आभीर्या विवाहे निमन्त्रितौ तौ दम्पती ऊचतुः–यदुत भो! आवाभ्यां आगन्तुं न शक्यते परं यद् भवतां विवाहे युज्यते तदस्मद्गेहाद् ग्राह्यं, ततो व्यवहारिदत्तैश्चन्द्रोदयाद्युपकरणैर्वस्त्राभरणधूपादिभिश्च स आभीरविवाहोऽत्यन्तं उत्कृष्टो जातः, तेन प्रमुदिताभ्यां आभीराभीरीभ्यां अतिमनोहरौ समानवयसौ बालवृषभौ आनीय तयोर्दत्तौ, तौ नेच्छतः, बलाद् गृहे बध्वा तौ स्वगृहं गतौ, व्यवहारिणा चिन्तितं–यदि इमौ पश्चात् प्रेषयिष्येते तदा षण्ढीकरणभारोद्वहनादिभिर्दुःखिनौ भविष्यतः इत्यादि विचिन्त्य प्रासुकतृणजलादिभिस्तौ पोष्यमाणौ वाहनादिश्रमविवर्जितौ सुखं तिष्ठतः, अन्यदा च अष्टम्यादिषु कृतपौषधेन तेन श्रावकेण पुस्तकादि वाच्यमानं निशम्य तौ भद्रकौ जातौ, यस्मिन् दिने स श्रावक उपवासं करोति तस्मिन् दिने तौ अपि तृणादि न भक्षयतः, एवं च तस्य श्रावकस्यापि साधर्मिकत्वेन अत्यन्तं प्रियौ जातौ, एकदा तस्य जिनदासस्य मित्रेण तौ अतिषलिष्टौ सुन्दरौ वृषौ विज्ञाय श्रेष्ठिनं अनापृच्छ्यैव भण्डीरवनयक्षयात्रायै अदृष्टधुरौ अपि तथा वाहितौ यथा त्रुटितौ, आनीय तस्य गृहे बद्धौ, श्रेष्ठी च तौ तदवस्थौ विज्ञाय साश्रुलोचनो भक्तप्रत्याख्यापननमस्कारदानादिभिर्निर्यामितवान्, ततस्तौ मृत्वा नागकुमारौ देवौ जातौ, तयोश्च नवीनोत्पन्नयोर्दत्तोपयोगयोरेकतरेण नौ रक्षिता अन्येन च प्रभुं उपसर्गयन् सुदंष्ट्रसुरः प्रतिहतः, ततस्तं निर्जित्य भगवतः सत्त्वं रूपं च गायन्तौ हृष्यन्तौ च समहोत्सवं सुरभिजलपुष्पवृष्टिं कृत्वा तौ स्वस्थानं गतौ। भगवानपि राजगृहे नालन्दायां तन्तु-

कम्बलश म्बलोत्पत्ति

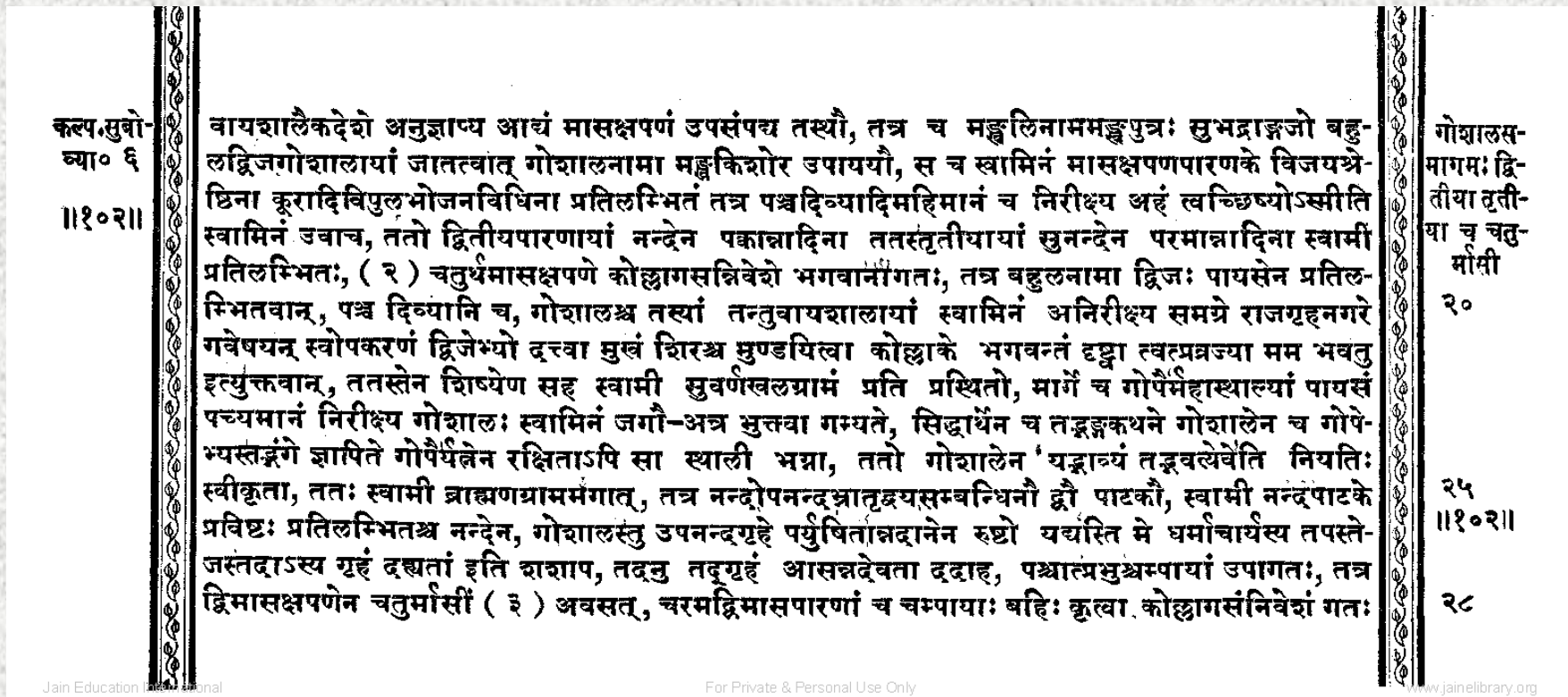
५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-ध्या० ६ ॥१०२॥

वायशालैकदेशे अनुज्ञाप्य आद्यं मासक्षपणं उपसंपद्य तस्थौ, तत्र च मङ्खलिनाममङ्खपुत्रः सुभद्राङ्गजो बहुलद्विजगोशालायां जातत्वात् गोशालनामा मङ्खकिशोर उपाययौ, स च स्वामिनं मासक्षपणपारणके विजयश्रेष्ठिना कूरादिविपुलभोजनविधिना प्रतिलम्भितं तत्र पञ्चदिव्यादिमहिमानं च निरीक्ष्य अहं त्वच्छिष्योऽस्मीति स्वामिनं उवाच, ततो द्वितीयपारणायां नन्देन पक्वान्नादिना ततस्तृतीयायां सुनन्देन परमान्नादिना स्वामी प्रतिलम्भितः, (२) चतुर्थमासक्षपणे कोल्लागसन्निवेशे भगवानागतः, तत्र बहुलनामा द्विजः पायसेन प्रतिलम्भितवान्, पञ्च दिव्यानि च, गोशालश्च तस्यां तन्तुवायशालायां स्वामिनं अनिरीक्ष्य समग्रे राजगृहनगरे गवेषयन् स्वोपकरणं द्विजेभ्यो दत्त्वा मुखं शिरश्च मुण्डयित्वा कोल्लाके भगवन्तं दृष्ट्वा त्वत्प्रव्रज्या मम भवतु इत्युक्तवान्, ततस्तेन शिष्येण सह स्वामी सुवर्णखलग्रामं प्रति प्रस्थितो, मार्गे च गोपैर्महास्थाल्यां पायसं पच्यमानं निरीक्ष्य गोशालः स्वामिनं जगौ–अत्र भुक्त्वा गम्यते, सिद्धार्थेन च तद्वृत्तकथने गोशालेन च गोपेभ्यस्तद्वृत्ते ज्ञापिते गोपैर्यत्नेन रक्षिताऽपि सा स्थाली भग्ना, ततो गोशालेन 'यद्भाव्यं तद्भवत्येवेति नियतिः स्वीकृता, ततः स्वामी ब्राह्मणग्राममगात्, तत्र नन्दोपनन्दभ्रातृद्वयसम्बन्धिनौ द्वौ पाटकौ, स्वामी नन्दपाटके प्रविष्टः प्रतिलम्भितश्च नन्देन, गोशालस्तु उपनन्दगृहे पर्युषितान्नदानेन रुष्टो यद्यस्ति मे धर्माचार्यस्य तपस्तेजस्तदाऽस्य गृहं दह्यतां इति शशाप, तदनु तद्गृहं आसन्नदेवता ददाह, पश्चात्प्रभुश्चम्पायां उपागतः, तत्र द्विमासक्षपणेन चतुर्मासीं (३) अवसत्, चरमद्विमासपारणां च चम्पायाः बहिः कृत्वा कोल्लागसंनिवेशं गतः

गोशालस-मागमः द्वितीया तृतीया च चतुर्मासी
२०
२५
॥१०२॥
२८

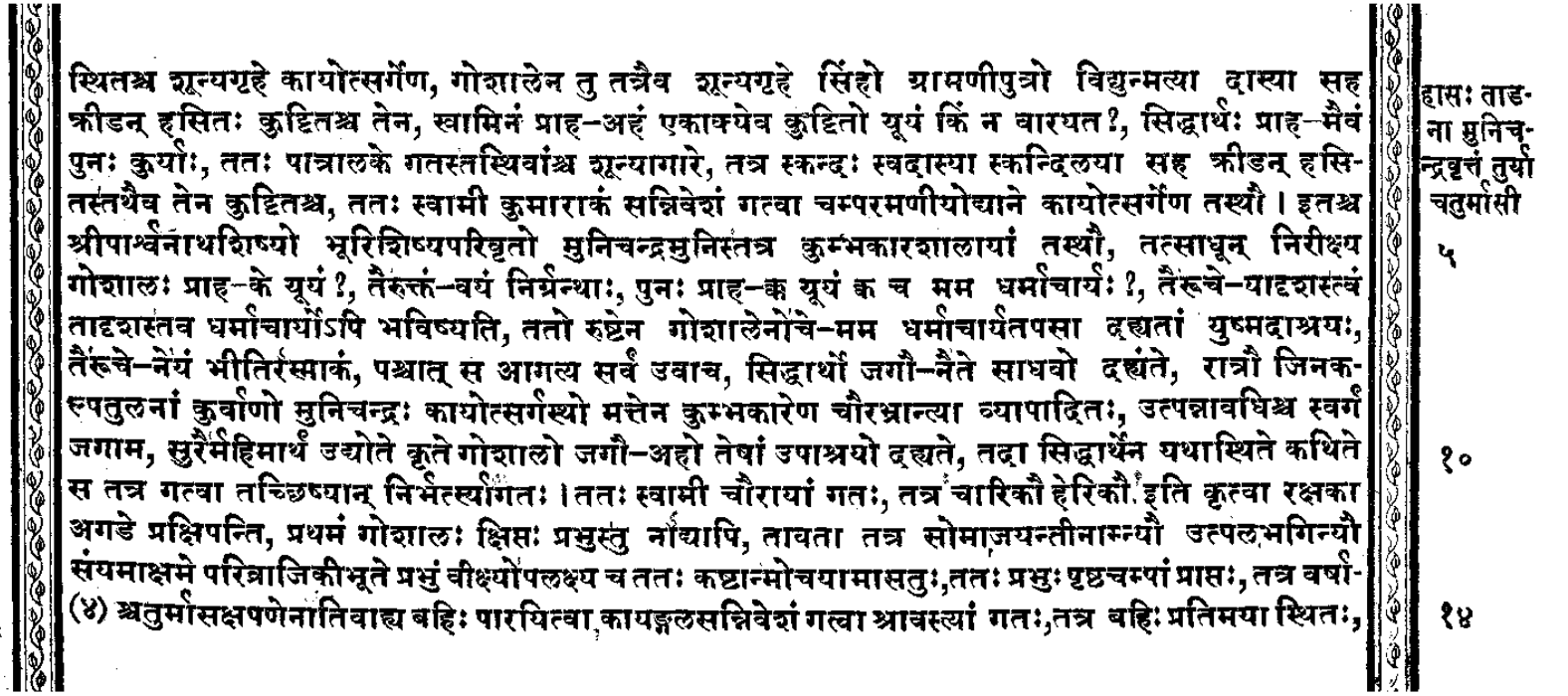
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** भगवंत महावीर समीपे गोशालकस्य आगमनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]



स्थितश्च शून्यगृहे कायोत्सर्गेण, गोशालेन तु तत्रैव शून्यगृहे सिंहो ग्रामणीपुत्रो विद्युन्मत्या दास्या सह क्रीडन् हसितः कुट्टितश्च तेन, स्वामिनं प्राह–अहं एकाक्येव कुट्टितो यूयं किं न वारयत?, सिद्धार्थः प्राह–मैवं पुनः कुर्याः, ततः पात्रालके गतस्तस्थिवांश्च शून्यागारे, तत्र स्कन्दः स्वदास्या स्कन्दिलया सह क्रीडन् हसितस्तथैव तेन कुट्टितश्च, ततः स्वामी कुमाराकं सन्निवेशं गत्वा चम्परमणीयोद्याने कायोत्सर्गेण तस्थौ। इतश्च श्रीपार्श्वनाथशिष्यो भूरिशिष्यपरिवृतो मुनिचन्द्रमुनिस्तत्र कुम्भकारशालायां तस्थौ, तत्साधून् निरीक्ष्य गोशालः प्राह–के यूयं?, तैरुक्तं–वयं निर्ग्रन्थाः, पुनः प्राह–क्व यूयं क च मम धर्माचार्यः?, तैरूचे–यादृशस्त्वं तादृशस्तव धर्माचार्योऽपि भविष्यति, ततो रुष्टेन गोशालेनोचे–मम धर्माचार्यतपसा दह्यतां युष्मदाश्रयः, तैरूचे–नेयं भीतिरस्माकं, पश्चात् स आगत्य सर्वं उवाच, सिद्धार्थो जगौ–नैते साधवो दह्यंते, रात्रौ जिनकल्पतुलनां कुर्वाणो मुनिचन्द्रः कायोत्सर्गस्थो मत्तेन कुम्भकारेण चौरभ्रान्त्या व्यापादितः, उत्पन्नावधिश्च स्वर्गं जगाम, सुरैर्महिमार्थं उद्योते कृते गोशालो जगौ–अहो तेषां उपाश्रयो दह्यते, तदा सिद्धार्थेन यथास्थिते कथिते स तत्र गत्वा तच्छिष्यान् निर्भर्त्स्यागतः। ततः स्वामी चौरायां गतः, तत्र चारिकौ हेरिकौ इति कृत्वा रक्षका अगडे प्रक्षिपन्ति, प्रथमं गोशालः क्षिप्तः प्रभुस्तु नीचापि, तावता तत्र सोमाजयन्तीनाम्न्यौ उत्पलभगिन्यौ संयमाक्षमे परिव्राजिकीभूते प्रभुं वीक्ष्योपलक्ष्य च ततः कष्टान्मोचयामासतुः, ततः प्रभुः पृष्ठचम्पां प्राप्तः, तत्र वर्षा-
(४) श्चतुर्मासक्षपणेनातिवाह्य बहिः पारयित्वा कायङ्गलसन्निवेशं गत्वा श्रावस्त्यां गतः, तत्र बहिः प्रतिमया स्थितः,

हासः ताडना मुनिचन्द्रवृत्तं तुर्या चतुर्मासी

५ १० १४

क.सु. १८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

तत्र सिद्धार्थेन गोशालाय प्रोक्तं–यत् अद्य त्वं मनुष्यमांसं भोक्ष्यसे,ततः सोऽपि तन्निवारणाय वणिग्गेहेषु भिक्षायै बभ्राम, तत्र च पितृदत्तो वणिक् तस्य भार्या च मृतापत्यप्रसूरस्ति, तस्याश्च नैमित्तिकशिवदत्तेनोक्तोऽपत्यजीवनोपायो–यत् तस्य मृतबालकस्य मांसं पायसेन विमिश्रं कस्यचिद्विक्षोर्देयं, तया च तेनैव विधिना गोशालाय दत्तं गृहज्वालनभयाच्च गृहद्वारं परावर्तितं, गोशालोऽपि अज्ञातस्वरूपस्तद्भक्षयित्वा भगवत्समीपमागतः, सिद्धार्थेन यथास्थिते उक्ते वमनेन कृतनिर्णयश्च तद्गृहज्वालनाय आगतः, तद्गृहं अलब्ध्वा तं पाटकं एव भगवन्नाम्ना ज्वालितवान्। ततः स्वामी बहिर्दरिद्रसन्निवेशात् हरिद्रवृक्षस्य अधः प्रतिमया तस्थौ, पथिकप्रज्वालिताग्निना अनपसरणात् प्रभोः पादौ दग्धौ गोशालो नष्टः, ततः स्वामी मंगलाग्रामे वासुदेवगृहे प्रतिमया स्थितस्तत्र गोशालो डिम्भभापनाय अक्षिविक्रियां कुर्वन् तत्पित्रादिभिः कुट्टितो मुनिपिशाच इत्युपेक्षितः, ततः स्वामी आवर्त्तग्रामे बलदेवगृहे प्रतिमया स्थितः, तत्र गोशालेन बालभापनाय मुखत्रासो विहितः, ततस्तत्पित्रादयो ग्रथिलोऽयं किमनेन हतेन? अस्य गुरुरेव हन्यते इति भगवन्तं हन्तुं उद्यतास्तांश्च बलदेवमूर्त्तिरेव बाहुना लाङ्गुलं उत्पाट्य न्यवारयत्, ततः सर्वेऽपि स्वामिनं ननवन्तः, ततः प्रभुः चोराकसन्निवेशं जगाम, तत्र मण्डपे भोज्यं पच्यमानं दृष्ट्वा गोशालः पुनःपुनः न्यग्भूय वेलां विलोकयति स्म, ततस्तैश्चौरशङ्कया ताडितः, अनेनापि रुष्टेन स्वामिनाम्ना स मण्डपो ज्वालितः, ततः प्रभुः कलम्बुकासन्निवेशं गतस्तत्र मेघकालहस्तिनामानौ द्वौ भ्रातरौ, तत्र कालहस्तिना उपसर्गितो मेघेनोपलक्ष्य क्षमितः,ततः स्वामी क्लिष्टकर्मनिर्जरानिमित्तं लाढाविषयं प्राप,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

तत्र हीलनादयो बहवो घोरा उपसर्गा अध्यासिताः, ततः पूर्णकलशाख्येऽनार्यग्रामे गच्छतः स्वामिनो मार्गे द्वौ चौरौ अपशकुनधिया असिं उत्पाट्य हन्तुं धावितौ, दत्तोपयोगेन शक्रेण च वज्रेण हतौ, ततः स्वामी भद्रिकापुर्यां वर्षा (५)श्चतुर्मासीक्षपणपारणां च बहिः कृत्वा क्रमात्तम्बालग्रामं गतः, तत्र पार्श्वसन्तानीयो बहुशिष्यपरिवृत्तो नन्दिषेणनामाचार्यः प्रतिमास्थितश्चौरभ्रान्त्या आरक्षकपुत्रेण भल्लया हतो जातावधिः स्वर्जगाम, शेषं च गोशालवचनादि मुनिचन्द्रवत्, ततः स्वामी कूपिकसन्निवेशं गतस्तत्र चारिकशङ्कया गृहीतः, पार्श्वान्तेवासिनीभ्यां परिव्राजिकीभूताभ्यां विजयाप्रगल्भाभ्यां मोचितः, ततो गोशालः स्वामितः पृथग्भूतोऽन्यस्मिन् मार्गे गच्छन् पञ्चशतचोरैर्मातुल मातुल इति कृत्वा स्कन्धोपरि आरुह्य वाहितः खिन्नोऽचिन्तयत्–स्वामिनैव सार्द्धं वरं इति, स्वामिनं मार्गयितुं लग्नः, स्वाम्यपि वैशाल्यां गत्वाऽयस्कारशालायां प्रतिमया स्थितः, तत्र एकोऽयस्कारः षण्मासीं यावद्रोगी भूत्वा नीरोगः सञ्जातोपकरणान्यादाय शालायां आगतः, स्वामिनं निरीक्ष्य अमङ्गलमिति बुद्ध्या घनेन हन्तुमुद्यतोऽवधिना ज्ञात्वा आगत्य शक्रेण तेनैव घनेन हतः। ततः स्वामी ग्रामाकसन्निवेशं गतः, तत्रोद्याने विभेलकयक्षो महिमानं चक्रे, ततः शालिशीर्षे ग्रामे उद्याने प्रतिमास्थस्य स्वामिनो माघमासे त्रिपृष्ठभवापमानिता अन्तःपुरी मृत्वा व्यन्तरीभूता तापसीरूपं कृत्वा जलभृतजटाभिरन्यदुस्सहं शीतोपसर्गं चक्रे, प्रभुं च निश्चलं विलोक्य उपशान्ता स्तुतिं चकार, प्रभोश्च तं सह्यमानस्य षष्ठेन तपसा विशुद्ध्यमानस्य लोकावधिरुत्पन्नः।ततः स्वामी भद्रिकायां षष्ठवर्षासु (६) चतुर्मासतपो विविधानभिग्रहांश्च अकरोत्,

चौरयोः अयस्कारस्य व्यन्तर्याश्चोपसर्गाः पञ्चमी षष्ठी च चतुर्मासी ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

तत्र पुनः षण्मासान्ते गोशालो मिलितः, ततः स्वामी बहिः पारयित्वा ऋतुबद्धे मगधावनौ निरुपसर्गो विहृतवान्, तत आलम्भिकायां सप्तमवर्षासु (७) चतुर्मासक्षपणेन स्थित्वा बहिः पारयित्वा च कुण्डगसन्निवेशे वासुदेवचैत्ये स्वामी प्रतिमया स्थितः, गोशालोऽपि वासुदेवप्रतिमायाः पराङ्मुखोऽधिष्ठानं मुखे कृत्वा तस्थौ, कुट्टितश्च लोकैः, ततो महेनग्रामे बलदेवचैत्ये स्वामी प्रतिमया स्थितः, गोशालो बलदेवमुखे मेहनं कृत्वा तस्थौ, ततो लोकैः कुट्टितश्च, द्वयोरपि स्थानयोर्मुनिरिति कृत्वा मुक्तः, ततः क्रमात्प्रभुः उन्नागसंनिवेशे गतः, तत्र मार्गे संमुखागच्छद्नन्तुरवधूवरौ मङ्गलिना हसितौ, यथा—तत्तिल्लो विहिराया जणे विदूरेऽवि जो जहिं वसइ । जं जस्स होइ जुग्गं तं तस्स बिइज्जयं देइ ॥ १ ॥ ततस्तैः कुट्टयित्वा वंशजाल्यां प्रक्षिप्तः स्वामिच्छत्रधरत्वात् मुक्तश्च, ततः स्वामी गोभूमिं ययौ, ततो राजगृहेऽष्टमं वर्षारात्रं (८) अकरोत् चातुर्मासिकतपश्च, बहिः पारणां च कृत्वा ततो वज्रभूम्यां बहव उपसर्गा इति कृत्वा नवमं वर्षारात्रं (९) तत्र कृतवान् चतुर्मासिकतपश्च, अपरमपि मासद्वयं तत्रैव विहृतवान्, वसत्यभावाच्च नवमं वर्षारात्रं अनियतं अकार्षीत्, ततः कूर्मग्रामं गच्छन् मार्गे तिलस्तम्बं दृष्ट्वा अयं निष्पत्स्यते न वेति गोशालः प्रपृच्छ, ततः प्रभुणा सप्तापि तिलपुष्पजीवा मृत्वा एकस्यां शिम्बायां तिला भविष्यन्तीति प्रोक्ते तद्वचनं अन्यथा कर्तुं तं स्तम्बं उत्पाट्य एकान्ते मुमोच, ततः सन्निहितव्यन्तरैर्मा प्रभुवचोऽन्यथा भवत्विति वृष्टिश्चक्रे, गोखुरेण च आर्द्रभूमौ स तिलस्तम्बः स्थिरीब-

१ विधिराजो दक्षो यत् विदूरेऽपि जने यस्मिन् यत्र वसति सति । यद् यस्य भवति योग्यं तत्तस्य द्वितीयकं ददाति ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

भूव, ततः प्रभुः कूर्मग्रामे गतः, तत्र च वैश्यायनतापसस्य आतापनाग्रहणाय मुत्कलमुक्तजटामध्ये यूकाबाहुल्यदर्शनात् गोशालो यूकाशय्यातर २इति तं वारं वारं हसितवान्, ततस्तेन क्रुद्धेन तेजोलेश्या मुक्ता, तां च कृपारसाम्भोधिर्भगवान् शीतलेश्यया निवार्य गोशालं रक्षितवान्, ततो मङ्खलिसूनुस्तस्य तापसस्य तेजोलेश्यां विलोक्य कथमियमुत्पद्यते ? इति भगवन्तं पृष्टवान्, भगवानपि अवश्यंभावितया भुजङ्गस्य पयःपानमिव तादृगनर्थकारणं अपि तेजोलेश्याविधिं शिक्षितवान्, यथा आतापनापरस्य सदाषष्ठतपसः सनखकुल्माषपिण्डिकया एकेन च उष्णोदकचुलुकेन पारणां कुर्वतः षण्मास्यन्ते तेजोलेश्योत्पद्यते इति। ततः सिद्धार्थपुरे व्रजन् गोशालेन स तिलस्तम्बो न निष्पन्न इत्युक्ते स एष तिलस्तम्बो निष्पन्न इति प्रभुः प्रत्याह, गोशालोऽश्रद्दधत् तां तिलशम्बां विदार्य सप्त तिलान् दृष्ट्वा त एव प्राणिनस्तस्मिन्नेव शरीरे पुनः परावृत्त्य समुत्पद्यन्ते इति मतिं नियतिं च गाढीकृतवान्। ततः प्रभोः पृथग्भूय श्रावस्त्यां कुम्भकारशालायां स्थितो भगवदुक्तोपायेन तेजोलेश्यां साधयित्वा त्यक्तव्रतश्रीपार्श्वनाथशिष्यात् अष्टाङ्गनिमित्तं चाधीत्याहङ्कारेण सर्वज्ञोऽहं इति ख्यापयति स्म, यच्चोक्तं किरणावलीकारेण 'गोशालाय तेजोलेश्योपायः सिद्धार्थेनोक्त' इति तच्चिन्त्यं, भगवतीसूत्रावश्यकचूर्णिहारिभद्रीवृत्तिहैमवीरचरित्राद्यनेकग्रंथेषु भगवतोक्त इत्यभिधानात्, ततः स्वामी श्रावस्त्यां दशमं वर्षारात्रं (१०) विचित्रं तपश्चाकरोदित्याद्यनुक्रमेण स्वामी बहुम्लेच्छां दृढभूमिं गतः, तस्यां बहिः पेढालग्रामात् पोलासचैत्येऽष्टमभक्तेन एकरात्रिकीं प्रतिमां तस्थिवान्, । इतश्च सभागतः शक्रस्त्रैलोक्यजना

गोशालस्य तेजोलेश्योत्पादः दशमी चतुर्मासी ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

कल्प.सुबो-ध्या० ६ ॥१०५॥

अपि वीरचेतश्चालयितुं असमर्था इति प्रभोः प्रशंसां कृतवान्, तत् श्रुत्वा च अमर्षेण सामानिकः सङ्गमाख्यः सुरः क्षणार्त्तं चालयामीति शक्रसमक्षं कृतप्रतिज्ञः शीघ्रं प्रभुसमीपं आगत्य प्रथमं धूलिवृष्टिं चकार, यया पूर्णाक्षिकर्णादिविवरः स्वामी निरुच्छ्वासोऽभूत् १ ततो वज्रतुण्डपिपीलीकाभिश्चालनीतुल्यश्चक्रे, ताश्चैकतः प्रविशन्ति अन्यतो निर्यान्ति २ तथा वज्रतुण्डा उदंशाः ३ तीक्ष्णतुण्डा घृतेलिकाः ४ वृश्चिकाः ५ नकुलाः ६ सर्पाः ७ मूषकाश्च ८ भक्षणादिना, तथा हस्तिनः ९ हस्तिन्यश्च १० शुण्डाघातचरणमर्दनादिना पिशाचोऽट्टाट्टहासादिना ११ व्याघ्रो दंष्ट्रानखविदारणादिना १२ ततः सिद्धार्थत्रिशले करुणाविलापादिना १३ उपसर्गयन्ति, ततः स्कन्धावारविकुर्वणा, तत्र च जनाः प्रभुचरणयोर्मध्येऽग्निं प्रज्वाल्य स्थालीमुपस्थाप्य पचन्ति १४ ततश्चण्डालास्तीक्ष्णतुण्डशकुनिपञ्जराणि प्रभोः कर्णबाहुमूलादिषु लम्बयन्ति ते च मुखैर्भक्षयन्ति १५ ततः खरवातः पर्वतानपि कम्पयन् प्रभुं उत्क्षिप्य उत्क्षिप्य पातयति १६ ततः कलिकावातश्चक्रवद् भ्रमयति १७ ततो येन मुक्तेन मेरुचूलापि चूर्णीस्यात्तादृशं सहस्रभारप्रमाणं चक्रं मुक्तं, तेन प्रभुराजानु भूमौ निमग्नः १८ ततः प्रभातं विकृत्य वक्ति–देवार्य ! अद्यापि किं तिष्ठसि !, स्वामी ज्ञानेन रात्रिं वेत्ति (१९) ततो देवर्द्धिं विकुर्व्य वृणीष्व महर्षे ! येन तव स्वर्गेण मोक्षेण वा प्रयोजनं, तथापि अक्षुब्धं देवाङ्गनाहावभावादिभिः उपसर्गयन्ति २०, एवं एकस्यां रात्रौ विंशत्या उपसर्गैस्तेन कृतैः मनागपि न चलितः स्वामी, अत्र कविः–बलं जगद्ध्वंसनरक्षणक्षमं, कृपा च सा सङ्गमके कृताऽऽगसि । इतीव सञ्चिन्त्य विमुच्य मानसं ,रुषेव रोषस्तव नाथ ! निर्ययौ

संगमो-पसर्गाः २० २५ ॥१०५॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ संगमदेव-कृत् उपसर्गाणां वर्णनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

॥ १ ॥ ततः षण्मासीं यावत् अनेषणीयाहारसम्पादनादीन् तत्कृतान् नानाप्रकारान् उपसर्गान् सहमानो भगवान्निराहार एव षण्मास्या स गतो भविष्यतीति विचिन्त्य यावद् व्रजग्रामगोकुले गोचर्यायां प्रविष्टस्तावत्रापि तत्कृतां अनेषणां विज्ञाय तथैवागत्य बहिः प्रतिमया तस्थौ, ततः स सुराधमः कथमपि अस्खलितं विशुद्धपरिणामं जगदीश्वरं अवधिना विज्ञाय विषण्णमानसोऽपि शक्रभियाऽभिवन्द्य सौधर्मं प्रति चचाल। स्वामी च तत्रैव गोकुले हिण्डन् वत्सपाल्या स्थविरया परमान्नेन प्रतिलाभितो, वसुधारा च निपतिता, इतश्च तावन्तं कालं यावत् सर्वे सौधर्मवासिनो देवा देव्यश्च निरानन्दा निरुत्साहास्तस्थुः, शक्रोऽपि वर्जितगीतनाट्य एतावतां उपसर्गाणां हेतुर्मत्कृता प्रशंसैवेति महादुःखाक्रान्तचित्तः करकमलविन्यस्तमुखो दीनदृष्टिर्विमनस्कस्तस्थौ, ततश्च भ्रष्टप्रतिज्ञं श्याममुखं आगच्छन्तं तं सुराधमं निरीक्ष्य शक्रः पराङ्मुखीभूय सुरानित्यूचे—हंहो सुरा! असौ कर्मचण्डालः पापात्मा समागच्छति, अस्य दर्शनं अपि महापापाय भवति, अनेनास्माकं बहु अपराद्धं, यदेनेनास्मदीयः स्वामी कदर्थितः, अयं पापात्मा यथा अस्मत्तो न भीतस्तथा पातकादपि न भीतः, तदेषपवित्रोऽसौ दुरात्मा शीघ्रं स्वर्गान्निर्वास्यतां,इत्यादिष्टैः शक्रंसुभटैर्निर्दयं यष्टिमुष्ट्यादिभिस्ताड्यमानः साङ्गुलिमोटनं कृतान् सुरीणां आक्रोशान् सहमानश्चौर इव साशङ्क इतस्ततो विलोकयन् निर्वाणाङ्गार इव निस्तेजा निषिद्धाखिलपरिवार एकाकी अलर्कश्वेव देवलोकान्निष्कासितो मन्दरचूलायां एकसागरावशेषं

संगमक-निवसिनं ५ १० १३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

आयुः समापयिष्यति, तस्याग्रमहिष्यश्च दीनाननाः शक्राज्ञया स्वभर्त्तारं अनुजग्मुः । ततः स्वामिन-मालम्भिकायां हरिकान्तः, श्वेताम्बिकायां हरिस्सहश्च विद्युत्कुमारेन्द्रौ प्रियं प्रष्टुं एतौ, ततः श्राव-स्त्यां शक्रः स्कन्दप्रतिमायामवतीर्य स्वामिनं वन्दितवान्, ततो महती महिमप्रवृत्तिः, ततः कौशाम्ब्यां चन्द्रसूर्यावतरणं, वाणारस्यां शक्रो राजगृहे ईशानो मिथिलायां जनको राजा धरणेन्द्रश्च प्रियं पृच्छन्ति स्म, ततो वैशाल्यां एकादशो वर्षारात्रो (११) ऽभूत्, तत्र भूतः प्रियं पृच्छति, ततः सुसुमारपुरं गतस्तत्र चमरोत्पातः । ततः क्रमेण कौशाम्ब्यां गतस्तत्र शतानीको राजा मृगावती देवी विजया प्रतिहारी वादीनामा धर्मपाठक सुगुप्तोऽमात्यस्तद्भार्या नन्दा सा च श्राविका मृगावत्याः वयस्या, तत्र प्रभुणा पोषबहु-लप्रतिपदि अभिग्रहो जगृहे, यथा–द्रव्यतः कुल्माषान् सूर्पकोणस्थान्, क्षेत्रतः एकं पादं देहल्या अन्तः एकं पादं बहिश्च कृत्वा स्थिता कालतो निवृत्तेषु भिक्षाचरेषु, भावतो राजसुता दासत्वं प्राप्ता मुण्डितमस्तका निग-डितचरणा रुदती अष्टमभक्तिका चेद्दास्यति तदा गृहीष्यामि; इत्यभिगृह्य प्रत्यहं भिक्षायै भ्राम्यति, अमात्या-दयोऽनेकानुपायान् कुर्वन्ति न त्वभिग्रहः पूर्यते, तदा च शतानीकेन चम्पा भग्ना, तत्र च दधिवाहनभूप-भार्या धारिणी तत्पुत्री च वसुमती द्वे अपि केनचित् पदातिना बन्दितया गृहीते, तत्र च धारिणी त्वां भार्यां करिष्यामीति पत्तिवार्त्तया जिह्वाच्छेदेन मृता, ततो वसुमती पुत्रीति समाश्वास्य कौशाम्ब्यां आनीय चतु-ष्पथे विक्रेतुं स्थापिता, तत्र धनावहश्रेष्ठिना गृहीत्वा चन्दनेति कृताभिधाना पुत्रीत्वेन स्थापिताऽतीव प्रिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** भगवंत महावीरेण कृत विशिष्ट अभिग्रह: एवं चन्दनबालाया: कथानकं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

च, एकदा च स्वपादौ प्रक्षालयन्त्यास्तस्याः श्रेष्ठिना स्वयं गृहीतां भूलुठद्वेणीं निरीक्ष्य मूलानाम्नी श्रेष्ठिपत्नी गृहस्वामिनी तु इयमेव युवतिर्भाविनी अहं निर्माल्यप्राया इति विषण्णचित्ता तां शिरोमुण्डननिगडक्षेपणपूर्वं यन्त्रमध्ये निरुद्धय क्वापि गता, श्रेष्ठ्यपि कथमपि चतुर्थे दिने तच्छुद्धिं प्राप्य यन्त्रं उद्घाट्य तां तदवस्थां देहल्यां संस्थाप्य सूर्पकोणे कुल्माषान् अर्पयित्वा निगडभङ्गार्थं लोहकाराकारणाय यावद्गतस्तावद्यदि कोऽपि भिक्षुरागच्छेत्तर्हि दत्त्वा कुल्माषान् भुञ्जे इति चिन्तयन्त्यां तस्यां भगवान् समागतः, साऽपि प्रमुदिता गृहाणेदं प्रभो इति जगौ, ततः स्वामी अभिग्रहे रोदनं न्यूनं निरीक्ष्य निवृत्तः, ततो वसुमती अहो अस्मिन्नवसरे भगवानागत्य किञ्चिदपि अगृहीत्वा निवृत्त इति दुःखतो रुरोद, ततः पूर्णाभिग्रहः स्वामी कुल्माषान् अग्रहीत्, अत्र कविः—चंदना सा कथं नाम, बालेति प्रोच्यते बुधैः ?। मोक्षमादत्त कुल्माषैर्महावीरं प्रतार्य या ॥ १ ॥ ततः पञ्च दिव्यानि जातानि शक्रः समागतः देवा ननृतुः केशाः शिरसि सञ्जाताः निगडानि च नुपूराणि, ततो मातृस्वसुर्मृगावत्या मिलनं, तत्र च सम्बन्धितया वसुधाराधनं आददानं शतानीकं निवार्य चन्दनाज्ञया धनावहाय धनं दत्त्वा वीरस्य प्रथमा साध्वी इयं भविष्यतीत्यभिधाय शक्रस्तिरोदधे । ततः क्रमेण जृम्भिकाग्रामे शक्रो नाट्यविधिं दर्शयित्वा इयद्भिर्दिनैर्ज्ञानोत्पत्तिः इत्यकथयत्, ततो मेण्ढिकग्रामे चमरेन्द्रः प्रियं पप्रच्छ, ततः षण्मानिग्रामे स्वामिनो बहिः प्रतिमास्थस्य पार्श्वे गोपो वृषान् मुक्त्वा ग्रामं प्रविष्टः, आगतश्च पृच्छति—देवार्य ! क्व गता वृषभाः ?, भगवता च मौने कृते रुष्टेन तेन स्वामिकर्णयोः कटशलाके तथा क्षिप्ते यथा

चन्दनादानं कटशलाकोपसर्गः ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

कल्प.सुबो-व्या० ६ ॥१०७॥

परस्परं लग्नाग्रे, अग्रच्छेदनाच्च अदृश्याग्रे जाते, एतच्च कर्म शय्यापालकस्य कर्णयोस्त्रपुप्रक्षेपेण त्रिपृष्ठभवे उपार्जितं अभूत् उदितं च वीरभवे, शय्यापालको भवं भ्रान्त्वा अयमेव गोपः सञ्जातः, ततः प्रभुर्मध्यमापापायां गतः, तत्र प्रभुं सिद्धार्थवणिग्गेहे भिक्षार्थं आगतं निरीक्ष्य खरकवैद्यः स्वामिनं सशल्यं ज्ञातवान्, पश्चात् स वणिक् तेन वैद्येन सहोद्यानं गत्वा सण्डासकाभ्यां ते शलाके निर्गमयति स्म, तदाकर्षणे च वीरेण आराटिस्तथा मुक्ता यथा सकलमपि उद्यानं महाभैरवं बभूव, तत्र देवकुलमपि कारितं लोकैः, प्रभुश्च संरोहिण्या औषध्या नीरोगो बभूव, वैद्यवणिजौ स्वर्गं जग्मतुः गोपः ससमं नरकं, एवं चोपसर्गाः गोपेन आरब्धास्तेनैव निष्ठिताश्च। एतेषां च जघन्यमध्यमोत्कृष्टविभाग एवं-जघन्येषूत्कृष्टः कटपूतनाशीतं, मध्यमेषूत्कृष्टः कालचक्रं उत्कृष्टेषूत्कृष्टः कर्णकीलककर्षणं, इति उपसर्गाः। एतान् सर्वान् सम्यक् सहते इत्याद्युक्तमेव ॥

(तए णं समणे भगवं महावीरे) यत एवं परीषहान् सहते ततः 'णं' वाक्यालङ्कारे श्रमणो भगवान् महावीरः (अणगारे जाए) अनगारो जातः, किंविशिष्टः ? (इरिआसमिए) ईर्या-गमनागमनं तत्र समितः-सम्यक् प्रवृत्तिमान् (भासासमिए) भाषा-भाषणं तत्र सम्यक्प्रवृत्तिमान् (एसणासमिए) एषणायां-द्विचत्वारिंशद्दोषवर्जितभिक्षाग्रहणे सम्यक्प्रवृत्तिमान् (आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए) आदाने-ग्रहणे उपकरणादेरिति ज्ञेयं, भाण्डमात्रायाः-वस्त्राद्युपकरणजातस्य, यद्वा भाण्डस्य-वस्त्रादेर्मृन्मयभाजनस्य वा, मात्रस्य च-पात्रविशेषस्य यन्निक्षेपणं-मोचनं च तत्र समितः प्रत्युपेक्ष्य प्रमार्ज्य मोचनात् (उच्चारपासवणखेल-

कीलकर्षणं वीरसाधु-स्वरूपं २० २५ ॥१०७॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** केवलज्ञान-प्राप्ति पूर्वं आत्मनः स्थितेः वर्णनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

सिंघाणजल्लपारिट्ठावणियासमिए) उच्चारः–पुरीषं, प्रश्रवणं–सूत्रं, खेलो–निष्ठीवनं, सिङ्घानो–नासिकानिर्गतं श्लेष्म, जल्लो–देहमलः एतेषां यत् परिष्ठापनं–त्यागस्तत्र समितः–सावधानः, शुद्धस्थण्डिले परिष्ठापनात्, एतच्च अन्त्यसमितिद्वयं भगवतो भाण्डसिङ्घानाद्यसम्भवेऽपि नामाखण्डनार्थमित्थं उक्तं, एवं (मणसमिए) मनसः सम्यक् प्रवर्त्तकः (वयसमिए) वचसः सम्यक् प्रवर्त्तकः (कायसमिए) कायस्य सम्यक् प्रवर्त्तकः (मणगुत्ते) अशुभपरिणामान्निवर्त्तकत्वात् मनसि गुप्तः (वयगुत्ते) एवं वचसि गुप्तः (कायगुत्ते) काये गुप्तः (गुत्ते गुत्तिंदिए) अत एव गुप्तः, गुप्तानि इन्द्रियाणि यस्य स गुप्तेन्द्रियः (गुत्तबंभयारी) गुप्तं–वसत्यादिनववृत्तिविराजितं एवंविधं ब्रह्मचर्यं चरतीति गुप्तब्रह्मचारी (अकोहे अमाणे अमाए अलोभे) क्रोधरहितः मानरहितः मायारहितः लोभरहितः (संते) शान्तोऽन्तर्वृत्त्या (पसंते) प्रशान्तो बहिर्वृत्त्या (उवसंते) उपशान्तः–अन्तर्बहिश्चोभयतः शान्तः, अत एव (परिनिव्वुडे) परिनिर्वृतः–सर्वसन्तापवर्जितः (अणासवे) अनाश्रवः–पापकर्मबन्धरहितः हिंसाद्याश्रवद्वारविरतेः (अममे) ममत्वरहितः (अकिंचणे) अकिञ्चनः, किञ्चनं–द्रव्यादि तेन रहितः (छिन्नगंथे) छिन्नः–त्यक्तो हिरण्यादिग्रन्थो येन स तथा (निरुवलेवे) निरुपलेपो द्रव्यभावमलापगमेन, तत्र द्रव्यमलः शरीरसम्भवो, भावमलः कर्मजनितः, अथ निरुपलेपत्वं दृष्टान्तैर्दर्शयति–(कंसपाइव मुक्कतोए) कांस्यपात्रीव मुक्तं तोयमिव तोयं–स्नेहो येन स तथा, यथा कांस्यपात्रं तोयेन न लिप्यते तथा भगवान्

१ साधिकमासाधिकाद् वर्षादूर्ध्वं वस्त्राद्यभावेऽपि करचरणादिपरावर्त्ते चतुर्थ्याः स्थण्डिलादिभावे चान्त्यायाः समितेः सद्भावः

वीरस्य साधुत्वे वर्णनं ५ १० १३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

स्नेहेन न लीप्यते इत्यर्थः, तथा (संखो इव निरंजणे) शङ्ख इव निरञ्जनो, रञ्जनं–रागाद्युपरञ्जनं तेन शून्यत्वात् (जीवे इव अप्पडिहयगई)जीव इव अप्रतिहतगतिः,सर्वत्रास्खलितविहारित्वात्(गगणमिव निरालंबणे)गगनमिव निरालम्बनः, कस्याप्याधारस्य अनपेक्षणात् (वाउव्व अपडिबद्धे) वायुरिव अप्रतिबद्धः, एकस्मिन् स्थाने काप्यवस्थानाभावात् (सारयसलिलं व सुद्धहियए) शारदसलिलमिव शुद्धहृदयः कालुष्याकलङ्कितत्वात् (पुक्खरपत्तं व निरुवलेवे) पुष्करपत्रं–कमलपत्रं तद्वन्निरुपलेपः, यथा कमलपत्रे जललेपो न लगति तथा भगवतोऽपि कर्मलेपो न लगतीत्यर्थः (कुम्मो इव गुत्तिंदिए) कूर्म इव गुप्तेन्द्रियः (खग्गिविसाणं व एगजाए) खड्गिविषाणमिव एकजातः, यथा खड्गिनः–श्वापदविशेषस्य विषाणं–शृङ्गं एकं भवति तथा भगवानपि, रागादिना सहायेन च रहितत्वात् (विहग इव विप्पमुक्के) विहग इव विप्रमुक्तः, मुक्तपरिकरत्वात् अनियतनिवासाच्च (भारंडपक्खीव अप्पमत्ते) भारण्डपक्षीव अप्रमत्तः, भारण्डपक्षिणोः किलैकं शरीरं, यतः—एकोदराः पृथग्ग्रीवास्त्रिपदा मर्त्यभाषिणः । भारण्डपक्षिणस्तेषां, मृतिर्भिन्नफलेच्छया ॥ १ ॥ ते चात्यन्तं अप्रमत्ता एव जीवन्तीति तदुपमा (कुंजरो इव सोंडीरे) कुञ्जर इव शौण्डीरः, कर्मशत्रून् प्रति शूरः (वसभो इव जायथामे) वृषभ इव जातस्थामा–जातपराक्रमः, स्वीकृतमहाव्रतभारोद्वहनं प्रति समर्थत्वात् (सिंहो इव दुद्धरिसे) सिंह इव दुर्द्धर्षः, परीषहादिश्वापदैरजय्यत्वात् (मंदरो इव अप्पकंपे) मन्दर इव–मेरुरिव अप्रकम्पः, उपसर्गवातैः अचलितत्वात् (सागरो इव गंभीरे) सागर इव गम्भीरः,हर्षविषादादिकारणसद्भावेऽपि अवि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

कृतस्वभावत्वात् (चंदो इव सोमलेसे) चन्द्र इव सौम्यलेश्यः, शान्तत्वात् (सूरो इव दित्ततेए) सूर्य इव दीप्ततेजाः, द्रव्यतो देहकान्त्या भावतो ज्ञानेन (जच्चकणगं व जायरूवे) जात्यकनकमिव जातं रूपं-स्वरूपं यस्य स तथा, यथा किल कनकं मलज्वलनेन दीप्तं भवति तथा भगवतोऽपि स्वरूपं कर्ममलविगमेन अतिदीप्तं अस्तीति भावः (वसुंधरा इव सव्वफासविसहे) वसुन्धरा इव-पृथ्वीव सर्वस्पर्शसहः, यथा हि पृथ्वी शीतोष्णादि सर्वं समतया सहते तथा भगवानपि (सुहुअहुआसणे इव तेयसा जलंते) सुष्ठु हुतो-घृतादिभिः सिक्त एवंविधो यो हुताशनः-अग्निस्तद्वत्तेजसा ज्वलन् (नत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधे भवइ) नास्त्यियं पक्षो यत्तस्य भगवतः कुत्रापि प्रतिबन्धो भवति, तस्य भगवतः कुत्रापि प्रतिबन्धो नास्तीति भावः (से य पडिबंधे चउव्विहे पण्णत्ते) स च प्रतिबन्धः चतुर्विधः प्रज्ञप्तः (तंजहा) तद्यथा-(दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ) द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतः भावतश्च (दव्वओ सचित्ताचित्तमीसिएसु दव्वेसु) द्रव्यतस्तु प्रतिबन्धः सचित्ताचित्तमिश्रितेषु द्रव्येषु, सचित्तं वनितादि अचित्तं आभरणादि मिश्रं सालङ्कारवनितादि तेषु, तथा (खित्तओ गामे वा) क्षेत्रतः क्वापि ग्रामे वा (नयरे वा) नगरे वा (अरण्णे वा) अरण्ये वा (खित्ते वा) क्षेत्रं-धान्यनिष्पत्तिस्थानं तत्र वा (खले वा) खलं-धान्यतुषपृथक्करणस्थानं तत्र वा (घरे वा) गृहे वा (अंगणे) अङ्गणं-गृहाग्रभागस्तत्र वा (नहे वा) नभः-आकाशं तत्र वा, तथा (कालओ समए वा) कालतः समयः-सर्वसूक्ष्मकालः उत्पलपत्रशतवेधजीर्णपट्टशाटिकापाटनादिदृष्टान्तसाध्यस्तत्र वा (आवलियाए वा)

क.सु. १९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११८] गाथा ॥१,२॥

दीप अनुक्रम [१२०-१२२]

कल्प.सुबो-व्या० ६

॥१०९॥

आवलिका–असङ्ख्यातसमयरूपा (आणपाणुए वा) आनप्राणौ–उच्छ्वासनिःश्वासकालः (थोवे वा) स्तोकः–सप्तोच्छ्वासमानः (खणे वा) क्षणे–घटिकाषष्टभागे वा (लवे वा) लवः–सप्तस्तोकमानः (मुहुत्ते वा) मुहूर्त्तः–सप्तसप्ततिलवमानः (अहोरत्ते वा पक्खे वा मासे वा उऊ वा अयणे वा संवच्छरे वा) अहोरात्रे वा पक्षे वा मासे वा ऋतौ वा अयने वा संवत्सरे वा (अण्णयरे वा दीहकालसंजोए) अन्यतरस्मिन् वा दीर्घकालसंयोगे–युगपूर्वाङ्गपूर्वादौ (भावओ) भावतः (कोहे वा, माणे वा, मायाए वा, लोभे वा, भए वा, हासे वा) क्रोधे वा माने वा मायायां वा लोभे वा भये वा हास्ये वा (पिज्जे वा, दोसे वा, कलहे वा, अब्भक्खाणे वा) प्रेम्णि वा–रागे वा, द्वेषे–अप्रीतौ, कलहे–वाग्युद्धे, अभ्याख्याने–मिथ्याकलङ्कदाने (पेसुन्ने वा, परपरिवाए वा) पैशुन्ये–प्रच्छन्नं परदोषप्रकटने, परपरिवादे–विप्रकीर्णपरकीयगुणदोषप्रकटने (अरइरई वा, मायामोसे वा) मोहनीयोदयाच्चित्तोद्वेगोऽरतिः, रतिः–मोहनीयोदयाच्चित्तप्रीतिस्तत्र, मायया युक्ता मृषा मायामृषा तत्र (मिच्छादंसणसल्ले वा) मिथ्यादर्शनं–मिथ्यात्वं तदेव अनेकदुःखहेतुत्वाच्छल्यं मिथ्यादर्शनशल्यं तत्र (तस्स णं भगवंतस्स नो एवं भवइ) तस्य भगवतः एवं पूर्वोक्तस्वरूपेषु द्रव्य १ क्षेत्र २ काल ३ भावेषु ४ कुत्रापि प्रतिबन्धो नैवास्तीति ॥ (११८) ॥

(से णं भगवं) स भगवान् (वासावासं वज्जं) वर्षावासः–चतुर्मासी तां वर्जयित्वा (अट्ठ गिम्हहेमंतिए मासे) अष्टौ ग्रीष्महेमन्तसम्बन्धिनो मासान् (गामे एगराइए) ग्रामे एकरात्रिकः—एकरात्रिवसनस्वभावः

भगवतः प्रतिबन्धाभावः सू. ११८

॥१०९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [११९] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२४]

(नगरे पंचराइए) नगरे पञ्चरात्रिकः, पुनः किंवि० ? (वासीचंदणसमाणकप्पे) वासी–सूत्रधारस्य काष्ठच्छेदनोपकरणं चन्दनं–प्रसिद्धं तयोर्द्वयोर्विषये समानसङ्कल्पः–तुल्याध्यवसायः, पुनः किंवि० ? (समतिणमणिलेट्ठुकंचणे) तृणादीनि–प्रतीतानि नवरं लेष्टुः–पाषाणः, समानि–तुल्यानि तृणमणिलेष्टुकाञ्चनानि यस्य स तथा (समसुहदुक्खे) समे सुखदुःखे यस्य स तथा (इहपरलोगअपडिबद्धे) इहलोके परलोके च अप्रतिबद्धः, अत एव (जीवियमरणे निरवकंखे) जीवितमरणयोर्विषये निरवकाङ्क्षो–वाञ्छारहितः (संसारपारगामी) संसारस्य पारगामी (कम्मसत्तुनिग्घायणट्ठाए) कर्मशत्रुनिर्घातनार्थं (अब्भुट्ठिए) अभ्युत्थितः–सोद्यमः (एवं च णं विहरइ) एवं–अनेन क्रमेण स भगवान् विहरति–आस्ते ॥ (११९) ॥

(तस्स णं भगवंतस्स) तस्य भगवतः (अणुत्तरेणं नाणेणं) अनुत्तरेण–अनुपमेन ज्ञानेन (अणुत्तरेणं दंसणेणं) अनुपमेन दर्शनेन (अणुत्तरेणं चारित्तेणं) अनुपमेन चारित्रेणं (अणुत्तरेणं आलएणं) अनुपमेन आलयेन–स्त्रीषण्ढादिरहितवसतिसेवनेन (अणुत्तरेण विहारेणं) अनुपमेन विहारेण–देशादिषु भ्रमणेन (अणुत्तरेणं वीरिएणं) अनुपमेन वीर्येण–पराक्रमेण (अणुत्तरेणं अज्जवेणं) अनुपमेन आर्जवं–मायाया अभावस्तेन (अणुत्तरेणं मद्दवेणं) अनुपमेन मार्दवं–मानाभावस्तेन (अणुत्तरेणं लाघवेणं) अनुपमेन लाघवं–द्रव्यतः अल्पोपधित्वं भावतो गौरवत्रयत्यागस्तेन (अणुत्तराए खंतीए) अनुपमया क्षान्त्या–क्रोधाभावेन (अणुत्तराए मुत्तीए) अनुपमया मुक्त्या–लोभाभावेन (अणुत्तराए गुत्तीए) अनुपमया गुप्त्या–मनोगुप्त्यादिकया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२०] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२५]

कल्प.सुबो-ध्या० ६ ॥११०॥

(अणुत्तराए तुट्ठीए) अनुपमया तुष्ट्या–मनःप्रसत्त्या (अणुत्तरेणं सचसंजमतवसुचरियत्ति) अनुपमेन सत्यं संयमः–प्राणिदया, तपो–द्वादशप्रकारं, एतेषां यत्सुचरितं–सदाचरणं तेन कृत्वा (सोवचियफलनिव्वाणमग्गेणं) सोपचयं–पुष्टं, फलं–मुक्तिलक्षणं, यस्य एवंविधो यः परिनिर्वाणमार्गो–रत्नत्रयरूपस्तेन, तदेवं उक्तेन सर्वगुण-समूहेन (अप्पाणं भावेमाणस्स) आत्मानं भावयतो (दुवालस संवच्छराइं विइक्कंताइं) द्वादश संवत्सरा व्यतिक्रान्ताः, ते चैवं–एकं षण्मासक्षपणं ६, द्वितीयं षण्मासक्षपणं पञ्चदिनन्यूनं ११-२५, नव चतुर्मासक्षपणानि ४७-२५, द्वे त्रिमासक्षपणे ५३-२५, द्वे सार्द्धद्विमासक्षपणे ५८-२५, षट् द्विमासक्षपणानि ७०-२५, द्वे सार्द्धैकमासक्षपणे ७३-२५, द्वादश १२ मासक्षपणानि ८५-२५, द्वासप्ततिः ७२ पक्षक्षपणानि १२१-२५, भद्रप्रतिमा दिनद्वयमाना, महाभद्रप्रतिमा दिनचतुष्कमाना, सर्वतोभद्रप्रतिमा दशदिनमाना १२२-११ एकोनत्रिंशदधिकं शतद्वयं षष्ठाः १३७-१९, द्वादश अष्टमाः १३८-२५, एकोनपञ्चाशदधिकं शतत्रयं पारणानां १५०-१४ दीक्षादिनं १५०-१५, ततश्चेदं जातं–बारस चेव य वासा मासा छ चेव अद्धमासं च। वीरवरस्स भगवओ एसो छउमत्थपरिआओ ॥१॥ इदं च सर्वं तपो भगवता निर्जलमेव कृतं, न कदापि च नित्यभक्तं चतुर्थभक्तं च कृतं, एवं च (तेरसमस्स संवच्छरस्स) त्रयोदशस्य संवत्सरस्य (अंतरा वट्टमाणस्स) अन्तरा–मध्ये वर्त्तमानस्य (जे से गिम्हाणं) योऽसौ ग्रीष्मकालस्य (दुचे मासे चउत्थे पक्खे) द्वितीयो मासः चतुर्थः पक्षः (वइसाहसुद्धे)

१ द्वादशैव च वर्षाणि मासाः षडेव अर्धमासश्च । वीरवरस्य भगवतः एष छद्मस्थपर्यायः ॥ १ ॥

श्रीवीरविहाररीतिः, द्वादशवर्षीतपः केवलं चसू.११९-१२० २० २५ ॥११०॥ २७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** भगवंत महावीर कृत तपसः वर्णनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२०] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२५]

वैशाखशुक्लपक्षः (तस्स णं वेसाहसुद्धस्स दसमीपक्खेणं) तस्य वैशाखशुद्धस्य दशमीदिवसे (पाईणगामिणीए छायाए) पूर्वगामिन्यां छायायां सत्यां (पोरिसीए अभिनिविट्ठाए) पाश्चात्यपौरुष्यां अभिनिर्वृत्तायां-जातायां सत्यां, कीदृशायां ? (पमाणपत्ताए) प्रमाणप्राप्तायां, न तु न्यूनाधिकायां (सुव्वएणं दिवसेणं) सुव्रतनामके दिवसे (विजएणं मुहुत्तेणं) विजयनाम्नि मुहूर्त्ते (जंभियगामस्स नगरस्स बहिया) जृम्भिकग्रामनामकस्य नगरस्य बहिस्तात् (उज्जुवालुयाए नईए तीरे) ऋजुवालुकायाः नद्याः तीरे (वेयावत्तस्स चेइयस्स) व्यावृत्तं नाम जीर्णं एवंविधं यच्चैत्यं-व्यन्तरायतनं तस्य (अदूरसामंते) नातिदूरे नातिसमीपे इत्यर्थः (सामागस्स गाहावइस्स) श्यामाकस्य गृहपतेः-कौटुम्बिकस्य (कट्ठकरणंसि) क्षेत्रे (सालपायवस्स अहे) सालपादपस्य अधो (गोदोहियाए) गोदोहिकया (उक्कुडियनिसिज्जाए) उत्कटिकया निषद्यया (आयावणाए आयावेमाणस्स) आतापनया आतापयतः प्रभोः (छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं) षष्ठेन भक्तेन जलरहितेन (हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं) उत्तराफल्गुनीनक्षत्रे चन्द्रेण योगं उपागते सति (झाणंतरियाए वट्टमाणस्स) ध्यानस्य अन्तरे-मध्यभागे वर्त्तमानस्य, कोऽर्थः ?-शुक्लध्यानं चतुर्धा-पृथक्त्ववितर्कं सविचारं १ एकत्ववितर्कं अविचारं २ सूक्ष्मक्रियं अप्रतिपाति ३ उच्छिन्नक्रियं अनिवर्त्ति ४, एतेषां मध्ये आद्यभेदद्वये ध्याते इत्यर्थः (अणंते) अनन्तवस्तुविषये (अणुत्तरे) अनुपमे (निव्वाघाए) निर्व्याघाते-भित्त्यादिभिरस्खलिते (निराव-

५ १० १३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** भगवंत महावीरस्य केवलज्ञान-कल्याणक-वर्णनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२१] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२६]

कल्प.सुबो-ध्या० ६

॥१११॥

रणे) समस्तावरणरहिते (कसिणे) समस्ते (पडिपुण्णे) सर्वावयवोपेते (केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने) एवंविधे केवलवरज्ञानदर्शने समुत्पन्ने ॥ (१२०) ॥

(तए णं समणे भगवं महावीरे) ततो-ज्ञानोत्पत्त्यनन्तरं श्रमणो भगवान् महावीरः (अरहा जाए) अर्हन् जातः-अशोकादिप्रातिहार्यपूजायोग्यो जातः, पुनः कीदृशः ? (जिणे केवली सवन्नू सवदरिसी) जिनो-रागद्वेषजेता केवली सर्वज्ञ सर्वदर्शी (सदेवमणुआसुरस्स लोगस्स) देवमनुजासुरसहितस्य लोकस्य (परियायं जाणइ पासइ) पर्यायं इत्यत्र जातावेकवचनं, ततः पर्यायान् जानाति पश्यति च-साक्षात् करोति, तर्हि किं देवमनुजासुराणां एव पर्यायमात्रं एव जानातीत्याह-(सवलोए सवजीवाणं) सर्वलोके सर्वजीवानां (आगइं गइं ठिइं चवणं उववायं) आगतिं भवान्तरात्, गतिं च भवान्तरे, स्थितिं-तद्भवसत्कं आयुः,काय-स्थितिं वा, च्यवनं-देवलोकात्तिर्यग्नरेषु अवतरणं, उपपातो-देवलोके नरकेषु वोत्पत्तिः (तकं मणो) तेषां सर्वजीवानां सम्बन्धि तत्कं-ईदृशं यन्मनः (माणसियं) मानसिकं-मनसि चिन्तितं (भुत्तं) भुक्तं, अशन-फलादि (कडं) कृतं, चौर्यादि (पडिसेवियं) प्रतिसेवितं, मैथुनादि (आविकम्मं) आविःकर्म-प्रकटकृतं (रहोकम्मं) रहःकर्म-प्रच्छन्नं कृतं, एतत् सर्वं सर्वजीवानां भगवान् जानातीति योजना, पुनः किंवि० प्रभुः ? (अरहा) न विद्यते रहः-प्रच्छन्नं यस्य, त्रिभुवनस्य करामलकवद् दृष्टत्वात्, अरहाः (अरहस्सभागी)

केवलज्ञान-फलम् सू. १२१

२०

॥१११॥

२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२१] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२६]

रहस्यं–एकान्तं तत्र भजते इति अरहस्यभागी, जघन्यतोऽपि कोटीसुरसेव्यत्वात् (तं तं कालं मणवयकाय-जोगे) तस्मिन् तस्मिन् काले मनोवचनकाययोगेषु यथार्हं (वट्टमाणाणं) वर्त्तमानानां (सव्वलोए सव्वजीवाणं) सर्वलोके सर्वजीवानां (सव्वभावे जाणमाणे पासमाणे विहरइ) सर्वभावान्–पर्यायान् जानन् पश्यंश्च विहरति, 'सव्वजीवाणं' इत्यत्र अकारप्रश्लेषात् सर्वाजीवानां–धर्मास्तिकायादीनामपि सर्वपर्यायान् जानन् पश्यंश्च विहरतीति व्याख्येयम् ॥ (१२१) ॥

इतश्च तस्मिन्नवसरे मिलितेषु सुरासुरेषु स्थले वृष्टिमिव निष्फलां देशनां क्षणं दत्त्वा प्रभुः अपापापुर्यां महासेनवने जगाम, तत्र च यज्ञं कारयतः सोमिलविप्रस्य गृहे बहवो ब्राह्मणाः मिलिताः सन्ति, तेषु च इन्द्रभूति १–अग्निभूति २ वायुभूति ३ नामानस्त्रयः सहोदराश्चतुर्दशविद्याविशारदाः क्रमेण जीव १ कर्म २ तज्जीवतच्छरीर ३ सन्देहवन्तः पञ्चशतपरिवाराः सन्ति, एवं व्यक्तः ४ सुधर्मा ५ चेति द्वौ द्विजौ तावत्परिवारौ तथैव विद्वांसौ क्रमात् पञ्च भूतानि सन्ति न वेति ४ यो यादृशः स तादृशः ५ इति च सन्देहवन्तौ, तादृशौ एव च मण्डित ६ मौर्यपुत्र ७ नामानौ बान्धवौ सार्धत्रिशतपरिवारौ क्रमात् बन्ध ६ देव-७ विषयकसन्देहवन्तौ, तथा अकम्पितो ८ ऽचलभ्राता ९ मेतार्यः १० प्रभास ११ श्चेति चत्वारो द्विजाः प्रत्येकं त्रिशतपरिवाराः क्रमेण नैरयिक ८ पुण्य ९ परलोक १० मोक्ष ११ सन्देहभाजस्तत्रागताः सन्ति,

*** अथ गणधर-नाम-कर्म-बद्ध ११ महात्मानं शङ्का एवं समाधानं वर्णयते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२१] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२६]

कल्प.सुबो-व्या० ६ ॥११२॥

नाम	१ इन्द्रभूतिः	२ अग्निभूतिः	३ वायुभूतिः	४ व्यक्तः	५ सुधर्मा	६ मण्डितः	७ मौर्यपुत्रः	८ अकम्पितः	९ अचलभ्राता	१० मेतार्यः	११ प्रभासः
परिवार	५००	५००	५००	५००	५००	३५०	३५०	३००	३००	३००	३००
शङ्का	जीवः	कर्म	तज्जीव०	भूतानि	योयादृशः	बन्धः	देवः	नारकः	पुण्यं	परलोकः	मोक्षः

ते चैकादशापि द्विजा एकैकसन्देहसद्भावेऽपि सर्वज्ञत्वाभिमानक्षतिभयात् परस्परं न पृच्छन्ति, एवं एते तत्परिवारभूताश्च चतुश्चत्वारिंशच्छतानि द्विजाः अन्येऽपि उपाध्याय–शङ्कर ईश्वर शिवजी जानी–गङ्गाधर महीधर भूधर लक्ष्मीधर पिण्ड्या–विष्णु मुकुन्द गोविन्द पुरुषोत्तम नारायण दुवे–श्रीपति उमापति विद्यापति गणपति जयदेव, व्यास–महादेव शिवदेव मूलदेव सुखदेव गङ्गापति गौरीपति त्रिवाडी–श्रीकण्ठ नीलकण्ठ हरिहर रामजी–बालकृष्ण यदुराम राम रामाचार्य राउल–मधुसूदन नरसिंह कमलाकर सोमेश्वर हरिशङ्कर त्रिकम जोसी–पूनो रामजी शिवराम देवराम गोविन्दराम रघुराम उदिराम इत्यादयो मिलिताः सन्ति । अत्रान्तरे च भगवन्नमस्यार्थं आगच्छतः सुरासुरान् विलोक्य ते चिन्तयन्ति–अहो! यज्ञस्य महिमा! यदेते सुराः साक्षात्समागताः, अथ तान् यज्ञमण्डपं विहाय प्रभुपार्श्वं च गच्छतो विज्ञाय द्विजा विषेदुः, ततोऽमी सर्वज्ञं वन्दितुं यान्तीति जनश्रुत्या श्रुत्वा इन्द्रभूतिः सामर्षश्चिन्तयामासिवान्–अहो! मयि सर्वज्ञे सत्यपि अपरोऽपि सर्वज्ञं स्वं ख्यापयति, दुःश्रवं एतत्कर्णकटु कथं नाम श्रूयते ?, किञ्च–कदाचित्

गणधराः तत्संशया-दि यज्ञे द्वि-जमेलापकः

१५ २० २५ ॥११२॥ २७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२१] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२६]

कोऽपि मूर्खः केनचिद्धूर्त्तेन वञ्च्यते, अनेन तु सुरा अपि वञ्चिताः, यदेवं यज्ञमण्डपं मां सर्वज्ञं च विहाय तत्समीपं गच्छन्ति। अहो! सुराः कथं भ्रान्तास्तीर्थाम्भ इव वायसाः। कमलाकरवद्भेका, मक्षिकाश्चन्दनं यथा ॥ १ ॥ करभा इव सद्वृक्षान्, क्षीरान्नं शूकरा इव। अर्कस्यालोकवद् घूकास्त्यक्त्वा यागं प्रयान्ति यत् ॥ २ ॥ अथवा—यादृशोऽयं सर्वज्ञस्तादृशा एवैते, अनुरूप एव संयोगः, यतः—पश्यानुरूपमिन्दिंदिरेण माकन्द-शेखरो मुखरः। अपिच पिचुमन्दमुकुले, मौकुलिकुलमाकुलं मिलति ॥ १ ॥ तथापि नाहं एतस्य सर्वज्ञाटोपं सहे, यतः—व्योम्नि सूर्यद्वयं किं स्याद्, गुहायां केसरिद्वयम्। प्रत्याकारे च खड्गौ द्वौ, किं सर्वज्ञावहं स च? ॥ १ ॥ ततो भगवन्तं वन्दित्वा प्रतिनिवर्त्तमानान् सोपहासं जनान् पप्रच्छ—भो! भो! दृष्टः स सर्वज्ञः? कीदृग्रूपः? किंस्वरूपः? इति, जनैस्तु—यदि त्रिलोकीगणनापरा स्यात्, तस्याः समासिर्यदि नायुषः स्यात्। पारेपरार्ध्यं गणितं यदि स्यात्, गणेयनिःशेषगुणोऽपि स स्यात् ॥ १ ॥ इत्याद्युक्ते सति स दध्यौ—नूनमेष महाधूर्त्तो, मायायाः कुलमंदिरम्। कथं लोकः समस्तोऽपि, विभ्रमे पातितोऽमुना? ॥ २ ॥ न क्षमे क्षणमात्रं तु, तं सर्वज्ञं कदाचन। तमःस्तोममपाकर्त्तुं, सूर्यो नैव प्रतीक्षते ॥ ३ ॥ वैश्वानरः करस्पर्शं, केसरोल्लुंचनं हरिः। क्षत्रि-यश्च रिपुक्षेपं, न सहंते कदाचन ॥ ४ ॥ मया हि येन वादींद्रास्तूष्णीं संस्थापिताः समे। गेहेशूरतरः कोऽसौ, सर्वज्ञो मत्पुरो भवेत्? ॥ ५ ॥ शैला येनाग्निना दग्धाः, पुरः के तस्य पादपाः?। उत्पाटिता गजा येन, का वायोस्तस्य पुंभिकाः? ॥ ६ ॥ किंच—गत्वा गौडदेशोद्भवा दूरदेशं, भयाज्जर्जरा गौर्जरास्त्रासमीयुः। मृता

५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२१] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२६]

कल्प.सुबो-व्या० ६ ॥११३॥

मालवीयास्तिलांगास्तिलंगोद्भवा जज्ञिरे पंडिता मद्भयेन ॥ ७ ॥ अरे लाटजाताः क्व याताः प्रणष्टाः, पटिष्ठा अपि द्राविडा व्रीडयार्त्ताः । अहो वादिलिप्साऽऽतुरे मय्यमुष्मिन्, जगत्युत्कटं वादिदुर्भिक्षमेतत् ॥ ८ ॥ तस्य ममाग्रे कोऽसौ,वादी सर्वज्ञमानमुद्वहति ? । इति तत्र गंतुमुत्कं, तमग्निभूतिर्जगादैवं ॥ ९ ॥ किं तत्र वादिकीटे,तव प्रयासेन ? यामि बंधोऽहम् । कमलोन्मूलनहेतोर्नेतव्यः किं सुरेंद्रगजः ? ॥ १० ॥ अकथयदथेंद्रभूतिर्यद्यपि मच्छात्रजय्य एवासौ । तदपि प्रवादिनाम्,श्रुत्वा स्थातुं न शक्नोमि ॥ ११ ॥ पीलयतस्तिलः कश्चित्, दलतश्च यथा कणः । सूडयतस्तृणं किंचिद्गस्तेः पिबतः सरः ॥ १२ ॥ मर्दयतस्तुषः कोऽपि, तद्वदेष ममाभवत् । तथापि सासहिर्न हि, मुधा सर्वज्ञवादिनम् ॥ १३ ॥ एकस्मिन्नजिते ह्यस्मिन्, सर्वमप्यजितं भवेत् । एकदा हि सती लुप्तशीला स्यादसती सदा ॥ १४ ॥ चित्रं चैव त्रिजगति,सहस्रशो निर्जिते मया वादैः । क्षिप्रचटस्थाल्यामिव,कंकटुकोऽसौ स्थितो वादी ॥ १५ ॥ अस्मिन्नजिते सर्वं, जगज्जयोद्भूतमपि यशो नश्येत् । अल्पमपि शरीरस्थं,शल्यं प्राणान् वियोजयति ॥ १६ ॥ यतः—छिद्रे स्वल्पेऽपि पोतः किं, पाथोधौ न निमज्जति ? । एकस्मिन्निष्टके कृष्टे, दुर्गः सर्वोऽपि पात्यते ॥ १७ ॥ इत्यादि विचिंत्य विरचितद्वादशतिलकः स्वर्णयज्ञोपवीतविभूषितः स्फारपीतांबराडंबरः कैश्चित्पुस्तकपाणिभिः कैश्चित्कमंडलुपाणिभिः कैश्चिदभयपाणिभिः सरस्वतीकंठाभरण वादिविजयलक्ष्मीशरण वादिमदगंजन वादिमुखभंजन वादिगजसिंह वादीश्वरलीह वादिसिंहअष्टापद वादिविजयविशद वादिवृंदभूमिपाल वादिशिरःकाल वादिकदलीकृपाण वादितमोभान वादि-

इन्द्रभूतेरमर्षः

२०

२५

॥११३॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२१] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२६]

गोधूमघरट्ट मर्दितवादिमरट्ट वादिघटमुद्गर वादिघूकभास्कर वादिसमुद्रागस्ते वादितरून्मूलनहस्तिन् वादिसुर सुरेंद्र वादिगरुडगोविंद वादिजनराजान वादिकंसकाहान वादिहरिणहरे वादिज्वरधन्वंतरे वादियूथमल्ल वादिहृदयशल्य वादिगणजीपक वादिशलभदीपक वादिचक्रचूडामणे पंडितशिरोमणे विजितानेकवाद सरस्वतीलब्धप्रसाद इत्यादिविरुदवृंदमुखरितदिक्चक्रैः पंचभिः छात्रशतैः परिवृत इंद्रभूतिः वीरसमीपं गच्छंश्चिंतयामास—अहो धृष्टेन अनेन किमेतत् कृतं ? यदहं सर्वज्ञाटोपेन प्रकोपितः,यतः—कृष्णसर्पस्य मंडूकश्चपेटां दातुमुद्यतः । आखू रदैश्च मार्जरदंष्ट्रापाताय सादरः ॥१॥ वृषभः स्वर्गजं शृंगैः, प्रहर्त्तुं कांक्षति द्रुतम् । द्विपः पर्वतपाताय, दंताभ्यां यतते रयात् ॥ २ ॥ शशकः केसरिस्कंधकेसरां कृष्टुमीहते । मद्दृष्टौ यदसौ सर्वविज्ञत्वं ख्यापयते जने ॥ ३ ॥ शेषशीर्षमणिं लातुं, हस्तः स्वीयः प्रसारितः । सर्वज्ञाटोपतोऽनेन, यदहं परिकोपितः ॥ ४ ॥ समीराभिमुखस्थेन, दवाग्निर्ज्वालितोऽमुना । कपिकच्छूलता देहे, सौख्यायालिंगिता ननु ॥ ५ ॥ भवतु, किमेतेन ?, अधुना निरुत्तरीकरोमि, यतः—तावद्गर्जति खद्योतस्तावद्गर्जति चंद्रमाः । उदिते तु सहस्रांशौ, न खद्योतो न चंद्रमाः ॥ ६ ॥ सारंगमातंगतुरंगपूगः, पलाय्यतामाशु वनादमुष्मात् । साटोपकोपस्फुटकेसरश्रीर्मृगाधिराजोऽयमुपेयिवान् यत् ॥ ७ ॥ मम भाग्यभराद्यद्वा, वाग्देवी समुपस्थितः । अद्य तां रसनाकंडूमपनेष्ये विनिश्चितम् ॥ ८ ॥ लक्षणे मम दक्षत्वं, साहित्ये संहता मतिः । तर्के कर्कशताऽत्यर्थं, क्व शास्त्रे नास्ति मे श्रमः ? ॥ ९ ॥ यमस्य मालवो दूरे, किं स्यात् ? को वा वचस्विनः । अपोषितो रसो ? नूनं, किमजेयं च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

चक्रिणः ? ॥ १० ॥ अभेद्यं किमु वज्रस्य, किमसाध्यं महात्मनाम् । क्षुधितस्य न किं खाद्यं, किं न वाच्यं खलस्य च ? ॥ ११ ॥ कल्पद्रूणामदेयं किं, निर्विण्णानां किमत्यजम् ? । गच्छामि तर्हि तस्यांते, पश्याम्येतत्पराक्रमम् ॥ १२ ॥ तथा ममापि त्रैलोक्यजित्वरस्य महौजसः । अजेयं किमिवास्तीह, तद्गच्छामि जयाम्यमुम् ॥ १३ ॥ इत्यादि चिंतयन् प्रभुमवेक्ष्य सोपानसंस्थितो दध्यौ । किं ब्रह्मा किं विष्णुः, सदाशिवः शंकरः किं वा ? ॥ १४ ॥ चद्रः किं ? स न यत्कलंककलितः, सूर्योऽपि नो तीव्ररुक्, मेरुः किं ? न स यन्नितांतकठिनो, विष्णुः ? न यत् सोऽसितः । ब्रह्मा किं ? न जरातुरः स च जराभीरुः ? न यत्सोऽतनुः, ज्ञातं दोषविवर्जिताखिलगुणाकीर्णोऽन्तिमस्तीर्थकृत् ॥ १५ ॥ हेमसिंहासनासीनं, सुरराजनिषेवितम् । दृष्ट्वा वीरं जगत्पूज्यं, चिंतयामास चेतसि ॥ १६ ॥ कथं मया महत्त्वं हा, रक्षणीयं पुराऽर्जितम् ? । प्रासादं कीलिकाहेतोर्भंक्तुं को नाम वांछति ? ॥१७॥ एकेनाविजितेनापि, मानहानिस्तु का मम ? । जगज्जैत्रस्य किं नाम, करिष्यामि च सांप्रतम् ? ॥ १८ ॥ अविचारितकारित्वमहो मे मन्ददुर्धियः । जगदीशावतारं यत्, जेतुमेनं समागतः ॥ १९ ॥ अस्याग्रेऽहं कथं वक्ष्ये ?, पार्श्वे यास्यामि वा कथम् ? । संकटे पतितोऽस्मीति, शिवो रक्षतु मे यशः ॥ २० ॥ कथंचिदपि भाग्येन, चेद्भवेदत्र मे जयः । तदा पंडितमूर्द्धन्यो, भवामि भुवनत्रये ॥ २१ ॥ इत्यादि चिंतयन्नेव, सुधामधुरया गिरा । आभाषितो जिनेंद्रेण, नामगोत्रोक्तिपूर्वकम् ॥ २२ ॥ हे गौतमेंद्रभूते ! त्वं, सुखेनागतवानसि । इत्युक्तेऽचिंतयद्वेत्ति, नामापि किमसौ मम ? ॥ २३ ॥ जगत्त्रितयविख्यातं, को वा नाम न वेत्ति माम् ? । जन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२१] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२६]

स्यावालगोपालं, प्रच्छन्नः किं दिवाकरः ? ॥ २४ ॥ प्रकाशयति गुप्तं चेत्, संदेहं मे मनःस्थितम् । तदा जानामि सर्वज्ञमन्यथा तु न किंचन ॥ २५ ॥ चिंतयंतमिति प्रोचे, प्रभुः को जीवसंशयः ? । विभावयसि नो वेदपदार्थं शृणु तान्यथ ॥ २६ ॥ समुद्रो मथ्यमानः किं ?, गंगापूरोऽथवा किमु ? । आदिब्रह्मध्वनिः किं वा ?, वीरवेदध्वनिर्बभौ ॥ २७ ॥ वेदपदानि च—'विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति, न प्रेत्यसंज्ञाऽस्ती'ति, त्वं तावत् एतेषां पदानां अर्थं एवं करोषि—यत् विज्ञानघनो—गमनागमनादिचेष्टावान् आत्मा एतेभ्यो भूतेभ्यः—पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशेभ्यः, समुत्थाय—प्रकटीभूय, मद्यांगेषु मदशक्तिरिव, ततस्तानि—भूतान्येव अनु विनश्यति—तत्रैव विलयं याति जले बुद्बुद इव, ततो भूतातिरिक्तस्य आत्मनोऽभावात् न प्रेत्यसंज्ञास्ति—मृत्वा पुनर्जन्म नास्तीति, परं अयुक्तोऽयमर्थः, शृणु तावदेतेषां अर्थं—विज्ञानघन इति कोऽर्थः ?—विज्ञानघनो—ज्ञानदर्शनोपयोगात्मकं विज्ञानं तन्मयत्वादात्माऽपि विज्ञानघनः, प्रतिप्रदेशं अनंतज्ञानपर्यायात्मकत्वात्, स च विज्ञानघनः—उपयोगात्मक आत्मा, कथंचिद्भूतेभ्यस्तद्विकारेभ्यो वा घटादिभ्यः समुत्तिष्ठते-उत्पद्यते इत्यर्थः, घटादिज्ञानपरिणतो हि जीवो घटादिभ्य एव हेतुभूतेभ्यो भवति, घटादिज्ञानपरिणामस्य घटादिवस्तुसापेक्षत्वात्, एवं च एतेभ्यो भूतेभ्यो—घटादिवस्तुभ्यस्तत्तदुपयोगतया जीवः समुत्थाय—समुत्पद्य तान्येव अनु विनश्यति, कोऽर्थः ?—तस्मिन् घटादौ वस्तुनि नष्टे व्यवहिते वा जीवोऽपि तदुपयोगरूपतया नश्यति अन्योपयोगरूपतया उत्पद्यते सामान्यरूपतया वा अवतिष्ठते, ततश्च न प्रेत्यसंज्ञास्ति, कोऽर्थः ?—न प्राक्तनी घटाद्यु-

क.सु. २०

प्रथम गणधरः ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२१] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२६]

पयोगरूपा संज्ञा अवतिष्ठते, वर्त्तमानोपयोगेन तस्या नाशितत्वादिति, अपरं च 'स वै अयं आत्मा ज्ञानमय' इत्यादि, तथा 'ददद', कोऽर्थः ?–दमो दानं दया इति दकारत्रयं यो वेत्ति स जीवः, किं च–विद्यमानभोक्तृकं इदं शरीरं, भोग्यत्वात्, ओदनादिवत् इत्याद्यनुमानेनापि, तथा–क्षीरे घृतं तिले तैलं, काष्ठेऽग्निः सौरभं सुमे । चंद्रकांते सुधा यद्वत्, तथाऽऽत्माऽंगगतः पृथक् ॥ १ ॥ एवं च प्रभुवचनैः छिन्नसंदेहः श्रीइंद्रभूतिः पंचशतपरिवारः प्रव्रजितः, तत्क्षणाच्च ' उपन्नेइ वा (१) विगमेइ वा (२) धुवेइ वा (३) ' इति प्रभुवदनाम्बुजपदीं प्राप्य द्वादशांगीं रचितवान् । इति प्रथमगणधरः १ ॥

तं च प्रव्रजितं श्रुत्वा, दध्यौ तद्बान्धवोऽपरः । अपि जातु द्रवेद्धिर्हिमानी प्रज्वलेदपि ॥ १ ॥ वह्निः शीतः स्थिरो वायुः, संभवेन्न तु बांधवः । हारयेदिति पप्रच्छ, लोकानश्रद्दधद् भृशम् ॥ २ ॥ ततश्च निश्चये जाते, चिंतयामास चेतसि । गत्वा जित्वा च तं धूर्त्तं, वालयामि सहोदरम् ॥ ३ ॥ सोऽप्येवमागतः शीघ्रं, प्रभुणाऽऽभाषितस्तथा । संदेहं तस्य चित्तस्थं, व्यक्तीकृत्यावदद्विभुः ॥ ४ ॥ हे गौतमाग्निभूते ! कः, संदेहस्तव कर्मणः ? । कथं वा वेदतत्त्वार्थं, विभावयसि न स्फुटम् ॥ ५ ॥ स चायं–'पुरुष एवेदं ग्निं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं' इत्यादि, तत्र ' ग्निं ' इति वाक्यालङ्कारे यद् भूतं अतीतकाले यच्च भाव्यं भाविकाले तत् सर्वं इदं पुरुष एव–आत्मैव, एवकारः कर्मेश्वरादिनिषेधार्थः, अनेन वचनेन यन्नरामरतिर्यक्पर्वतपृथ्व्यादिकं वस्तु दृश्यते तत्सर्वं आत्मैव, ततः कर्मनिषेधः स्फुट एव, किंच–अमूर्त्तस्य आत्मनो मूर्त्तेन कर्मणा अनुग्रह उपघातश्च कथं भवति ?, यथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२१] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२६]

आकाशस्य चन्दनादिना मण्डनं खड्गादिना खण्डनं च न सम्भवति, तस्मात् कर्म नास्ति इति तव चेतसि वर्त्तते, परं हे अग्निभूते ! नायमर्थः समर्थः, यत इमानि पदानि पुरुषस्तुतिपराणि, यथा त्रिविधानि वेदपदानि; कानिचिद्विधिप्रतिपादकानि यथा ' स्वर्गकामोऽग्निहोत्रं जुहुयादि'त्यादीनि, कानिचित् अनुवादपराणि यथा ' द्वादश मासाः संवत्सर' इत्यादीनि, कानिचित् स्तुतिपराणि यथा 'इदं पुरुष एवे'त्यादीनि, ततोऽनेन पुरुषस्य महिमा प्रतीयते, न तु कर्माद्यभावः, यथा–जले विष्णुः स्थले विष्णुः, विष्णुः पर्वतमस्तके । सर्वभूतमयो विष्णुस्तस्माद्विष्णुमयं जगत् ॥ १ ॥ अनेन वाक्येन विष्णोर्महिमा प्रतीयते, न तु अन्यवस्तूनां अभावः, किञ्च–अमूर्त्तस्यात्मनो मूर्त्तेन कर्मणा कथं अनुग्रहोपघातौ ?, तदपि अयुक्तं, यत् अमूर्त्तस्यापि ज्ञानस्य मद्यादिना उपघातो, ब्राह्यायौषधेन च अनुग्रहो दृष्ट एव, किञ्च–कर्म विना एकः सुखी अन्यो दुःखी एकः प्रभुरन्यः किङ्कर इत्यादि प्रत्यक्षं जगद्वैचित्र्यं कथं नाम सम्भवतीति श्रुत्वा गतसंशयः प्रव्रजितः । इति द्वितीयो गणधरः २ ॥

अथ वायुभूतिरपि तौ प्रव्रजितौ श्रुत्वा यस्य इन्द्रभूत्यग्निभूती शिष्यौ जातौ स ममापि पूज्य एव, तद्गच्छाम्यहमपि संशयं पृच्छामि इति सोऽप्यागतः, एवं सर्वेऽप्यागताः, भगवताऽपि सर्वेऽपि प्रतिबोधिताः, तत्कमंश्चार्यं–तज्जीवतच्छरीरे सन्दिग्धं वायुभूतिनामानम् । ऊचे विभुर्यथास्थं, वेदार्थं किं न भावयसि ? ॥ १ ॥ यतः–'विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्य ' इत्यादिवेदपदैः भूतेभ्यो जीवः पृथग् नास्ति इति प्रतीयते, तथा 'सत्येन

तृतीय गणधरः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२१] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२६]

कल्प.सुबो-ध्या० ६

॥११६॥

लभ्यस्तपसा ह्येष ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो हि शुद्धो, यं पश्यन्ति धीरा यतयः संयतात्मान इत्यादि' अस्यार्थः–एष ज्योतिर्मयः शुद्ध आत्मा सत्येन तपसा ब्रह्मचर्येण लभ्यः–ज्ञेय इत्यर्थः, एभिस्तु वेदपदैर्भूतेभ्यः पृथक् आत्मा प्रतीयते, ततस्तव सन्देहः यदुत यच्छरीरं स एवात्मा अन्यो वेति, परं अयुक्तं एतत्, यस्मात् 'विज्ञानघने'त्यादिभिरपि पदैः अस्मदुक्तार्थप्रकारेण आत्मसत्ता प्रकटैव, | इति तृतीयः गणधरः ३ ॥

पञ्चसु भूतेषु तथा,सन्दिग्धं व्यक्तसंज्ञकं विबुधम् । ऊचे विभूर्यथास्थं, वेदार्थं किं न भावयसि ? ॥ १ ॥

' येन स्वप्नोपमं वै सकलं इत्येष ब्रह्मविधिरज्ञसा विज्ञेय ' इति, अस्यार्थः–वै–निश्चितं सकलं–एतत् पृथिव्यादिकं स्वप्नोपमं असत्, अनेन वेदवचसा तावद्भूतानां अभावः प्रतीयते, 'पृथ्वी देवता आपो देवता' इत्यादिभिस्तु भूतसत्ता प्रतीयते इति सन्देहः, परं अविचारितं एतत्, यस्मात् ' स्वप्नोपमं वै सकलं ' इत्यादीनि पदानि अध्यात्मचिन्तायां कनककामिन्यादिसंयोगस्य अनित्यत्वसूचकानि, न तु भूतनिषेधपराणीति चतुर्थः गणधरः ४ ॥

यो यादृशः स तादृश,इति सन्दिग्धं सुधर्मनामानम् । ऊचे विभुर्यथास्थं वेदार्थं किं न भावयसि ? ॥ १ ॥

यतः–' पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते, पशवः पशुत्वं ' इत्यादीनि भवान्तरसादृश्यप्रतिपादकानि, तथा ' शृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दह्यते' इत्यादीनि भवान्तरवैसदृश्यप्रतिपादकानि वेदपदानि दृश्यन्ते, इति तव सन्देहः, परं नायं सुन्दरो विचारो, यस्मात् 'पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते' इत्यादीनि यानि पदानि तानि मनुष्योऽपि

चतुर्थपञ्चम गणधरौ

२०

२५

॥११६॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कश्चिन्मार्दवादिगुणोपेतो मनुष्यायुःकर्म बध्वा पुनरपि मनुष्यो भवति इत्यर्थनिरूपकाणि न तु मनुष्यो मनुष्य एव भवतीति निश्चायकानि, तथा कथं मनुष्यः पशुर्भवति ?, न हि शालीबीजाद्गोधूमाङ्कुरः सम्भवतीति या तव चित्ते युक्तिः प्रतिभाति साऽपि न समीचीना, यतो गोमयादिभ्यो वृश्चिकाद्युत्पत्तेर्दर्शनात् कार्यवैसदृश्यं अपि सम्भवत्येवेति पञ्चमः गणधरः ५ ॥

अथ बन्धमोक्षविषये सन्दिग्धं मण्डिताभिधं विबुधम् । ऊचे विभुर्यथास्थं, वेदार्थं किं न भावयसि ? ॥ १ ॥ यतः–' स एष विगुणो विभुर्न बद्ध्यते संसरति वा मुच्यते मोचयति वा ' त्वं तावत् एतेषां पदानां अर्थं एवं करोषि–यत् स एषः–अधिकृतो जीवः, कथम्भूतो ?–विगुणः–सत्त्वादिगुणरहितो, विभुः–सर्वव्यापको न बद्ध्यते–पुण्यपापाभ्यां न युज्यते, नकारस्य सर्वत्र योजनात् न संसरति–न संसारे परिभ्रमति, न मुच्यते कर्मणा बन्धाभावात्, नाप्यन्यं मोचयति अकर्तृकत्वात्, परं नायं अर्थः समर्थः, किन्तु स एष आत्मा, किंविशिष्टो ?–विगुणो–विगतच्छाद्मस्थिकगुणः, पुनः कीदृशो ?–विभुः–केवलज्ञानवान् केवलज्ञानस्वरूपेण विश्वव्यापकत्वात्, एवंविध आत्मा पुण्यपापाभ्यां न युज्यते इति सुस्थं, इति षष्ठः गणधरः ६ ॥

अथ देवविषयसन्देहसंयुतं मौर्यपुत्रनामानम् । ऊचे विभुर्यथास्थं, वेदार्थं किं न भावयसि ? ॥ १ ॥ यतः–' को जानाति मायोपमान् गीर्वाणान् इन्द्रयमवरुणकुबेरादीन् ' इति पदैर्देवनिषेधः प्रतीयते, ' स एष यज्ञायुधी यजमानोऽञ्जसा स्वर्लोकं गच्छति ' इति पदैस्तु देवसत्ता प्रतीयते इति तव सन्देहः, परं अविचारितं एतत्,

षष्ठसप्तमौ गणधरौ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२१] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२६]

यत एते त्वया मया च प्रत्यक्षं एव दृश्यन्ते देवाः, यत्तु वेदे 'मायोपमान्' इत्युक्तं तद्देवानां अपि अनित्यत्वसूचकं इति सप्तमः गणधरः ७ ॥

अथ नारकसन्देहात्,सन्दिग्धमकम्पितं विबुधमुख्यम्। ऊचे विभुर्यथास्थं,वेदार्थं किं न भावयसि? ॥ १ ॥ यस्मात् 'न ह वै प्रेत्य नरके नारकाः सन्ति' इत्यादिपदैर्नारकाभावः प्रतीयते, 'नारको वै एष जायते यः शूद्रान्नमश्नाति' इत्यादिपदैस्तु नारकसत्ता प्रतीयते इति तव सन्देहः, परं 'नह वै प्रेत्य नरके नारकाः सन्ति' इति कोऽर्थः?-प्रेत्य-परलोके केचिन्नारका मेर्वादिवत् शाश्वता न सन्ति, किन्तु यः कश्चित् पापमाचरति स नारको भवति, अथवा नारका मृत्वाऽनन्तरं नारकतया नोत्पद्यन्ते इति प्रेत्य नारका न सन्तीत्युच्यते, इति अष्टमो गणधरः ८ ॥

अथ पुण्ये संदिग्धं,द्विजमचलभ्रातरं विबुधमुख्यम्। ऊचे विभुर्यथास्थं,वेदार्थं किं न भावयसि? ॥ १ ॥ तव सन्देहकारणं तावत् अग्निभूत्युक्तं 'पुरुष एवेदं ग्निं सर्वं' इत्यादि पदं, तत्र उत्तरं अपि तथैव ज्ञेयं, तथा 'पुण्यः पुण्येन कर्मणा, पापः पापेन कर्मणा' इत्यादिवेदपदैः पुण्यपापयोः सिद्धिश्च, इति नवमः गणधरः ९ ॥

अथ परभवसन्दिग्धं,मेतार्यं नाम पण्डितप्रवरम्। ऊचे विभुर्यथार्थं,वेदार्थं किं न भावयसि? ॥ १ ॥ यत्तु च इन्द्रभूत्युक्तैः 'विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः' इत्यादिपदैः परलोकसन्देहो भवति, परं तेषां पदानां अर्थं अस्मदुक्तप्रकारेण विभावय यथा सन्देहो निवर्त्तते, इति दशमः गणधरः १० ॥

२०

२५

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२१] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२६]

निर्वाणविषयसन्देहसंयुतं च प्रभासनामानम् । ऊचे विभुर्यथास्थं वेदार्थं किं न भावयसि ? ॥ १ ॥ यतः– 'जरामर्यं वा यदग्निहोत्रं' अनेन पदेन निर्वाणाभावः प्रतीयते, कथं ?, यत् अग्निहोत्रं तत् जरामर्यं, कोऽर्थः ?– सर्वदा कर्त्तव्यं, अत्र अग्निहोत्रस्य सर्वदा कर्त्तव्यता उक्ता, अग्निहोत्रक्रिया च निर्वाणकारणं न भवति, शबलत्वात्, केषाञ्चिद्बन्धकारणं केषाञ्चिदुपकारकारणं इति, ततो मोक्षसाधकानुष्ठानक्रियाकालस्य अनुक्तत्वान्मोक्षो नास्ति इति मोक्षाभावः प्रतीयते, तथा 'द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये, परमपरं च, तत्र परं-सत्यज्ञानं, अनन्तरं-ब्रह्मेति' इत्यादिपदैर्मोक्षसत्ता प्रतीयते, इति तव सन्देहः, परं अविचारितं एतत्, यस्मात् 'जरामर्यं वा यदग्निहोत्रं' इत्यत्र वाशब्दोऽप्यर्थे स च भिन्नक्रमः, तथा च जरामर्यं यावत् अग्निहोत्रं अपि कुर्यात्, कोऽर्थः ?– कश्चित्स्वर्गार्थी यावज्जीवं अग्निहोत्रं कुर्यात्, कश्चिन्निर्वाणार्थी अग्निहोत्रं विहाय निर्वाणसाधकानुष्ठानमपि कुर्यात्, न तु नियमतोऽग्निहोत्रमेवेत्यपिशब्दार्थः, ततो निर्वाणसाधकानुष्ठानकालोऽप्युक्त एव, तस्मादस्ति निर्वाणं, इत्येकादशः गणधरः ११ ॥

एवं चतुश्चत्वारिंशच्छतानि द्विजाः प्रव्रजिताः, तत्र मुख्यानां एकादशानां त्रिपदीग्रहणपूर्वकं एकादशाङ्गचतुर्दशपूर्वरचना गणधरपदप्रतिष्ठा च, तत्र द्वादशाङ्गीरचनानन्तरं भगवांस्तेषां तदनुज्ञां करोति, शक्रश्च दिव्यं वज्रमयस्थालं दिव्यचूर्णानां भृत्वा त्रिभुवनस्वामिनः सन्निहितो भवति, ततः स्वामी रत्नमयसिंहासनादुत्थाय सम्पूर्णां चूर्णमुष्टिं गृह्णाति, ततो गौतमप्रमुखा एकादशापि गणधरा ईषदवनता अनुक्रमेण तिष्ठन्ति,

एकादशो गणधरः ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२१] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२६]

कल्प.सुबो-ख्या० ६ ॥११८॥

देवास्तूर्यध्वनिगीतादिनिरोधं विधाय तूष्णीकाः शृण्वन्ति, ततो भगवान् पूर्वं तावत् भणति–'गौतमस्य द्रव्य-गुणपर्यायैस्तीर्थं अनुजानामि' इति, चूर्णीश्च तन्मस्तके क्षिपति, ततो देवा अपि चूर्णपुष्पगन्धवृष्टिं तदुपरि कुर्वन्ति, गणं च भगवान् सुधर्मस्वामिनं धुरि व्यवस्थाप्यानुजानाति, इति गणधरवादः ॥(१२१)॥

(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (अट्ठिअग्गामं निस्साए) अस्थिकग्रामस्य निश्रया (पढमं अंतरावासं) प्रथमं वर्षारात्रं चतुर्मासी-तियावत् (वासावासं उवागए) वर्षासु वसनं उपागतः (चंपं च पिट्ठचंपं च निस्साए) ततः चंपायाः पृष्ठ-चम्पायाश्च निश्रया (तओ अंतरावासे) त्रीणि चतुर्मासकानि (वासावासं उवागए) वर्षावासार्थं उपागतः (वेसालिं नगरिं वाणिअगामं च निस्साए) वैशाल्याः नगर्याः वाणिज्यग्रामस्य च निश्रया (दुवालस अंत-रावासे) द्वादश चतुर्मासकानि (वासावासं उवागए) वर्षावासार्थं उपागतः (रायगिहं नगरं नालंदं च बाहिरिअं नीसाए) राजगृहस्य नगरस्य नालन्दायाश्च बाहिरिकायाः निश्रया (चउद्दस अंतरावासे) चतुर्दश चतुर्मासकानि (वासावासं उवागए) वर्षावासार्थं उपागतः, तत्र नालन्दा राजगृहनगरादुत्तरस्यां दिशि बाहिरिका–शाखापुरविशेषस्तत्र चतुर्दश वर्षारात्रान् उपागतः (छ मिहिलाए) षट् मिथिलायां नगर्यां (दो भद्दिआए) द्वे भद्रिकायां (एगं आलंभिआए) एकं आलम्भिकायां (एगं सावत्थीए) एकं श्रावस्त्यां (एगं पणिअभूमीए) एकं प्रणीतभूमौ, वज्रभूम्याख्यानार्यदेशे इत्यर्थः (एगं पावाए मज्झिमाए) एकं पापायां मध्य-

तीर्थानुज्ञा श्रीवीरचतु-र्मासकानि सू. १२२

२०

२५

॥११८॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२७]

मायां (हत्थिपालस्स रण्णो) हस्तिपालस्य राज्ञः (रज्जुगसभाए) रज्जुका–लेखकाः 'कारकुन' इति लोके प्रसिद्धास्तेषां शाला-सभा जीर्णा-अपरिभुज्यमाना तत्र भगवान् (अपच्छिमं अंतरावासं) अपश्चिमम्–अन्त्यं चतुर्मासकं (वासावासं उवागए) वर्षावासार्थं उपागतः, पूर्वं किल तस्या नगर्या 'अपापा' इति नामासीत् देवैस्तु 'पापा' इत्युक्तं, तत्र भगवान् कालगत इति ॥(१२२)॥

(तत्थ णं जे से पावाए मज्झिमाए) तत्र यस्मिन् वर्षे पापायां मध्यमायां (हत्थिपालस्स रण्णो) हस्तिपालस्य राज्ञः (रज्जुगसभाए) लेखकशालायां (अपच्छिमं अंतरावासं) अन्त्यं चतुर्मासकं (वासावासं उवागए) वर्षावासार्थं उपागतः ॥(१२३)॥

(तस्स णं अंतरावास्स) तस्य चतुर्मासकस्य मध्ये (जे से वासाणं) योऽसौ वर्षाकालस्य (चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे) चतुर्थः मासः सप्तमः पक्षः (कत्तिअबहुले) कार्त्तिकस्य कृष्णपक्षः (तस्स णं कत्तिअबहुलस्स) तस्य कार्त्तिककृष्णपक्षस्य (पण्णरसीपक्खेणं) पञ्चदशे दिवसे (जा सा चरमा रयणी) या सा चरमा रजनी (तं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे) तस्यां रजन्यां च श्रमणो भगवान् महावीरः (कालगए) कालगतः, कायस्थितिभवस्थितिकालाद्गतः (विइक्कंते) संसाराद्व्यतिक्रान्तः (समुज्जाए) समुद्यातः–सम्यग्–अपुनरावृत्त्या ऊर्ध्वं यातः (छिन्नजाइजरामरणबंधणे) छिन्नानि जातिजरामरणबन्धनानि–जन्मजरामरणकारणानि कर्माणि येन स तथा (सिद्धे) सिद्धः–साधितार्थः (बुद्धे) बुद्धः–तत्त्वार्थज्ञानवान् (मुत्ते)

अन्त्यं चतुर्मासकं सिद्धिः सू. १२३–४ ५ | १० | १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ भगवंत महावीरस्य निर्वाण-कल्याणक-वर्णनं आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२४] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२९]

मुक्तो भवोपग्राहिकर्मभ्यः (अंतगडे) अन्तकृत् सर्वदुःखानां (परिनिव्वुडे) परिनिर्वृतः सर्वसन्तापाभावात्, तथा च कीदृशो जातः ?-(सव्वदुक्खप्पहीणे) सर्वाणि दुःखानि शारीरमानसानि तानि प्रहीणानि यस्य स तथा, अथ भगवतो निर्वाणवर्षादीनां सैद्धान्तिकनामान्याह-(चंदे नामे से दोच्चे संवच्छरे) अथ यत्र भगवान्निर्वृतः स चन्द्रनामा द्वितीयः संवत्सरः (पीइवद्धणे मासे) प्रीतिवर्द्धन इति तस्य मासस्य कार्त्तिकस्य नाम (नंदिवद्धणे पक्खे) नंदिवर्द्धन इति तस्य पक्षस्य नाम (अग्गिवेसे नामं दिवसे) अग्निवेश्य इति तस्य दिवसस्य नाम (उवसमेत्ति पवुच्चइ) उपशम इति प्रोच्यते, उपशम इति तस्य द्वितीयं नामेत्यर्थः (देवानंदा नामं सा रयणी) देवानन्दा नाम्नी सा अमावास्या रजनी (निरतित्ति पवुच्चइ) निरतिः इत्यप्युच्यते नामान्तरेण (अच्चे लवे) अर्चनामा लवः (मुहुत्ते पाणू) मुहूर्त्तनामा प्राणः (थोवे सिद्धे) सिद्धनामा स्तोकः (नागे करणे) नागनामकं करणं, इदं च शकुन्यादिस्थिरकरणचतुष्टये तृतीयं करणं, अमावास्योत्तरार्द्धे हि एतदेव भवतीति (सव्वट्ठसिद्धे मुहुत्ते) सर्वार्थसिद्धनामा मुहूर्त्तः (साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं) स्वातिनामनक्षत्रेण चन्द्रयोगे उपागते सति भगवान् (कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे) कालगतः यावत् सर्वदुःखप्रक्षीणः ॥ ॥ अथ संवत्सरमासदिनरात्रिमुहूर्त्तनामानि चैवं सूर्यप्रज्ञप्तौ—

एकस्मिन् युगे पञ्च संवत्सरास्तेषां नामानि—चन्द्रः १ चन्द्रः २ अभिवर्द्धितः ३ चन्द्रः ४ अभिवर्द्धित ५-श्चेति संवत्सरनामानि। अभिनन्दनः १ सुप्रतिष्ठः २ विजयः ३ प्रीतिवर्द्धनः ४ श्रेयान् ५ शिशिरः ६ शोभनः ७ हैम-

२०

२५

॥११९॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२४] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१२९]

वान् ८ वसन्तः ९ कुसुमसम्भवः १० निदाघो ११ वनविरोधी १२ इति श्रावणादिद्वादशमासनामानि ॥ पूर्वाङ्गसिद्ध १ मनोरम २ मनोहर ३ यशोभद्र ४ यशोधर ५ सर्वकामसमृद्ध ६ इन्द्र ७ मूर्द्धाभिषिक्त ८ सौमनस ९ धनञ्जय १० अर्थसिद्ध ११ अभिजित १२ रत्याशन १३ शतञ्जय १४ अग्निवेश्य इति १५ पञ्चदश दिननामानि ॥ उत्तमा १ सुनक्षत्रा २ इलापत्या ३ यशोधरा ४ सौमनसी ५ श्रीसम्भूता ६ विजया ७ वैजयन्ती ८ जयन्ती ९ अपराजिता १० इच्छा ११ समाहारा १२ तेजा १३ अतितेजा १४ देवानन्दा १५ चेति पञ्चदश रात्रिनामानि ॥ रुद्रः १ श्रेयान् २ मित्रं ३ वायुः ४ सुप्रतीतो ५ ऽभिचन्द्रो ६ माहेन्द्रो ७ बलवान् ८ ब्रह्मा ९ बहुसत्य १० ऐशान ११ त्वष्टा १२ भावितात्मा १३ वैश्रवणो १४ वारुण १५ आनन्दो १६ विजयो १७ विजयसेनः १८ प्राजापत्य १९ उपशमो २० गन्धर्वो २१ ऽग्निवेश्यः २२ शतवृषभ २३ आतपवान् २४ अर्थवान् २५ ऋणवान् २६ भौमो २७ वृषभः २८ सर्वार्थसिद्धो २९ राक्षस ३० श्रेति त्रिंशन्मुहूर्त्तनामानि ॥(१२४)॥

(जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे) यस्यां रजन्यां श्रमणो भगवान् महावीरः (कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे) कालगतः यावत् सर्वदुःखप्रक्षीणः (सा णं रयणी बहूहिं देवेहिं देवीहि य) सा रजनी बहुभिः देवैः देवीभिश्च (ओवयमाणेहिं) स्वर्गात् अवपतद्भिः (उप्पयमाणेहि य) उत्पतद्भिश्च कृत्वा (उज्जोविया आविहुत्था) उद्योतवती अभवत् ॥(१२५)॥

(जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे) यस्यां रात्रौ श्रमणो भगवान् महावीरः (कालगए जाव सव-

देवागमनम् सू. १२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२६] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१३१]

दुक्खप्पहीणे) कालगतः यावत् सर्वदुःखप्रक्षीणः (सा णं रयणी बहूहिं देवेहिं देवीहि य) सा रात्रिः बहुभिः देवैः देवीभिश्च (ओवयमाणेहिं) अवपतद्भिः (उप्पयमाणेहिं) उत्पतद्भिश्च कृत्वा (उप्पिंजलगभाणभूआ) भृशं आकुला इव (कहकहगभूआ आविहुत्था) अव्यक्तवर्णकोलाहलमयी अभवत् ॥(१२६)॥

(जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे) यस्यां रात्रौ श्रमणो भगवान् महावीरः (कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे) कालगतः यावत् सर्वदुःखप्रक्षीणः (तं रयणिं च णं जिट्ठस्स) तस्यां च रजन्यां ज्येष्ठस्य, किंभूतस्य ?-(गोअमस्स) गोत्रेण गौतमस्य (इंदभूइस्स) इन्द्रभूतिनामकस्य (अणगारस्स अंतेवासिस्स) अनगारस्य शिष्यस्य (नायए पिज्जबंधणे वुच्छिन्ने) ज्ञातजे-श्रीमहावीरविषये प्रेमबन्धने-स्नेहबन्धने व्युच्छिन्ने-त्रुटिते सति (अणंते) अनन्तवस्तुविषये (अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने) अनुत्तरे यावत् केवलवरज्ञानदर्शने समुत्पन्ने, तच्चैवं-स्वनिर्वाणसमये देवशर्मणः प्रतिबोधनाय क्वापि ग्रामे स्वामिना प्रेषितः श्रीगौतमः तं प्रतिबोध्य पश्चादागच्छन् श्रीवीरनिर्वाणं श्रुत्वा वज्राहत इव क्षणं तस्थौ, बभाण च 'प्रसरति मिथ्यात्वतमो, गर्जन्ति कुतीर्थिकौशिका अद्य । दुर्भिक्षडमरवैरादिराक्षसाः प्रसरमेष्यन्ति ॥ १ ॥ राहुग्रस्तनिशाकरमिव गगनं दीपहीनमिव भवनम् । भरतमिदं गतशोभं, त्वया विनाऽद्य प्रभो ! जज्ञे ॥ २ ॥ कस्यांहिपीठे प्रणतः पदार्थान्, पुनः पुनः प्रश्नपदीकरोमि ? । कं वा भदन्तेति वदामि ? को वा, मां गौतमेत्यात्तगिराऽथ वक्ता ? ॥ ३ ॥ हा ! हा ! हा ! वीर ! किं कृतं ?, यदीदृशेऽवसरेऽहं दूरीकृतः, किं मांडकं मण्डयित्वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र गौतमस्वामिनः केवलज्ञानस्य वर्णनं क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२७] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१३२]

बालवत्तवाश्लेऽलगिष्यं ? किं केवलभागमंमार्गयिष्यं ? किं मुक्तौ सङ्कीर्णं अभविष्यत् ? किं वा तव भारोऽ- श्रीगौतम-
भविष्यद् यदेवं मां विमुच्य गतः, एवं च 'वीर वीर' इति कुर्वतो 'वी' इति मुखे लग्नं गौतमस्य, तथा च ह्रुं केवलसू. १२७
ज्ञातं–वीतरागा निःस्नेहा भवन्ति, ममैवायं अपराधो यन्मया तदा श्रुतोपयोगो न दत्तः, धिगिमं एकपाक्षिकं
स्नेहं, अलं स्नेहेन, एकोऽस्मि, नास्ति कश्चन मम, एवं सम्यक् साम्यं भावयतस्तस्य केवलमुत्पेदे–मुक्खमग्गपव- ५
ण्णाणं सिणेहो वज्जसिंखला । वीरे जीवंतए जाओ, गोअमो जं न केवली ॥१॥ प्रातःकाले इन्द्राद्यैर्महिमा कृतः,
अत्र कविः–'अहङ्कारोऽपि बोधाय, रागोऽपि गुरुभक्तये । विषादः केवलायाभूत्, चित्रं श्रीगौतमप्रभोः ॥ १ ॥
स च द्वादश वर्षाणि केवलिपर्यायं परिपाल्य दीर्घायुरितिकृत्वा सुधर्मस्वामिने गणं समर्प्य मोक्षं ययौ, सुधर्म-
स्वामिनोऽपि पश्चात् केवलोत्पत्तिः,सोऽप्यष्टौ वर्षाणि विहृत्यार्यजम्बूस्वामिनो गणं समर्प्य सिद्धिं गतः ॥(१२७)॥
(जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे) यस्यां रजन्यां श्रमणो भगवान् महावीरः (कालगए जाव
सव्वदुक्खप्पहीणे) कालगतः यावत् सर्वदुःखप्रक्षीणः (तं रयणिं च णं) तस्यामेव रजन्यां (नवमल्लई नवले- १०
च्छई कासीकोसलगा) नवमल्लकीजातीयाः–काशीदेशस्य राजानः, नवलेच्छकीजातीयाः–कोशलदेशस्य
राजानः (अट्ठारसवि गणरायाणो) ते च कार्यवशात् गणमेलापकं कुर्वन्ति इति गणराजा अष्टादश, ये
चेटकमहाराजस्य सामन्ताः श्रूयन्ते, (अमावासाए) ते तस्यां अमावास्यायां (पाराभोअं) पारं–संसारपारं १३

क.सु. २१ १ मोक्षमार्गप्रपन्नानां स्नेहो वज्रशृंखला । वीरे जीवति जातो गौतमो यन्न केवली ॥ १ ॥

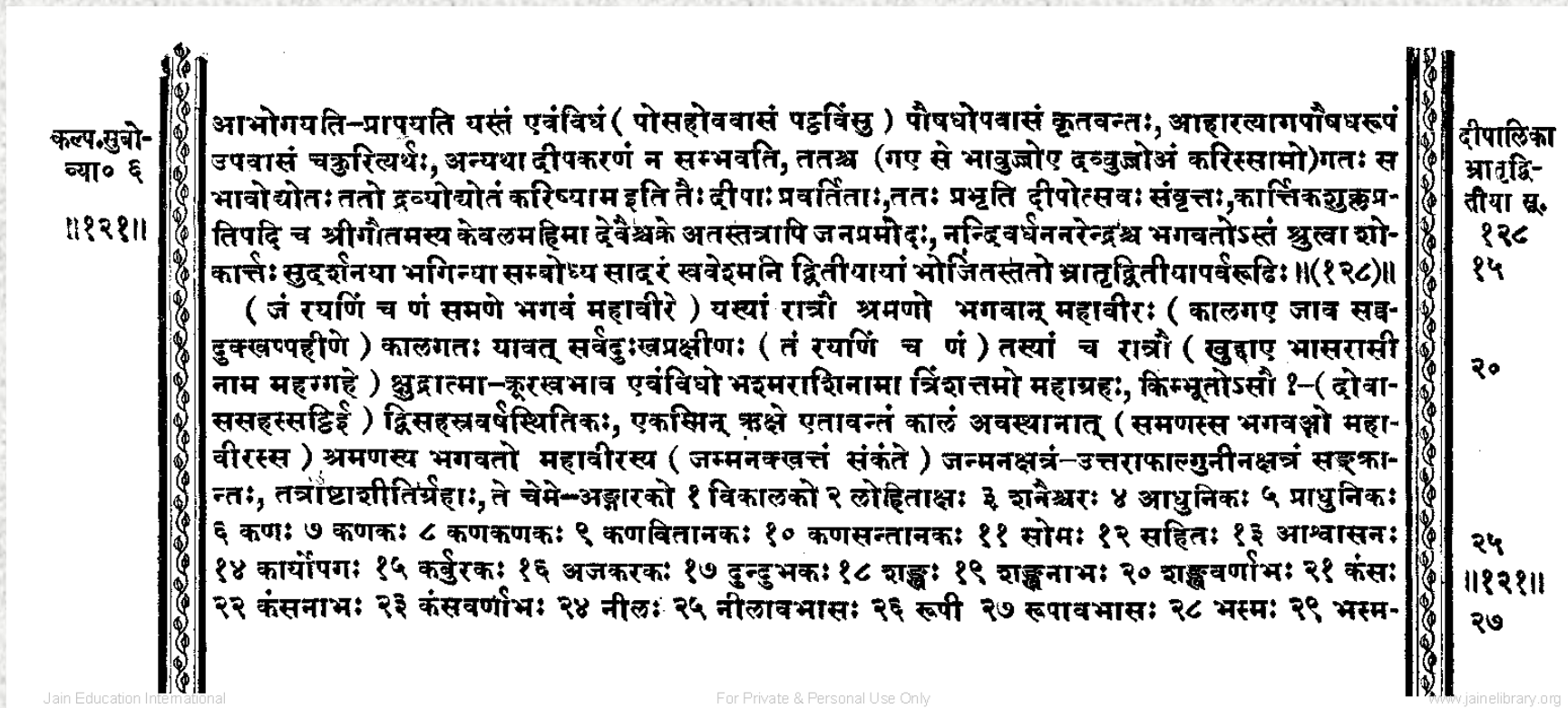
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ दिपालिका एवं भ्रातृ-द्वितीयाया: उत्पत्ति वर्णयते

प्रत सूत्रांक [१२८] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१३३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-व्या० ६ ॥१२१॥

आभोगयति-प्रापयति यस्तं एवंविधं (पोसहोववासं पट्ठविंसु) पौषधोपवासं कृतवन्तः, आहारत्यागपौषधरूपं उपवासं चक्रुरित्यर्थः, अन्यथा दीपकरणं न सम्भवति, ततश्च (गए से भावुज्जोए दव्वुज्जोअं करिस्सामो)गतः स भावोद्योतः ततो द्रव्योद्योतं करिष्याम इति तैः दीपाः प्रवर्तिताः,ततः प्रभृति दीपोत्सवः संवृत्तः,कार्त्तिकशुक्लप्रतिपदि च श्रीगौतमस्य केवलमहिमा देवैश्चके अतस्तत्रापि जनप्रमोदः, नन्दिवर्धननरेन्द्रश्च भगवतोऽस्तं श्रुत्वा शोकार्त्तः सुदर्शनया भगिन्या सम्बोध्य सादरं स्ववेश्मनि द्वितीयायां भोजितस्ततो भ्रातृद्वितीयापर्वरूढिः ॥(१२८)॥

(जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे) यस्यां रात्रौ श्रमणो भगवान् महावीरः (कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे) कालगतः यावत् सर्वदुःखप्रक्षीणः (तं रयणिं च णं) तस्यां च रात्रौ (खुद्दाए भासरासी नाम महग्गहे) क्षुद्रात्मा-क्रूरस्वभाव एवंविधो भस्मराशिनामा त्रिंशत्तमो महाग्रहः, किम्भूतोऽसौ ?-(दोवाससहस्सट्ठिई) द्विसहस्रवर्षस्थितिकः, एकस्मिन् ऋक्षे एतावन्तं कालं अवस्थानात् (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (जम्मनक्खत्तं संकंते) जन्मनक्षत्रं-उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रं सङ्क्रान्तः, तत्राष्टाशीतिर्ग्रहाः, ते चेमे-अङ्गारको १ विकालको २ लोहिताक्षः ३ शनैश्चरः ४ आधुनिकः ५ प्राधुनिकः ६ कणः ७ कणकः ८ कणकणकः ९ कणवितानकः १० कणसन्तानकः ११ सोमः १२ सहितः १३ आश्वासनः १४ कार्योपगः १५ कर्बुरकः १६ अजकरकः १७ दुन्दुभकः १८ शङ्खः १९ शङ्खनाभः २० शङ्खवर्णाभः २१ कंसः २२ कंसनाभः २३ कंसवर्णाभः २४ नीलः २५ नीलावभासः २६ रूपी २७ रूपावभासः २८ भस्मः २९ भस्म-

दीपालिका भ्रातृद्वितीया सू. १२८ १५ २० २५ ॥१२१॥ २७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१२९] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१३४]

राशिः ३० तिलः ३१ तिलपुष्पवर्णः ३२ दकः ३३ दकवर्णः ३४ कायः ३५ बन्ध्यः ३६ इन्द्राग्निः ३७ धूमकेतुः ३८ हरिः ३९ पिङ्गलः ४० बुधः ४१ शुक्रः ४२ बृहस्पतिः ४३ राहुः ४४ अगस्तिः ४५ माणवकः ४६ कामस्पर्शः ४७ धुरः ४८ प्रमुखः ४९ विकटः ५० विसन्धिकल्पः ५१ प्रकल्पः ५२ जटालः ५३ अरुणः ५४ अग्निः ५५ कालः ५६ महाकालः ५७ स्वस्तिकः ५८ सौवस्तिकः ५९ वर्धमानः ६० प्रलम्बः ६१ नित्यालोकः ६२ नित्योद्योतः ६३ स्वयम्प्रभः ६४ अवभासः ६५ श्रेयस्करः ६६ क्षेमङ्करः ६७ आभङ्करः ६८ प्रभङ्करः ६९ अरजाः ७० विरजाः ७१ अशोकः ७२ वीतशोकः ७३ वितताः ७४ विवस्त्राः ७५ विशालः ७६ शालः ७७ सुव्रतः ७८ अनिवृत्तिः ७९ एकजटी ८० द्विजटी ८१ करः ८२ करकः ८३ राजा ८४ अर्गलः ८५ पुष्पः ८६ भावः ८७ केतुः ८८ इत्यष्टाशीतिर्ग्रहाः ॥(१२९)॥

(जप्पभिइं च णं से खुद्दाए भासरासी महग्गहे) यतः प्रभृति स क्षुद्रात्मा भस्मराशिनामा महाग्रहः (दोवाससहस्सठिई) द्विवर्षसहस्रस्थितिः (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (जम्मनक्खत्तं संकंते) जन्मनक्षत्रं सङ्क्रान्तः (तप्पभिइं च णं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य) ततः प्रभृति श्रमणानां-तपस्विनां निर्ग्रन्थानां-साधूनां निर्ग्रन्थीनां-साध्वीनां च (नो उदिए उदिए पूआसक्कारे पवत्तइ) उदितोदितः-उत्तरोत्तरं वृद्धिमान् ईदृशः पूजा-वन्दनादिकः सत्कारो-वस्त्रदानादिबहुमानः स न प्रवर्त्तते, अत एव शक्रेण स्वामी विज्ञप्तो-यत् क्षणं आयुर्वर्द्धयत येन भवत्सु जीवत्सु भवज्जन्मनक्षत्रं सङ्क्रान्तो भस्मराशिग्रहो भवच्छासनं पीडयितुं न शक्ष्यति, ततः प्रभुणोक्तं-न खलु शक्र! कदाचिदपि इदं भूतपूर्वं यत्

भस्मग्रहाक्रमणं पूजाहानिः सू. १२९-१३० ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१३०] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१३५]

कल्प.सुबो-ध्या० ६ ॥१२२॥

प्रक्षीणं आयुर्जिनेन्द्रैरपि वर्द्धयितुं शक्यते, ततोऽवश्यंभाविनी तीर्थबाधा भविष्यत्येव, किन्तु षडशीतिवर्षायुषि कल्किनि कुन्थूपतौ त्वया निगृहीते सति, वर्षसहस्रद्वये पूर्णे मज्जन्मनक्षत्राद् भस्मग्रहे व्यतिक्रान्ते च त्वत्स्थापितकल्किपुत्रधर्मदत्तराज्यादारभ्य साधुसाध्वीनां उदितोदितः पूजासत्कारो भविष्यतीति ॥(१३०)॥ सूत्रकारा अपि तदेवाहुः–(जया णं से खुद्दाए भासरासी महग्गहे) यदा च स क्षुद्रात्मा भस्मराशिर्महाग्रहः (दोवाससहस्सठिई) द्विवर्षसहस्रस्थितिकः (जाव जम्मनक्खत्ताओ विइक्कंते भविस्सइ) यावत् भगवज्जन्मनक्षत्रात् व्यतिक्रान्तो भविष्यति–उत्तरिष्यतीत्यर्थः (तया णं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य) तदा श्रमणानां निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां च (उदिए उदिए पूआसक्कारे भविस्सइ) उदितोदितः पूजासत्कारो भविष्यति ॥(१३१)॥ (जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे) यस्यां रात्रौ श्रमणो भगवान् महावीरः (कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे) कालगतः यावत् सर्वदुःखप्रक्षीणः (तं रयणिं च णं कुंथुअणुद्धरी नाम समुप्पन्ना) तस्यां रात्रौ कुन्थुः–प्राणिजातिः या उद्धर्तुं न शक्यते एवंविधा समुत्पन्ना (जा ठिया अचलमाणा) या स्थिता अत एव अचलन्ती सती (छउमत्थाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य) छद्मस्थानां निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां च (नो चक्खुफासं हव्वमागच्छइ) नैव चक्षुःस्पर्शं–दृष्टिपथं शीघ्रं आगच्छति (जा अट्ठिआ चलमाणा) या च अस्थिता अत एव चलन्ती (छउमत्थाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य) छद्मस्थानां निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां च (चक्खुफासं हव्वमागच्छइ) चक्षुर्विषयं शीघ्रं आगच्छति ॥ (१३२) ॥ (जं पासित्ता बहूहिं निग्गंथेहिं

भस्मग्रहोत्पत्तिः सू. १३१-१३२

२०

२५

॥१२२॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१३३] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१३८]

निग्गंथीहि य) यां कुन्थुं अणुद्धरीं दृष्ट्वा बहुभिः निर्ग्रन्थैः–साधुभिर्बहीभिः निर्ग्रन्थीभिश्च–साध्वीभिः (भत्ताइं पच्चक्खायाइं) भक्तानि प्रत्याख्यातानि, अनशनं कृतमित्यर्थः(से किमाहु भंते !)शिष्यः पृच्छति–किमाहुर्भदन्ताः-तत् किं कारणं यद् भक्तानि प्रत्याख्यातानि ?, गुरुराह–(अज्जप्पभिइ संजमे दुराराहए भविस्सइ) अद्य प्रभृति संयमो दुराराध्यो भविष्यति, पृथिव्या जीवाकुलत्वात् संयमयोग्यक्षेत्राभावात्, पाखण्डिसंकराच्च ॥(१३३)॥

(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (इंदभूइपामुक्खाओ) इन्द्रभूतिप्रमुखाणि (चउद्दससमणसाहस्सीओ) चतुर्दश श्रमणानां सहस्राणि (उक्कोसिआ समणसंपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती श्रमणसम्पदा अभवत् ॥ (१३४)॥

(समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (अज्जचंदणापामुक्खाओ) आर्यचन्द-नाप्रमुखाणि (छत्तीसं अज्जियासाहस्सीओ) षट्त्रिंशत् आर्यिकाणां सहस्राणि (उक्कोसिया अज्जियासंपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती आर्यिकासम्पदा अभवत् ॥(१३५)॥ (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (संखसयगपामुक्खाणं) शङ्खशतकप्रमुखाणां (समणोवासगाणं) श्रमणोपासकानां-श्रावकाणां (एगा सयसाहस्सीओ) एका शतसाहस्री–एकं लक्षं (अउणट्ठिं च सहस्सा) एकोनषष्टिश्च सहस्राः (उक्कोसिया समणोवासगाणं संपया हुत्था) उत्कृष्टा श्रमणोपासकानां सम्पदा अभवत् ॥(१३६)॥

(समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (सुलसारेवइपामुक्खाणं) सुलसारेवती-

संयताद्यनशनं सू. १३३ वीर श्रमणादिपर्षत् ५ १० १४

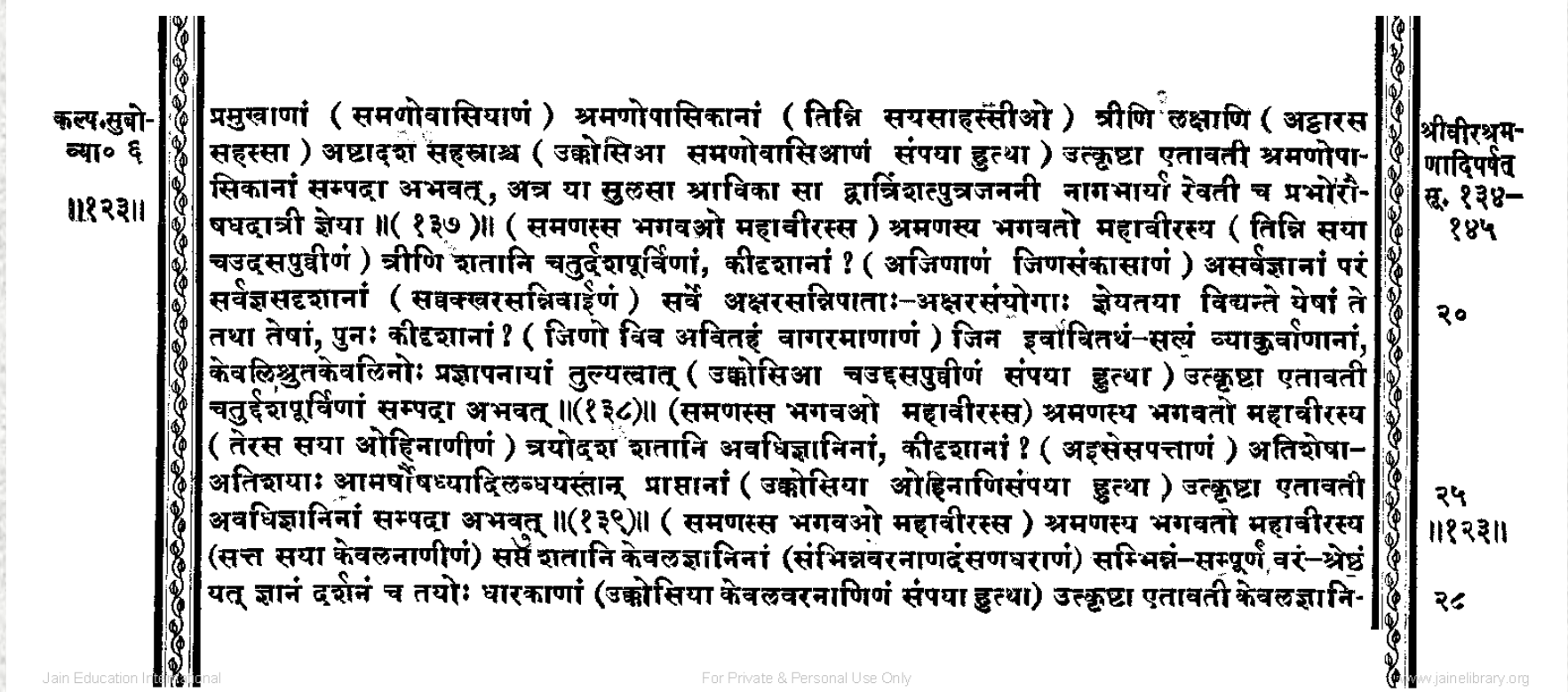
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** भगवंत महावीरस्य शिष्य-शिष्यादि परिवाराणां वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [१३७] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१४२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-व्या० ६ ॥१२३॥

प्रमुखाणां (समणोवासियाणं) श्रमणोपासिकानां (तिन्नि सयसाहस्सीओ) त्रीणि लक्षाणि (अट्ठारस सहस्सा) अष्टादश सहस्राश्च (उक्कोसिआ समणोवासिआणं संपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती श्रमणोपासिकानां सम्पदा अभवत्, अत्र या सुलसा श्राविका सा द्वात्रिंशत्पुत्रजननी नागभार्या रेवती च प्रभोरौषधदात्री ज्ञेया ॥(१३७)॥ (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (तिन्नि सया चउद्दसपुव्वीणं) त्रीणि शतानि चतुर्दशपूर्विणां, कीदृशानां ? (अजिणाणं जिणसंकासाणं) असर्वज्ञानां परं सर्वज्ञसदृशानां (सव्वक्खरसन्निवाईणं) सर्वे अक्षरसन्निपाताः–अक्षरसंयोगाः ज्ञेयतया विद्यन्ते येषां ते तथा तेषां, पुनः कीदृशानां ? (जिणो विव अवितहं वागरमाणाणं) जिन इवावितथं–सत्यं व्याकुर्वाणानां, केवलिश्रुतकेवलिनोः प्रज्ञापनायां तुल्यत्वात् (उक्कोसिआ चउद्दसपुव्वीणं संपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती चतुर्दशपूर्विणां सम्पदा अभवत् ॥(१३८)॥ (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (तेरस सया ओहिनाणीणं) त्रयोदश शतानि अवधिज्ञानिनां, कीदृशानां ? (अइसेसपत्ताणं) अतिशेषा–अतिशयाः आमर्षौषध्यादिलब्धयस्तान् प्राप्तानां (उक्कोसिया ओहिनाणिसंपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती अवधिज्ञानिनां सम्पदा अभवत् ॥(१३९)॥ (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (सत्त सया केवलनाणीणं) सप्त शतानि केवलज्ञानिनां (संभिन्नवरनाणदंसणधराणं) सम्भिन्नं–सम्पूर्णं वरं–श्रेष्ठं यत् ज्ञानं दर्शनं च तयोः धारकाणां (उक्कोसिया केवलवरनाणिणं संपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती केवलज्ञानि-

श्रीवीरश्रमणादिपर्षत् सू. १३४–१४५

२०

२५

॥१२३॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१४१] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१४६]

सम्पदा अभवत् ॥(१४०)॥(समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (सत्त सया वेउव्वीणं) सप्त शतानि वैक्रियलब्धिमतां मुनीनां, कीदृशानां ?(अदेवाणं देविड्ढिपत्ताणं) अदेवानामपि देवर्द्धिविकुर्वणासमर्थानां इति भावः (उक्कोसिया वेउव्विसंपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती वैक्रियलब्धिमत्सम्पदा अभवत् ॥(१४१)॥

(समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (पंच सया विउलमईणं) पञ्च शतानि विपुलमतीनां, कीदृशानां ? (अड्ढाइज्जेसु दीवेसु दोसु अ समुद्देसु) अर्धतृतीयेषु द्वीपेषु द्वयोः समुद्रयोश्च विषये (सन्नीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं) सञ्ज्ञिनां पञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्तकानां च (मणोगए भावे जाणमाणाणं) मनसि गतान् भावान् जानतां(उक्कोसिआ विउलमईणं संपया हुत्था)उत्कृष्टा एतावती विपुलमतीनां सम्पदा अभवत्, तत्र विपुलमतयो हि घटोऽनेन चिन्तितः स च सौवर्णः पाटलिपुत्रकः शारदो नीलवर्ण इत्यादिसर्वविशेषोपेतं सर्वतः सार्द्धद्वयङ्गुलाधिके मनुष्यक्षेत्रे स्थितानां सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां मनोगतं पदार्थं जानन्ति, ऋजुमतयस्तु सर्वतः सम्पूर्णमनुष्यक्षेत्रस्थितानां सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां मनोगतं सामान्यतो घटादिपदार्थमात्रं जानन्तीति विशेषः ॥ (१४२) ॥

(समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (चत्तारि सया वाईणं) चत्वारि शतानि वादिमुनीनां, कीदृशानां ? (सदेवमणुआसुराए परिसाए वाए) देवमनुष्यासुरसहितायां पर्षदि वादे

१ सार्धद्वयाङ्गुलहीने इत्यौपपातिकादौ, नन्द्यादिषु त्वंत्रोक्तवत्, विपुलमतेर्मनुष्यक्षेत्रमित्यपि तत्र ।

श्रीवीरश्रमणादिपर्षत्सू. १३४–१४५ ५ १० १३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१४४] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१४९]

कल्प.सुबो-व्या० ६ ॥१२४॥

(अपराजियाणं) अपराजितानां (उक्कोसिया वाइसंपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती वादिसम्पदा अभवत् ॥(१४३)॥ (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (सत्त अंतेवासिसयाइं सिद्धाइं) सप्त शिष्यशतानि सिद्धिं गतानि (जाव सव्वदुक्खप्पहीणाइं) यावत् सर्वदुःखप्रक्षीणानि (चउद्दस अज्जियासयाइं सिद्धाइं) चतुर्दश आर्यिकाशतानि सिद्धौ गतानि ॥(१४४)॥ (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (अट्ठसया अणुत्तरोववाइयाणं) अष्ट शतानि अनुत्तरोपपातिकानां–अनुत्तरविमानोत्पन्नमुनीनां, कीदृशानां ? (गइकल्लाणाणं) गतौ–आगामिन्यां मनुष्यगतौ कल्याणं–मोक्षप्राप्तिलक्षणं येषां ते तथा तेषां, पुनः कीदृशानां ? (ठिइकल्लाणाणं) स्थितौ–देवभवेऽपि कल्याणं येषां ते तथा तेषां, वीतरागप्रायत्वात्, अत एव (आगमेसिभद्दाणं) आगमिष्यद्भद्राणां, आगामिभवे सेत्स्यमानत्वात् (उक्कोसिआ अणुत्तरोववाइयाणं संपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती अनुत्तरोपपातिनां सम्पदा अभवत् ॥(१४५)॥

(समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (दुविहा अंतगडभूमी हुत्था) द्विविधा अन्तकृतो–मोक्षगामिनस्तेषां भूमिः–कालोऽन्तकृद्भूमिः अभवत्, तदेव द्विविधत्वं दर्शयति–(तंजहा) तद्यथा–(जुगंतगडभूमी य परियायंतगडभूमी य) युगान्तकृद्भूमिः पर्यायान्तकृद्भूमिश्च, तत्र युगानि–कालमानविशेषास्तानि च क्रमवर्तीनि तत्साधर्म्याद्ये क्रमवर्त्तिनो गुरुशिष्यप्रशिष्यादिरूपाः पुरुषास्तेऽपि युगानि तैः प्रमिता अन्तकृद्भूमिर्या सा युगान्तकृद्भूमिः, पर्यायः–प्रभोः केवलित्वकालस्तं आश्रित्य अन्तकृद्भूमिः पर्याया-

श्रीवीरस्वान्तकृद्भूमिः सू. १४६ १५ २० २५ ॥१२४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१४६] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१५१]

न्तकृद्भूमिः, तत्रायां निर्दिशति–(जाव तचाओ पुरिसजुगाओ जुगंतगडभूमी) इह पञ्चमी द्वितीयार्थे ततो यावत् तृतीयं पुरुष एव युगं पुरुषयुगं–जम्बूस्वामिनं यावद् युगान्तकृद्भूमिः (चउवासपरियाए अंतमकासी) ज्ञानोत्पत्त्यपेक्षया चतुर्वर्षपर्याये च भगवति अन्तमकार्षीत्–कश्चित् केवली मोक्षं अगमत्, प्रभोर्ज्ञानानन्तरं चतुर्षु वर्षेषु मुक्तिमार्गो वहमानो जातो, जम्बूस्वामिनं यावच्च मुक्तिमार्गो वहमानः स्थित इति भावः ॥(१४६)॥

(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (तीसं वासाइं) त्रिंशद्वर्षाणि (अगारवासमज्झे वसित्ता) गृहस्थावस्थामध्ये उषित्वा (साइरेगाइं दुवालस वासाइं) समधिकानि द्वादश वर्षाणि (छउमत्थपरियागं पाउणित्ता) छद्मस्थपर्यायं पालयित्वा (देसूणाइं तीसं वासाइं) किञ्चिदूनानि त्रिंशद्वर्षाणि (केवलिपरियागं पाउणित्ता) केवलिपर्यायं पालयित्वा (बायालीसं वासाइं) द्विचत्वारिंशद्वर्षाणि (सामन्नपरियागं पाउणित्ता) चारित्रपर्यायं पालयित्वा (बावत्तरि वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता) द्विसप्ततिवर्षाणि सर्वायुः पालयित्वा (खीणे वेयणिज्जाउनामगुत्ते) क्षीणेषु सत्सु वेदनीय १ आयु २ नाम ३ गोत्रेषु ४ चतुर्षु भवोपग्राहिकर्मसु (इमीसे ओसप्पिणीए) अस्यां अवसर्पिण्यां (दूसमसुसमाए समाए) दुष्षमसुषमा इति नामके चतुर्थे अरके (बहुविइक्कंताए) बहु व्यतिक्रान्ते सति (तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहिं सेसेहिं) त्रिषु वर्षेषु सार्द्धाष्टसु च मासेषु शेषेषु सत्सु (पावाए मज्झिमाए) पापायां मध्यमायां (हत्थिवालस्स रन्नो) हस्तिपालस्य राज्ञः (रज्जुगसभाए) लेखकसभायां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१४७] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१५२]

कल्प.सुबो-व्या० ६ ॥१२५॥

(एगे अबीए) एकः सहायविरहात् अद्वितीयः–एकाकी एव, नतु ऋषभादिवद्दशसहस्रादिपरिवार इति, अत्र कविः–यन्न कश्चन मुनिस्त्वया समं, मुक्तिमापदितरैर्जिनैरिव । दुष्षमासमयभाविलिङ्गिनां, व्याङ्गि तेन गुरु-निर्व्यपेक्षता ॥ १ ॥ (छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं) षष्ठेन भक्तेन जलरहितेन (साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवा-गएणं) स्वातिनक्षत्रेण सह चन्द्रयोग उपागते सति (पच्चूसकालसमयंसि) प्रत्यूषकाले समये–चतुर्घटिका-वशेषायां रात्रौ (संपलिअंकनिसन्ने) संपल्यङ्कासनेन निषण्णः–पद्मासननिविष्टः (पणपन्नं अज्झयणाइं कल्लाणफलविवागाइं) पञ्चपञ्चाशदध्ययनानि कल्याणं–पुण्यं तस्य फलविपाको येषु तानि कल्याणफलविपा-कानि (पणपन्नं अज्झयणाइं पावफलविवागाइं) पञ्चपञ्चाशत् अध्ययनानि पापफलविपाकानि (छत्तीसं अपुट्ठवागरणाइं) षट्त्रिंशत् अपृष्टव्याकरणानि–अपृष्टान्युत्तराणि (वागरित्ता) व्याकृत्य–कथयित्वा (पहाणं नाम अज्झयणं) प्रधानं नाम एकं मरुदेव्यध्ययनं (विभावेमाणे) विभावयन् (कालगए) भगवान् काल-गतः (विइक्कंते) संसाराद्व्यतिक्रान्तः (समुज्जाए) सम्यग् ऊर्ध्वं यातः (छिन्नजाइजरामरणबंधणे) छिन्नानि जातिजरामरणबन्धनानि यस्य स तथा (सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिनिव्वुडे) सिद्धः बुद्धः मुक्तः कर्मणामन्तकृत् सर्वसन्तापरहितः (सव्वदुक्खप्पहीणे) सर्वदुःखानि प्रक्षीणानि यस्य स तथा ॥(१४७)॥ अथ भगवतो निर्वाणकालस्य पुस्तकलिखनाद्धिकालस्य च अन्तरमाह—

(समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (जाव सव्वदुक्खपहीणस्स) यावत्

श्रीवीरगृह-वासादि सू. १४७ २० २५ ॥१२५॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१४८] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१५३]

सर्वदुःखप्रक्षीणस्य (नव वाससयाइं विइक्कंताइं) नव वर्षशतानि व्यतिक्रान्तानि (दसमस्स य वाससयस्स) दशमस्य च वर्षशतस्य (अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ) अयं अशीतितमः संवत्सरः कालो गच्छति, यद्यपि एतस्य सूत्रस्य व्यक्त्या भावार्थो न ज्ञायते तथापि यथा पूर्वटीकाकारैर्व्याख्यातं तथा व्याख्यायते, तथाहि—अत्र केचिद्वदन्ति-यत्कल्पसूत्रस्य पुस्तकलिखनकालज्ञापनाय इदं सूत्रं श्रीदेवर्धिगणिक्षमाक्षमणैर्लिखितं, तथा चायमर्थो-यथा श्रीवीरनिर्वाणादशीत्यधिकनववर्षशतातिक्रमे पुस्तकारूढः सिद्धान्तो जातस्तदा कल्पोऽपि पुस्तकारूढो जात इति, तथोक्तं—वल्लहिपुरंमि नयरे, देवड्ढिपमुहसयलसङ्घेहिं। पुत्थे आगमलिहिओ, नवसयअसीआओ वीराओ ॥ १ ॥ अन्ये वन्दति—नवशतअशीतिवर्षे, वीरात् सेनाङ्गजार्थमानन्दे। सङ्घसमक्षं समहं, प्रारब्धं वाचितुं विज्ञैः ॥ १ ॥ इत्यार्षत्वाच्यवचनात् श्रीवीरनिर्वाणादशीत्यधिकनववर्षशतातिक्रमे कल्पस्य सभासमक्षं वाचना जाता तां ज्ञापयितुं इदं सूत्रं न्यस्तमिति, तत्त्वं पुनः केवलिनो विदन्तीति (वायणंतरे पुण अयं तेणउए संवच्छरे काले गच्छइ इति दीसइ) वाचनान्तरे पुनरयं त्रिनवतितमः संवत्सरः कालो गच्छतीति दृश्यते, अत्र केचिद्वदन्ति-वाचनान्तरे कोऽर्थः?-प्रत्यन्तरे 'तेणउए' इति दृश्यते, यत् कल्पस्य पुस्तके लिखनं पर्षदि वाचनं वा अशीत्यधिकनववर्षशतातिक्रमे इति क्वचित् पुस्तके लिखितं तत्पु-

१ वल्लभीपुरे नगरे देवर्द्धिप्रमुखसकलसङ्घैः। पुस्तके आगमो लिखितो नवशताशीतौ वीरात्॥ २ ध्रुवसेनस्य नामान्तरमिदं सेनाङ्गजनामा पुत्र इति तु निरक्षरवचः।

वीरमोक्ष-वाचनान्तरं सू. १४८

५ १० १२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४८] गाथा ॥२..॥ दीप अनुक्रम [१५३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-धि० ६ ॥१२६॥

स्तकान्तरे त्रिनवतिवर्षाधिकनवशतवर्षातिक्रमे दृश्यते इति भावः, अन्ये पुनर्वदन्ति–अयं अशीतितमे संवत्सरे इति कोऽर्थः?–पुस्तके कल्पलिखनस्य हेतुभूतः अयं श्रीवीरात् दशमशतस्य अशीतितमसंवत्सरलक्षणः कालो गच्छति, 'वायणंतरे' इति कोऽर्थः?–एकस्याः पुस्तकलिखनरूपाया वाचनाया अन्यत् पर्षदि वाचनरूपं यद्वाचनान्तरं तस्य पुनर्हेतुभूतो दशमशतस्य अयं त्रिनवतितमः संवत्सरः, तथा चायमर्थः–नवशताशीतितमवर्षे कल्पस्य पुस्तके लिखनं, नवशतत्रिनवतितमवर्षे च कल्पस्य पर्षद्वाचनेति, तथोक्तं श्रीमुनिसुन्दरसूरिभिः स्वकृतस्तोत्ररत्नकोशे—वीरात्त्रिनन्दाङ्क (९९३) शरत्वचीकरत्, त्वच्चैत्यपूते ध्रुवसेनभूपतिः। यस्मिन् महैः संसदि कल्पवाचनामाद्यां तदानन्दपुरं न कः स्तुते?॥ १॥ पुस्तकलिखनकालस्तु यथोक्तः प्रतीत एव—'वल्लहीपुरंमि नयरे' इत्यादिवचनात्, तत्त्वं पुनः केवलिनो विदन्तीति॥ १४८॥

वीरमोक्ष-वाचनान्तरं सू. १४८ १५ २० ॥१२६॥

इति महोपाध्यायश्रीकीर्तिविजयगणिशिष्योपाध्यायश्रीविनयविजयगणिविरचितायां कल्पसुबोधिकायां षष्ठः क्षणः समाप्तः।
ग्रन्थाग्रम् १००७। षण्णामपि व्याख्यानानां ग्रन्थाग्रम् ॥ ४२३२ ॥ श्रीरस्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षष्ठं व्याख्यानं समाप्तं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१४९] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१५४]

॥ अथ सप्तमं व्याख्यानं प्रारभ्यते ॥

श्रीपार्श्वकल्याणकानि सू. १४९

अथ जघन्यमध्यमोत्कृष्टवाचनाभिः श्रीपार्श्वचरित्रमाह–(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (पासे अरहा पुरिसादाणीए) पार्श्वनामा अर्हन् पुरुषश्चासौ आदानीयश्च आदेयवाक्यतया आदेयनामतया च पुरुषादानीयः पुरुषप्रधान इत्यर्थः (पंचविसाहे होत्था) पञ्चसु विशाखा यस्य स पञ्चविशाखः अभवत् (तंजहा) तद्यथा (विसाहाहिं चुए, चइत्ता गब्भं वक्कंते) विशाखायां च्युतः च्युत्वा गर्भे उत्पन्नः १ (विसाहाहिं जाए) विशाखायां जातः २ (विसाहाहिं मुंडे भवित्ता) विशाखायां मुण्डो भूत्वा (अगाराओ अणगारियं पव्वइए) अगारान्निष्क्रम्य साधुतां प्रतिपन्नः ३ (विसाहाहिं अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए) विशाखायां अनन्ते अनुपमे निर्व्याघाते (निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने) समस्तावरणरहिते समस्ते प्रतिपूर्णे (केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने) एवंविधे केवलवरज्ञानदर्शने समुत्पन्ने ४ (विसाहाहिं परिनिव्वुडे) विशाखायां निर्वाणं प्राप्तः ५ ॥ (१४९) ॥

(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (पासे अरहा पुरिसादाणीए) पार्श्वः अर्हन् पुरुषादानीयः (जे से गिम्हाणं पढमे मासे) योऽसौ उष्णकालस्य प्रथमो मासः (पढमे पक्खे) प्रथमः

क.सु. २२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तमं व्याख्यानं आरभ्यते

*** अथ श्री पार्श्वनाथ-चरित्रं संक्षेपेण कथयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१५०] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१५५]

कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१२७॥

पक्षः(चित्तबहुले) चैत्रस्य बहुलपक्षः (तस्स णं चित्तबहुलस्स चउत्थीपक्खेणं) तस्य चैत्रबहुलस्य चतुर्थीदिवसे (पाणयाओ कप्पाओ) प्राणतनामकात् दशमकल्पात्, कीदृशात् ? (वीसंसागरोवमठिइयाओ) विंशतिः सागरोपमाणि स्थितिः–आयुःप्रमाणं यत्र ईदृशात् (अणंतरं चयं चइत्ता) अनन्तरं दिव्यशरीरं त्यक्त्वा (इहेव जंबुद्दीवे दीवे) अस्मिन्नेव जम्बूद्वीपे द्वीपे (भारहे वासे) भरतक्षेत्रे (वाणारसीए नयरीए) वाणारस्यां नगर्यां (आससेणस्स रन्नो) अश्वसेनस्य राज्ञः (वामाए देवीए) वामायाः देव्याः (पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि) पूर्वापररात्रिसमये-मध्यरात्रौ इत्यर्थः (विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं) विशाखायां नक्षत्रे चन्द्रयोगं उपागते सति (आहारवक्कंतीए) दिव्याहारत्यागेन (भववक्कंतीए) दिव्यभवत्यागेन (सरीरवक्कंतीए) दिव्यशरीरत्यागेन (कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते) कुक्षौ गर्भतया व्युत्क्रान्त—उत्पन्नः ॥ (१५०) ॥

(पासे णं अरहा पुरिसादाणीए) पार्श्वः अर्हन् पुरुषादानीयः (तिन्नाणोवगए आविहुत्था) त्रिज्ञानोपगतः आसीत् (तंजहा) तथथा (चइस्सामित्ति जाणइ) च्योष्ये इति जानाति (तेणं चेवं अभिलावेणं) तेनैव पूर्वोक्तपाठेन (सुविणदंसणविहाणेणं) स्वप्नदर्शनस्वप्नफलप्रश्नप्रमुखविधानेन (सव्वं जाव निअगं गिहं अणुपविट्ठा) सर्वं वाच्यं यावत् निजं गृहं वामादेवी प्राविशत् (जाव सुहंसुहेणं तं गब्भं परिवहइ) यावत् सुखंसुखेन तं गर्भं परिपालयति ॥ (१५१) ॥

श्रीपार्श्वचरित्रं सू.१५० गर्भपोषणम् सू. १५१ १५ २० ॥१२७॥ २४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१५२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१५७]

(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (पासे अरहा पुरिसादाणीए) पार्श्वः अर्हन् पुरुषादानीयः (जे से हेमंताणं) योऽसौ शीतकालस्य (दुचे मासे तचे पक्खे) द्वितीयो मासः तृतीयः पक्षः (पोसबहुले) पौषबहुलः (तस्स णं पोसबहुलस्स दसमीपक्खेणं) तस्य पौषबहुलस्य दशमीदिवसे (नवण्हं मासाणं) नवसु मासेषु (बहुपडिपुन्नाणं) बहुप्रतिपूर्णेषु सत्सु (अद्धट्ठमाणं राइंदिआणं) अर्धाष्टसु च अहोरात्रेषु (विइक्कंताणं) व्यतिक्रान्तेषु सत्सु (पुवरत्तावरत्तकालसमयंसि) पूर्वापररात्रिसमये-मध्यरात्रौ इत्यर्थः (विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं) विशाखायां नक्षत्रे चन्द्रयोगे उपागते सति (आरोग्गाऽऽरोग्गं दारयं पयाया) आरोग्या वामा आरोग्यं दारकं प्रजाता ॥ (१५२) ॥

श्रीपार्श्वस्य जन्मतदुत्सवः नामकरणं च सू. १५२–४ ५

(जं रयणिं च णं) यस्यां रजन्यां (पासे अरहा पुरिसादाणीए जाए) पार्श्वः अर्हन् पुरुषादानीयः जातः (सा णं रयणी बहुहिं देवेहि य देवीहि य) सा रजनी बहुभिः देवैः देवीभिश्च कृत्वा (जाव उप्पिंजलमाणभूआ) यावत् भृशं आकुला इव (कहकहगभूआ आविहुत्था) अव्यक्तवर्णकोलाहलमयी अभवत् ॥(१५३)॥ १०

(सेसं तहेव, नवरं पासाभिलावेणं भाणिअव्वं) शेषं–जन्मोत्सवादि तथैव–पूर्ववत्, परं पार्श्वाभिलापेन भणितव्यं (जाव तं होउ णं कुमारे पासे नामेणं) यावत् तस्मात् भवतु कुमारः पार्श्वः नाम्ना, तत्र प्रभौ गर्भस्थे सति शयनीयस्था माता पार्श्वे सर्पन्तं कृष्णसर्पं ददर्श, ततः पार्श्वेति नाम कृतं, क्रमेण यौवनं प्राप्तः, तचैवं–धात्रीभिरिन्द्रादिष्टाभिर्लाल्यमानो जगत्पतिः । नवहस्तप्रमाणाङ्गः, क्रमादाप च यौवनम् ॥ १ ॥ ततः १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१५४] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१५८]

कल्प.सुबो-ख्या० ७ ॥१२८॥

कुशस्थलेशप्रसेनजिन्नृपपुत्रीं प्रभावतीनाम्नीं कन्यां आगृह्य पित्रा परिणायितः, अन्येद्युर्गवाक्षस्थः स्वामी एकस्यां दिशि गच्छतः पुष्पादिपूजोपकरणसहिताञ्नागरान्नागरीश्च निरीक्ष्य एते क गच्छन्तीति कञ्चित्पप्रच्छ, स आह–प्रभो! कुत्रचित्सन्निवेशे वास्तव्यो दरिद्रो मृतमातापितृको ब्राह्मणपुत्रः कृपया लोकैर्जीवितः कमठ-नामाऽऽसीत्, स च एकदा रत्नाभरणभूषितान् नागरान् वीक्ष्य अहो एतत्प्राग्जन्मतपसः फलमिति विचिन्त्य पञ्चाग्न्यादिमहाकष्टानुष्ठायी तपस्वी जातः, सोऽयं पुर्या बहिरागतोऽस्ति, तं पूजितुं लोका गच्छन्तीति निशम्य प्रभुरपि सपरिवारस्तं द्रष्टुं ययौ, तत्र काष्ठान्तर्दह्यमानं महासर्पं ज्ञानेन विज्ञाय करुणासमुद्रो भगवानाह– 'अहो मूढ! तपस्विन्! किं दयां विना वृथा कष्टं करोषि, यतः–कृपानदीमहातीरे, सर्वे धर्मास्तृणाङ्कुराः। तस्यां शोषमुपेतायां, कियन्नन्दन्ति ते चिरम्? ॥ १ ॥" इत्याकर्ण्य क्रुद्धः कमठोऽवोचत्–राजपुत्रा हि गजा-श्वादिक्रीडां कर्तुं जानन्ति, धर्मं तु वयं तपोधना एव जानीमः, ततः स्वामिनाऽग्निकुण्डात् ज्वलत्काष्ठं आकृष्य कुठारेण द्विधा कारयित्वा च तापव्याकुलः सर्पो निष्कासितः, स च भगवन्नियुक्तपुरुषमुखान्नमस्कारान् प्रत्याख्यानं च निशम्य तत्क्षणं विपद्य धरणेन्द्रो जातः, अहो ज्ञानीति जनैः स्तूयमानः स्वामी स्वगृहं ययौ, कमठोऽपि तपस्तप्त्वा मेघकुमारेषु मेघमाली जातः ॥ (१५४) ॥

(पासे णं अरहा पुरिसादाणीए) पार्श्वः अर्हन् पुरुषादानीयः (दक्खे दक्खपइन्ने) दक्षः दक्षप्रतिज्ञः (पडिरूवे अल्लीणे भद्दए विणीए) रूपवान् गुणैरालिङ्गितः भद्रकः विनयवान् (तीसं वासाइं अगारवासमज्झे

दीक्षायै लौकान्तिकागमः सू. १५५ २० २५ ॥१२८॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१५५] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१५९]

वसित्ता) त्रिंशद्वर्षाणि गृहस्थावस्थायां स्थित्वा (पुणरवि लोयंतिएहिं) पुनरपि लोकान्तिकाः (जिअकप्पिएहिं देवेहिं) जीतकल्पिकाः देवाः (ताहिं इट्ठाहिं जाव एवं वयासी) ताभिः इष्टाभिर्वाग्भिः यावत् एवं अवादिषुः ॥ (१५५) ॥ देवोक्ताशीः दीक्षा च सू- १५६–७

(जय जय नंदा ! जय जय भद्दा ! जाव जयजयसद्दं पउंजंति) जय जयवान् भव, हे समृद्धिमन् ! जय जयवान् भव हे कल्याणवन् ! यावत् जयजयशब्दं प्रयुञ्जन्ति ॥ (१५६) ॥ ५

(पुव्विंपि णं पाससस अरहओ पुरिसादाणीयस्स) पूर्वं अपि पार्श्वस्य अर्हतः पुरुषादानीयस्य (माणुस्सगाओ) मनुष्ययोग्यात् (गिहत्थधम्माओ) गृहस्थधर्मात् (अणुत्तरे आहोइए) अनुपमं उपयोगात्मकं अवधिज्ञानमभूत् (तं चेव सव्वं जाव दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता) तदेव सर्वं पूर्वोक्तं वाच्यं यावत् धनं गोत्रिणो विभज्य-दत्त्वा (जे से हेमंताणं) योऽसौ शीतकालस्य (दुचे मासे तचे पक्खे) द्वितीयो मासः तृतीयः पक्षः (पोसबहुले) पौषस्य कृष्णपक्षः (तस्स णं पोसबहुलस्स इक्कारसीदिवसेणं) तस्य पौषबहुलस्य एकादशीदिवसे (पुव्वण्हकालसमयंसि) पूर्वाह्णकालसमये–प्रथमप्रहरे (विसालाए सिबिआए) विशालया नाम शिबिकया (सदेवमणुआसुराए) देवमनुष्यासुरसहितया (परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे) पर्षदा समनुगम्यमानमार्गः (तं चेव सव्वं नवरं) सर्वं तदेव पूर्वोक्तं वाच्यं, अयं विशेषः–(वाणारसिं नगरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ) वाणारस्या नगर्या मध्यभागेन निर्गच्छति (निग्गच्छित्ता) निर्गत्य (जेणेव आसमपए उज्जाणे) १०, १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१५७] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१५९]

कल्प.सुबो-ख्या० ७ ॥१२९॥

यत्रैव आश्रमपदनामकं उद्यानं (जेणेव असोगवरपायवे) यत्रैव अशोकनामा वृक्षः (तेणेव उवागच्छइ) तत्रैव उपागच्छति (उवागच्छित्ता) उपागत्य (असोगवरपायवस्स अहे) अशोकवृक्षस्य अधस्तात् (सीयं ठावेइ) शिबिकां स्थापयति (ठवित्ता) संस्थाप्य (सीयाओ पच्चोरुहइ) शिबिकातः प्रत्यवतरति (पच्चोरुहित्ता) प्रत्यवतीर्य (सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुअइ) स्वयमेव आभरणमालालङ्कारान् अवमुञ्चति (ओमुइत्ता) अवमुच्य (सयमेव पंचमुट्ठियं लोअं करेइ) स्वयमेव पञ्चमौष्टिकं लोचं करोति (करित्ता) लोचं कृत्वा (अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं) अष्टमेन भक्तेन अपानकेन-जलरहितेन (विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं) विशाखायां नक्षत्रे चन्द्रयोगं उपागते सति (एगं देवदूसमादाय) एकं देवदूष्यं गृहीत्वा (तिहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता) त्रिभिः पुरुषशतैः सार्द्धं मुण्डो भूत्वा (अगाराओ अणगारियं पव्वइए) गृहान्निष्क्रम्य साधुतां प्रतिपन्नः ॥ (१५७) ॥

(पासे णं अरहा पुरिसादाणीए) पार्श्वः अर्हन् पुरुषादानीयः (तेसीइं राइंदियाइं) त्र्यशीतिं रात्रिदिवसान् यावत् (निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे) नित्यं व्युत्सृष्टकायः त्यक्तदेहः (जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति) ये केचन उपसर्गाः उत्पद्यन्ते (तंजहा) तद्यथा (दिव्वा वा माणुसा वा तिरिक्खजोणिआ वा) देवकृताः मनुष्यकृताः तिर्यक्कृता वा (अणुलोमा वा पडिलोमा वा ते उप्पन्ने सम्मं सहइ) अनुलोमा वा प्रतिलोमा वा तान् उत्पन्नान् सम्यक् सहते (तितिक्खइ खमइ अहियासेइ) तितिक्षते क्षमते अध्यासयति,

उपसर्गसहनं सू.१५८

२०

२५ ॥१२९॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१५८] गाथा ||२..||

दीप अनुक्रम [१६०]

तत्र देवोपसर्गः कमठसम्बन्धी, स चैवं–स्वामी प्रव्रज्यैकदा विहरन् तापसाश्रमे कूपसमीपे न्यग्रोधाधो निशि प्रतिमया स्थितः, इतः स मेघमाली सुराधमः श्रीपार्श्वमुपद्रोतुं आगत्य क्रोधान्धः स्वविकुर्वितशार्दूलवृश्चिकादिभिरभीतं प्रभुं निरीक्ष्य गगनेऽन्धकारसन्निभान् मेघान् विकुर्व्य कल्पान्तमेघवद्धर्षितुं आरेभे, विद्युतश्च अतिरौद्राकारा दिशि दिशि प्रसृताः, गर्जारवं च ब्रह्माण्डस्फोटसदृशं अकरोत्, क्षणादेव च प्रभुनासाग्रं यावज्जले प्राप्ते आसनकम्पेन धरणेन्द्रो महिषीभिः समं आगत्य फणैः प्रभुं आच्छादितवान्, अवधिना च विज्ञातोऽमर्षेण वर्षन् मेघमाली धरणेन्द्रेण हक्कितः प्रभुं शरणीकृत्य स्वस्थानं ययौ, धरणेन्द्रोऽपि नाट्यादिभिः प्रभुपूजां विधाय स्वस्थानं ययौ, एवं देवादिकृतानुपसर्गान् सम्यक् सहते ॥ (१५८) ॥

(तए णं से पासे भगवं अणगारे जाए) ततः स पार्श्वो भगवान् अनगारो जातः (इरियासमिए जाव अप्पाणं भावेमाणस्स) ईर्यायां समितः यावत् आत्मानं भावयतः (तेसीइं राइंदियाइं विइक्कंताइं) त्र्यशीतिः अहोरात्रा व्यतिक्रान्ताः (चउरासीइमस्स राइंदियस्स अंतरा वट्टमाणस्स) चतुरशीतितमस्य अहोरात्रस्य अन्तरा वर्त्तमानस्य (जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे) योऽसौ ग्रीष्मकालस्य प्रथमो मासः प्रथमः पक्षः (चित्तबहुले) चैत्रस्य बहुलपक्षः–कृष्णपक्षः (तस्स णं चित्तबहुलस्स) तस्य चैत्रबहुलस्य चतुर्थीदिवसे (पुव्वण्हकालसमयंसि) पूर्वाह्णकालसमये–प्रथमप्रहरे(धायइपायवस्स अहे) धातकीनामवृक्षस्य अधः (छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं) षष्ठेन भक्तेन अपानकेन–जलरहितेन (बिसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं)

केवलोत्पत्तिः सू. १५९ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१५९] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१६१]

कल्प.सुबो-व्या० ७

॥१३०॥

विशाखायां नक्षत्रे चन्द्रयोगं उपागते सति (झाणंतरिआए वट्टमाणस्स) ध्यानान्तरिकायां वर्त्तमानस्य (अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने) अनन्ते अनुपमे यावत् केवलवरज्ञानदर्शने समुत्पन्ने (जाव जाणमाणे पासमाणे विहरइ) यावत् सर्वभावान् जानन् पश्यंश्च विहरति ॥ (१५९) ॥

(पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स) पार्श्वस्य अर्हतः पुरुषादानीयस्य (अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा हुत्था) अष्टौ गणा अष्टौ गणधराश्च अभवन्, तत्र एकवाचनिका यतिसमूहा-गणाः, तन्नायकाः सूरयो गणधराः, ते श्रीपार्श्वस्य अष्टौ, आवश्यके तु दश गणा दश गणधराश्चोक्ताः, इह स्थानाङ्गे च द्वौ अल्पायुष्कत्वादिकारणान्नोक्तौ इति टिप्पनके व्याख्यातं (तंजहा) तद्यथा (सुभे य १ अज्जघोसे य २ वसिट्ठे ३ बंभयारि य ४। सोमे ५ सिरिहरे ६ चेव, वीरभद्दे ७ जसेवि य ८) ॥ १ ॥ शुभश्च १ आर्यघोषश्च २ वशिष्टः ३ ब्रह्मचारी ४ च सोमः ५ श्रीधरश्चैव ६ वीरभद्रः ७ यशस्वी ८ च ॥ (१६०) ॥

(पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स) पार्श्वस्य अर्हतः पुरुषादानीयस्य (अज्जदिन्नपामुक्खाओ) आर्यदत्तप्रमुखाणि (सोलस समणसाहस्सीओ) षोडश श्रमणसहस्राणि (१६,०००) (उक्कोसिआ समणसंपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती श्रमणसम्पदा अभवत् ॥ (१६१) ॥

(पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीअस्स) पार्श्वस्य अर्हतः पुरुषादानीयस्य (पुप्फचूलापामुक्खाओ) पुष्प-

श्रीपार्श्वस्य गणादिमानं सू. १६०-१

२०

२५

॥१३०॥

२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१६२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१६४]

चूलाप्रमुखाणि (अट्ठत्तीसं अज्जियासाहस्सी) अष्टत्रिंशत् आर्यिकासहस्राणि (३८०००) (उक्कोसिआ अज्जियासंपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती आर्यिकासम्पदा अभवत् ॥ (१६२) ॥

(पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीअस्स) पार्श्वस्य अर्हतः पुरुषादानीयस्य (सुव्वयपामुक्खाणं) सुव्रतप्रमुखाणां (समणोवासगाणं) श्रमणोपासकानां–श्रावकाणां (एगा सयसाहस्सी) एकः लक्षः (चउसट्ठीं च सहस्सा) चतुःषष्टिश्च सहस्राः (१६४०००) (उक्कोसिआ समणोवासगाणं संपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती श्रावकाणां सम्पदा अभवत् ॥ (१६३) ॥

(पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीअस्स) पार्श्वस्य अर्हतः पुरुषादानीयस्स (सुनंदापामुक्खाणं) सुनन्दाप्रमुखाणां (समणोवासियाणं) श्रमणोपासिकानां–श्राविकाणां (तिन्नि सयसाहस्सीओ) त्रयः लक्षाः (सत्तावीसं च सहस्सा) सप्तविंशतिश्च सहस्राः (३२७०००) (उक्कोसिआ समणोवासियाणं संपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती श्रमणोपासिकानां सम्पदा अभवत् ॥ (१६४) ॥

(पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीअस्स) पार्श्वस्य अर्हतः पुरुषादानीयस्य (अद्धट्ठसया चउद्दसपुव्वीणं) अध्युष्टशतानि (३५०) चतुर्दशपूर्विणां (अजिणाणं जिणसंकासाणं) अकेवलिनामपि केवलितुल्यानां (जाव चउद्दसपुव्वीणं संपया हुत्था) यावत् चतुर्दशपूर्विणां सम्पदा अभवत् ॥ (१६५) ॥

(पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीअस्स) पार्श्वस्य अर्हतः पुरुषादानीयस्य (चउद्दस सया ओहिना-

श्रीपार्श्वस्य परिवारः सू. १६२–५

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१६६] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१६४]

णीणं) चतुर्दश शतानि (१४००) अवधिज्ञानिनां, (दस सया केवलनाणीणं) दश शतानि (१०००) केवलज्ञानिनां, (इक्कारससया वेउव्वियाणं) एकादश शतानि (११००) वैक्रियलब्धिमतां, (छस्सया रिउमईणं) षट् शतानि (६००) ऋजुमतीनां, (दस समणसया सिद्धा) दश श्रमणशतानि (१०००) सिद्धानि, (वीसं अज्जियासयाइं सिद्धाइं) विंशतिः आर्याशतानि (२०००) सिद्धानि, (अद्धट्ठसया विउलमईणं) अर्धाष्टौ शतानि (७५०) विपुलमतीनां, (छसया वाईणं) षट् शतानि (६००) वादिनां, (बारस सया अणुत्तरोववाइयाणं) द्वादश शतानि (१२००) अनुत्तरोपपातिनां सम्पदा अभवत् ॥ (१६६) ॥

(पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स) पार्श्वस्य अर्हतः पुरुषादानीयस्य (दुविहा अंतगडभूमी हुत्था) द्विविधा मुक्तिगामिनां मर्यादा अभूत् (तंजहा) तद्यथा-(जुगंतगडभूमी) युगान्तकृद्भूमिः (परियायंतगडभूमी य) पर्यायान्तकृद्भूमिश्च (जाव चउत्थाओ पुरिसजुगाओ जुगंतगडभूमी) यावत् चतुर्थं पट्टधरपुरुषं युगान्तकृद्भूमिः, श्रीपार्श्वनाथादारभ्य चतुर्थं पुरुषं यावत् सिद्धिमार्गो वहमानः स्थितः (तिवासपरिआए अंतमकासी) त्रिवर्षपर्याये कश्चिन्मुक्तिं गतः, पर्यायान्तकृद्भूमौ तु केवलोत्पत्तेस्त्रिषु वर्षेषु गतेषु सिद्धिगमनारम्भः ॥ (१६७) ॥

(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (पासे अरहा पुरिसादाणीए) पार्श्वः अर्हन् पुरुषादानीयः (तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता) त्रिंशत् वर्षाणि गृहस्थावस्थायां उषित्वा-स्थित्वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१६८] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१६७]

(तेसीइं राइंदिआइं) त्र्यशीतिं अहोरात्रान् (छउमत्थपरिआयं पाउणित्ता) छद्मस्थपर्यायं पालयित्वा (देसूणाइं सत्तरि वासाइं) किञ्चिदूनानि सप्ततिं वर्षाणि (केवलिपरिआयं पाउणित्ता) केवलिपर्यायं पालयित्वा (पडिपुन्नाइं सत्तरि वासाइं) प्रतिपूर्णानि सप्ततिं वर्षाणि (सामन्नपरियायं पाउणित्ता) चारित्रपर्यायं पालयित्वा (एक्कं वाससयं सव्वाउयं पालइत्ता) एकं वर्षशतं सर्वायुः पालयित्वा (खीणे वेयणिज्जाउयनामगुत्ते) क्षीणेषु सत्सु वेदनीयायुर्नामगोत्रेषु कर्मसु (इमीसे ओसप्पिणीए) अस्यामेव अवसर्पिण्यां (दूसमसुसमाए बहुविइक्कंताए) दुष्षमसुषमनामके चतुर्थेऽरके बहुव्यतिक्रान्ते सति (जे से वासाणं पढमे मासे दुचे पक्खे) योऽसौ वर्षाकालस्य प्रथमो मासः द्वितीयः पक्षः (सावणसुद्धे) श्रावणशुद्धः (तस्स णं सावणसुद्धस्स अट्ठमीपक्खेणं) तस्य श्रावणशुद्धस्य अष्टमीदिवसे (उप्पिं संमेअसेलसिहरंसि) उपरि सम्मेतनामशैलशिखरस्थ (अप्पचउत्तीसइमे) आत्मना चतुस्त्रिंशत्तमः (मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं) मासिकेन भक्तेन अपानकेन (विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं) विशाखानक्षत्रे चन्द्रयोगं उपागते सति (पुव्वण्हकालसमयंसि) पूर्वाह्णकालसमये, तत्र प्रभोर्मोक्षगमने पूर्वाह्ण एव कालः, 'पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि'त्ति क्वचित्पाठस्तु लेखकदोषान्मतान्तरभेदाद्वा (वग्घारियपाणी) प्रलम्बितौ पाणी–हस्तौ येन स तथा, कायोत्सर्गे स्थितत्वात् प्रलम्बितभुजद्वयः, (कालगए विइक्कंते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे) भगवान् कालगतः व्यतिक्रान्तः यावत् सर्वदुःखप्रक्षीण ॥(१६८)॥
(पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीअस्स) पार्श्वस्य अर्हतः पुरुषादानीयस्य (जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स) यावत्

अगारवास-मानादि सू. १६८

५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१६९] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१६८]

कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१३२॥

सर्वदुःखप्रक्षीणस्य (दुवालस वाससयाइं विइक्कंताइं) द्वादश वर्षशतानि व्यतिक्रान्तानि (तेरसमस्स य वाससयस्स) त्रयोदशमस्य वर्षशतस्य (अयं तीसइमे संवच्छरे काले गच्छइ) अयं त्रिंशत्तमः संवत्सरः कालो गच्छति, तत्र श्रीपार्श्वनिर्वाणात् पञ्चाशदधिकवर्षशतद्वयेन श्रीवीरनिर्वाणं, ततश्चाशीत्यधिकनववर्षशतानि अतिक्रान्तानि, तदा वाचना, ततो युक्तमुक्तं त्रयोदशमशतसंवत्सरस्यायं त्रिंशत्तमः संवत्सरः कालो गच्छतीति, इति श्रीपार्श्वनाथचरित्रं समाप्तम् ॥ (१६९) ॥

अथ श्री नेमिनाथस्य जघन्यादिवाचनाभिश्चरित्रमाह–(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (अरहा अरिट्ठनेमी पंचचित्ते हुत्था) अर्हन् अरिष्टनेमिः पञ्चसु चित्रा यस्य स पञ्चचित्रः अभवत् (तंजहा) तद्यथा (चित्ताहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते) चित्रायां च्युतः च्युत्वा गर्भं उत्पन्नः (तहेव उक्खेवो) तथैव चित्राभिलापेन पूर्वोक्तः पाठो वक्तव्यः (जाव चित्ताहिं परिनिव्वुए) यावत् चित्रायां निर्वाणं प्राप्तः ॥(१७०)॥

(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (अरहा अरिट्ठनेमी) अर्हन् अरिष्टनेमिः (जे से वासाणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे) योऽसौ वर्षाकालस्य चतुर्थो मासः सप्तमः पक्षः (कत्तिअबहुले) कार्त्तिकस्य बहुलपक्षः (तस्स णं कत्तियबहुलस्स बारसीपक्खेणं) तस्य कार्त्तिकबहुलस्य द्वादशीदिवसे (अपराजिआओ महाविमाणाओ) अपराजितनामकात् महाविमानात् (बत्तीसं सागरोवमट्ठिइआओ) द्वात्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिर्यत्र ईदृशात् (अणंतरं चयं चइत्ता) अनन्तरं च्यवनं कृत्वा (इहेव जंबुद्दीवे दीवे)

श्रीनेमेः कल्याणकानि सू. १७०

२०

२५

॥१३२॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ श्री नेमिनाथ-चरित्रं संक्षेपेण कथयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१७१] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१७१]

अस्मिन्नेव जम्बूद्वीपे द्वीपे (भारहे वासे) भरतक्षेत्रे (सोरियपुरे नयरे) सौर्यपुरे नगरे (समुद्दविजयस्स रन्नो) समुद्रविजयस्य राज्ञः (भारियाए सिवाए देवीए) भार्यायाः शिवाया देव्याः कुक्षौ (पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि) पूर्वापररात्रकालसमये-मध्यरात्रौ (जाव चित्ताहिं गब्भत्ताए वक्कंते) यावत् चित्रायां गर्भतया उत्पन्नः (सव्वं तहेव सुमिणदंसणदविणसंहरणाइअं इत्थ भाणियव्वं) सर्वं तथैव स्वप्नदर्शनं पितृवेश्मनि द्रव्यसंहरणादिवर्णनं अत्र भणितव्यम् ॥ (१७१) ॥

(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (अरहा अरिट्ठनेमी) अर्हन् अरिष्टनेमिः (जे से वासाणं पढमे मासे दुचे पक्खे) योऽसौ वर्षाकालस्य प्रथमो मासः द्वितीयः पक्षः (सावणसुद्धे) श्रावणशुद्धः (तस्स णं सावणसुद्धस्स पंचमीपक्खेणं) तस्य श्रावणशुद्धस्य पञ्चमीदिवसे (नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं) नवसु मासेषु बहुप्रतिपूर्णेषु सत्सु (जाव चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं) यावत् चित्रानक्षत्रे चन्द्रयोगं उपागते सति (आरोग्गाऽऽरोग्गं दारयं पयाया) अरोगा शिवा अरोगं दारकं प्रजाता (जम्मणं समुद्दविजयाभिलावेणं नेयव्वं) जन्मोत्सवः समुद्रविजयाभिधानेन ज्ञातव्यः (जाव तं होउ णं कुमारे अरिट्ठनेमी नामेणं) यावत् तस्मात् भवतु कुमारः अरिष्टनेमिर्नाम्ना कृत्वा, यस्मात् भगवति गर्भस्थे माता रिष्टरत्नमयं नेमिं-चक्रधारां स्वप्नेऽद्राक्षीत् ततोऽरिष्टनेमिः, अकारस्य अमङ्गलपरिहारार्थत्वाच्च अरिष्टनेमिरिति, रिष्टशब्दो हि अमङ्गलवाचीति, कुमारस्तु अपरिणीतत्वात्, अपरिणयनं तु एवं-एकदा यौवनाभिमुखं

श्रीनेमिनाथस्य गर्भदशा जन्म नाम सू. १७१-१७२

५ १० १४

क.सु. २३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ शेष तीर्थकराणां अन्त्राणि वर्णयन्ते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१७२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१७३]

नेमिं निरीक्ष्य शिवादेवी समवदत्–वत्सानुमन्यस्व पाणिग्रहणं पूरय चास्मन्मनोरथं, स्वामी तु योग्यां कन्यां प्राप्य परिणेष्यामीति प्रत्युत्तरं ददौ, ततः पुनरेकदा कौतुकरहितोऽपि भगवान् मित्रप्रेरितः क्रीडमानः कृष्णायुधशालायामुपागमत्, तत्र कौतुकोत्सुकैर्मित्रैर्विज्ञप्तोऽङ्गुल्यग्रे कुलालचक्रवच्चक्रं भ्रामितवान् शार्ङ्गं धनुर्मृणालवन्नामितवान् कौमोदकीगदां यष्टिवदुत्पाटितवान् पाञ्चजन्यं शङ्खं च स्वमुखे धृत्वा आपूरितवान्, तदा च–निर्मूल्यालानमूलं व्रजति गजगणः, खण्डयन् वेश्ममालां, धावन्त्युत्रोट्य बन्धान् सपदि हरिहया मन्दुरायाः प्रणष्टाः। शब्दाद्वैतेन सर्वं बधिरितमभवत्तत्पुरं व्यग्रमुग्रं, श्रीनेमेर्वक्त्रपद्मप्रकटितपवनैः पूरिते पाञ्चजन्ये ॥ १ ॥ तं तादृशं च शब्दं निशम्योत्पन्नः कोऽपि वैरीति व्याकुलचित्तः केशवस्त्वरितं आयुधशालायां आगतः, दृष्ट्वा च नेमिं चकितो निजभुजबलतुलनाय आवाभ्यां बलपरीक्षा क्रियते इति नेमिं वदंस्तेन सह मल्लाक्षाटके जगाम, श्रीनेमिराह–अनुचितं ननु भूलुठनादिकं, सपदि बान्धव ! युद्धमिहावयोः। बलपरीक्षणकुतुजवालनं, भवतु नान्यरणः खलु युज्यते ॥ १ ॥ द्वाभ्यां तथैव स्वीकृतं–कृष्णप्रसारितं बाहुं, नेमिर्वैत्रलतामिव। मृणालदण्डवच्छीघ्रं, वालयामास लीलया ॥ १ ॥ शाखानिभे नेमिजिनस्य बाहौ, ततः स शाखामृगवद्विलग्नः। चक्रे निजं नाम हरिर्यथार्थमुद्यद्विषादद्विगुणासितास्यः ॥ २ ॥ ततो महतापि पराक्रमेण नेमिभुजेऽवलिते सति विषण्णचित्तः कृष्णो मम राज्यमेष सुखेन ग्रहीष्यतीति चिन्तातुरः स्वचित्ते चिन्तयामास–क्लिश्यन्ते केवलं स्थूलाः, सुधीस्तु फलमश्नुते। ममन्थ शङ्करः सिन्धुं, रत्नान्यापुर्दिवौकसः ॥ १ ॥ अथवा–

२०

२५ ॥१३३॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१७२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१७३]

क्लिश्यन्ते केवलं स्थूलाः, सुधीस्तु फलमश्नुते । दन्ता दलन्ति कष्टेन, जिह्वा गिलति लीलया ॥२॥ ततो बलभद्रेण सहालोचयति–किं विधास्ये ? नेमिस्तु राज्यलिप्सुर्बलवांश्च, तत आकाशवाणी प्रादुरभूद्–अहो हरे ! पुरा नमिनाथेन कथितमासीद् यदुत द्वाविंशस्तीर्थकरो नेमिनामा कुमार एव प्रव्रजिष्यतीति श्रुत्वा निश्चिन्तोऽपि निश्चयार्थं नेमिना सह जलक्रीडां कर्तुं अन्तःपुरीपरिवृतः सरोऽन्तरे प्रविष्टः, तत्र च–प्रणयतः परिगृह्य करे जिनं, हरिरवेशयदाशु सरोऽन्तरे । तदनु शीघ्रमसिञ्चत नेमिनं, कनकशृङ्गजलैर्घुसृणाविलैः ॥ १ ॥ तथा रुक्मिणीप्रमुखगोपिका अपि ज्ञापितवान्–यदयं नेमिर्निःशङ्कं क्रीडया पाणिग्रहाभिमुखीकार्यः, ततश्च ता अपि–काश्चित् केसरसारनीरनिकरैराच्छोटयन्ति प्रभुं, काश्चिद् बन्धुरपुष्पकन्दुकभरैर्निघ्नन्ति वक्षःस्थले । काश्चित्तीक्ष्णकटाक्षलक्षविशिखैर्विद्ध्यन्ति नर्मोक्तिभिः, काश्चित्कामकलाविलासकुशला विस्मापयाञ्चक्रिरे ॥ १ ॥ ततश्च–तावत्यः प्रमदाः सुगन्धिपयसा, स्वर्णादिशृङ्गीर्भृशं, भृत्वा तज्जलनिर्झरैः पृथुतरैः, कर्तुं प्रभुं व्याकुलम् । प्रावर्त्तन्त मिथो हसन्ति सततं, क्रीडोल्लसन्मानसास्तावद्रैवतगोभनि देवगीरिति समुद्भूता श्रुता चोखिलैः ॥ १ ॥ मुग्धाः स्थ प्रमदा यतोऽमरगिरौ गीर्वाणनाथैश्चतुःषष्ट्या योजनमानवक्त्रकुहरैः, कुम्भैः सहस्राधिकैः । बाल्येऽपि स्नपितो य एष भगवान्नाभून्मनागाकुलः, कर्तुं तस्य सुयत्नतोऽपि किमहो, युष्माभिरीशिष्यते ? ॥२॥ ततो नेमिरपि हरिं ताश्च सर्वा जलैराच्छोटयति स्म कमलपुष्पकन्दुकैश्च ताडयति स्म इत्यादि सविस्तरं जलक्रीडां कृत्वा तटमागत्य नेमिं स्वर्णासने निवेश्य सर्वा अपि गोप्यः परिवेष्ट्य स्थिताः, तत्र

जलक्रीडा ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१७२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१७३]

रुक्मिणी जगौ–निर्वाहकातरतयोद्वहसे न यत्त्वं, कन्यां तदेतदविचारितमेव नेमे ! । भ्राता तवास्ति विदितः सुतरां समर्थो, द्वात्रिंशदुन्मितसहस्रवधूर्विवोढा ॥१॥ तथा सत्यभामाप्युवाच–ऋषभमुख्यजिनाः करपीडनं, विदधिरे दधिरे च महीशताम् । बुभुजिरे विषयांश्च बहून् सुतान्, सुषुविरे शिवमप्यथ लेभिरे ॥ २ ॥ त्वमसि किन्नु नवोऽद्य शिवङ्गमी, भृशमरिष्टकुमार ! विचारय । कलय देवर ! चारु गृहस्थतां, रचय बन्धुमनस्सु च सुस्थताम् ॥ ३ ॥ अथ जगाद च जाम्बुवती जवात्, शृणु पुरा हरिवंशविभूषणम् । स मुनिसुव्रततीर्थपति-र्गृही, शिवमगादिह जातसुतोऽपि हि ॥ ४ ॥ पद्मावतीति समुवाच विना वधूटीं, शोभा न काचन नरस्य भवत्यवश्यम् । नो केवलस्य पुरुषस्य करोति कोऽपि, विश्वासमेष विट एव भवेद् भार्यः ॥ ५ ॥ गान्धारी जगौ–सज्जन्ययात्राशुभसङ्गसार्थपर्वोत्सवा वेश्मविवाहकृत्यम् । उद्यानिकापुङ्क्षणपर्षदश्च, शोभन्त एतानि विनाऽङ्गनां नो ॥ ६ ॥ गौरी उवाच–अज्ञानभाजः किल पक्षिणोऽपि, क्षितौ परिभ्रम्य वसन्ति सायम् । नीडे स्वकान्तासहिताः सुखेन, ततोऽपि किं देवर ! मूढदृक् त्वम् ॥ ७ ॥ लक्ष्मणाऽप्यवोचत्–स्नानादिसर्वाङ्गपरिक्रि-यायां, विचक्षणः प्रीतिरसाभिरामः । विस्रम्भपात्रं विधुरे सहायः, कोऽन्यो भवेन्नूनमृते प्रियायाः ? ॥ ८ ॥ सुसीमाऽप्यवादीत्–विना प्रियां को गृहमागतानां, प्राघूर्णकानां मुनिसत्तमानाम् । करोति पूजाप्रतिपत्ति-मन्यः ?, कथं च शोभां लभते मनुष्यः ?, ॥ ९ ॥ एवमन्यासां अपि गोपाङ्गनानां वाचोयुक्त्या यदूनामाग्रहाच्च मौनावलम्बिनमपि स्मिताननं जिनं निरीक्ष्य 'अनिषिद्धं अनुमतं' इति न्यायात् नेमिना पाणिग्रहणं स्वीकृतमिति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१७२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१७३]

ताभिर्बाढं उद्घोषितं, तथैव जनोक्तिरिति, ततः कृष्णेनोग्रसेनपुत्री राजीमती मार्गिता, लग्नं पृष्टश्च क्रोष्टुकिनामा ज्योतिर्वित् प्राह–वर्षासु शुभकार्याणि, नान्यान्यपि समाचरेत् । गृहिणां मुख्यकार्यस्य, विवाहस्य तु का कथा? ॥१॥ समुद्रस्तं बभाषेऽथ, कालक्षेपोऽत्र नार्हति । नेमिः कथञ्चित् कृष्णेन, विवाहाय प्रवर्तितः ॥२॥ मा भूद्विवाहप्रत्यूहो, नेदीयस्तद्दिनं वद । श्रावणे मासि तेनोक्ता, ततः षष्ठी समुज्ज्वला ॥३॥ ततो द्वयोःस्थानयोर्विहिता विवाहोचिता सामग्री, आसन्ने च क्रोष्टुक्यादिष्टे लग्ने चलितः श्रीनेमिकुमारः स्फारशृङ्गारः प्रजाप्रमोदकरो रथारूढो धृतातपत्रसारः श्रीसमुद्रविजयादिदशार्हकेशवबलभद्रादिविशिष्टपरिवारः शिवादेवीप्रमुखप्रमदाजेगीयमानधवलमङ्गलविस्तारः पाणिग्रहणाय, अग्रतो गच्छंश्च वीक्ष्य सारथिं प्रति कस्येदं कृतमङ्गलभरं धवलमन्दिरं इति पृष्टवान्, ततः सोऽङ्गुल्यग्रेण दर्शयन् इति जगाद–उग्रसेननृपस्य तव श्वशुरस्यायं प्रासाद इति, इमे च तव भार्याया राजीमत्याः सख्यौ चन्द्राननामृगलोचनाभिधाने मिथो वार्त्तयतः, तत्र मृगलोचना विलोक्य चन्द्राननां प्राह–हे चन्द्रानने! स्त्रीवर्गे एका राजीमत्येव वर्णनीया यस्याः अयमेतादृशो वरः पाणिं ग्रहीष्यति, चन्द्राननाऽपि मृगलोचनामाह–राजीमतीमद्भुतरूपरम्यां, निर्माय धाताऽपि यदीदृशेन । वरेण नो योजयति प्रतिष्ठां, लभेत विज्ञानविचक्षणः काम्? ॥ १ ॥ इतश्च–तूर्यशब्दमाकर्ण्य मातृगृहात् राजीमती सखीमध्ये प्राप्ता, हे सख्यौ! भवतीभ्यामेकाकिनीभ्यामेव साडम्बरमागच्छन् वरो विलोक्यते अहं तु विलोकयितुं न लभेयं इति बलात्तदन्तरे स्थित्वा नेमिं आलोक्य साश्चर्यं चिन्तयति–किं पातालकुमारः, किं वा मकर-

विवाहाय-गमनं

५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१७२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१७३]

ध्वजः सुरेन्द्रः किम् । किं वा मम पुण्यानां प्राग्भारो मूर्त्तिमानेषः ? ॥ १ ॥ तस्य विधातुः करयोरात्मानं न्युञ्छनं करोमि मुदा । येनैष वरो विहितः, सौभाग्यप्रभृतिगुणराशिः ॥ २ ॥ मृगलोचना राजीमत्यभिप्रायं परिज्ञाय सप्रीतिहासं–हे सखि ! चन्द्रानने ! समग्रगुणसम्पूर्णेऽपि अस्मिन् वरे एकं दूषणं अस्त्येव, परं वरार्थिन्यां राजीमत्यां शृण्वत्यां वक्तुं न शक्यते, चन्द्राननाऽपि–हे सखि ! मृगलोचने ! मयाऽपि तद् ज्ञातं, परं साम्प्रतं मौनमेवाचरणीयं, राजीमत्यपि त्रपया मध्यस्थतां दर्शयन्ती–हे सख्यौ ! यस्याः कस्या अपि भुवनाद्भुतभाग्यधन्यायाः कन्याया अयं वरो भवतु, परं सर्वगुणसुन्दरेऽस्मिन् वरे दूषणं तु दुग्धमध्यात् पूतरकर्षणप्रायं असम्भाव्यमेव, तदनु ताभ्यां सविनोदं कथितं–भो राजीमति ! वरः प्रथमं गौरो विलोक्यते, अपरे गुणास्तु परिचये सति ज्ञायन्ते, तद्गौरत्वं तु कज्जलानुकारमेव दृश्यते, राजीमती सेर्ष्यं सख्यौ प्रत्याह–अद्य यावत् युवां चतुरे इति मम भ्रमोऽभवत्, साम्प्रतं तु स भग्नः, यत् सकलगुणकारणं श्यामत्वं भूषणमपि दूषणतया प्ररूपितं, शृणुतं तावत् सावधानीभूय भवत्यौ श्यामत्वे श्यामवस्त्वाश्रयणे च गुणान् केवलगौरत्वे दोषांश्च, तथाहि–भूं[1] १ चित्तवल्लि २ अगुरु,३ कत्थूरी ४ घण ५ कणीणिगा ६ केसा ७ । कसवट्ट ८ मसी ९ रयणी १० कसिणा एए अणग्घफला ॥ १ ॥ इति कृष्णत्वे गुणाः, कप्पूरे[2] अंगारो १ चंदे चिंधं २ कणीणिगा

१ भूः चित्रे वल्ली अगुरु कस्तूरी घनः कनीनिका केशाः । कषपट्टो मषी रजनी कृष्णा एते अनर्घफलाः ॥ १ ॥ २ कर्पूरे अंगारः चन्द्रे चिन्हं कनीनिका नयने । भोज्ये मरीचं चित्रे रेखा कृष्णा अपि गुणहेतवः ॥ २ ॥

मृगलोचनादिहास्यं २० २५ ॥१३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१७२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१७३]

नयणे ३। भुञ्जे मरीअं ४ चित्ते रेहा ५ कसिणावि गुणहेऊ ॥ २ ॥ इति कृष्णवस्त्वाश्रयणे गुणाः। खारं लवणं १ दहणं हिमं च २ अइगोरविग्गहो रोगी ३। परवसगुणो अ चुण्णो ४ केवलगोरत्तणेऽवगुणा ॥३॥ एवं परस्परं तासां जल्पे जायमाने श्रीनेमिः पशूनामार्त्तस्वरं श्रुत्वा साक्षेपं–हे सारथे! कोऽयं दारुणः स्वरः?, सारथिः प्राह–युष्माकं विवाहे भोजनकृते समुदायीकृतपशूनामयं स्वर इत्युक्ते स्वामी चिन्तयति स्म–धिग् विवाहोत्सवं यत्रानुत्सवोऽमीषां जीवानां, इतश्च 'हल्ली सहिओ! किं मे दाहिणं चक्खू परिप्फुरइ'त्ति वदन्तीं राजीमतीं प्रति सख्यौ–प्रतिहतमेमङ्गलं ते इत्युक्त्वा थुथुत्कारं कुरुतः, नेमिस्तु–हे सारथे! रथमितो निवर्त्तय, अत्रान्तरे नेमिं पश्यन्नेको हरिणः स्वग्रीवया हरिणीग्रीवां पिधाय स्थितः, अत्र कविघटना–स्वामिनं वीक्ष्य हरिणो ब्रूते–मा पहरसु मा पहरसु एअं मह हिअयहारिणिं हरिणिं। सामी! अम्हं मरणावि दुस्सहो पिअतमाविरहो ॥१॥ हरिणी नेमिमुखं निभाल्य हरिणं प्रति ब्रूते–एसो पसन्नवयणो तिहुअणसामी अकारणं बंधू। ता विण्णवेसु वल्लह! रक्खत्थं सव्वजीवाणं ॥२॥ हरिणोऽपि पत्नीप्रेरितो नेमिं ब्रूते–निज्झरणनीरपाणं, अरण्ण-

१ क्षारं लवणं दहनं हिमं च अतिगौरविग्रहो रोगी। परवशगुणश्च चूर्णः केवलगौरत्वेऽवगुणाः ॥ ३ ॥ २ हले सख्यः किं मम दक्षिणं चक्षुः परिस्फुरति? ३ मा प्रहर मा प्रहर एतां मम हृदयहारिणीं हरिणीं। स्वामिन्! अस्माकं मरणादपि दुःसहः प्रियतमाविरहः ॥ १ ॥ ४ एष प्रसन्नवदनः त्रिभुवनस्वामी अकारणबन्धुः। तस्माद् विज्ञपय वल्लभ! रक्षार्थं सर्वजीवानां ॥ २ ॥ ५ निर्झरणनीरपानं अरण्यतृणभक्षणं च वनवासः। अस्माकं निरपराधानां जीवितं रक्ष रक्ष प्रभो! ॥ ३ ॥

वादः प. रावृत्तिः ५ १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१७२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१७३]

तणभक्खणं च वणवासो । अम्हाण निरवराहाण, जीविअं रक्ख रक्ख पहो ! ॥ ३ ॥ एवं सर्वेऽपि पशवः स्वामिनं प्रति विज्ञपयन्ति, तावत्स्वामी बभाषे–भो पशुरक्षकाः ! मुञ्चत मुञ्चत इमान् पशून् नाहं विवाहं करिष्ये, पशुरक्षकाः श्रीनेमिवचसा पशून् मुञ्चन्ति स्म, सारथिरपि रथं निवर्त्तयते स्म, अत्र कविः–हेतुरिन्दोः कलङ्क यो, विरहे रामसीतयोः । नेमे राजीमतीत्यागे, कुरङ्गः सत्यमेव सः ॥ १ ॥ समुद्रविजयशिवादेवीप्रमुख-जनास्तु शीघ्रमेव रथं स्खलयन्ति स्म, शिवा च सबाष्पं ब्रूते–पत्थेमि[1] जणणिवल्लह ! वच्छ तुमं पढमपत्थणं किंपि । काऊण पाणिगहणं मह दंसे निअवहूवयणं ॥ १ ॥ नेमिराह–मुञ्चाग्रहमिमं मातर्मानुषीषु न मे मनः । मुक्तिस्त्रीसङ्गमोत्कण्ठमकुण्ठमवतिष्ठते ॥२॥ यतः–या रागिणि विरागिण्यस्ताः स्त्रियः को निषेवते ? । अतोऽहं कामये मुक्तिं, या विरागिणि रागिणी ॥ ३ ॥ इत्यादि, राजीमती–हा दैव ! किमुपस्थितमित्युक्त्वा मूर्छां प्राप्ता सखीभ्यां चन्दनद्रवैराश्वासिता कथमपि लब्धसञ्ज्ञा सबाष्पं गाढस्वरेण प्राह–हा[2] जायवकुलदिणयर ! हा निरुवमनाण हा जगस्सरण ! । हा करुणायर सामी ! मं मुत्तूणं कहं चलिओ ॥ ४ ॥ हा[3] हिअय धिट्ठ निद्दुर,

१ प्रार्थयामि जननीवल्लभ ! वत्स ! त्वां प्रथमप्रार्थनां कामपि । कृत्वा पाणिग्रहणं मम दर्शय निजवधूवदनम् ॥३॥ २ हा यादवकुल-दिनकर ! हा निरुपमज्ञान ! हा जगच्छरण ! । हा करुणाकर ! स्वामिन् ! मां मुक्त्वा कथं चलितः ?॥ ४ ॥ ३ हा हृदय ! धृष्ट निष्ठुर ! अद्यापि निर्लज्ज ! जीवितं वहसि । अन्यत्र बन्धरागो यदि नाथ आत्मनो जातः ॥ ५ ॥

मुमुक्षुता प्रार्थना च १५ २० ॥१३६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१७२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१७३]

अज्जवि निल्लज्ज जीविअं वहसि । अन्नत्थ बद्धराओ,जइ नाहो अत्तणो जाओ ॥ ५ ॥ पुनर्निःश्वस्य सोपालम्भं जगाद–जइ सयलसिद्धभुत्ताइ,मुत्तिगणिआइ धुत्त ! रत्तोऽसि । ता एवं परिणयणारंभेण विडंबिआ किमहं ? ॥ ६ ॥ सख्यौ सरोषं–लोअपसिद्धी वत्तडी,सहिए इक्क सुणिज्ज । सरलं विरलं सामलं, चुक्किअ विही करिज्ज ॥ ७ ॥ पिम्मरहिअंमि पिअसहि !,एअंमिवि किं करेसि पिअभावं ? । पिम्मपरं किंपि वरं, अन्नयरं ते करिस्सामो ॥ ८ ॥ राजीमती कर्णौ पिधाय–हा अश्राव्यं किं श्रावयथः ?–जइ कहवि पच्छिमाए, उदयं पावेइ दिणयरो तहवि । मुत्तूण नेमिनाहं,करेमि नाहं वरं अन्नं ॥ ९ ॥ पुनरपि नेमिनं प्रति–व्रतेच्छुरिच्छाधिकमेव दृत्से, त्वं याचकेभ्यो गृहमागतेभ्यः । मयाऽर्थयन्त्या जगतामधीश !, हस्तोऽपि हस्तोपरि नैव लब्धः ॥ १० ॥ अथ विरक्ता राजीमती प्राह–जइविहु एअस्स करो,मज्झ करे नो अ आसि परिणयणे । तहवि सिरे मह सुचिअ,

राजीमत्याः शोकः ५ ८

१ यदि सकलसिद्धभुक्तायां मुक्तिगणिकायां धूर्त ! रक्तोऽसि । तत एवं परिणयनारम्भेण विडम्बिता किमहम् ? ॥ ६ ॥ २ लोकप्रसिद्धा वार्ता सखि ! एका श्रूयते । सरलं विरलं श्यामलं विस्मृत्य विधिः कुर्यात् ॥ ७ ॥ ३ प्रेमरहिते प्रियसखि ! एतस्मिन्नपि किं करोषि प्रियभावं ? । प्रेमपरं कमपि वरं अन्यतरं ते करिष्यामः ॥ ८ ॥ ४ यदि कथमपि पश्चिमायामुदयं प्राप्नोति दिनकरस्तथापि । मुक्त्वा नेमिनाथं करोमि नाहं वरमन्यम् ॥ ९ ॥ ५ यद्यपि एतस्य करो मम करे न चासीत्परिणयने । तथापि शिरसि मम स एव दीक्षासमये करो भविष्यति ॥ १३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१७२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१७३]

कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१३७॥

दिक्खासमए करो होही ॥ ११ ॥ अथ नेमिनं सपरिकरः समुद्रविजयो जगौ–नाभेयाद्याः कृतोद्वाहाः, मुक्तिं जग्मुर्जिनेश्वराः । ततोऽप्युचैःपदं ते स्यात्, कुमार ! ब्रह्मचारिणः ? ॥ १२ ॥ नेमिराह–हे तात ! क्षीणभोगकर्माऽहमस्मि,किञ्च-एकस्त्रीसंग्रहेऽनन्तजन्तुसङ्घातघातके। भवतां भवतान्तेऽस्मिन्, विवाहे कोऽयमाग्रहः ? ॥१३॥ अत्र कविः–मन्येऽङ्गनाविरक्तः,परिणयनमिषेण नेमिरागत्य । राजीमतीं पूर्वभवप्रेम्णा समकेतयन्मुक्तये ॥१४॥

(अरहा अरिट्ठनेमी) अर्हन् अरिष्टनेमिः (दक्खे जाव तिन्नि वाससयाइं) दक्षः यावत् त्रीणि वर्षशतानि (कुमारे अगारवासमज्झे वसित्ता) कुमारः सन् गृहस्थावस्थामध्ये उषित्वा (पुणरवि लोयंतिएहिं सवं तं चेव भाणियवं) पुनरपि लोकान्तिकाः इत्यादि सर्वं तदेव पूर्वोक्तं भणितव्यं, लोकान्तिका देवाः यथा–जय निर्जितकन्दर्प !, जन्तुजाताऽभयप्रद ! । निष्क्रान्तिसर्वावतारार्थं, नाथ ! तीर्थं प्रवर्त्तय ॥ १ ॥ इति स्वामिनं प्रोच्य स्वामी वार्षिकदानानन्तरं त्रिभुवनमानन्दयिष्यतीति समुद्रविजयादीन् प्रोत्साहयन्ति स्म, ततः सर्वेऽपि सन्तुष्टाः (जाव दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता) यावत् धनं गोत्रिकाणां विभज्य–दत्त्वा, दानविधिस्तु श्रीवीरवद् ज्ञेयः ॥ (१७२) ॥

(जे से वासाणं पढमे मासे दुचे पक्खे) योऽसौ वर्षाकालस्य प्रथमो मासः द्वितीयः पक्षः (सावणसुद्धे) श्रावणस्य शुक्लः पक्षः (तस्स णं सावणसुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं) तस्य श्रावणशुद्धस्य षष्ठीदिवसे (पुव्वण्हकालसमयंसि) पूर्वाह्णकालसमये (उत्तरकुराए सीयाए) उत्तरकुरायां शिबिकायां स्थितः (सदेवमणुआसुराए

दानं दीक्षा च सू. १७ १०
१५
॥१३७॥ २०
२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१७३] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१७४]

परिसाए) देवमनुष्यासुरसहितया पर्षदा (समणुगम्ममाणमग्गे) समनुगम्यमानमार्गः (जाव बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ) यावत् द्वारवत्याः नगर्याः मध्यभागेन निर्गच्छति (निग्गच्छित्ता) निर्गत्य (जेणेव रेवयए उज्जाणे) यत्रैव रैवतकं उद्यानं (तेणेव उवागच्छइ) तत्रैव उपागच्छति (उवागच्छित्ता) उपागत्य (असोगवरपायवस्स अहे) अशोकनामवृक्षस्य अधस्तात् (सीयं ठावेइ) शिबिकां स्थापयति (ठावित्ता) संस्थाप्य (सीयाओ पच्चोरुहइ) शिबिकातः प्रत्यवतरति (पच्चोरुहित्ता) प्रत्यवतीर्य (सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ) स्वयमेव आभरणमालालङ्कारान् अवमुञ्चति (सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ) स्वयमेव पञ्चमौष्टिकं लोचं करोति (करित्ता) कृत्वा च (छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं) षष्ठेन भक्तेन अपानकेन–जलरहितेन (चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं) चित्रायां नक्षत्रे चन्द्रयोगं उपागते सति (एगं देवदूसमादाय) एकं देवदूष्यं गृहीत्वा (एगेणं पुरिससहस्सेणं सद्धिं) एकेन पुरुषाणां सहस्रेण सार्द्धं (मुंडे भवित्ता) मुण्डो भूत्वा प्रभुः (आगाराओ अणगारियं पवइए) अगारान्निष्क्रम्य साधुतां प्रतिपन्नः ॥(१७३)॥

(अरहा अरिट्ठनेमी) अर्हन् अरिष्टनेमिः (चउपन्नं राइंदियाइं) चतुष्पञ्चाशतं अहोरात्रान् यावत् (निच्चं वोसट्ठकाए) नित्यं व्युत्सृष्टकायः (तं चेव सव्वं जाव पणपन्नगस्स राइंदियस्स) तदेव पूर्वोक्तं सर्वं वाच्यं यावत् पञ्चपञ्चाशत्तमस्य अहोरात्रस्य (अंतरा वट्टमाणस्स) अन्तरा वर्त्तमानस्य (जे से वासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे) योऽसौ वर्षाकालस्य तृतीयो मासः पञ्चमः पक्षः (आसोयबहुले) आश्विनस्य कृष्णपक्षः

दीक्षा सू. १७२ केवलं सू. १७३ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१७४] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१७५]

कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१३८॥

(तस्स णं आसोयबहुलस्स पन्नरसीपक्खेणं) तस्य आश्विनबहुलस्य पञ्चदशे दिवसे (दिवसस्स पच्छिमे भाए) दिवसस्य पश्चिमे भागे (उज्जिंतसेलसिहरे वेडसस्स पायवस्स अहे) उज्जयन्तनामशैलस्य शिखरे वेतसनामवृक्षस्य अधस्तात् (अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं) अष्टमेन भक्तेन अपानकेन-जलरहितेन (चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं) चित्रायां नक्षत्रे चन्द्रयोगं उपागते सति (झाणंतरियाए वट्टमाणस्स) शुक्लध्यानस्य मध्यभागे वर्त्तमानस्य प्रभोः (अणंते जाव जाणमाणे पासमाणे विहरइ) अनन्तं केवलज्ञानं समुत्पन्नं यावत् सर्वभावान् जानन् पश्यंश्च विहरति, तत्र केवलज्ञानं रैवतकस्थे सहस्राम्रवणे समुत्पेदे, तत उद्यानपालको विष्णोर्व्यजिज्ञपत्, विष्णुरपि महद्ध्या भगवन्तं वन्दितुमाययौ, राजीमत्यपि तत्रागता, अथ प्रभोर्देशनां निशम्य वरदत्तनृपः सहस्रद्वयनृपयुतो व्रतमाददे, हरिणा च राजीमत्याः स्नेहकारणे पृष्टे प्रभुर्धनवतीभवादारभ्य तया सह स्वस्य नवभवसम्बन्धमाचष्टे, तथाहि-प्रथमे भवेऽहं धननामा राजपुत्रस्तदेयं धनवतीनाम्नी मत्पत्नी अभूत् १ ततो द्वितीये भवे प्रथमे देवलोके आवां देवदेव्यौ २ ततस्तृतीये भवेऽहं चित्रगतिनामा विद्याधरस्तदेयं रत्नवती मत्पत्नी ३ ततश्चतुर्थे भवे चतुर्थे कल्पे द्वावपि देवौ ४ पञ्चमे भवेऽहं अपराजितराजा एषा प्रियतमा राज्ञी ५ षष्ठे एकादशे कल्पे द्वावपि देवौ ६ सप्तमेऽहं शङ्खो नाम राजा, एषा तु यशोमती राज्ञी ७ अष्टमे अपराजिते द्वावपि देवौ ८ नवमेऽहं एषा राजीमती ९ ततः प्रभुरन्यत्र विहृत्य क्रमात्पुनरपि रैवतके समवासरत्, तदा च अनेकराजकन्यापरिवृता राजीमती रथनेमिश्च प्रभुपार्श्वे दीक्षां जगृहतुः, अन्यदा

श्रीनेमिराजीपूर्वभवाः २० २५ ॥१३८॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१७४] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१७५]

च राजीमती प्रभुं नन्तुं रैवतके व्रजंती मार्गे वृष्ट्या बाधिता एकां गुहां प्राविशत्, तस्यां च गुहायां पूर्वं प्रविष्टं रथनेमिं अजानती सा क्लिन्नानि वस्त्राणि शोषयितुं परितश्चिक्षेप, ततश्च तां अपहसितत्रिदशतरुणीरामणीयकां साक्षात् कामरमणीमिव रमणीयां तथा विवसनां निरीक्ष्य भ्रातुर्वैरादिव मदनेन मर्मणि हतः कुललज्जामुत्सृज्य धीरतामवधीर्य रथनेमिस्तां जगाद–अयि सुन्दरि! किं देहः, शोष्यते तपसा त्वया?। सर्वाङ्गभोगसंयोगयोग्यः सौभाग्यसेवधिः ॥ १ ॥ आगच्छ स्वेच्छया भद्रे,! कुर्वहे सफलं जनुः । आवामुभावपि प्रान्ते, चरिष्यावस्तपोविधिम् ॥ २ ॥ ततश्च महासती तदाकर्ण्य तं दृष्ट्वा च धृताद्भुतधैर्या तं प्रत्युवाच–'महानुभाव! कोऽयं तेऽभिलाषो नरकाध्वनः?। सर्वं सावद्यमुत्सृज्य, पुनर्वाञ्छन्न लज्जसे ॥१॥ अगन्धनकुले जातास्तिर्यञ्चो ये भुजङ्गमाः । तेऽपि नो वान्तमिच्छन्ति, त्वं नीचः किं ततोऽप्यसि? ॥ २ ॥ इत्यादिवाक्यैः प्रतिबोधितः श्रीनेमिपार्श्वे तदुद्भुश्रीर्णमालोच्य तपस्तप्त्वा च मुक्तिं जगाम। राजीमत्यपि दीक्षामाराध्य शिवशय्यामारूढा चिरप्रार्थितं शाश्वतिकं श्रीनेमिसंयोगमवाप, यदाहुः–"छद्मस्था वत्सरं स्थित्वा, गेहे वर्षचतुःशतीम्। पञ्चवर्षशतीं राजी, ययौ केवलिनी शिवम्॥१॥(१७४)॥ (अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स) अर्हतः अरिष्टनेमेः (अट्ठारस गणा अट्ठारस गणहरा हुत्था) अष्टादश(१८)गणाः अष्टादश गणधराश्च अभवन्॥(१७५)॥ (अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स) अर्हतः अरिष्टनेमेः (वरदत्तपामुक्खाओ) वरदत्तप्रमुखाणि (अट्ठारस समणसाहस्सीओ) अष्टादश श्रमणानां सहस्राणि (१८०००) (उक्कोसिया समणसंपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती श्रमणसम्पदा अभवत्॥(१७६)॥ (अर-

रथनेमिस्थितिः राजीमोक्षः ५ १० १४

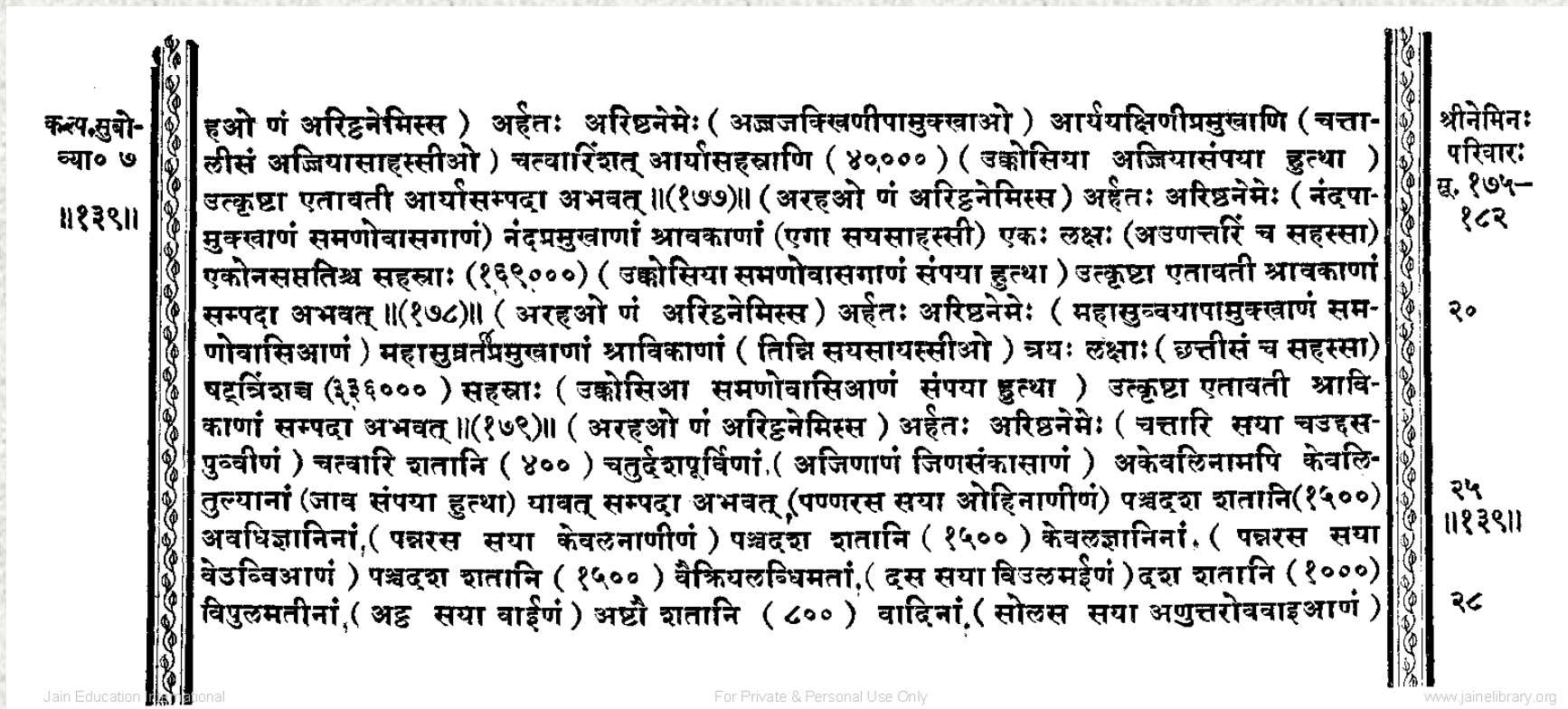
क.सु.२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१७७] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१७७]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-व्या० ७ ॥१३९॥

हओ णं अरिट्ठनेमिस्स) अर्हतः अरिष्टनेमेः (अज्जजक्खिणीपामुक्खाओ) आर्ययक्षिणीप्रमुखाणि (चत्ता-
लीसं अज्जियासाहस्सीओ) चत्वारिंशत् आर्यासहस्राणि (४०,०००) (उक्कोसिया अज्जियासंपया हुत्था)
उत्कृष्टा एतावती आर्यासम्पदा अभवत् ॥(१७७)॥ (अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स) अर्हतः अरिष्टनेमेः (नंदपा-
मुक्खाणं समणोवासगाणं) नंदप्रमुखाणां श्रावकाणां (एगा सयसाहस्सी) एकः लक्षः (अउणत्तरिं च सहस्सा)
एकोनसप्ततिश्च सहस्राः (१६९,०००) (उक्कोसिया समणोवासगाणं संपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती श्रावकाणां
सम्पदा अभवत् ॥(१७८)॥ (अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स) अर्हतः अरिष्टनेमेः (महासुव्वयापामुक्खाणं सम-
णोवासिआणं) महासुव्रतप्रमुखाणां श्राविकाणां (तिन्नि सयसायस्सीओ) त्रयः लक्षाः (छत्तीसं च सहस्सा)
षट्त्रिंशच्च (३३६०००) सहस्राः (उक्कोसिआ समणोवासिआणं संपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती श्रावि-
काणां सम्पदा अभवत् ॥(१७९)॥ (अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स) अर्हतः अरिष्टनेमेः (चत्तारि सया चउद्दस-
पुव्वीणं) चत्वारि शतानि (४००) चतुर्दशपूर्विणां (अजिणाणं जिणसंकासाणं) अकेवलिनामपि केवलि-
तुल्यानां (जाव संपया हुत्था) यावत् सम्पदा अभवत् (पण्णरस सया ओहिनाणीणं) पञ्चदश शतानि(१५००)
अवधिज्ञानिनां (पन्नरस सया केवलनाणीणं) पञ्चदश शतानि (१५००) केवलज्ञानिनां (पन्नरस सया
वेउव्विआणं) पञ्चदश शतानि (१५००) वैक्रियलब्धिमतां (दस सया विउलमईणं) दश शतानि (१०००)
विपुलमतीनां (अट्ठ सया वाईणं) अष्टौ शतानि (८००) वादिनां (सोलस सया अणुत्तरोववाइआणं)

श्रीनेमिनः परिवारः सू. १७५–१८२

२०

२५ ॥१३९॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१८०] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१७७]

षोडश शतानि (१६००) अनुत्तरोपपातिनां, (पञ्चरस समणसया सिद्धा) पञ्चदश श्रमणानां शतानि (१५००) सिद्धानि,(तीसं अज्जियासयाइं सिद्धाइं) त्रिंशत् आर्याशतानि (३०००) सिद्धानि.॥(१८०)॥ (अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स) अर्हतः अरिष्टनेमेः (दुविहा अंतगडभूमी होत्था) द्विविधा अन्तकृन्मर्यादा अभवत् (तंजहा) तद्यथा (जुगंतगडभूमी य परियायंतगडभूमी य) युगान्तकृद्भूमिः पर्यायान्तकृद्भूमिश्च (जाव अट्ठमाओ पुरिसजुगाओ जुगंतगडभूमी) अष्टमं पुरुषयुगं–पट्टधरं यावत् युगान्तकृद्भूमिरासीत् (दुवासपरियाए अंतमकासी) द्विवर्षपर्याये जाते कोऽपि अन्तमकार्षीत् ॥(१८१)॥ (तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (अरहा अरिट्ठनेमी) अर्हन् अरिष्टनेमिः (तिन्नि वाससयाइं कुमारवासमज्झेवसित्ता) त्रीणि वर्षशतानि कुमारावस्थायां स्थित्वा (चउपन्नं राइंदियाइं) चतुष्पञ्चाशत् अहोरात्रान् (छउमत्थपरियायं पाउणित्ता) छद्मस्थपर्यायं पालयित्वा (देसूणाइं सत्त वाससयाइं) किञ्चिदूनानि सप्त वर्षशतानि (केवलिपरियायं पाउणित्ता) केवलिपर्यायं पालयित्वा (पडिपुन्नाइं सत्त वाससयाइं) प्रतिपूर्णानि सप्त वर्षशतानि (सामन्नपरिआयं पाउणित्ता) चारित्रपर्यायं पालयित्वा (एगं वाससहस्सं) एकं वर्षसहस्रं (सव्वाउअं पालइत्ता) सर्वायुः पालयित्वा (खीणे वेयणिज्जाउयनामगुत्ते) क्षीणेषु सत्सु वेदनीयायुर्नामगोत्रेषु कर्मसु (इमीसे ओसप्पिणीए) अस्यामेव अवसर्पिण्यां (दूसमसुसमाए बहुविइक्कंताए) दुष्षमसुषमानामके चतुर्थेऽरके बहुव्यतिक्रान्ते सति (जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे) योऽसौ उष्णकालस्य चतुर्थो मासः अष्टमः

श्रीनेमिनः परिवारः सू. १७५–१८२

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१८२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१७७]

कल्प.सुबो-ध्या० ७

॥१४०॥

पक्षः (आसाढसुद्धे) आषाढशुद्धः (तस्स णं आसाढसुद्धस्स अट्ठमीपक्खेणं) तस्य आषाढशुद्धस्य अष्टमीदिवसे (उर्प्पि उज्जिंतसेलसिहरंसि) उज्जयन्तनामशैलशिखरस्य उपरि (पंचहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सद्धिं) पञ्चभिः षट्त्रिंशद्युतैः अनगारशतैः (५३६) सार्द्धं (मासिएणं भत्तेणं आपाणएणं) मासिकेन अनशनेन अपानकेन-जलरहितेन (चित्तानक्खत्तेणं जोगमुवागएणं) चित्रानक्षत्रे चन्द्रयोगं उपागते सति (पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि) मध्यरात्रौ (निसज्जिए कालगए, जाव सव्वदुक्खप्पहीणे) निषण्णः सन् कालगतः यावत् सर्वदुःखप्रक्षीणः ॥(१८२)॥ अथ नेमिनिर्वाणात् कियता कालेन पुस्तकलिखनादि जातमित्याह-(अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स) अर्हतः अरिष्टनेमेः (कालगयस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स) कालगतस्य यावत् सर्वदुःखप्रक्षीणस्य (चउरासीइं वाससहस्साइं) चतुरशीतिर्वर्षसहस्राणि (विइक्कंताइं) व्यतिक्रान्तानि (पंचासीइमस्स वाससहसस्स) पञ्चाशीतितमस्य वर्षसहस्रस्यापि (नव वाससयाइं विइक्कंताइं) नव वर्षशतानि व्यतिक्रान्तानि (दसमस्स य वाससयस्स) दशमस्य वर्षशतस्य (अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ) अयं अशीतितमः संवत्सरः कालो गच्छति ॥(१८३)॥ श्रीनेमिनिर्वाणाच्चतुरशीत्या वर्षसहस्रैः श्रीवीरनिर्वाणमभूत्, श्रीपार्श्वनिर्वाणं तु वर्षाणां व्यशीत्या सहस्रैः.सार्द्धैः सप्तभिश्च शतैरभूदिति स्वधिया ज्ञेयम् ॥ इति श्रीनेमिचरित्रम् ॥ अतः परं ग्रन्थगौरवभयात् पश्चानुपूर्व्या नम्यादीनां अजितान्तानां जिनानां अन्तरकालमानमेवाह-(नमिस्स णं अरहओ कालगयस्स) नमिनाथस्य अर्हतः कालगतस्य (जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स)

श्रीनेमिपुस्तकान्तरम्

२०

२५

॥१४०॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१८४] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१८०]

यावत् सर्वदुःखप्रक्षीणस्य (पंच वाससयसहस्साइं) पञ्च वर्षाणां लक्षाः (चउरासीइं वाससहस्साइं) चतुरशीतिर्वर्षसहस्राणि (नव य वाससयाइं विइक्कंताइं) नव वर्षशतानि च व्यतिक्रान्तानि (दसमस्स य वाससयस्स) दशमस्य वर्षशतस्य (अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ) अयं अशीतितमः संवत्सरः कालो गच्छति । श्रीनमिनिर्वाणात् पञ्चभिर्वर्षाणां लक्षैः श्रीनेमिनिर्वाणं, ततश्चतुरशीतिसहस्रनवशताशीतिवर्षातिक्रमे च पुस्तकवाचनादि ॥ (१८४) ॥ २१ ॥ (मुणिसुव्वयस्स णं अरहओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स) मुनिसुव्रतस्य अर्हतः यावत् सर्वदुःखप्रक्षीणस्य (इक्कारस वाससयसहस्साइं) एकादश वर्षाणां लक्षाः (चउरासीइं च वाससहस्साइं) चतुरशीतिवर्षसहस्राणि (नव वाससयाइं विइक्कंताइं) नव वर्षशतानि च व्यतिक्रान्तानि (दसमस्स य वाससयस्स) दशमस्य वर्षशतस्य (अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ) अयं अशीतितमः संवत्सरः कालो गच्छति, श्रीमुनिसुव्रतनिर्वाणात् षष्ट्या वर्षाणां लक्षैः श्रीनमिनिर्वाणं ततश्च पञ्चलक्षचतुरशीतिसहस्रनवशताशीतिवर्षातिक्रमे पुस्तकवाचनादि, अत्र च मुनिसुव्रतनमिनिर्वाणान्तरस्य नमिनिर्वाणपुस्तकवाचनान्तरस्य च मिलने सूत्रोक्तं मानं भवति, एवं सर्वत्र ज्ञेयम् ॥ (१८५) ॥ २० ॥

(मल्लिस्स णं अरहओ जाव पहीणस्स) मल्लिनाथस्य अर्हतः यावत् प्रक्षीणस्य (पण्णट्ठिं वाससयसहस्साइं) पञ्चषष्टिर्वर्षाणां लक्षाः (चउरासीइं च वाससहस्साइं) चतुरशीतिर्वर्षसहस्राणि (नव वाससयाइं विइक्कंताइं) नव वर्षशतानि च व्यतिक्रान्तानि (दसमस्स य वाससयस्स) दशमस्य वर्षशतस्य (अयं असीइमे

श्रीजिनानां पुस्तकलिखनस्य चान्तराणि

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१८६] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१८३]

संवच्छरे काले गच्छइ) अयं अशीतितमः संवत्सरः कालो गच्छति । श्रीमल्लिनिर्वाणाच्चतुष्पञ्चाशद्वर्षाणां लक्षैः श्रीमुनिसुव्रतनिर्वाणं, ततश्चैकादशलक्षचतुरशीतिसहस्रनवशताशीतिवर्षातिक्रमे पुस्तकवाचनादि, उभयमिलितं च सूत्रोक्तं मानं भवति ॥ (१८६) ॥ १९ ॥ (अरस्स णं अरहओ जाव पहीणस्स) अरनाथस्य अर्हतः यावत् प्रक्षीणस्य (एगे वाससकोडिसहस्से विइक्कंते) एकं वर्षकोटीनां सहस्रं व्यतिक्रान्तं (सेसं जहा मल्लिस्स) शेषः कालः मल्लिनाथवद् ज्ञेयः (तं च एयं) स चायं (पंचसट्ठिं लक्खा) पञ्चषष्टिर्लक्षाः (चउरासीइं च वाससहस्साइं विइक्कंताइं) चतुरशीतिर्वर्षसहस्राणि च व्यतिक्रान्तानि (तंमि समए महावीरो निव्वुओ) तस्मिन् समये महावीरो निर्वाणं गतः (तओ परं नव वाससयाइं विइक्कंताइं) ततः परं नव वर्षशतानि व्यतिक्रान्तानि (दसमस्स य वाससयस्स) दशमस्य वर्षशतस्य (अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ) अयं अशीतितमः संवत्सरः कालो गच्छति (एवं अग्गओ जाव सेयंसो ताव दट्ठव्वं) अयमेव पाठः अग्रतः यावत् श्रेयांसस्तावत् द्रष्टव्यः, श्रीअरनिर्वाणाद्वर्षाणां कोटिसहस्रेण श्रीमल्लिनिर्वाणं ततश्च पञ्चषष्टिलक्षचतुरशीतिसहस्रनवशताशीतिवर्षातिक्रमे पुस्तकवाचनादि ॥ (१८७) ॥ १८ ॥

(कुंथुस्स णं अरहओ जाव पहीणस्स) कुन्थुनाथस्य अर्हतः यावत् प्रक्षीणस्य (एगे चउभागपलिओवमे विइक्कंते) एकः चतुर्थो भागः पल्योपमस्य व्यतिक्रान्तः (पंचसट्ठिं च सयसहस्सा) पञ्चषष्टिर्लक्षाः (सेसं जहा मल्लिस्स) शेषं मल्लिनाथवद् ज्ञेयं, श्रीकुन्थुनिर्वाणाद्वर्षकोटिसहस्रन्यूनपल्योपमचतुर्थभागेन श्रीअरनि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१८८] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१८५]

वर्णं ततश्च वर्षसहस्रकोटिपञ्चषष्टिलक्षचतुरशीतिसहस्रनवशतवर्षातिक्रमे पुस्तकवाचनादि ॥ (१८८) ॥ १७ ॥ (संतिस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स) शान्तिनाथस्य अर्हतः यावत् प्रक्षीणस्य (एगे चउभागूणे पलिओवमे विइक्कंते) एकं चतुर्थभागेनोनं पल्योपमं व्यतिक्रान्तं (पण्णट्ठिं सयसहस्सा) पञ्चषष्टिर्लक्षाः (सेसं जहा मल्लिस्स) शेषं मल्लिनाथवद् ज्ञेयं । श्रीशान्तिनिर्वाणात् पल्योपमार्द्धेन श्रीकुन्थुनिर्वाणं ततश्च पल्यचतुर्थभाग-पञ्चषष्टिलक्षचतुरशीतिसहस्रनवशताशीतिवर्षातिक्रमे पुस्तकवाचनादि, उभयमिलने च सूत्रोक्तं पादोनं पल्योपमं स्यात्, शेषं मल्लिनाथवत्, तच्च पञ्चषष्टिलक्षचतुरशीतिसहस्रनवशताशीतिवर्षरूपं ज्ञेयं, एवं सर्वत्र ॥(१८९)॥ १६ ॥ (धम्मस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स) धर्मनाथस्य अर्हतः यावत् प्रक्षीणस्य (तिन्नि सागरोवमाइं विइक्कंताइं) त्रीणि सागरोपमाणि व्यतिक्रान्तानि (पन्नट्ठिं च सेसं जहा मल्लिस्स) पञ्चषष्टिर्लक्षाः शेषं मल्लिनाथवद् ज्ञेयम्, श्रीधर्मनिर्वाणात् पूर्वोक्तपादोनपल्यन्यूनैस्त्रिभिः सागरोपमैः श्रीशान्तिनिर्वाणं ततश्च पादोनपल्योपमपञ्चषष्टिलक्षचतुरशीतिसहस्रनवशताशीतिवर्षातिक्रमे पुस्तकवाचनादि ॥(१९०)॥ १५॥ (अणंतस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स) अनन्तनाथस्य अर्हतः यावत् प्रक्षीणस्य (सत्त सागरोवमाइं विइक्कंताइं) सप्त सागरोपमाणि व्यतिक्रान्तानि (पन्नट्ठिं च सेसं जहा मल्लिस्स) पञ्चषष्टिर्लक्षाः शेषं मल्लिवद् ज्ञेयं, श्रीअनन्तनिर्वाणात् चतुर्भिः सागरैः श्रीधर्मनिर्वाणं, ततश्च सागरत्रयपञ्चषष्टिलक्षादिवर्षातिक्रमे पुस्तक-वाचनादि, उभयमिलनात् सूत्रोक्तं मानं स्यात् ॥ (१९१) ॥ १४ ॥ (विमलस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स)

श्रीजिनानां पुस्तकलिखनस्य चान्तराणि ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१९२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१८८]

कल्प.सुबो-व्या० ७

॥१४२॥

विमलनाथस्य अर्हतः यावत् प्रक्षीणस्य (सोलस सागरोवमाइं विइक्कंताइं) षोडश सागरोपमाणि व्यतिक्रान्तानि (पण्णट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स) पञ्चषष्टिर्लक्षाः शेषं मल्लिवद् ज्ञेयं, श्रीविमलनिर्वाणान्नवभिः सागरैः श्रीअनन्तनाथनिर्वाणं, ततश्च सप्तसागरपञ्चषष्टिलक्षादिना पुस्तकवाचनादि, उभयमिलनेन सूत्रोक्तं मानं स्यात् ॥(१९२)॥ १३॥ (वासुपुज्जस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स) वासुपूज्यस्य अर्हतः यावत् प्रक्षीणस्य (छायालीसं सागरोवमाइं विइक्कंताइं) षट्चत्वारिंशत् सागरोपमाणि व्यतिक्रान्तानि (पन्नट्ठिं च सेसं जहा मल्लिस्स) पञ्चषष्टिर्लक्षाः शेषं मल्लिवद् ज्ञेयं, श्रीवासुपूज्यनिर्वाणात् त्रिंशता सागरैः श्रीविमलनिर्वाणं, ततश्च षोडशसागरपञ्चषष्टिलक्षादिना पुस्तकवाचनादि ॥ (१९३) ॥१२॥ (सिज्जंसस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स) श्रेयांसस्य अर्हतः यावत् प्रक्षीणस्य (एगे सागरोवमसए विइक्कंते) एकं सागरोपमशतं व्यतिक्रान्तं (पण्णट्ठिं च सेसं जहा मल्लिस्स) पञ्चषष्टिर्लक्षाः शेषं मल्लीनाथवद् ज्ञेयं । श्रीश्रेयांसनिर्वाणाच्चतुष्पञ्चाशता सागरैः श्रीवासुपूज्यनिर्वाणं ततश्च षट्चत्वारिंशत्सागरपञ्चषष्टिलक्षादिना पुस्तकवाचनादि ॥ (१९४) ॥ ११॥ (सीयलस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स) शीतलस्य अर्हतः यावत् प्रक्षीणस्य (एगा सागरोवमकोडी) एका सागरोपमकोटी, कीदृशी? (तिवासअद्धनवममासाहिअ) त्रिवर्षसार्धाष्टमासैरधिकैः एवंविधैः (बायालीसवाससहस्सेहिं ऊणिआ विइक्कंता) द्विचत्वारिंशता वर्षसहस्रैः ऊना व्यतिक्रान्ता (एयंमि समए महावीरो निव्वुओ) एतस्मिन् समये महावीरो निर्वृतः (अओवि परं नव वाससयाइं विइक्कंताइं) ततोऽपि परं नववर्ष-

श्रीजिनानां पुस्तकलिखनस्य चान्तराणि

२०

२५

॥१४२॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१९५] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१९२]

शतानि व्यतिक्रान्तानि (दसमस्स य वाससयस्स) दशमस्य च वर्षशतस्य (अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ) अयं अशीतितमः संवत्सरः कालो गच्छति । श्रीशीतलनिर्वाणात् षट्षष्टिलक्षषड्विंशतिसहस्रवर्षाधिकसागरशतोनया एकया सागरकोट्या श्रीश्रेयांसनिर्वाणं, ततोऽपि वर्षत्रयसार्धाष्टमासाधिकद्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रन्यूनैः षट्षष्टिलक्षषड्विंशतिसहस्रवर्षैरधिके सागरशते व्यतिक्रान्ते श्रीवीरो निर्वृतः, ततः परं नवशताशीतिवर्षातिक्रमे पुस्तकवाचनादि ॥(१९५)॥१०॥ (सुविहिस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स) सुविधिनाथस्य अर्हतः यावत् प्रक्षीणस्य (दस सागरोवमकोडीओ विइक्कंताओ) दश सागरोपमाणां कोट्यः व्यतिक्रान्ताः (सेसं सीअलस्स) शेषः पाठः शीतलनाथवत् (तं च इमं–तिवासअद्धनवमासाहिअ) तच्चेत्थं–दश कोट्यः कीदृश्यः ?-त्रिवर्षसार्धाष्टमासाधिकाः (बायालीसवाससहस्सेहिं ऊणिआ विइक्कंता इच्चाइ) द्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रैः ऊना इत्यादिकः, श्रीसुविधिनिर्वाणान्नवभिः सागरकोटिभिः श्रीशीतलनाथनिर्वाणं, ततश्च त्रिवर्षार्धनवमासाधिकद्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रन्यूनसागरकोट्यतिक्रमे श्रीवीरनिर्वृतिः, ततो नवशताशीतिवर्षातिक्रमे पुस्तकवाचनादि ॥ (१९६) ॥९॥ (चंदप्पहस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स) चन्द्रप्रभस्य अर्हतः यावत् प्रक्षीणस्य (एगं सागरोवमकोडिसयं विइक्कंतं) एकं सागरोपमकोटिशतं व्यतिक्रान्तं (सेसं जहा सीअलस्स) शेषं शीतलवद् ज्ञेयं (तं च इमं–तिवासअद्धनवममासाहिय) तच्च इत्थं–कीदृशं सागरकोटिशतं ?–त्रिवर्षसार्धाष्टमासाधिकं (बायालीसवाससहस्सेहि ऊणगमिच्चाइ) द्विचत्वारिंशता वर्षसहस्रैः ऊनं

श्रीजिनानां पुस्तकलिखनस्य चान्तराणि ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१९७] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१९४]

कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१४३॥

इत्यादि । श्रीचन्द्रप्रभनिर्वाणान्नवतिसागरकोटिभिः श्रीसुविधिनाथनिर्वाणं, ततोऽपि त्रिवर्षार्धनवमासाधिक-द्विचत्वारिंशद्भर्षसहस्रैर्न्यूनासु दशसु सागरकोटिषु व्यतिक्रान्तासु श्रीवीरनिर्वृतिः ततो नवशताशीतिवर्षा-तिक्रमे पुस्तकवाचनादि ॥ (१९७) ॥८॥ (सुपासस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स) सुपार्श्वस्य अर्हतः यावत् प्रक्षीणस्य (एगे सागरोवमकोडिसहस्से विइक्कंते) एकं सागरोपमकोटीनां सहस्रं व्यतिक्रान्तं (सेसं जहा सीयलस्स) शेषं शीतलवत् (तं च इमं–तिवासअद्धनवममासाहिअबायालीसवाससहस्सेहिं ऊणिआ इच्चाइ) तच्चेदं, कीदृशं?–त्रिवर्षसार्द्धाष्टमासाधिकद्विचत्वारिंशद्भर्षसहस्रैः ऊनं इत्यादि । श्रीसुपार्श्वनिर्वाणात्सागराणां नवशतकोटिभिः श्रीचन्द्रप्रभनिर्वाणं, ततश्च वर्षत्रयसार्द्धाष्टमासाधिकद्विचत्वारिंशद्भर्षसहस्रन्यूनैकशतकोटि-सागरैः श्रीवीरनिर्वृतिः, ततो नवशताशीतिवर्षातिक्रमे पुस्तकवाचनादि ॥ (१९८) ॥७॥ (पउमप्पहस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स) पद्मप्रभस्य अर्हतः यावत् प्रक्षीणस्य (दस सागरोवमकोडिसहस्सा विइक्कंता) दश सागरोपमकोटीनां सहस्राणि व्यतिक्रान्तानि (सेसं जहा सीयलस्स) शेषं शीतलवत् (तं च इमं–तिवा-सअद्धनवममासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं ऊणगमिच्चाइ) तच्चेदं, कीदृशं?–त्रिवर्षसार्धाष्टमासाधिक-द्विचत्वारिंशद्भर्षसहस्रैः ऊनं इत्यादि । श्रीपद्मप्रभनिर्वाणात् सागरकोटीनां नवभिः सहस्रैः श्रीसुपार्श्वनिर्वाणं, ततश्च त्रिवर्षार्द्धनवमासाधिकद्विचत्वारिंशद्भर्षसहस्रन्यूनैककोटिसहस्रसागरैः श्रीवीरनिर्वृतिस्ततो नवशताशी-तिवर्षातिक्रमे पुस्तकवाचनादि ॥ (१९९) ॥६॥ (सुमइस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स) सुमतिनाथस्य अर्हतः

श्रीजिनानां पुस्तकलि-खनस्य चा-न्तराणि

२०

२५

॥१४३॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२००] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [१९६]

यावत् प्रक्षीणस्य (एगे सागरोवमकोडिसयसहस्से विइक्कंते) एकः सागरोपमकोटीनां लक्षः व्यतिक्रान्तः (सेसं जहा सीअलस्स) शेषं शीतलवत् (तं च इमं तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं ऊणगमिच्चाइ) तत् कीदृशं ?–त्रिवर्षसार्द्धाष्टमासाधिकद्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रैः ऊनं इत्यादि । श्रीसुमतिनिर्वाणान्नवतिसहस्रसागरकोटिभिः श्रीपद्मप्रभनिर्वाणं, ततश्च त्रिवर्षार्द्धनवमासाधिकद्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रन्यूनदशकोटिसहस्रसागरैः श्रीवीरनिर्वाणं, ततो नवशताशीतिवर्षातिक्रमे पुस्तकवाचनादि ॥ (२००) ॥ ५ ॥ (अभिनंदणस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स) अभिनन्दनस्य अर्हतः यावत् प्रक्षीणस्य (दस सागरोवमकोडिसय सहस्सा विइक्कंता) दश सागरोपमकोटिलक्षाः व्यतिक्रान्ताः (सेसं जहा सीअलस्स) शेषं शीतलवत् (तं च इमं तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं ऊणगमिच्चाइ) तत् कीदृशं ?–त्रिवर्षसार्द्धाष्टमासाधिकद्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रैः ऊनं इत्यादि । श्रीअभिनन्दननिर्वाणात् सागरकोटीनां नवभिर्लक्षैः श्रीसुमतिनिर्वाणं, ततश्च त्रिवर्षार्द्धनवमासाधिकद्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रैर्न्यूनैकलक्षकोटिसागरैः श्रीवीरनिर्वृतिस्ततो नवशताशीतिवर्षातिक्रमे पुस्तकवाचनादि ॥ (२०१) ॥४॥ (संभवस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स) सम्भवस्य अर्हतः यावत् प्रक्षीणस्य (वीसं सागरोवमकोडिसयसहस्सा विइक्कंता) विंशतिः सागरोपमकोटीनां लक्षाव्यतिक्रान्ताः (सेसं जहा सीअलस्स) शेषं शीतलनाथवत् (तं च इमं, तिवासअद्धनवमासाहिय बायालीसवाससहस्सेहिं ऊणगमिच्चाइ) तत् कीदृशं?–त्रिवर्षसार्द्धाष्टमासाधिकद्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रैः ऊनं इत्यादि ।

श्रीजिनानां पुस्तकलिखनस्य चान्तराणि ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२०२] गाथा ॥२..॥ दीप अनुक्रम [१९८]

कल्प.सुबो-व्या० ७ ॥१४४॥

श्रीसंभवनिर्वाणात् सागरकोटीनां दशभिर्लक्षैः श्रीअभिनन्दननिर्वाणं, ततश्च त्रिवर्षार्द्धनवमासाधिकद्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रन्यूनदशलक्षकोटिसागरैः श्रीवीरनिर्वृतिस्ततो नवशताशीतिवर्षातिक्रमे पुस्तकवाचनादि॥(२०२)॥ ३॥ (अजियस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स) अजितस्य अर्हतः यावत् प्रक्षीणस्य (पन्नासं सागरोवमकोडिसयसहस्सा विइक्कंता) पञ्चाशत् सागरोपमकोटीनां लक्षाः व्यतिक्रान्ताः (सेसं जहा सीअलस्स) शेषं शीतलनाथवत् (तं च इमं, तिवासअद्धनवममासाहिय बायालीसवाससहस्सेहिं ऊणगमिच्चाइ) तत् कीदृशं ?– त्रिवर्षसार्धाष्टमासाधिकद्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रैः ऊनं इत्यादि । श्रीअजितनाथनिर्वाणात् सागराणां त्रिंशता कोटीलक्षैः श्रीसम्भवनिर्वाणं, ततश्च त्रिवर्षार्द्धनवमासाधिकद्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रन्यूनार्विंशतिसागरकोटिलक्षैः श्रीवीरनिर्वृतिस्ततो नवशताशीतिवर्षातिक्रमे पुस्तकवाचनादि ॥(२०३)॥२॥ श्रीऋषभनिर्वाणात् सागरकोटीनां पञ्चाशता लक्षैः श्रीअजितनिर्वाणं, ततश्च त्रिवर्षार्द्धनवमासाधिकद्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रन्यूनपञ्चाशत्कोटिलक्षसागरैः श्रीवीरनिर्वृतिस्ततो नवशताशीतिवर्षातिक्रमे पुस्तकवाचनादि ॥ २०३ ॥ १ ॥

श्रीनमिनाथनिर्वाणथी पञ्च लक्ष वर्षे श्रीनेमिनिर्वाणं,तेवारपछी चोरासी सहस्र, नव शत एंसी वर्षे पुस्तकवाचनादि २१ । श्रीमुनिसुव्रतना निर्वाणथी छलाख वर्षे श्रीनमिनिर्वाण, तेवारपछी पांच लाख चोर्यासी सहस्र नवशत एंसी वर्षे पुस्तकवाचनादि २० । श्रीमल्लिनाथना निर्वाणथी चोपन लाख वर्षे श्रीमुनिसुव्रतनिर्वाण, तेवारपछी इग्यार लाख चोर्यासी हजार नवसें एंसी वर्षे पुस्तकवाचनादि १९ । श्रीअरनिर्वा-

श्रीजिनानां पुस्तकलिखनस्य चान्तराणि २० २४ ॥१४४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२०४] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२००]

क.सु. २५

णथी कोटिसहस्रवर्षे श्रीमल्लिनिर्वाण, तिवारपछी पांसठ लाख, चोर्यासी हजार, नवसो एंसी वर्षे पुस्तकवाचनादि १८। श्री कुंथुनाथना निर्वाण पछी कोटीसहस्र वर्षे न्यून,पल्योपमने चोथे भागे श्रीअरनाथनिर्वाण,तिवारपछी सहस्र कोटि, पांसठ लाख, चोरासी हजार, नवसो एंशी वर्षे पुस्तकवाचनादि १७। श्रीशांतिनाथना निर्वाणथी अर्धपल्योपमें श्रीकुंथुनाथ निर्वाण, तिवारपछी पल्योपमनो चोथो भाग, तथा पांसठलाख, चोरासी हजार, नवसो एंसी वर्षे पुस्तकवाचनादि १६। श्रीधर्मनाथना निर्वाणथी पोणा पल्योपमे न्यून, त्रण सागरोपमें श्रीशांतिनाथ निर्वाण, तिवार पछी पोणुं पल्योपम, पांसठ लाख, चोरासी हजार, नवसो एंसी, वर्षे पुस्तकवाचनादि १५। श्रीअनंतनाथना निर्वाणथी चारसागरोपमें श्रीधर्मनाथ निर्वाण, तिवारपछी त्रण सागरोपम, पांसठ लाख, चोर्यासी हजार, नवसो एंसी, वर्षे पुस्तकवाचनादि १४। श्रीविमलनाथना निर्वाणथी नवसागरोपमें श्रीअनंतनाथ निर्वाण, तिवारपछी सात सागरोपम, उपर पांसठ लाख, चोरासी हजार, नवसो एंशी, वर्षे पुस्तकवाचनादि १३। श्रीवासुपूज्यना निर्वाणथी त्रीस सागरोपमें श्रीविमलनाथ निर्वाण, तिवारपछी सोल सागरोपम, पांसठ लाख, चोर्यासी हजार, नवसो एंशी, वर्षे पुस्तकवाचनादि १२। श्रीश्रेयांसना निर्वाणथी चोपन सागरोपमें श्रीवासुपूज्य निर्वाण, तिवारपछी छेंतालीस सागरोपम, पांसठ लाख, चोर्यासी हजार, नवसो एंसी, वर्षे पुस्तकवाचनादि ११। श्रीशीतलनाथना निर्वाणथी एकसो सागरोपम, छासठ लाख, छवीस हजार वर्ष ओछा, एवा एककोडी सागरोपमें श्रीश्रेयांस निर्वाण, तिवारपछी त्रण वर्ष, साडा आठ, मास अने

श्रीजिनानां पुस्तकलिखनस्य चान्तराणि ५ १० १५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२०४] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२००]

कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१४५॥

बेंतालीस हजार वर्ष न्यून एवा छासठ लाख छवीस हजार वर्षे अधिक एकसो सागरोपमें श्रीवीर निर्वाण, तेवारपछी नवसो एंसी वर्षे पुस्तकवाचनादि १०। श्रीसुविधिनाथना निर्वाणथी नव कोडी सागरोपमें श्रीशीतल निर्वाण, तिवारपछी बेतालीस हजार वर्ष त्रण वर्ष साडाआठमास एटला न्यून एक कोडी सागरोपमें श्रीवीर निर्वाण, तिवारपछी नवसो एंसी वर्षे पुस्तकवाचनादि ९। श्रीचंद्रप्रभुना निर्वाणथी नेवु कोडी सागरोपमे श्रीसुविधि निर्वाण, तिवारपछी बेंतालीस हजार वर्ष त्रण वर्ष साडा आठ मास एटला न्यून दश कोडी सागरोपमें श्रीवीर निर्वाण, तिवारपछी नवसो एंसी वर्षे पुस्तकवाचनादि ८। श्रीसुपार्श्वना निर्वाणथी नवसें कोडी सागरोपमें श्रीचंद्रप्रभ निर्वाण, तिवारपछी बेंतालीस हजार वर्ष त्रण वर्ष साडाआठ मास एटलें न्यून एकसो क्रोड सागरोपमें श्रीवीर निर्वाण, तिवारपछी नवसो एंसी वर्षे पुस्तकवाचनादि ७। श्रीपद्मप्रभना निर्वाणथी नव हजार कोडि सागरोपमें श्रीसुपार्श्व निर्वाण, तिवारपछी त्रण वर्षे साडाआठ मास तथा बेंतालीस हजार वर्ष ओछा एक हजार क्रोड सागरोपमें श्रीवीर निर्वाण, तेवारपछी नवसो एंसी वर्षे पुस्तकवाचनादि ६। श्रीसुमतिनाथना निर्वाणथी नेवु हजार क्रोड सागरोपमें श्रीपद्मप्रभ निर्वाण, तिवार पछी त्रण वर्ष साडा आठ मास बेंतालीस हजार वर्ष ओछा दश हजार क्रोड सागरोपमें श्रीवीर निर्वाण, पछी नवसो एंसी वर्षे पुस्तकवाचनादि ५। श्रीअभिनंदनना निर्वाणथी नव लाख क्रोड सागरोपमें श्रीसुमति

श्रीजिनानां पुस्तकलिखनस्य चान्तराणि

२०

२५

॥१४५॥

२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२०४] गाथा ||२..||

दीप अनुक्रम [२००]

निर्वाण, तिवारपछी त्रण वर्ष साडा आठ मास बेंतालीस हजार वर्ष ओछां एक लाख क्रोड सागरोपमें श्रीवीर निर्वाण, तिवारपछी नवसो एंसी वर्षे पुस्तकवाचनादि ॥ ४ ॥

श्रीसंभवनाथना निर्वाण पछी दश लाख कोडी सागरोपमें श्रीअभिनंदन निर्वाण, तिवारपछी त्रण वर्ष साडाआठ मास बेंतालीस हजार वर्ष ओछां एवा दश लाख कोडी सागरोपमें श्रीवीर निर्वाण, तेवारपछी नवसो एंसी वर्षे पुस्तकवाचनादि ३। श्रीअजितनाथना निर्वाणथी त्रीस लाख कोडि सागरोपमें श्रीसंभवनाथ निर्वाण, तेवारपछी त्रण वर्ष साडाआठ मास तथा बेंतालीस हजार वर्ष ओछां एवा वीश लाख कोडी सागरोपमें श्रीवीर निर्वाण, तेवारपछी नवसो एंसी वर्षे पुस्तकवाचनादि २। श्रीऋषभना निर्वाणथी पचास लाख कोडि सागरोपमें श्रीअजित निर्वाण, तेवारपछी त्रण वर्ष साडा आठ मास बेंतालीस हजार वर्ष ओछां एवा पचास लाख क्रोड सागरोपमें श्रीमहावीर निर्वाण, तेवारपछी नवसो एंसी वर्षे पुस्तकवाचनादि १ ॥

अथास्यामवसर्पिण्यां प्रथमधर्मप्रवर्त्तकत्वेन परमोपकारित्वात् किञ्चिद्विस्तरतः श्रीऋषभदेवचरित्रं प्रस्तौति– (तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (उसभे णं अरहा) ऋषभः अर्हन् , कीदृशः ?– (कोसलिए) कोशलायां–अयोध्यायां जातः कौशलिकः (चउउत्तरासाढे अभीइपंचमे हुत्था) चतुर्षु उत्तराषाढा यस्य स चतुरुत्तराषाढः अभिजिन्नक्षत्रे पञ्चमं कल्याणकं अभवत् ॥ (२०४) ॥

श्रीजिनानां पुस्तकलिखनस्य चान्तराणि ५ १० १३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ श्री ऋषभदेव-चरित्रं विस्तरेण वर्णयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२०५] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०१]

कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१४६॥

(तंजहा) तद्यथा (उत्तरासाढाहिं चुए, चइत्ता गब्भं वक्कंते) उत्तराषाढायां च्युतः, च्युत्वा गर्भे उत्पन्नः (जाव अभीइणा परिनिव्वुए) यावत् अभिजिन्नक्षत्रे निर्वाणं प्राप्तः ॥ (२०५) ॥

(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (उसभे णं अरहा कोसलिए) ऋषभः अर्हन् कौशलिकः (जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे) योऽसौ उष्णकालस्य चतुर्थो मासः सप्तमः पक्षः (आसाढबहुले) आषाढस्य कृष्णपक्षः (तस्स णं आसाढबहुलस्स चउत्थीपक्खेणं) तस्य आषाढबहुलस्य चतुर्थीदिवसे (सव्वट्ठसिद्धाओ महाविमाणाओ) सर्वार्थसिद्धनामकात् महाविमानात् (तित्तीससागरोवमट्ठि-इआओ) त्रयस्त्रिंशत् सागराणि स्थितिर्यत्र एवंविधात् (अणंतरं चयं चइत्ता) अन्तररहितं च्यवनं कृत्वा (इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे) अस्मिन्नेव जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतक्षेत्रे (इक्खागभूमीए) तदा ग्रामादी-नामभावात् इक्ष्वाकुभूमिकायां (नाभिकुलगरस्स मरुदेवाए भारियाए) नाभिनामकुलकरस्य मरुदेवाया भार्यायाः कुक्षौ (पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि) पूर्वापररात्रकालसमये-मध्यरात्रौ (आहारवक्कंतीए जाव गब्भत्ताए वक्कंते) दिव्याहारत्यागेन यावत् गर्भतया उत्पन्नः ॥ (२०६) ॥ (उसभे णं अरहा कोसलिए) ऋषभः अर्हन् कौशलिकः (तिन्नाणोवगए आविहुत्था) त्रिज्ञानोपगतः अभवत् (तंजहा) तद्यथा (चइस्सामित्ति जाणइ, जाव सुमिणे पासइ) च्योष्ये इति जानाति, यावत् स्वप्नान् पश्यति (तंजहा) तद्यथा (गयवसहगाहा) 'गयवसह' इत्यादिगाथाऽत्र वाच्या (सव्वं तहेव नवरं) सर्वं तथैव-पूर्वोक्तवत्, अयं विशेषः (पढमं उसभं

श्रीऋषभज-न्मादि सू. २०४-२०९
१५
२०
२५
॥१४६॥
२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२०७] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०३]

मुहेणं अइंतं पासेइ) मरुदेवा प्रथमं वृषभं मुखे प्रविशन्तं पश्यति (सेसाओ गयं) शेषास्तु जिनजनन्यः प्रथमं गजं पश्यन्ति, वीरमाता तु सिंहमद्राक्षीत् (नाभिकुलगरस्स साहेइ) नाभिकुलकराय च कथयति (सुविणपाढगा नत्थि) तदा स्वप्नपाठका न सन्ति (नाभिकुलगरो सयमेव वागरेइ) अतो नाभिकुलकरः स्वयमेव स्वप्नफलं कथयति ॥ (२०७) ॥ (तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (उसभे णं अरहा कोसलिए) ऋषभः अर्हन् कौशलिकः (जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे) योऽसौ उष्णकालस्य प्रथमो मासः प्रथमः पक्षः (चित्तबहुले) चैत्रस्य कृष्णपक्षः (तस्स णं चित्तबहुलस्स अट्ठमीपक्खेणं) तस्य चैत्रबहुलस्य अष्टमीदिवसे (नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं) नवसु मासेषु बहुप्रतिपूर्णेषु सत्सु (जाव आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं) यावत् उत्तराषाढायां नक्षत्रे चन्द्रयोगं उपागते सति (आरोग्गाऽऽरोग्गं दारयं पयाया) अरोगा माता अरोगं दारकं प्रजाता ॥ (२०८) ॥ (तं चेव सव्वं जाव देवा देवीओ य वसुहारवासं वासिंसु) तदेव सर्वं यावत् देवाः देव्यश्च वसुधारावर्षणं चक्रुः (सेसं तहेव चारगसोहणमाणुम्माणवद्धणउस्सुक्कमाइयठिइवडियजूयवज्जं सव्वं भाणिअव्वं) शेषं तथैव--पूर्वोक्तप्रकारेण बन्दिमोचनमानोन्मानवर्द्धनशुल्कमोचनप्रमुखस्थितिपतितायूपवर्जं सर्वं भणितव्यम् ॥ (२०९) ॥

अथ देवलोकच्युतोऽद्भुतरूपोऽनेकदेवदेवीपरिवृतः सकलगुणैस्तेभ्यो युगलमनुष्येभ्यः परमोत्कृष्टः क्रमेण प्रवर्द्धमानः सन्नाहाराभिलाषे सुरसञ्चारितामृतरससरसां अङ्गुलिं मुखे प्रक्षिपति, एवं अन्येऽपि तीर्थङ्करा बाल्ये

श्रीऋषभजन्मादि सू. २०४-२०९

५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२१०] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०५]

कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१४७॥

अवगन्तव्याः, बाल्यातिक्रमे पुनरग्निपक्काहारभोजिनः, ऋषभस्तु प्रव्रज्यां यावत् सुरानीतोत्तरकुरुकल्पद्रुमफ-लान्यास्वादितवान्, अथ सञ्जाते किञ्चिदूनवर्षे च भगवति प्रथमजिनवंशस्थापनं शक्रजीतमिति विचिन्त्य कथं रिक्तपाणिः स्वामिसमीपं यामीति महतीं इक्षुयष्टिं आदाय नाभिकुलकराङ्कस्थस्य प्रभोरग्रे तस्थौ, दृष्ट्वा चेक्षु-यष्टिं हृष्टवदनेन स्वामिना करे प्रसारिते इक्षुं भक्षयसीति भणित्वा तां दत्त्वा इक्ष्वभिलाषात् स्वामिनो वंश इक्ष्वाकुनामा भवतु, गोत्रं अपि अस्य एतत्पूर्वजानां इक्ष्वभिलाषात्काश्यपनामेति शक्रो वंशस्थापनां कृतवान्।

अथ किञ्चिद्युगलं मातृपितृभ्यां तालवृक्षाधो मुक्तं, तस्मात्पतता तालफलेन पुरुषो व्यापादितः, प्रथमोऽयं अकालमृत्युः, अथ सा कन्या मातापित्रोः स्वर्गतयोः एकाकिन्येव वने चचार, दृष्ट्वा च तां सुन्दरीं युगलिकनरा नाभिकुलकराय न्यवेदयन्, नाभिरपि शिष्टेयं सुनन्दानाम्नी ऋषभपत्नी भविष्यतीति लोकज्ञापनपुरस्सरं तां जग्राह, ततः सुनन्दासुमङ्गलाभ्यां सह प्रवर्द्धमानो भगवान् यौवनं अनुप्राप्तः, इन्द्रोऽपि प्रथमजिन-विवाहकृत्यं अस्माकं जीतमिति अनेकदेवदेवीकोटिपरिवृतः समागत्य स्वामिनो वरकृत्यं स्वयमेव कृतवान्, वधूकृत्यं च द्वयोरपि कन्ययोर्दैव्य इति, ततस्ताभ्यां विषयोपभोगिनो भगवतः षट्लक्षपूर्वेषु गतेषु भरतब्राह्मी-रूपं युगलं सुमङ्गला, बाहुबलिसुन्दरीरूपं युगलं च सुनन्दा प्रसुषुवे, तदनु चैकोनपंचाशत् पुत्रयुगलानि क्रमात् सुमंगला प्रसूतवती।

(उसभे णं अरहा कोसलिए कासवगुत्तेणं)ऋषभः अर्हन् कौशलिकः काश्यपगोत्रीयः(तस्स णं पंच नामधिज्जा

वंशस्थापन सुनन्दा-ग्रहादि २० २५ ॥१४७॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२१०] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०५]

एवमाहिज्जंति) तस्य प्रभोः पञ्च नामधेयानि एवं आख्यायन्ते (तंजहा) तद्यथा (उसभे इ वा १ पढमराया इ वा २) ऋषभ इति वा १ प्रथमराजा इति वा २ (पढमभिक्खायरे इ वा ३) प्रथमभिक्षाचर इति वा ३ (पढमजिणे इ वा ४) प्रथमजिन इति वा ४ (पढमतित्थंकरे इ वा ५) प्रथमतीर्थङ्कर इति वा ५, तत्र इकारः सर्वत्र वाक्यालङ्कारे, प्रथमराजा, स चैवं—कालानुभावात् क्रमेण प्रचुरकषायोदयात् परस्परं विवदमानानां युगलिकानां दण्डनीतिस्तावत् विमलवाहनचक्षुष्मत्कुलकरकालेऽल्पापराधित्वेन हक्काररूपैवाभूत्, यशस्विनोऽभिचन्द्रस्य च काले अल्पेऽपराधे हक्काररूपा महति च अपराधे मकाररूपा, प्रसेनजिन्मरुदेवनाभिकुलकरकाले च जघन्यमध्योत्कृष्टापराधेषु क्रमेण हक्कारमकारधिक्काररूपा दण्डनीतयोऽभूवन्, एवमपि नीत्यतिक्रमेण ज्ञानादिगुणाधिकं भगवन्तं विज्ञाय युगलिभिर्भगवन्निवेदने कृते स्वाम्याह—'नीतिमतिक्रमतां दण्डं सर्वं राजा करोति, स चाभिषिक्तोऽमात्यादिपरिवृतो भवति' एवं उक्ते तैरूचे—अस्माकं अपि ईदृशो राजा भवतु, स्वाम्याह—याचध्वं नाभिकुलकरं राजानं, तैर्याचितो नाभिः —'भो भवतां ऋषभ एव राजा' इत्युक्तवान्, ततस्ते राज्याभिषेकनिमित्तमुदकानयनाय सरः प्रति गतवन्तः, तदा च प्रकम्पितासनः शक्रो जीतमिति समागत्य मुकुटकुण्डलाभरणादिपरिष्क्रियापुरस्सरं भगवन्तं राज्येऽभिषिञ्चति स्म, युगलिकनरास्तु नलिनपत्रस्थितजलहस्ता अलङ्कृतं भगवन्तं निरीक्ष्य विस्मिताः क्षणं विचार्य भगवतः पादयोर्जलं प्रक्षिप्तवन्तः, तच्च दृष्ट्वा तुष्टः शक्रोऽचिन्तयत्—अहो विनीता एते पुरुषा इति वैश्रमणं आज्ञापितवान् यदिह द्वादशयोजनविस्तीर्णां नवयोजनविष्कम्भां विनीतां नाम्नीं नगरीं

प्रथमनृपत्वं नगरीनिवेशनम् ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२१०] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०५]

निष्पादयेत्याज्ञासमनन्तरमेव रत्नसुवर्णमयभवनपङ्क्तिप्राकारोपशोभितां नगरीमवासयत्, ततो भगवान् राज्ये हस्त्यश्वगवादिसङ्ग्रहपुरस्सरं उग्रभोगराजन्यक्षत्रियलक्षणानि चत्वारि कुलानि व्यवस्थापितवान्, तत्रोग्रदण्डकारित्वादुग्रा आरक्षकस्थानीयाः १ भोगार्हत्वाद् भोगा गुरुस्थानीयाः २ समानवयस इतिकृत्वा राजन्या वयस्यस्थानीयाः ३ शेषाः प्रधानप्रकृतितया क्षत्रियाश्च ४। तदा च कालपरिहाण्या ऋषभकुलकरकाले कल्पद्रुमफललाभाभावेन ये इक्ष्वाकास्ते इक्षुभोजिनः शेषास्तु प्रायः पत्रपुष्पफलभोजिनोऽग्नेरभावाच्चापक्वशाल्याद्यौषधीभोजिनश्चाभूवन्, कालानुभावात्तदजीर्णे च स्वल्पं स्वल्पतरं च भुक्तवन्तः, तस्याप्यजीर्णे भगवद्वचसा हस्ताभ्यां घृष्ट्वा त्वचं अपनीय भुक्तवन्तः, तथाप्यजीर्णे प्रभूपदेशात् पत्रपुटे जलेन क्लेदयित्वा तण्डुलादीन् भुक्तवन्तः, एवमप्यजीर्णे कियतीमपि वेलां हस्ततलपुटे क्लेदयित्वा हस्ततलपुटे संस्थाप्य, पुनरप्यजीर्णे कक्षासु स्वेदयित्वा, तथाप्यजीर्णे हस्ताभ्यां घृष्ट्वा पत्रपुटे क्लेदयित्वा हस्ततलपुटे संस्थाप्येत्यादिबहुप्रकारैरन्नभोजिनो बभूवांसः। एवं सत्येकदा द्रुमघर्षणान्नवोत्थितं प्रवृद्धज्वलज्ज्वालं तृणकलापं कवलयन्तं अग्निमुपलभ्याभिनवरत्नबुद्ध्या प्रसारितकरा दह्यमाना भयभीताः सन्तो युगलिनो भगवन्तं विज्ञपयामासुः, भगवता चाग्नेरुत्पत्तिं विज्ञाय भो युगलिका ! उत्पन्नोऽग्निः अत्र च शाल्याद्यौषधीर्निधाय भुङ्क्ष्वं यतस्ताः सुखेन जीर्यन्तीत्युपाये कथितेऽप्यनभ्यासात् सम्यगुपायं अजानाना औषधीरग्नौ प्रक्षिप्य कल्पद्रोः फलानीव याचन्ते, अग्निना च ताः सर्वतो दह्यमाना दृष्ट्वा अयं पापात्मा वेताल इवातृप्तः स्वयमेव सर्वं भक्षयति नास्माकं किञ्चित् प्रयच्छतीत्यतोऽस्या-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२१०] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०५]

राज्य-कार्यम्

पराधं भगवते विज्ञप्य शिक्षां दापयिष्याम इति बुद्ध्या गच्छन्तः पथि भगवन्तं हस्तिस्कन्धारूढं अभिमुख-
मागच्छन्तं दृष्ट्वा यथास्थितं व्यतिकरं भगवते न्यवेदयन्, भगवांश्चाह–अत्र पीठरादिव्यवधानेन भवद्भिर्धान्या-
दिप्रक्षेपः कार्य इत्युक्त्वा तैरेव मृत्पिण्डं आनाय्य निधाय च हस्तिकुम्भे मिण्ठेन कुम्भकारशिल्पं प्रथमं न्य-
दर्शयत्, उक्तवांश्च–एवंविधानि भाण्डानि विधाय तेषु पाकं कुरुध्वमिति, भगवदुक्तं सम्यगुपायमुपलभ्य ते
तथैव कृतवन्तः, अतः प्रथमं कुम्भकारशिल्पं प्रवर्त्तितं, ततो लोहकार १ चित्रकार २ तन्तुवाय ३ नापित-
शिल्प ४ लक्षणानि चत्वारि शिल्पानि, एतेषां च पञ्चानां मूलशिल्पानां प्रत्येकं विंशत्या भेदैः शिल्पशतं
तंचाचार्योपदेशजमिति ॥ (२१०) ॥

(उसभे णं अरहा कोसलिए) ऋषभः अर्हन् कौशलिकः (दक्खे दक्खपइन्ने पडिरूवे आलीणे भद्दए
विणीए) दक्षः दक्षा प्रतिज्ञा यस्य स तथा सुन्दररूपवान् सर्वगुणैरालिङ्गितः सरलपरिणामः विनयवान्
(वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता) विंशतिलक्षपूर्वाणि यावत् कुमारावस्थायां उषित्वा
(तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं रज्जवासमज्झे वसइ) त्रिषष्टिलक्षपूर्वाणि यावत् राज्यावस्थायां वसति (तेवट्ठिं
च पुव्वसयसहस्साइं रज्जवासमज्झे वसमाणे) त्रिषष्टिलक्षपूर्वाणि यावत् राज्यावस्थायां च वसन् सन् (लेहा-
इओ गणियप्पहाणाओ) लिखनं आदौ यासां तास्तथा गणनं प्रधानं–श्रेष्ठं यासां तास्तथा, तथा (सउणरु-
यपज्जवसाणाओ) पक्षिणां शब्दः स पर्यवसाने–प्रान्ते यासां तास्तथा (बावत्तरिं कलाओ) एवंविधाः द्वास-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२११] गाथा ॥२..॥ दीप अनुक्रम [२०६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१४९॥

सतिः पुरुषकलाः, लेखादिका द्वाससतिः कलाः, ताश्चेमाः–लिखितं १ गणितं २ गीतं ३ नृत्यं ४ वाद्यं च ५ पठन-६ शिक्षे च ७। ज्योति ८ इछन्दो ९ ऽलङ्कृति १० व्याकरण ११ निरुक्ति १२ काव्यानि १३ ॥ १॥ कात्यायनं १४ निघण्टु १५ गजतुरगारोहणं १६–१७ तयोः शिक्षा १८। शस्त्राभ्यासो १९ रस २० मन्त्र २१–यन्त्र २२ विष २३ खन्य २४ गन्धवादाश्च २५ ॥ २ ॥ प्राकृत २६ संस्कृत २७ पैशाचिका २८–ऽपभ्रंशाः २९ स्मृतिः ३० पुराण ३१ विधी ३२। सिद्धान्त ३३ तर्क ३४ वैदक ३५ वेदा ३६ ऽगम ३७–संहिते ३८ तिहासाश्च ३९ ॥ ३ ॥ सामुद्रिक ४० विज्ञाना ४१ ऽऽ चार्यकविद्या ४२ रसायनं ४३ कपटम् ४४। विद्यानुवाददर्शन ४५ संस्कारौ ४६ धूर्त्तसम्बलकम् ४७ ॥ ४ ॥ मणिकर्म ४८ तरुचिकित्सा ४९ खेचर्य ५०–मरीकले ५१ न्द्रजालं च ५२। पातालसिद्धि ५३ यन्त्रक ५४ रसवत्यः ५५ सर्वकरणी च ५६ ॥ ५ ॥ प्रासादल-क्षणं ५७ पण ५८ चित्रोपल ५९ लेप ६० चर्मकर्माणि ६१। पत्रच्छेद् ६२ नखच्छेद् ६३ पत्रपरीक्षा ६४ वशीकर-णम् ६२ ॥ ६ ॥ काष्ठघटन ६६ देशभाषा ६७ गारुड ६८ योगाङ्ग ६९ धातुकर्माणि ७०। केवलिविधि ७१–शकुनरुते ७२ इति पुरुषकला द्विसप्ततिर्ज्ञेयाः ॥ ७ ॥ अत्र लिखितं हंसलिप्याद्यष्टादशलिपिविधानं, तच्च भगवता दक्षिणकरेण ब्राह्म्या उपदिष्टं, गणितं तु एकं दश शतं सहस्रं अयुतं लक्षं प्रयुतं कोटिः अर्बुदं अब्जं खर्वं निखर्वं महापद्मं शङ्कुः जलधिः अन्त्यं मध्यं परार्धं चेति यथाक्रमं दशगुणं इत्यादि सङ्ख्यानं सुन्दर्याः वाम-करेण काष्ठकर्मादिरूपं कर्म भरतस्य पुरुषादिलक्षणं च बाहुबलिन उपदिष्टमिति ॥

द्वासप्ततिः कलाः २० २५ ॥१४९॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ द्वासप्ततिः (७२) कलानां निर्देशः क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२११] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०६]

(चउसट्ठिं महिलागुणे) चतुःषष्टिः स्त्रीकलाः, ताश्चेमाः–ज्ञेया नृत्यौ १ चित्रे २ चित्रं ३ वादित्र ४ मन्त्र ५–तन्त्राश्च ६ । घनवृष्टि ७ फलाकृष्टी ८ संस्कृतजल्पः ९ क्रियाकल्पः १० ॥१॥ ज्ञान ११ विज्ञान १२ दम्भौ १३–वुस्तम्भा १४ गीत १५ तालयो १६ र्मानम्। आकारगोपना १७ ऽऽ रामरोपणे १८ काव्यशक्ति १९ वक्रोक्ती ३० ॥ २ ॥ नरलक्षणं २१ गज २२ हयवरपरीक्षणे २३ वास्तुशुद्धिलघुबुद्धी २४ । शकुनविचारो २५ धर्माचारो २६–ऽञ्जन २७ चूर्णयोर्योगाः २८ ॥ ३ ॥ गृहिधर्म २९ सुप्रसादनकर्म ३० कनकसिद्धि ३१ वर्णिकावृद्धी ३२ । वाक्-पाटव ३३ करलाघव ३४ ललितचरण ३५ तैलसुरभिताकरणे ३६ ॥ ४ ॥ भृत्योपचार ३७ गेहाचारो ३८ व्याकरण ३९ परनिराकरणे ४० । वीणानाद ४१ वितण्डावादो ४२ ऽङ्कस्थिति ४३ र्जनाचारः ४४ ॥ ५ ॥ कुम्भभ्रम ४५ सारिश्रम ४६ रत्नमणिभेद ४७ लिपिपरिच्छेदाः ४८ । वैद्यक्रिया च ४९ कामाविष्करणं ५० रन्धनं ५१ चिकुरबन्धः ५२ ॥ ६ ॥ शालीखण्डन ५३ मुखमण्डने ५४ कथाकथन ५५ कुसुम-सुग्रथने ५६ । वरवेष ५७ सर्वभाषाविशेष ५८ वाणिज्य ५९ भोज्ये च ६० ॥ ७ ॥ अभिधानपरि-ज्ञाना ६१ ऽऽ भरणयथास्थानविविधपरिधाने ६२ । अन्त्याक्षरिका ६३ प्रश्नप्रहेलिका ६४ स्त्रीकलाः चतुःषष्टिः ॥८॥

(सिप्पसयं च कम्माणं) कर्मणां–कृषिवाणिज्यादीनां मध्ये कुम्भकारशिल्पादिकं प्रागुक्तं शिल्पशत-मेव भगवतोपदिष्टं, अत एवानाचार्योपदेशजं कर्म आचार्योपदेशजं च शिल्पमिति कर्मशिल्पयोर्विशे-षमामनन्ति, कर्माणि च क्रमेण स्वयमेव समुत्पन्नानि (तिन्निवि पयाहिआए उवदिसइ) त्रीण्यप्येतानि

चतुष्षष्टि-महिला-गुणाः ५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२११] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०६]

कल्प.सुबो-व्या० ७

॥१५०॥

द्वासप्ततिपुरुषकलाश्चतुःषष्टिमहिलागुणशिल्पशताख्यानि वस्तूनि प्रजाहिताय भगवानुपदिशति स्म (उव-दिसित्ता) उपदिश्य च (पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचइ) पुत्राणां शतं राज्यशते स्थापयति, तत्र भरतस्य विनीतायां मुख्यराज्यं बाहुबलेश्च बहलीदेशे तक्षशिलायां राज्यं दत्त्वा शेषाणां अष्टनवतिनन्दनानां पृथक् पृथक् देशान् विभज्य दत्तवान्, नन्दननामानि चेमानि—

भरतः १ बाहुबलिः २ शङ्खः ३ विश्वकर्मा ४ विमलः ५ सुलक्षणः ६ अमलः ७ चित्राङ्गः ८ ख्यातकीर्त्तिः ९ वरदत्तः १० सागरः ११ यशोधरः १२ अमरः १३ रथवरः १४ कामदेवः १५ ध्रुवः १६ वत्सो १७ नन्दः १८ सूरः १९ सुनन्दः २० कुरुः २१ अङ्गः २२ वङ्गः २३ कोशलः २४ वीरः २५ कलिङ्गः २६ मागधः २७ विदेहः २८ सङ्गमः २९ दशार्णः ३० गम्भीरः ३१ वसुवर्मा ३२ सुवर्मा ३३ राष्ट्रः ३४ सुराष्ट्रः ३५ बुद्धिकरः ३६ विविधकरः ३७ सुयशाः ३८ यशःकीर्त्तिः ३९ यशस्करः ४० कीर्त्तिकरः ४१ सूरणः ४२ ब्रह्मसेनः ४३ विक्रान्तः ४४ नरोत्तमः ४५ पुरुषोत्तमः ४६ चन्द्रसेनः ४७ महासेनः ४८ नभःसेनः ४९ भानुः ५० सुकान्तः ५१ पुष्पयुतः ५२ श्रीधरः ५३ दुर्द्धर्षः ५४ सुसुमारः ५५ दुर्जयः ५६ अजयमानः ५७ सुधर्मा ५८ धर्मसेनः ५९ आनन्दनः ६० आनन्दः ६१ नन्दः ६२ अपराजितः ६३ विश्वसेनः ६४ हरिषेणः ६५ जयः ६६ विजयः ६७ विजयन्तः ६८ प्रभाकरः ६९ अरिदमनः ७० मानः ७१ महाबाहुः ७२ दीर्घबाहुः ७३ मेघः ७४ सुघोषः ७५ विश्वः ७६ वराहः ७७ सुसेनः ७८ सेनापतिः ७९ कपिलः ८० शैलविचारी ८१ अरि-

शतनन्दन-नामानि

२०

२५

॥१५०॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्रश्री रुशभदेवस्य पूत्रानां नामानि दर्शयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२११] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०६]

ञ्जयः ८२ कुञ्जरबलः ८३ जयदेवः ८४ नागदत्तः ८५ काश्यपः ८६ बलः ८७ वीरः ८८ शुभमतिः ८९ सुमतिः ९० पद्मनाभः ९१ सिंहः ९२ सुजातिः ९३ सञ्जयः ९४ सुनाभः ९५ नरदेवः ९६ चित्तहरः ९७ सुरवरः ९८ दृढरथः ९९ प्रभञ्जनः १०० इति ॥ राज्यदेशनामानि तु अङ्गः १ वङ्गः २ कलिङ्गः ३ गौडः ४ चौडः ५ कर्णाट ६ लाट ७ सौराष्ट्र ८ काश्मीर ९ सौवीर १० आभीर ११ चीण १२ महाचीण १३ गूर्जर १४ बङ्गाल- १५ श्रीमाल १६ नेपाल १७ जहाल १८ कौशल १९ मालव २० सिंहल २१ मरुस्थला २२ दीनि ॥ (अभिसिंचित्ता) स्थापयित्वा (पुणरवि लोअंतिएहिं जिअकप्पिएहिं देवेहिं) पुनरपि लोकान्तिकैः जीतकल्पिकैः देवैः (ताहिं इट्ठाहिं जाव वग्गूहिं) ताभिः इष्टाभिः यावद् वाग्भिः उक्तः सन् (सेसं तं चेव सव्वं भाणिअव्वं जाव दाणं दाइआणं परिभाइत्ता) शेषं तदेव-पूर्वोक्तं सर्वं भणितव्यं यावत् धनं गोत्रिणां विभज्य-दत्त्वा (जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले) योऽसौ उष्णकालस्य प्रथमो मासः प्रथमः पक्षः चैत्रबहुलः (तस्स णं चित्तबहुलस्स अट्ठमीपक्खेणं) तस्य चैत्रबहुलस्य अष्टमीदिवसे (दिवसस्स पच्छिमे भागे) दिवसस्य पश्चिमे भागे (सुदंसणाए सिबिआए) सुदर्शनायां नाम शिबिकायां (सदेवमणु-आसुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे) देवमनुजासुरसहितया पर्षदा-जनश्रेण्या समनुगम्यमानमार्गः (जाव विणीयं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ) यावत् विनीतायाः नगर्याः मध्यभागेन निर्गच्छति (निग्गच्छित्ता) निर्गत्य (जेणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे) यत्रैव सिद्धार्थवनं उद्यानं (जेणेव असोगवरपायवे)

श्रीऋषभ-दीक्षा सू. २११

५ १० १५

क.सू. २६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ श्री रुषभदेवस्य दीक्षा-कल्याणकस्य वर्णनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२११] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०६]

कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१५१॥

यत्रैव अशोकनामा प्रधानवृक्षः (तेणेव उवागच्छइ) तत्रैव उपागच्छति (उवागच्छित्ता) उपागत्य (असोगवरपायवस्स अहे) अशोकवरवृक्षस्य अधः (जाव सयमेव चउमुट्ठिअं लोअं करेइ) यावत् आत्मनैव चतुर्मौष्टिकं लोचं करोति, चतसृभिर्मुष्टिभिर्लोचे कृते सति अवशिष्टां एकां मुष्टिं सुवर्णवर्णयोः स्कन्धयोरुपरि लुठंतीं कनककलशोपरि विराजमानां नीलकमलमालामिव विलोक्य हृष्टचित्तस्य शक्रस्य आग्रहेण रक्षितवान्, (करित्ता) लोचं कृत्वा (छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं) षष्ठेन भक्तेन जलरहितेन (आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं) उत्तराषाढायां नक्षत्रे चन्द्रयोगं उपागते सति (उग्गाणं भोगाणं राइन्नाणं खत्तिआणं च) उग्राणां भोगानां राजन्यानां क्षत्रियाणां च (चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं) कच्छमहाकच्छादिभिश्चतुर्भिः सहस्रैः सह, 'यथा स्वामी करिष्यति तथा वयमपि करिष्याम' इति कृतनिर्णयैः सार्द्धं, (एगं देवदूसमादाय) एकं देवदूष्यमादाय (मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए) मुण्डो भूत्वा गृहान्निष्क्रम्य अनगारितां प्रतिपन्नः-दीक्षां गृहीतवान् ॥ (२११) ॥

(उसभे णं अरहा कोसलिए) ऋषभः अर्हन् कौशलिकः (एगं वाससहस्सं) एकं वर्षसहस्रं यावत् (निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे) नित्यं व्युत्सृष्टकायः त्यक्तदेहः सन् विचरति ॥ अथ प्रव्रज्यां प्रतिपद्य गृहीतघोराभिग्रहो भगवान् ग्रामानुग्रामं विहरति स्म, तदानीं लोकस्यातिसमृद्धत्वात् का भिक्षा कीदृशा वा भिक्षाचरा इति कोऽपि वार्त्तां न जानाति, ततस्ते सहप्रव्रजिताः क्षुधादिपीडिता भगवन्तं आहारोपायं पृच्छन्ति,

कच्छादीनां तापसत्वम्

२०

२५

॥१५१॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२१२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०७]

भगवांस्तु मौनी न किमपि प्रतिवक्ति, ततस्ते कच्छमहाकच्छौ प्रति विज्ञप्तिं चक्रुः, तौ अपि ऊचतुः-यत् वयमपि आहारविधिं न जानीमः, पूर्वं तु भगवान् न पृष्टः, इदानीं आहारं विना तु स्थातुं न शक्यते, भरतलज्जया गृहेऽपि गन्तुं अयुक्तं, ततो विचार्यमाणो वनवास एव श्रेयान् इति विचार्य भगवन्तं एव ध्यायन्तो गङ्गातटे परिशटितपत्राद्युपभोगिनोऽसंस्कृतकेशकूर्चा जटिलास्तापसा जज्ञिरे ॥

इतश्च कच्छमहाकच्छसुतौ भगवता पुत्रत्वेन प्रतिपन्नौ नमिविनमिनामानौ देशान्तरादागतौ, भरतेन दीयमानं राज्यभागं अवगणय्य पितृवचसा भगवत्समीपमागत्य प्रतिमास्थिते भगवति नलिनीपत्रैर्जलमानीय सर्वतो भूमिसिञ्चनं जानुप्रमाणं कुसुमोच्चयं च कृत्वा पञ्चाङ्गप्रणामपूर्वकं राज्यभागप्रदो भवेति प्रत्यहं विज्ञपयन्तौ जिनं सिषेवतुः, तौ चान्यदा तथा वीक्ष्य वन्दनार्थमागतो धरणेन्द्रो भगवद्भक्त्या सन्तुष्टोऽवादीत्-भो! भगवान् निःसङ्गो मा भगवन्तं याचेथां, भगवद्भक्त्याऽहमेव युवाभ्यां दास्यामीति भणित्वा अष्टचत्वारिंशत्सहस्रसङ्ख्याका (४८०००) विद्याः तत्र गौरी-गान्धारी-रोहिणी-प्रज्ञप्तिलक्षणाश्चतस्रो महाविद्याश्च षष्ठसिद्धा एव दत्तवान्, यच्चोक्तं किरणावलीकारेण 'अष्टचत्वारिंशत्सङ्ख्याका (४८) इति' तदयुक्तं, आवश्यकवृत्तौ अष्टचत्वारिंशत्सहस्राणां (४८०००) उक्तत्वात्, अथ विद्या दत्त्वा उक्तवांश्च 'इमाभिर्विद्याधरर्द्धिप्राप्तौ सन्तौ स्वजनं जनपदं च गृहीत्वा यातं युवां वैताढ्ये नगे दक्षिणविद्याधरश्रेण्यां गौरेयगान्धारप्रमुखानष्टौ निकायान् रथनूपुरचक्रवालप्रमुखाणि पञ्चाशन्नगराणि, उत्तरश्रेण्यां च पण्डकवंशालयप्रमुखानष्टौ निकायान् गगनवल्लभप्रमुखाणि च षष्टिनगराणि निवास्य विहरतमिति,

नमिविनम्योर्विद्याधरत्वम्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२१२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०७]

कल्प.सुबो-व्या० ७ ॥१५२॥

ततस्तौ कृतकृत्यौ स्वपित्रोर्भरतस्य च तं व्यतिकरं निवेद्य दक्षिणश्रेण्यां नमिः, उत्तरश्रेण्यां विनमिश्च तस्थतुः ॥ भगवांश्चान्नपानादिदानकुशलैः समृद्धिमद्भिर्जनैर्वस्त्राभरणकन्यादिभिर्निमन्त्यमाणोऽपि योग्यां भिक्षां अलभमानोऽदीनमनाः कुरुदेशे हस्तिनागपुरे प्रविष्टः, तत्र च आवश्यकवृत्त्यनुसारेण बाहुबलिसुतसोमप्रभसुतः श्रेयांसो युवराजः, स च मया श्यामवर्णो मेरुरमृतकलशेनाभिषिक्तोऽतीव शोभितवानिति स्वप्नं दृष्टवान्, सुबुद्धिनामा नगरश्रेष्ठी, सूर्यमण्डलात् स्रस्तं किरणसहस्रं पुनः श्रेयांसेन तत्र योजितं ततस्तदतीवाशोभत इति स्वप्नमैक्षत, राजाऽपि स्वप्ने महापुरुष एको रिपुबलेन युध्यमानः श्रेयांससहायाज्जयी जात इति ददर्श, त्रयोऽपि प्राप्ताः सभायां सम्भूय स्वप्नान् परस्परं न्यवेदयन्, ततो राज्ञा कोऽपि श्रेयांसस्य महान् लाभो भावीति निर्णीय विसर्जितायां पर्षदि श्रेयांसोऽपि स्वभवने गत्वा गवाक्षस्थः स्वामी न किञ्चिल्लातीति जनकोलाहलं श्रुत्वा स्वामिनं वीक्ष्य च मया क्वापीदृशं नेपथ्यं दृष्टपूर्वं इतीहापोहं कुर्वन् जातिस्मरणं प्राप, अहो अहं पूर्वभवे भगवतः सारथिर्भगवता सह दीक्षां गृहीतवान्, तदा च वज्रसेनजिनेन कथितमासीद् यदयं वज्रनाभो भरतक्षेत्रे प्रथमो जिनो भावीति स एष भगवान्, तदानीमेव तस्यैको मनुष्यः प्रधानेक्षुरसकुम्भसमूहप्राभृतमादाय आगतः, ततोऽसौ तत्कुम्भमादाय भगवन्! गृहाणेमां योग्यां भिक्षामिति जगाद, भगवताऽपि पाणी प्रसारितौ निसृष्टश्च तेन सर्वोऽपि रसः, न चात्र बिन्दुरप्यधः पतति, किन्तूपरि शिखा वर्द्धते, यतः—

दानस्य श्रेयांसोपज्ञता

२०

२५

॥१५२॥

२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२१२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०७]

माइज्ज घडसहस्सा, अहवा माइज्ज सागरा सव्वे। जस्सेयारिस लद्धी, सो पाणिपडिग्गही होई ॥ १ ॥ अत्र कविः—स्वाम्याह दक्षिणं हस्तं, कथं भिक्षां न लासि भोः?। स प्राह दातृहस्तस्याधो भवामि कथं प्रभो! ॥ २ ॥ यतः– पूजाभोजनदानशान्तिककलापाणिग्रहस्थापना,चोक्षप्रेक्षणहस्तकार्पणमुखव्यापारबद्धस्त्वहम् । इत्यभिधाय दक्षिणहस्ते स्थिते–वामोऽहं रणसम्मुखाङ्कगणना,वामाङ्कशय्यादिकृत्, द्यूतादिव्यसनी त्वंसौ स तु जगौ, चोक्षोऽस्मि न त्वं शुचिः ॥ २ ॥ ततः–राज्यश्रीर्भवताऽर्जिताऽर्थिनिवहस्त्यागैः कृतार्थीकृतः, सन्तुष्टोऽपि गृहाण दानमधुना,तन्वन् दयां दानिषु। इत्यब्दं प्रतिबोध्य हस्तयुगलं,श्रेयांसतः कारयन्, प्रत्यग्रेक्षुरसेन पूर्णमृषभः,पायात् स वः श्रीजिनः ॥ ३ ॥ श्रेयांसस्य दानावसरे–नेत्राम्बुधारा वाग्दुग्धधारा धाराधुरस्य च। स्पर्धया वर्द्धयामासुः, श्रीधर्मद्रुं तदाशये ॥४॥ ततस्तेन रसेन भगवता सांवत्सरिकतपःपारणा कृता, पञ्च दिव्यानि जातानि–वसुधारावृष्टिः १ चेलोत्क्षेपः २ व्योम्नि देवदुन्दुभिः ३ गन्धोदकपुष्पवृष्टिः ४ आकाशे अहो दानमहो दानमिति घोषणं च ५, ततः सर्वोऽपि लोकः ते तापसाश्च तत्र मिलिताः, अथ श्रेयांसस्तान् प्रज्ञापयति–भो जनाः! सद्गतिलिप्सया एवं साधुभ्य एषणीयाहारभिक्षा दीयते, इत्यस्यां अवसर्पिण्यां श्रेयांसोपज्ञं दानं, 'त्वया एतत् कथं ज्ञातं' इति लोकैः पृष्टश्च स्वामिना सह स्वकीयं अष्टभवसंबन्धं आचष्ट, यदा स्वामीशाने ललिताङ्गस्तदाऽहं पूर्वभवे निर्नामिकानाम्नी स्वयंप्रभा देवी १ ततः पूर्वविदेहे पुष्कलावतीविजये लोहार्गले नगरे

१ मायुर्घटाः सहस्रा अथवा मायुः सागराः सर्वे। यस्यैतादृशी लब्धिः स पाणिपतद्ग्राही भवति ॥१॥

पारणं दिव्यानि अष्टभवः ५ १० १३

*** अथ भगवंत ऋषभस्य प्रथम पारणकं एवं अष्ट भवानां वर्णनं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२१२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०७]

कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१५३॥

भगवान् वज्रजङ्घस्तदानीमहं श्रीमती भार्या २ तत उत्तरकुरौ भगवान् युगलिकोऽहं युगलिनी ३ ततः सौधर्मे द्वावपि मित्रदेवौ ४ ततो भगवानपरविदेहे वैद्यपुत्रस्तदाहं जीर्णश्रेष्ठिपुत्रः केशवनामा मित्रं ५ ततोऽच्युतकल्पे देवौ ६ ततः पुण्डरीकिण्यां भगवान् वज्रनाभचक्री तदाहं सारथिः ७ ततः सर्वार्थसिद्धविमाने देवौ ८ इह भगवतः प्रपौत्र' इति, एवं श्रुत्वा सर्वोऽपि जनः–रिसहेससमं पत्तं, निरवज्जं इक्खुरससमं दाणं । सेअंससमो भावो, हविज्ज जइ मग्गिअं हुज्जा' ॥ १ ॥ इत्यादि स्तुवन् स्वस्थानं गतः, एवं दीक्षादिनादारभ्य प्रभोर्वर्षसहस्रं छद्मस्थत्वकालस्तत्र सर्वसङ्कलितोऽपि प्रमादकालः अहोरात्रं, एवं च (जाव अप्पाणं भावेमाणस्स) यावत् आत्मानं भावयतः (इक्कं वाससहस्सं विइक्कंतं) एकं वर्षसहस्रं व्यतिक्रान्तं (तओ णं जे से हेमंताणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे) ततश्च योऽसौ शीतकालस्य चतुर्थो मासः सप्तमः पक्षः (फग्गुणबहुले) फाल्गुनस्य कृष्णपक्षः (तस्स णं फग्गुणबहुलस्स इक्कारसीपक्खेणं) तस्य फाल्गुनबहुलस्य एकादशीदिवसे (पुव्वण्हकालसमयंसि) पूर्वाह्णकालसमये (पुरिमतालस्स नगरस्स बहिआ) पुरिमतालनामकस्य विनीताशाखापुरस्य बहिस्तात् (सगडमुहंसि उज्जाणंसि) शकटमुखनामके उद्याने (नग्गोहवरपायवस्स अहे) न्यग्रोधनामकवृक्षस्य अधः (अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं) अष्टमेन भक्तेन अपानकेन–जलरहितेन (आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं) उत्तराषाढायां नक्षत्रे चन्द्रयोगे उपागते सति (झाणंतरियाए वट्टमाणस्स) ध्यानस्य मध्यभागे वर्त्त-

१ ऋषभेशसमं पात्रं निरवद्यं इक्षुरससमं दानं । श्रेयांससमो भावो भूयाद् यदि मार्गितं भवेत् ॥ १ ॥

श्रीऋषभस्य केवलम् सू. २१२ १५ २० ॥१५३॥ २५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ भगवंत ऋषभस्य केवलज्ञान एवं माता मरुदेवायाः मोक्ष-गमनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२१३] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०८]

मानस्य (अणंते जाव जाणमाणे पासमाणे विहरइ) अनन्तं केवलमुत्पन्नं यावत् जानन् पश्यंश्च विहरति ॥(२१२)॥

एवं च वर्षसहस्रेऽतिक्रान्ते पुरिमतालनाम्नि विनीताशाखापुरे प्रभोः केवलज्ञानं उत्पन्नं, तदैव भरतस्य चक्रमपि, तदा च विषयतृष्णाया विषमत्वेन प्रथमं तातं पूजयामि उत चक्रमिति क्षणं विमृश्य इहलोकपरलोकसुखदायिनि ताते पूजिते केवलमिहलोकफलदायि चक्रं पूजितमेवेति सम्यग् विचार्य भरतः प्रत्यहं उपालम्भान् ददतीं च मरुदेवां हस्तिस्कन्धे पुरतः कृत्वा सर्वर्द्ध्या वन्दितुं ययौ, प्रत्यासन्ने च समवसरणे मातः ! पश्य स्वपुत्रर्द्धिं इति भरतेन भणिता मरुदेवा हर्षपुलकिताङ्गी प्रमोदाश्रुपूरैर्निर्मलनेत्रा प्रभोश्छत्रचामरादिकां प्रातिहार्यलक्ष्मीं निरीक्ष्य चिन्तयामास-धिग् मोहविह्वलान्, सर्वेऽपि प्राणिनः स्वार्थैः श्लिष्यन्ति, यन्मम ऋषभदुःखेन रुदत्या नेत्रे अपि हीनतेजसी जाते, ऋषभस्तु एवं सुरासुरसेव्यमान ईदृशीं समृद्धिं भुञ्जानोऽपि मम सुखवार्त्तासन्देशमपि न प्रेषयति, ततो धिगिमं स्नेहं, इत्यादि भावयन्त्यास्तस्याः केवलमुत्पन्नं, तत्क्षणाच्च आयुषः क्षयान्मुक्तिं जगाम। अत्र कविः-पुत्रो युगादीशसमो न विश्वे, भ्रान्त्वा क्षितौ येन शरत्सहस्रम्। यदर्जितं केवलरत्नमद्यं, स्नेहात्तदेवार्प्यत मातुराशु ॥ १ ॥ मरुदेवा समा नाम्बा, याऽगात् पूर्वं किलेक्षितुम्। मुक्तिकन्यां तनूजार्थं, शिवमार्गमपि स्फुटम् ॥ २ ॥ भगवानपि समवसरणे धर्मं अकथयत्, तत्र ऋषभसेनाद्याः पञ्च शतानि भरतस्य पुत्राः, सप्त शतानि पौत्राश्च प्रव्रजितास्तेषां मध्ये ऋषभसेनादयश्चतुरशीतिर्गणधराः स्थापिताः, ब्राह्म्यपि प्रवव्राज, भरतः पुनः श्रावकः सञ्जातः, स्त्रीरत्नं भविष्यतीति तदा भरतेन निरुद्धा सुन्दर्यपि आविका सञ्जा-

केवलपूजा मरुदेवी-मोक्षः ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ भरत-गृहे चक्र-रत्नस्य उत्पत्तिः, सुंदरी-दीक्षा, बाहुबलिना सह युद्ध एवं केवलज्ञान-वर्णनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२१३] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०८]

कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१५४॥

तेति चतुर्विधसङ्घस्थापना ॥ ते च कच्छमहाकच्छवर्जाः सर्वेऽपि तापसाः भगवतः पार्श्वे दीक्षां जगृहुः, भरतस्तु शक्रनिवारितमरुदेवीशोकः स्वस्थानं जगाम ॥ अथ भरतश्चक्रपूजां कृत्वा शुभे दिने प्रयाणं कृत्वा षष्टिसहस्रवर्षैः भरतस्य षट् खण्डानि साधयित्वा स्वगृहमागतः, चक्रं तु बहिरेव तस्थौ, तदा भरतेन तत्कारणानि पृष्टा नियोगिनो जगुः–नवनवतिस्तव भ्रातरो वशे नागता इति, तदा भरतेनाष्टनवतिभ्रातृणां मदाज्ञा मान्येति दूतमुखेनावाचि, ते सम्भूय किमाज्ञां मन्यामहे उत युद्धं कुर्म इति प्रष्टुं प्रभुपार्श्वे गताः, प्रभुणाऽपि वैतालीयाध्ययनप्ररूपणया प्रतिबोध्य दीक्षिता इति, तदनु बाहुबलिन उपरि दूतः प्रैषि, सोऽपि क्रोधान्धदर्प्पोद्धुरः सन् स्वसैन्ययुतः सम्मुखमागत्य भरतेन सह द्वादशवर्षी यावद्युद्धमकरोत्, परं न च हारितः, तदा शक्रेणागत्य भूयस्तरजनसंहारं भवन्तं ज्ञात्वा दृष्टिवाग्मुष्टिदण्डलक्षणाश्चत्वारो युद्धाः प्रतिष्ठिताः, तेष्वपि भरतस्य पराजयो जज्ञे, तदा भरतेन क्रोधान्धेन बाहुबलिनः उपरि चक्रं मुक्तं, परमेकगोत्रीयत्वात्तत्तं न पराभवत्, तदाऽमर्षवशाद्धरतं हन्तुमना मुष्टिमुत्पाट्य धावन् बाहुबलिरहो पितृतुल्यज्येष्ठभ्रातृहननं ममानुचितमेव, उत्पातिता मुष्टिरपि कथं मोघा भवेदिति विचार्य स्वशिरसि तां मुक्त्वा लोचं कृत्वा सर्वं च त्यक्त्वा कायोत्सर्गं चक्रे, तदा भरतस्तं नत्वा स्वापराधं क्षमयित्वा स्वस्थानं गतः, बाहुबलिस्तु पर्यायज्येष्ठान् लघुभ्रातॄन् कथं नमामीति ततो यदा केवलमुत्पत्स्यते तदैव भगवत्पार्श्वे यास्यामीति विचार्य वर्षं यावत् कायोत्सर्गेणैवास्थात्, वर्षान्ते च भगवत्प्रेषिताभ्यां स्वभगिनीभ्यां हे भ्रातर्गजादुत्तरेत्युक्त्वा प्रतिबोधितः स यावत् चरणौ उदक्षिपत् तावत्तस्य

बाहुबलियुद्धम् २० २५ ॥१५४॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२१३] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०८]

केवलमुत्पेदे, ततो भगवत्पार्श्वे गत्वा चिरं विहृत्य भगवता सहैव स मोक्षं ययाविति, भरतोऽपि चिरं चक्रवर्त्तिश्रियमनुभूय एकदाऽऽदर्शभवने मुद्रिकाशून्यां स्वाङ्गुलीं दृष्ट्वाऽनित्यत्वं भावयन् केवलज्ञानमुत्पाद्य दशसहस्रनृपैः सार्द्धं देवतादत्तं लिङ्गमुपादाय चिरं विहृत्य शिवं ययाविति ॥

(उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स) ऋषभस्य अर्हतः कौशलिकस्य (चउरासीइ गणा चउरासीइ गणहरा हुत्था) चतुरशीतिः ८४ गणाः, चतुरशीतिः ८४ गणधराश्च अभवन् ॥ (२१३) ॥ (उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स) ऋषभस्य अर्हतः कौशलिकस्य (उसभसेणपामुक्खाणं) ऋषभसेनप्रमुखाणां (चउरासीह समणसाहस्सीओ) चतुरशीतिः श्रमणसहस्राणि (८४०००) (उक्कोसिया समणसंपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती श्रमणसम्पदा अभवत् ॥(२१४)॥ (उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स) ऋषभस्य अर्हतः कौशलिकस्य (बंभिसुंदरिपामोक्खाणं) ब्राह्मीसुन्दरीप्रमुखाणां (अज्जियाणं) आर्यिकाणां(तिन्नि सयसाहस्सीओ) त्रयो लक्षाः (३००००) (उक्कोसिया अज्जियासंपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती आर्यिकासम्पत् अभवत् ॥(२१५)॥ (उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स) ऋषभस्य अर्हतः कौशलिकस्य (सिज्जंसपामुक्खाणं समणोवासगाणं) श्रेयांसप्रमुखाणां श्रमणोपासकानां (तिन्नि सयसाहस्सीओ पञ्च सहस्सा) त्रयः लक्षाः पञ्च सहस्राणि (३०५०००) (उक्कोसिया समणोवासगाणं संपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती श्रावकाणां सम्पत् अभवत् ॥(२१६)॥ (उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स) ऋषभस्य अर्हतः कौशलिकस्य (सुभद्दापामुक्खाणं समणोवासियाणं) सुभद्राप्रमुखाणां श्रावि-

श्रीऋषभस्य परीवारः सू. २१३–२१६

५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२१७] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०८]

कल्प.सुबो-ध्या० ७

॥१५५॥

काणां (पंच सयसाहस्सीओ चउपण्णं च सहस्सा) पञ्च लक्षाः, चतुःपञ्चाशत् सहस्राः (५५४०००) (उक्को-सिया समणोवासियाणं संपया हुत्था) उत्कृष्टा श्राविकाणां सम्पत् अभवत् ॥(२१७)॥ (उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स) ऋषभस्य अर्हतः कौशलिकस्य (चत्तारि सहस्सा सत्त सया पण्णासा) चत्वारि सहस्राणि सप्त शतानि पञ्चाशदधिकानि (४७५०) (चउद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं) चतुर्दशपूर्विणां अके-वलिनामपि केवलितुल्यानां (जाव उक्कोसिया चउद्दसपुव्वीणं संपया हुत्था) यावत् उत्कृष्टा एतावती चतुर्द-शपूर्विणां सम्पत् अभवत् ॥ (२१८) ॥ (उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स) ऋषभस्य अर्हतः कौशलिकस्य (नव सहस्सा ओहिनाणीणं) नव सहस्राणि (९०००) अवधिज्ञानिनां (उक्कोसिया ओहिनाणीसंपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती अवधिज्ञानिनां सम्पत् अभवत् ॥(२१९)॥ (उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स) ऋषभस्य अर्हतः कौशलिकस्य (वीस सहस्सा केवलनाणीणं) विंशतिसहस्राः (२००००) केवलज्ञानिनां (उक्कोसिया केवलनाणीसंपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती केवलज्ञानिसम्पत् अभवत् ॥(२२०)॥ (उसभस्स णं अरहओ को-सलियस्स) ऋषभस्य अर्हतः कौशलिकस्य (वीस सहस्सा छच्च सया वेउव्वियाणं) विंशतिः सहस्राणि, षट् शतानि च (२०६००) वैक्रियलब्धिमतां (उक्कोसिया वेउव्वियसंपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती वैक्रियलब्धिमत्स-म्पत् अभवत् ॥ (२२१)॥ (उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स) ऋषभस्य अर्हतः कौशलिकस्य (बारस सहस्सा छच्च सया पण्णासा विउलमईणं) द्वादश सहस्राणि, षट् शतानि पञ्चाशच्च (१२६५०) विपुलमतीनां (अड्ढाइज्जेसु

श्रीऋषभस्य परीवारः सू. २१७-२२२

२०

२५

॥१५५॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२२२] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२०९]

दीवेसु दोसु अ समुद्देसु) सार्धद्वयद्वीपेषु द्वयोश्च समुद्रयोः (सण्णीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं) सञ्ज्ञिनां पञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्तकानां (मणोगए भावे जाणमाणाणं) मनोगतान् भावान् जानतां (उक्कोसिया विउलमइसंपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती विपुलमतिसम्पत् अभवत् ॥(२२२)॥ (उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स) ऋषभस्य अर्हतः कौशलिकस्य (बारस सहस्सा छच्च सया पण्णासा वाईणं) द्वादश सहस्राणि, षट् शतानि, पञ्चाशच्च (१२६५०) वादिनां (उक्कोसिया वाइसंपया हुत्था) उत्कृष्टा एतावती वादिसम्पत् अभवत् ॥ (२२३) ॥ (उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स) ऋषभस्य अर्हतः कौशलिकस्य (वीसं अंतेवासिसहस्सा सिद्धा) विंशतिः शिष्यसहस्राणि (२००००) सिद्धानि,(चत्तालीसं अज्जियासाहस्सीओ सिद्धाओ) चत्वारिंशत् आर्यिकासहस्राणि (४००००) सिद्धानि ॥ (२२४) ॥ (उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स) ऋषभस्य अर्हतः कौशलिकस्य (बावीससहस्सा नव सया अणुत्तरोववाइयाणं) द्वाविंशतिः सहस्राणि नव शतानि च (२२९००) अनुत्तरोपपातिनां (गइकल्लाणाणं) गतौ कल्याणं येषां ते तथा तेषां (जाव उक्कोसिया संपया हुत्था) यावत् उत्कृष्टा एतावती अनुत्तरोपपातिनां सम्पत् अभवत् ॥ (२२५) ॥ (उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स) ऋषभस्य अर्हतः कौशलिकस्य (दुविहा अंतगडभूमी हुत्था) द्विविधा अन्तकृद्भूमिः अभवत् (तंजहा) तद्यथा (जुगंतगडभूमी य परियायंतगडभूमी य) युगान्तकृद्भूमिः पर्यायान्तकृद्भूमिश्च (जाव असंखिज्जाओ पुरिसजुगाओ जुगंतगडभूमी) यावत् युगान्तकृद्भूमिरसङ्ख्येयानि पुरुषयुगानि भगवतोऽन्वयक्रमेण सिद्धानि (अंतो-

श्रीऋषभस्य परीवारःसू. २२३-२२६

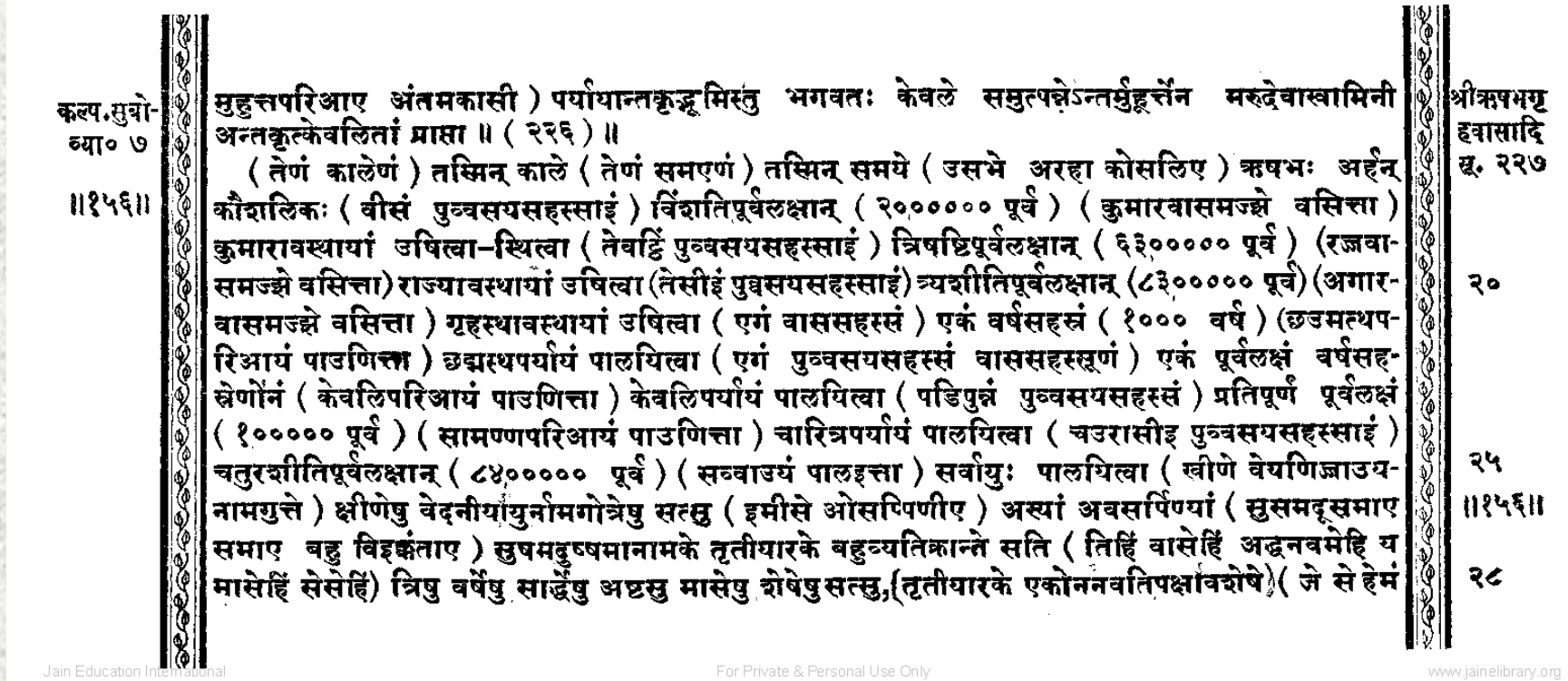
५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२२६] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२११]



कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१५६॥

मुहुत्तपरिआए अंतमकासी) पर्यायान्तकृद्भूमिस्तु भगवतः केवले समुत्पन्नेऽन्तर्मुहूर्त्तेन मरुदेवास्वामिनी अन्तकृत्केवलितां प्राप्ता ॥ (२२६) ॥

(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (उसभे अरहा कोसलिए) ऋषभः अर्हन् कौशलिकः (वीसं पुव्वसयसहस्साइं) विंशतिपूर्वलक्षान् (२०००००० पूर्व) (कुमारवासमज्झे वसित्ता) कुमारावस्थायां उषित्वा-स्थित्वा (तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं) त्रिषष्टिपूर्वलक्षान् (६३००००० पूर्व) (रज्जवा-समज्झे वसित्ता) राज्यावस्थायां उषित्वा (तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं) त्र्यशीतिपूर्वलक्षान् (८३००००० पूर्व) (अगार-वासमज्झे वसित्ता) गृहस्थावस्थायां उषित्वा (एगं वाससहस्सं) एकं वर्षसहस्रं (१००० वर्ष) (छउमत्थप-रिआयं पाउणित्ता) छद्मस्थपर्यायं पालयित्वा (एगं पुव्वसयसहस्सं वाससहस्सूणं) एकं पूर्वलक्षं वर्षसह-स्रेणोनं (केवलिपरिआयं पाउणित्ता) केवलिपर्यायं पालयित्वा (पडिपुन्नं पुव्वसयसहस्सं) प्रतिपूर्णं पूर्वलक्षं (१००००० पूर्व) (सामण्णपरिआयं पाउणित्ता) चारित्रपर्यायं पालयित्वा (चउरासीइ पुव्वसयसहस्साइं) चतुरशीतिपूर्वलक्षान् (८४००००० पूर्व) (सव्वाउयं पालइत्ता) सर्वायुः पालयित्वा (खीणे वेयणिज्जाउय-नामगुत्ते) क्षीणेषु वेदनीयायुर्नामगोत्रेषु सत्सु (इमीसे ओसप्पिणीए) अस्यां अवसर्पिण्यां (सुसमदूसमाए समाए बहु विइक्कंताए) सुषमदुष्षमानामके तृतीयारके बहुव्यतिक्रान्ते सति (तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहिं य मासेहिं सेसेहिं) त्रिषु वर्षेषु सार्द्धेषु अष्टसु मासेषु शेषेषु सत्सु,(तृतीयारके एकोननवतिपक्षावशेषे)(जे से हेमं

श्रीऋषभगृहवासादि सू. २२७ २० २५ ॥१५६॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२२७] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२१२]

क.सु. २७

ताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे माहबहुले) योऽसौ शीतकालस्य तृतीयो मासः पञ्चमः पक्षः माघस्य कृष्णपक्षः (तस्स णं माहबहुलस्स तेरसीपक्खेणं) तस्य माघबहुलस्य त्रयोदशीदिवसे (उप्पिं अट्ठावयसेलसिहरंसि) अष्टापदशैलशिखरस्योपरि (दसहिं अणगारसहस्सेहिं सद्धिं) दशभिः अनगारसहस्रैः सार्द्धं (चउद्दसमेणं भत्तेणं अपाणएणं) चतुर्दशभक्तपरित्यागाद् उपवासषट्केन अपानकेन–जलरहितेन (अभीइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं) अभिजिन्नामके नक्षत्रे चन्द्रयोगं उपागते सति (पुव्वण्हकालसमयंसि) पूर्वाह्नकालसमये (संपलियंकनिसण्णे) पल्यङ्कासनेन निषण्णः (कालगए) कालगतः (जाव सव्वदुक्खप्पहीणे) यावत् सर्वदुःखानि प्रक्षीणानि ॥ (२२७) ॥

यस्मिन् समये भगवान् सिद्धः तस्मिन् समये चलितासनः शक्रोऽवधिना भगवन्निर्वाणं विज्ञायाग्रमहिषीलोकपालादिसर्वपरिवारपरिवृतो यत्र भगवच्छरीरं तत्रागत्य त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य निरानन्दोऽश्रुपूर्णनयनो नात्यासन्ने नातिदूरे कृताञ्जलिः पर्युपास्ते, एवं ईशानेन्द्रादयः सर्वेऽपि सुरेन्द्राः कम्पितासना ज्ञातभगवन्निर्वाणाः स्वस्वपरिवारपरिवृता अष्टापदपर्वते यत्र भगवच्छरीरं तत्रागत्य विधिवत् पर्युपासमानास्तिष्ठन्ति, ततः शक्रो भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकदेवैर्नन्दनवनाद् गोशीर्षचन्दनकाष्ठानि आनाय्य तिस्रश्चिताः कारयति, एकां तीर्थङ्करशरीरस्य, एकां गणधरशरीराणां, एकां शेषमुनिशरीराणां,तत आभियोगिकदेवैः क्षीरोदसमुद्राज्जलं आनाययति, ततः शक्रः क्षीरोदजलैस्तीर्थकृच्छरीरं स्नपयति सरसगोशीर्षचन्दनेनानुलिम्पति हंसलक्षणं

श्रीऋषभदेवनिर्वाणम् सू. २२७
५
१०
१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [२२८] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२१३]

कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१५७॥

पटशाटकं परिधापयति सर्वालङ्कारविभूषितं करोति, एवं अन्ये देवा गणधरमुनिशरीराणि स्नपितानि चन्दनानुलिप्तानि सर्वालङ्कारविभूषितानि कुर्वन्ति, ततः शक्रो विचित्रचित्रविराजितास्तिस्रः शिबिकाः कारयति, निरानन्दो दीनमना अश्रुमिश्रनेत्रस्तीर्थकृच्छरीरं शिबिकायां आरोपयति, अन्ये देवा गणधरमुनिशरीराणि शिबिकायां आरोपयन्ति, ततः शक्रो जिनशरीरं शिबिकाया उत्तार्य चितायां स्थापयति, अन्ये देवा गणधरमुनिशरीराणि स्थापयन्ति, ततः शक्राज्ञया अग्निकुमारा देवा निरानन्दा निरुत्साहा अग्निं ज्वालयन्ति, वायुकुमारा वायुं विकुर्वन्ति, शेषाश्च देवास्तासु चितासु कालागुरुचन्दनादीनि सारदारूणि निक्षिपन्ति, कुम्भशो मधुघृतैस्ताः सिञ्चन्ति, अस्थिशेषेषु च तेषु शरीरेषु शक्रादेशेन मेघकुमारा देवास्तिसृश्चिता निर्वापयन्ति, ततः शक्रः प्रभोरुपरितनीं दक्षिणां दाढां गृह्णाति ईशानेन्द्र उपरितनीं वामां चमरेन्द्रोऽधस्तनीं दक्षिणां बलीन्द्रोऽधस्तनीं वामां, अन्येऽपि देवाः केऽपि जिनभक्त्या केऽपि जीतमिति केऽपि धर्म इतिकृत्वा अवशिष्टानि अङ्गोपाङ्गास्थीनि गृह्णन्ति, ततः शक्रो रत्नमयानि त्रीणि स्तूपानि कारयति–एकं भगवतो जिनस्य एकं गणधराणां एकं शेषमुनीनां, तथा कृत्वा च शक्रादयो देवा नन्दीश्वरादिषु द्वीपेषु कृताष्टाह्निकमहोत्सवाः स्वस्वविमानेषु गत्वा स्वासु स्वासु सभासु वज्रमयसमुद्गकेषु जिनदाढाः प्रक्षिप्य गन्धमाल्यादिभिः पूजयन्ति ॥

(उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स) ऋषभस्य अर्हतः कौशलिकस्य (जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स) यावत् सर्वदुःखप्रक्षीणस्य (तिन्नि वासा अद्धनवमा य मासा विइक्कंता) त्रीणि वर्षाणि सार्द्धाश्चाष्टौ मासा व्यतिक्रान्ताः

श्रीऋषभदेवनिर्वाणम् सू. २२७ २० २५ ॥१५७॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२२८] गाथा ॥२..॥

दीप अनुक्रम [२१३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

(तओऽवि परं एगा सागरोवमकोडाकोडी) ततः परं एका सागरोपमकोटाकोटी, कीदृशी ?-(तिवासअद्धनवममासाहियत्ति)त्रिवर्षसार्द्धाष्टमासाधिकैः (बायालीसवाससहस्सेहिं ऊणिया विइक्कंता) द्विचत्वारिंशद्वर्षाणां सहस्रैः ऊना व्यतिक्रान्ता (एयंमि समए समणे भगवं महावीरे परिनिव्वुडे) एतस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरो निर्वृतः (तओऽवि परं नव वाससया विइक्कंता) ततोऽपि परं नव वर्षशतानि व्यतिक्रान्तानि (दसमस्स य वाससयस्स) दशमस्य च वर्षशतस्य (अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ) अयं अशीतितमः संवत्सरः कालो गच्छति ॥ (२२८)॥ ॥ इति श्रीऋषभदेवचरित्रं समाप्तम् ॥

श्रीऋषभदेवचरित्रं पुस्तक कालान्तरम् सू.२२८ ५

। इति जगद्गुरुश्रीहीरविजयसूरीश्वरशिष्यरत्नमहोपाध्यायश्रीकीर्तिविजयगणिशिष्योपाध्यायश्रीविनयविजयगणिविरचितायां कल्पसुबोधिकायां सप्तमः क्षणः समाप्तः । समाप्तं च जिनचरितरूपप्रथमवाच्यव्याख्यानं इति ।

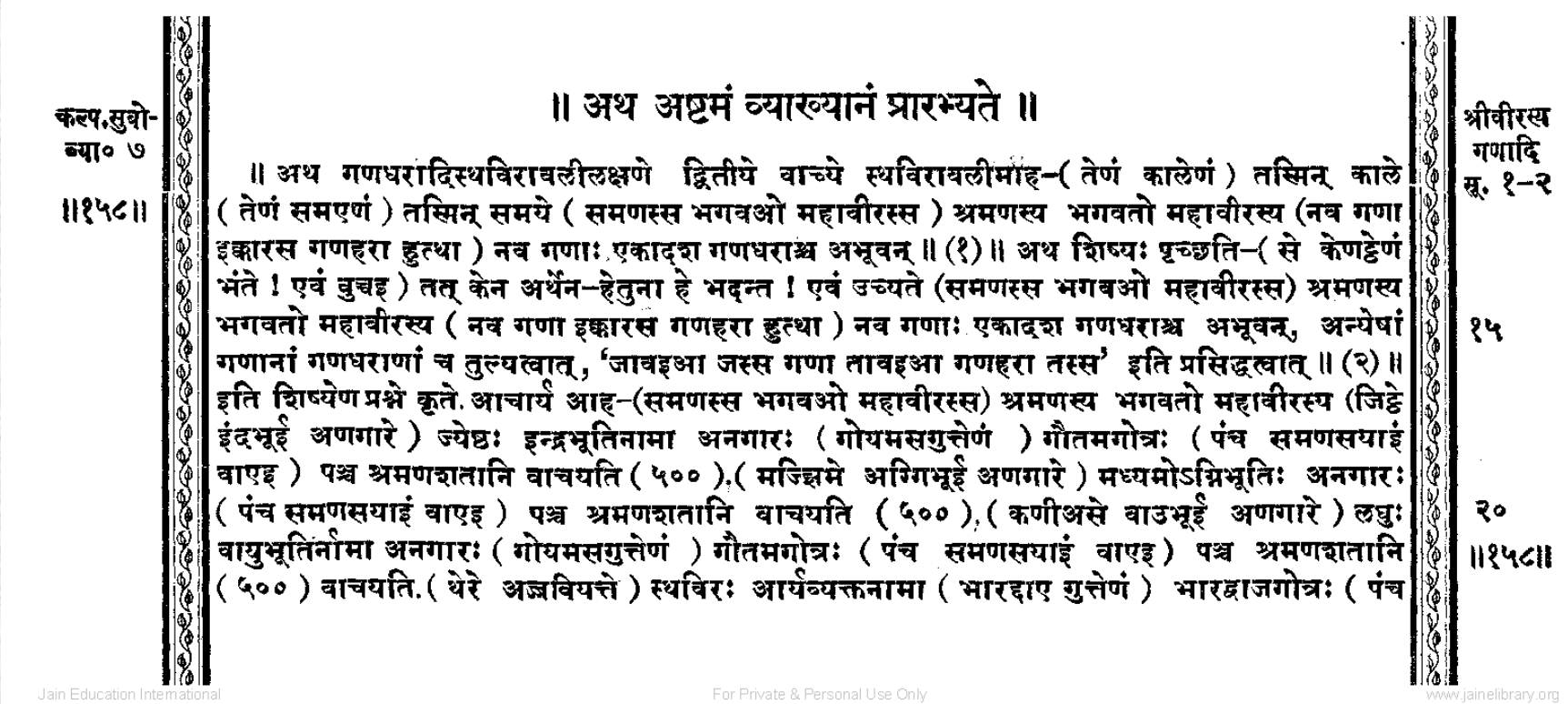
ग्रन्थाग्रम् (१०२५) । सप्तानामपि व्याख्यानानां ग्रन्थाग्रम् (५२५७) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तमं व्याख्यानं समाप्तं

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [२१३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१५८॥

॥ अथ अष्टमं व्याख्यानं प्रारभ्यते ॥

श्रीवीरस्य गणादि सू. १-२

॥ अथ गणधरादिस्थविरावलीलक्षणे द्वितीये वाच्ये स्थविरावलीमाह-(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (नव गणा इक्कारस गणहरा हुत्था) नव गणाः एकादश गणधराश्च अभूवन् ॥ (१) ॥ अथ शिष्यः पृच्छति-(से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुचइ) तत् केन अर्थेन-हेतुना हे भदन्त ! एवं उच्यते (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (नव गणा इक्कारस गणहरा हुत्था) नव गणाः एकादश गणधराश्च अभूवन्, अन्येषां गणानां गणधराणां च तुल्यत्वात्, 'जावइआ जस्स गणा तावइआ गणहरा तस्स' इति प्रसिद्धत्वात् ॥ (२) ॥ इति शिष्येण प्रश्ने कृते आचार्य आह-(समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (जिट्ठे इंदभूई अणगारे) ज्येष्ठः इन्द्रभूतिनामा अनगारः (गोयमसगुत्तेणं) गौतमगोत्रः (पंच समणसयाइं वाएइ) पञ्च श्रमणशतानि वाचयति (५००),(मज्झिमे अग्गिभूई अणगारे) मध्यमोऽग्निभूतिः अनगारः (पंच समणसयाइं वाएइ) पञ्च श्रमणशतानि वाचयति (५००),(कणीअसे वाउभूई अणगारे) लघुः वायुभूतिर्नामा अनगारः (गोयमसगुत्तेणं) गौतमगोत्रः (पंच समणसयाइं वाएइ) पञ्च श्रमणशतानि (५००) वाचयति.(थेरे अज्जवियत्ते) स्थविरः आर्यव्यक्तनामा (भारद्दाए गुत्तेणं) भारद्वाजगोत्रः (पंच

१५ २० ॥१५८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टमं व्याख्यानं आरभ्यते

*** मूल संपादकेन इतः पुनः क्रमांकन कृतः | अत्र स्थवीरावली-वाचना आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [३] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [२१५]

समणसयाइं वाएइ) पञ्च श्रमणशतानि (५००) वाचयति (थेरे अज्जसुहम्मे) स्थविर आर्यसुधर्मा (अग्गिवेसायणगुत्तेणं) अग्निवैश्यायनगोत्रः (पंच समणसयाइं वाएइ) पञ्च श्रमणशतानि (५००) वाचयति (थेरे मंडिअपुत्ते) स्थविरः मण्डितपुत्रः (वासिट्ठे गुत्तेणं) वासिष्ठगोत्रः (अड्ढुट्ठाइं समणसयाइं वाएइ) सार्धानि त्रीणि श्रमणशतानि ३५० वाचयति (थेरे मोरिअपुत्ते) स्थविरः मौर्यपुत्रः (कासवगुत्तेणं) काश्यपगोत्रः (अड्ढुट्ठाइं समणसयाइं वाएइ) सार्द्धानि त्रीणि श्रमणशतानि (३५०) वाचयति, (थेरे अकंपिए) स्थविरः अकम्पितः (गोयमसगुत्तेणं) गौतमगोत्रः (थेरे अयलभाया) स्थविरः अचलभ्राता च (हारिआयणे गुत्तेणं) हारितायनगोत्रः (ते दुन्निऽवि थेरा तिण्णि तिण्णि समणसयाइं वाएंति) तौ द्वावपि स्थविरौ त्रीणि त्रीणि श्रमणशतानि (३००) वाचयतः, (थेरे मेअज्जे थेरे पभासे एए दुन्निवि थेरा) स्थविरः मेतार्यः स्थविरः प्रभासः एतौ द्वावपि स्थविरौ (कोडिन्नागुत्तेणं) कोडिन्यौ गोत्रेण (तिण्णि तिण्णि समणसयाइं वाएंति) त्रीणि त्रीणि श्रमणशतानि (३००) वाचयतः, (से तेणट्ठेणं अज्जो एवं वुच्चइ) तत्-तेन हेतुना हे आर्य ! एवं उच्यते (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (नव गणा इक्कारस गणहरा हुत्था) नव गणाः एकादश गणधराश्च अभूवन्, तत्र अकम्पिताचलभ्रात्रोरेकैव वाचना, एवं मेतार्यप्रभासयोरपीति युक्तमुक्तं–नव गणा एकादश गणधराः, यस्मात् एकवाचनिको यतिसमुदायो गण इति । अत्र मण्डितमौर्यपुत्रयोरेकमातृकत्वेन भ्रात्रोरपि भिन्नगोत्राभिधानं पृथक् जनकापेक्षया, तत्र मण्डितस्य

गणधरवाचनाः सू.३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [४] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२१७]

कल्प.सुबो-ध्या० ७

॥१५९॥

पिता धनदेवो मौर्यपुत्रस्य तु मौर्य इति, अनिषिद्धं च तत्र देशे एकस्मिन् पत्यौ मृते द्वितीयपतिवरणमिति वृद्धाः ॥(३)॥ (सव्वे एए समणस्स भगवओ महावीरस्स) सर्वे एते इन्द्रभूत्यादयः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (इक्कारसवि गणहरा) एकादशापि गणधराः, कीदृशाः ?-(दुवालसंगिणो)द्वादशाङ्गिनः-आचाराङ्गादिदृष्टिवादान्तश्रुतवन्तः, स्वयं तत्प्रणयनात्, (चउद्दसपुव्विणो) चतुर्दशपूर्ववेत्तारः, द्वादशाङ्गित्वं इत्येतैनैव चतुर्दशपूर्वित्वे लब्धे यत्पुनरेतदुपादानं तदङ्गेषु चतुर्दशपूर्वाणां प्राधान्यख्यापनार्थं,प्राधान्यं च पूर्वाणां पूर्वं प्रणयनात् अनेकविद्यासन्त्राद्यर्थमयत्वात् महाप्रमाणत्वाच्च, द्वादशाङ्गित्वं चतुर्दशपूर्वित्वं च सूत्रमात्रग्रहणेऽपि स्यादिति तदपोहार्थमाह-(समत्तगणिपिडगधारगा) समस्तगणिपिटकधारकाः, गणोऽस्यास्तीति गणी-भावाचार्यस्तस्य पिटकमिव-रत्नकरण्डकमिव गणिपिटकं-द्वादशाङ्गी,तदपि न देशतः स्थूलिभद्रस्येव, किं तु ?,समस्तं,सर्वाक्षरसन्निपातित्वात्,तद्धारयन्ति सूत्रतोऽर्थतश्च ये ते तथा (रायगिहे नगरे) राजगृहे नगरे (मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं) अपानकेन मासिकेन भक्तेन-भक्तप्रत्याख्यानेन, पादपोपगमनानशनेन (कालगया जाव सव्वदुक्खप्पहीणा) मोक्षं गताः यावत् सर्वदुःखप्रक्षीणाः (थेरे इंदभूई थेरे अज्जसुहम्मे) स्थविर इन्द्रभूतिः स्थविर आर्यसुधर्मा च (सिद्धिं गए महावीरे) सिद्धिं गते महावीरे सति (पच्छा दुन्निवि थेरा परिनिव्वुया) पश्चाद् द्वावपि स्थविरौ निर्वाणं प्राप्तौ, तत्र नव गणधरा भगवति जीवत्येव सिद्धाः, इन्द्रभूतिसुधर्माणौ तु भगवति निर्वृते निर्वृतौ ॥ (जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति) ये इमे अद्यतनकाले श्रमणा निर्ग्रन्था विहरन्ति (एए णं सव्वे

श्रीगौतमादिगणधरस्वरूपम् सू. ४

२०

२५

॥१५९॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [४] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२१७]

अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स आवच्चिज्जा) एते सर्वेऽपि आर्यसुधर्मणः अनगारस्य अपत्यानि,- शिष्यसन्तानजा इत्यर्थः (अवसेसा गणहरा निरवचा वुच्छिण्णा) अवशेषाः गणधराः निरपत्याः–शिष्यसन्तानरहिताः, स्वस्व-मरणकाले स्वस्वगणान् सुधर्मस्वामिनि निसृज्य शिवं गताः, यदाहुः–'मासं पाओवगया सव्वेऽवि अ सव्व-लद्धिसंपन्ना । वज्जरिसहसंघयणा समचउरंसा य संठाणा ॥ १ ॥ (४) ॥

(समणे भगवं महावीरे कासवगुत्तेणं) श्रमणो भगवान् महावीरः काश्यपगोत्रः (समणस्स णं भग-वओ महावीरस्स कासवगुत्तस्स) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य काश्यपगोत्रस्य (अज्जसुहम्मे थेरे अंतेवासी अग्गिवेसायणगुत्ते) आर्यसुधर्मा स्थविरः शिष्यः अग्निवैश्यायनगोत्रः । श्रीवीरपट्टे श्रीसुधर्मस्वामी पञ्चमो गणधरः, तत्स्वरूपं चेदं–कुल्लागसन्निवेशे धम्मिलविप्रस्य भार्या भद्दिला, तयोः सुतश्चतुर्दशविद्यापात्रं पञ्चाशद्व-र्षान्ते प्रव्रजितस्त्रिंशद्वर्षाणि वीरसेवा, वीरनिर्वाणाद् द्वादशवर्षान्ते जन्मतो द्विनवतिवर्षान्ते च केवलं,ततोऽष्टौ वर्षाणि केवलित्वं परिपाल्य शतवर्षायुर्जम्बूस्वामिनं स्वपदे संस्थाप्य शिवं गतः १ । (थेरस्स णं अज्जसुहम्मस्स अग्गिवेसायणगुत्तस्स) स्थविरस्य आर्यसुधर्मणः अग्निवैश्यायनगोत्रस्य (अज्जजंबुनामे थेरे अंतेवासी कास-वगुत्ते) आर्यजम्बूनामा स्थविरः शिष्यः काश्यपगोत्रः । श्रीजम्बूस्वामिस्वरूपं चेदं–राजगृहे श्रीऋषभधारिण्योः पुत्रः पञ्चमस्वर्गाच्युतो जम्बूनामा श्रीसुधर्मस्वामिसमीपे धर्मश्रवणपुरस्सरं प्रतिपन्नशीलसम्यक्त्वोऽपि पित्रोर्दृ-

१ मासं पादपोपगताः सर्वेऽपि च सर्वलब्धिसंपन्नाः । वज्रऋषभसंहननाः समचतुरस्रसंस्थानाश्च ॥ १ ॥

श्रीसुधर्म-स्वामिस्व-रूपम् सू. ५

५ १० १३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२१८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१६०॥

दाग्रहवशाद्दृष्टौ कन्याः परिणीतः, परं तासां सस्नेहाभिर्वाग्भिर्न व्यामोहितः, यतः–सम्यक्त्वशीलतुम्बाभ्यां, भवाब्धिस्तीर्यते सुखम् । ते दधानो मुनिर्जम्बूः, स्त्रीनदीषु कथं बुडेत् ? ॥ १ ॥ ततो रात्रौ ताः प्रतिबोधयंश्चौर्यार्थमागतं चतुःशतनवनवति (४९९) चौरपरिकरितं प्रभवमपि प्राबोधयत्, ततः प्रातः पञ्चशतचौरप्रियाष्टकतज्जनकजननीस्वजनकजननीभिः सह स्वयं पञ्चशतसप्तविंशतितमो नवनवतिकनककोटीः परित्यज्य प्रव्रजितः, क्रमात् केवलीभूत्वा षोडश वर्षाणि गृहस्थत्वे विंशतिः छाद्मस्थ्ये, चतुश्चत्वारिंशत् केवलित्वे, अशीतिवर्षाणि सर्वायुः परिपाल्य श्रीप्रभवं स्वपदे संस्थाप्य सिद्धिं गतः, अत्र कविः–जम्बूसमस्तलारक्षो, न भूतो न भविष्यति । शिवाध्ववाहकान् साधून्, चौरानपि चकार यः ॥१॥ प्रभवोऽपि प्रभुर्जीयाच्चौर्येण हरता धनम् । लेभेऽनर्घ्यचौर्यहरं, रत्नत्रितयमद्भुतम् ॥ २ ॥ तत्र–बारस वरसेहिं गोअमु सिद्धो वीराओ वीसहि सुहम्मो । चउसट्ठीए जंबू वुच्छिन्ना तत्थ दस ठाणा ॥ ३ ॥ मण १ परमोहि २ पुलाए ३ आहार ४ खवग ५ उवसमे ६ कप्पे ७ । संजमतिअ ८ केवल ९ सिज्झणा य १० जंबूमि वुच्छिन्ना ॥ ४ ॥ 'मण'त्ति मनःपर्यायज्ञानं, 'परमोहि'त्ति परमावधिः यस्मिन्नुत्पन्नेऽन्तर्मुहूर्त्तान्तः केवलोत्पत्तिः, 'पुलाए'त्ति पुलाकलब्धिः यया चक्रवर्त्तिसैन्यमपि चूर्णीकर्त्तुं प्रभुः स्यात्, 'आहारग'त्ति आहारकशरीरलब्धिः 'खवग'त्ति क्षपकश्रेणिः 'उवसम'त्ति उपशमश्रेणि-

१ द्वादशसु वर्षेषु गौतमः सिद्धो वीराद् विंशत्यां सुधर्मा । चतुष्पक्षां जम्बूर्व्युच्छिन्नानि तत्र दश स्थानानि ॥ ३ ॥
२ मनः परमावधिः पुलाक आहारकं क्षपक उपशमः कल्पः । संयमत्रिकं केवलं सेधना च जम्बौ व्युच्छिन्नानि ॥ ४ ॥

श्रीजम्बू-स्वामिस्वरूपम् २० २५ ॥१६०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** आर्य-जंबू-कथानकं वर्णयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [५] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२१८]

'कप्प'त्ति जिनकल्पः 'संजमतिअ'त्ति संयमत्रिकं,परिहारविशुद्धिक १ सूक्ष्मसम्पराय २ यथाख्यातचारित्रलक्षणं ३ ,अत्रापि कविः–लोकोत्तरं हि सौभाग्यं, जम्बूस्वामिमहामुनेः । अद्यापि यं पतिं प्राप्य, शिवश्रीर्नान्यमिच्छति ॥ १ ॥ २ । (थेरस्स णं अज्जजंबूणामस्स कासवगुत्तस्स) स्थविरस्य आर्यजम्बूनामकस्य काश्यपगोत्रस्य (अज्जप्पभवे थेरे अंतेवासी कच्चायणसगुत्ते) आर्यप्रभवः स्थविरः शिष्योऽभूत् कात्यायनगोत्रः (थेरस्स णं अज्जप्पभवस्स कच्चायणगुत्तस्स) स्थविरस्य आर्यप्रभवस्य कात्यायनगोत्रस्य (अज्जसिज्जंभवे थेरे अंतेवासी मणगपिया वच्छसगुत्ते) आर्यशय्यंभवः स्थविरः शिष्यः, कीदृशः?–मनकस्य पिता वत्सगोत्रः, अन्यदा च प्रभवप्रभुणा स्वपदे स्थापनार्थं गणे सङ्घे च उपयोगे दत्ते तथाविधयोग्यादर्शने च परतीर्थेषु तदुपयोगे दत्ते राजगृहे यज्ञं यजन् शय्यंभवभट्टो ददृशे, ततस्तत्र गत्वा साधुभ्यां 'अहो कष्टमहो कष्टं तत्त्वं न ज्ञायते परम्' इति वचः श्रावितः, खड्गभापितस्वगुरुब्राह्मणदर्शिताया यज्ञस्तम्भाधःस्थश्रीशान्तिनाथप्रतिमाया दर्शनेन प्रतिबुद्धः, प्रव्रजितः, तदनु श्रीप्रभवः श्रीशय्यंभवं स्वपदे न्यस्य स्वर्गमगादिति प्रभवप्रभुस्वरूपं ३ । तदनु श्रीशय्यंभवोऽपि साधानमुक्तनिजभार्याप्रसूतमनकाख्यपुत्रहिताय श्रीदशवैकालिकं कृतवान्,क्रमेण च श्रीयशोभद्रं स्वपदे संस्थाप्य श्रीवीरादष्टनवत्या (९८) वर्षैः स्वर्जगाम इति(४)। श्रीयशोभद्रसूरिरपि श्रीभद्रबाहुसम्भूतिविजयाख्यौ शिष्यौ स्वपदे न्यस्य स्वर्लोकमलञ्चक्रे (थेरस्स णं अज्जसिज्जंभवस्स मणगपिउणो वच्छसगुत्तस्स) स्थविरस्य आर्यशय्यंभवस्य मनकस्य पितुः वत्सगोत्रस्य (अज्जजसभद्दे थेरे अंतेवासी तुंगियायणसगुत्ते) आर्ययशोभद्रः स्थविरः

श्रीजम्बूस्वामिस्वरूपम् ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [६] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२१९-२२२]

कल्प.सुबो-ध्या० ७

॥१६१॥

शिष्यः तुङ्गिकायनगोत्रोऽभूत् (५)। अतः परं प्रथमं सङ्क्षिप्तवाचनया स्थविरावलीमाह–(संखित्तवायणाए अज्जजसभद्दाओ अग्गओ एवं थेरावली भणिया) सङ्क्षिप्तवाचनया आर्ययशोभद्रात् अग्रतः एवं स्थविरावली कथिता (तंजहा) तद्यथा–(थेरस्स णं अज्जजसभद्दस्स तुंगियायणसगुत्तस्स) स्थविरस्य आर्ययशोभद्रस्य तुङ्गिकायनगोत्रस्य (अंतेवासी दुवे थेरा–थेरे संभूइविजए माढरसगुत्ते) शिष्यौ द्वौ स्थविरौ, स्थविरः सम्भूतिविजयः माढरगोत्रः १ (थेरे अज्जभद्दबाहू पाईणसगुत्ते) स्थविरः आर्यभद्रबाहुश्च प्राचीनगोत्रः २, श्रीयशोभद्रपट्टे श्रीसम्भूतिविजयश्रीभद्रबाहुनामकौ द्वौ पट्टधरौ जातौ, तत्र भद्रबाहुसम्बन्धश्चैवं–प्रतिष्ठानपुरे वराहमिहिर-भद्रबाहू द्विजौ प्रव्रजितौ, भद्रबाहोराचार्यपददाने रुष्टः सन् वराहो द्विजवेषमादृत्य वाराहीं संहितां कृत्वा निमित्तैर्जीवति, वक्ति च लोके– काष्पेरण्ये शिलायां अहं सिंहलग्नमण्डयं, शयनावसरे तद्भञ्जनं स्मृत्वा लग्नभक्त्या तत्र गतः, सिंहं दृष्ट्वापि तस्याधो हस्तक्षेपेण लग्नभङ्गे कृते सन्तुष्टः सिंहलग्नाधिपः सूर्यः प्रत्यक्षीभूय स्वमण्डले नीत्वा सर्वं ग्रहचारं ममादर्शयदिति, अन्यदा वराहेण राज्ञः पुरो लिखितकुण्डालकमध्ये द्विपञ्चाशत्पलमानमत्स्यपाते कथिते, श्रीभद्रबाहुभिस्तस्य मत्स्यस्य मार्गेऽर्धपलशोषात् सार्धैकपञ्चाशत्पलमानता कुण्डालकप्रान्ते पातश्च उक्तो मिलितश्च। तथाऽन्यदा तेन नृपनन्दनस्य शतवर्षायुर्वर्त्तने एते न व्यवहारज्ञा नृपपुत्रस्य विलोकनार्थमपि नागता इति जैननिन्दायां च क्रियमाणायां गुरुभिः सप्तभिर्दिनैर्बिडालिकातो मृतिरूचे, अत्र किरणावलीकारेण सप्तदिनैरिति समस्तः प्रयोगो लिखितः, स तु वैयाकरणैश्चिन्त्यः, सङ्ख्यया

श्रीभद्रबाहुस्वरूपम् सू. ६

२०

२५

॥१६१॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** आर्य-भद्रबाहु-कथानकं वर्णयते

प्रत सूत्रांक [६] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२१९-२२२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

समाहारद्विगुभवनात्, तदनु राज्ञा पुरात्सर्वबिडालिकाकर्षणेऽपि सप्तमदिने स्तन्यं पिबतो बालस्योपरि बिडालिकाकारवक्त्रार्गलापातेन मरणे गुरूणां प्रशंसा तस्य निन्दा च सर्वत्र प्रससार, ततः कोपान्मृत्वा व्यन्तरीभूयाशिवोत्पादादिना सङ्घं उपसर्गयन् उपसर्गहरं स्तोत्रं कृत्वा श्रीगुरुभिर्निवारितः, उक्तं च–उवसग्गहरं थुत्तं काऊणं जेण सङ्घकल्लाणं । करुणापरेण विहिअं स भद्दबाहू गुरू जयउ ॥ १ ॥

(थेरस्स णं अज्जसंभूइविजयस्स माढरसगुत्तस्स) स्थविरस्य आर्यसम्भूतिविजयस्य माढरगोत्रस्य (अंतेवासी थेरे अज्जथूलभद्दे गोयमसगुत्ते) शिष्यः स्थविरः आर्यस्थूलभद्रः गौतमगोत्रोऽभूत्, स्थूलभद्रसम्बन्धश्चैवं–पाटलिपुरे शकटालमन्त्रिपुत्रः श्रीस्थूलभद्रो द्वादश वर्षाणि कोशागृहे स्थितो, वररुचिद्विजप्रयोगात् पितरि मृते नन्दराजेनाकार्यं मन्त्रिमुद्रादानायाभ्यर्थितः सन् पितृमृत्युं स्वचित्ते विचिन्त्य दीक्षामादत्त, पश्चाच्च सम्भूतिविजयान्तिके व्रतानि प्रतिपद्य तदादेशपूर्वकं कोशागृहे चतुर्मासीमस्थात्, तदन्ते च बहुहावभावविधायिनीमपि तां प्रतिबोध्य गुरुसमीपमागतः सन् तैः दुष्करदुष्करकारक इति सङ्घसमक्षं प्रोचे, तद्वचसा च पूर्वायाताः सिंहगुहासर्पबिलकूपकाष्ठस्थायिनस्त्रयो मुनयो दूनाः, तेषु सिंहगुहास्थायी मुनिर्गुरुणा निवार्यमाणोऽपि द्वितीयचतुर्मास्यां कोशागृहे गतो, दृष्ट्वा च तां दिव्यरूपां चलचित्तोऽजनि, तदनु तया नेपालदेशानायितरत्नकम्बलं स्वाले क्षिप्त्वा प्रतिबोधितः सन्नागत्योवाच–स्थूलभद्रः स्थूलभद्रः, स एकोऽखि-

१ उपसर्गहरं स्तोत्रं कृत्वा येन संघकल्याणम् । करुणापरेण विहितं स भद्रबाहुर्गुरुर्जयतु ॥ १ ॥

श्रीस्थूलभद्रवृत्तम् ५ १० १३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** आर्य-स्थूलभद्र-कथानकं वर्णयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [६] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२१९-२२२]

लसाधुषु । युक्तं दुष्करदुष्करकारको गुरुणा जगे ॥ १ ॥ पुप्फफलाणं च रसं सुराण मंसाण महिलिआणं च । जाणंता जे विरया,ते दुक्करकारए वंदे ॥ २ ॥ कोशाऽपि तत्प्रतिबोधिता सती स्वकामिनं पुङ्खार्पितबाणैर्दूर-स्थाम्रलुम्ब्यानयनगर्वितं रथकारं सर्षपराशिस्थसूच्यग्रस्थपुष्पोपरि नृत्यन्ती प्राह–नैं दुक्करं अंबयलुम्बितोडणं, न दुक्करं सरिसवनच्चिआइ । तं दुक्करं तं च महाणुभावं, जं सो मुणी पमयवणंमि वुच्छो ॥ ३ ॥ कवयोऽपि— गिरौ गुहायां विजने वनान्तरे, वासं श्रयन्तो वशिनः सहस्रशः । हर्म्येऽतिरम्ये युवतीजनान्तिके, वशी स एकः शकटालनन्दनः ॥ ४ ॥ योऽग्नौ प्रविष्टोऽपि हि नैव दग्धश्छिन्नो न खड्गाग्रकृतप्रचारः । कृष्णाहिरन्ध्रेऽ-प्युषितो न दष्टो, नोक्तोऽज्ञनागारनिवास्यहो यः ॥ ५ ॥ वेश्या रागवती सदा तदनुगा, षड्भी रसैर्भोजनं, शुभ्रं धाम मनोहरं वपुरहो, नव्यो वयःसङ्गमः । कालोऽयं जलदाविलस्तदपि यः, कामं जिगायादरात्, तं वन्दे युवतीप्रबोधकुशलं, श्रीस्थूलभद्रं मुनिम् ॥ ६ ॥ रे काम! वामनयना तव मुख्यमस्त्रं, वीरा वसन्तपिकपञ्च-मचन्द्रमुख्याः । त्वत्सेवका हरिविरञ्चिमहेश्वराद्या, हा हा हताश ! मुनिनाऽपि कथं हतस्त्वम्? ॥७॥ श्रीनन्दिषे-णरथनेमिमुनीश्वरार्द्रबुद्ध्या त्वया मदन! रे मुनिरेष दृष्टः । ज्ञातं न नेमिमुनिजम्बुसुदर्शनानां, तुर्यो भविष्यति निहत्य रणाङ्गणे माम् ॥ ८ ॥ श्रीनेमितोऽपि शकटालसुतं विचार्य, मन्यामहे वयमसुं भटमेकमेव । देवोऽद्रिदु-

॥ १ पुष्पफलानां च रसं सुराणां मांसानां महिलानां च । जानन्तो ये विरताः तान् दुष्करकारकान् वन्दे ॥ २ ॥
॥ २ न दुष्करं आम्रलुम्बित्रोटनं न दुष्करं सर्षपनर्तितायाम् । तद् दुष्करं तच्च महानुभावं यत् स मुनिः प्रमदावने उषितः ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२१९-२२२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

गंमधिरूढ जिगाय मोहं, यन्मोहनालयमयं तु वशी प्रविश्य ॥ ९ ॥ अन्यदा द्वादशवर्षदुर्भिक्षप्रान्ते सङ्घाग्रहेण श्रीभद्रबाहुभिः साधुपञ्चशत्याः प्रत्यहं वाचनासप्तकेन दृष्टिवादे पाठ्यमाने सप्तभिर्वाचनाभिरन्येषु साधुषु उद्विग्नेषु श्रीस्थूलभद्रो वस्तुद्वयोनां दशपूर्वी पपाठ, अथैकदा यक्षासाध्वीप्रभृतीनां वन्दनार्थमागतानां स्वभगिनीनां सिंहरूपदर्शनेन दूनाः श्रीभद्रबाहवो वाचनायां अयोग्यस्त्वं इति स्थूलभद्रं ऊचिवांसः, पुनः सङ्घाग्रहात् अथान्यस्मै वाचना न देयेत्युक्त्वा सूत्रतो वाचनां ददुः, तथा चाहुः-केवली चरमो जम्बूस्वाम्यर्थ प्रभवप्रभुः । शय्यंभवो यशोभद्रः, सम्भूतिविजयस्तथा ॥ १ ॥ भद्रबाहुः स्थूलभद्रः, श्रुतकेवलिनो हि षट् ॥

(थेरस्स णं अज्जथूलभद्दस्स गोयमसगुत्तस्स) स्थविरस्य आर्यस्थूलभद्रस्य गौतमगोत्रस्य (अंतेवासी दुवे थेरा) शिष्यौ द्वौ स्थविरौ अभूतां (थेरे अज्जमहागिरि एलावच्चसगुत्ते) स्थविर आर्यमहागिरिः एलापत्यगोत्रः (थेरे अज्जसुहत्थी वासिट्ठसगुत्ते) स्थविरः आर्यसुहस्तिश्च वासिष्ठगोत्रः,तयोः सम्बन्धश्चैवं-आर्यमहागिरिर्जिनकल्पविच्छेदेऽपि जिनकल्पतुलनामेकार्षीत्-'वुच्छिन्ने जिणकप्पे,काही जिणकप्पतुलणमिह धीरो । तं वंदे मुणिवसहं, महागिरिं परमचरणधरं ॥ १ ॥ जिणकप्पपरीकम्मं, जो कासी जस्स संथवमकासी । सिट्ठिघरंमि सुहत्थी तं

१ व्युच्छिन्ने जिनकल्पेऽकार्षीज्जिनकल्पतुलनामिह धीरः । तं वन्दे मुनिवृषभं महागिरिं परमचरणधरम् ॥ १ ॥
२ जिनकल्पपरिकर्म, योऽकार्षीत् यस्य संस्तवमकार्षीत् । श्रेष्ठिगृहे सुहस्ती तं आर्यमहागिरिं वन्दे ॥ २ ॥

क.सु. २८

श्रीस्थूलभद्र महारिवृत्तान्तः सू. ६

५

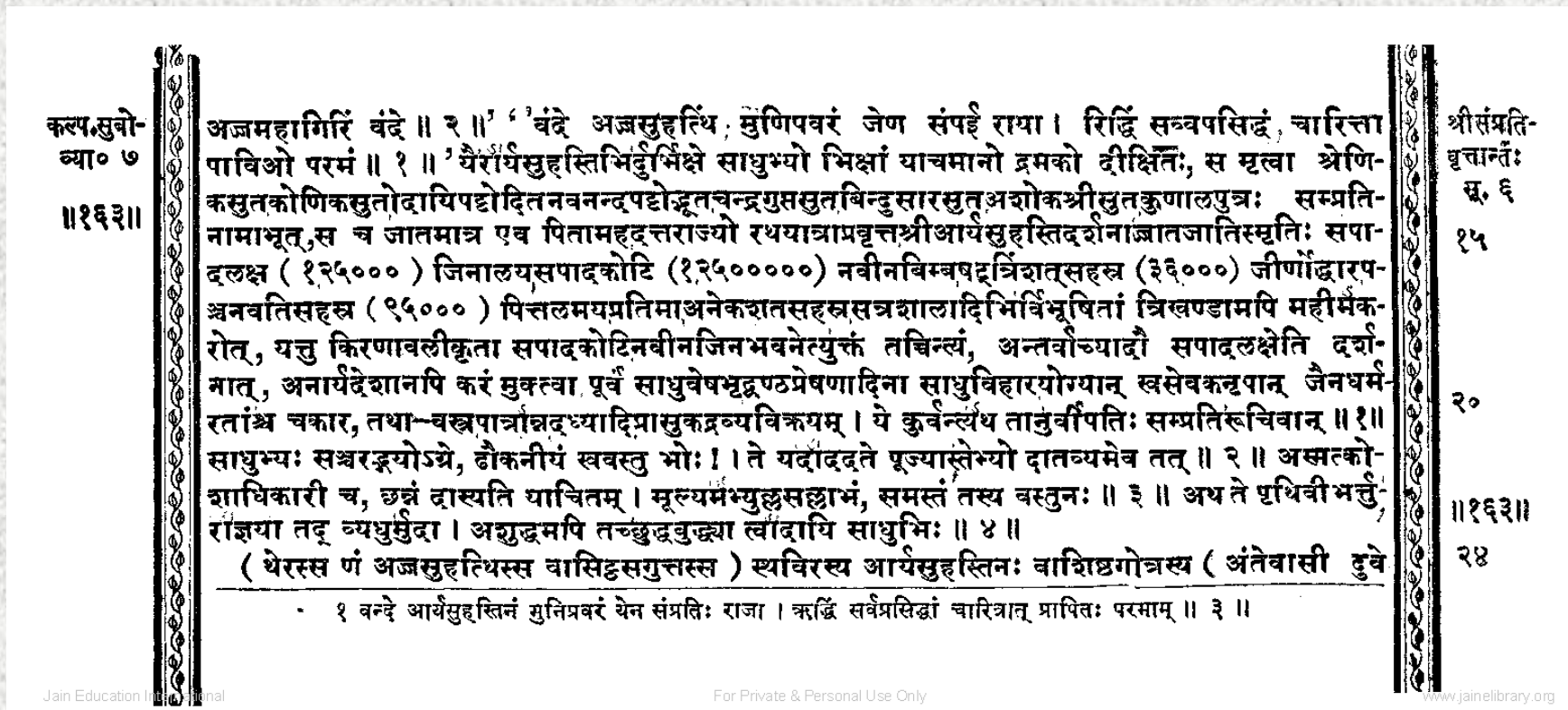
१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [६] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२१९-२२२]



कल्प.सुबो-व्या० ७ ॥१६३॥

अज्जमहागिरिं वंदे ॥ २ ॥' ''वंदे अज्जसुहत्थिं, मुणिपवरं जेण संपई राया। रिद्धिं सव्वपसिद्धं, चारित्ता पाविओ परमं ॥ १ ॥ 'यैरार्यसुहस्तिभिर्दुर्भिक्षे साधुभ्यो भिक्षां याचमानो द्रमको दीक्षितः, स मृत्वा श्रेणिकसुतकोणिकसुतोदायिपट्टोदितनवनन्दपट्टोद्भूतचन्द्रगुप्तसुतबिन्दुसारसुतअशोकश्रीसुतकुणालपुत्रः सम्प्रतिनामाभूत्,स च जातमात्र एव पितामहदत्तराज्यो रथयात्राप्रवृत्तश्रीआर्यसुहस्तिदर्शनाज्जातजातिस्मृतिः सपादलक्ष (१२५०००) जिनालयसपादकोटि (१२५०००००) नवीनबिम्बषट्त्रिंशत्सहस्र (३६०००) जीर्णोद्धारपञ्चनवतिसहस्र (९५०००) पित्तलमयप्रतिमाअनेकशतसहस्रसत्रशालादिभिर्विभूषितां त्रिखण्डामपि महीमैकरोत्, यत्तु किरणावलीकृता सपादकोटिनवीनजिनभवनेत्युक्तं तच्चिन्त्यं, अन्तर्वाच्यादौ सपादलक्षेति दर्शनात्, अनार्यदेशानपि करं मुक्त्वा पूर्वं साधुवेषभृद्भटप्रेषणादिना साधुविहारयोग्यान् स्वसेवकनृपान् जैनधर्मरतांश्च चकार, तथा–वस्त्रपात्रान्नद्यादिप्रासुकद्रव्यविक्रयम् । ये कुर्वन्त्यथ तानुर्वीपतिः सम्प्रतिरूचिवान् ॥१॥ साधुभ्यः सञ्चरद्भ्योऽग्रे, द्यौकनीयं स्ववस्तु भोः ! । ते यदाददते पूज्यास्तेभ्यो दातव्यमेव तत् ॥ २ ॥ अस्मत्कोशाधिकारी च, छत्रं दास्यति याचितम् । मूल्यमभ्युल्लसल्लाभं, समस्तं तस्य वस्तुनः ॥ ३ ॥ अथ ते पृथिवीभर्तुराज्ञया तद् व्यधुर्मुदा । अशुद्धमपि तच्छुद्धबुद्ध्या त्वादायि साधुभिः ॥ ४ ॥

(थेरस्स णं अज्जसुहत्थिस्स वासिट्ठसगुत्तस्स) स्थविरस्य आर्यसुहस्तिनः वाशिष्ठगोत्रस्य (अंतेवासी दुवे

१ वन्दे आर्यसुहस्तिनं मुनिप्रवरं येन संप्रतिः राजा । ऋद्धिं सर्वप्रसिद्धां चारित्रात् प्रापितः परमाम् ॥ ३ ॥

श्रीसंप्रतिवृत्तान्तः सू. ६ १५ २० ॥१६३॥ २४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** राजन् संप्रति–वृतान्तं दर्शयते

प्रत सूत्रांक [६] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२१९-२२२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

थेरा) शिष्यौ द्वौ स्थविरौ अभूतां (सुट्ठियसुप्पडिबुद्धा कोडियकाकंदगा वग्घावच्चसगुत्ता) सुस्थितः सुप्रतिबुद्धश्च कौटिककाकन्दिकौ व्याघ्रापत्यगोत्रौ, सुस्थितौ–सुविहितक्रियानिष्ठौ सुप्रतिबुद्धौ–सुज्ञाततत्त्वौ, इदं विशेषणं कौटिककाकन्दिकाविति तु नामनी, अन्ये तु सुस्थितसुप्रतिबुद्धौ इति नामनी कोटिशः सूरिमन्त्रजापात् काकन्द्यां नगर्यां जातत्वाच्च कौटिककाकन्दिकाविति विशेषणं, (थेराणं सुट्ठियसुपडिबुद्धाणं कोडियकाकंदगाणं वग्घावच्चसगुत्ताणं) स्थविरयोः सुस्थितसुप्रतिबुद्धयोः कोटिककाकन्दिकयोः व्याघ्रापत्यगोत्रयोः (अंतेवासी थेरे अज्जइंददिन्ने कोसियगुत्ते) शिष्यः स्थविरः आर्य इन्द्रदिन्नोऽभूत् कौशिकगोत्रः (थेरस्स णं अज्जइंददिन्नस्स कोसियगुत्तस्स) स्थविरस्य आर्यइन्द्रदिन्नस्य कौशिकगोत्रस्य (अंतेवासी थेरे अज्जदिन्ने गोयमसगुत्ते) शिष्यः स्थविरः आर्यदिन्नोऽभूत् गौतमगोत्रः (थेरस्स णं अज्जदिन्नस्स गोयमसगुत्तस्स) स्थविरस्य आर्यदिन्नस्य गोतमगोत्रस्य (अंतेवासी थेरे अज्जसीहगिरी जाइसरे कोसियगुत्ते) शिष्यः स्थविरः आर्यसिंहगिरिरभूत्, जातिस्मरणवान् कौशिकगोत्रः (थेरस्स णं अज्जसीहगिरिस्स जाइस्सरस्स कोसियसगुत्तस्स) स्थविरस्य आर्यसिंहगिरेः जातिस्मरणवतः कौशिकगोत्रस्य (अंतेवासी थेरे अज्जवइरे गोयमसगुत्ते) शिष्यः स्थविरः आर्यवज्रोऽभूत् गौतमगोत्रः (थेरस्स णं अज्जवइरस्स गोयमसगुत्तस्स) स्थविरस्य आर्यवज्रस्य गौतमगोत्रस्य (अंतेवासी थेरे अज्जवइरसेणे उक्कोसियगुत्ते) शिष्यः स्थविरः आर्यवज्रसेनोऽभूत् उत्कौशिकगोत्रः (थेरस्स णं अज्जवइरसेणस्स उक्कोसिअगुत्तस्स) स्थविरस्य आर्यवज्रसेनस्य उत्कौशिकगोत्रस्य

सुस्थितादि-स्थविरावली सू. ६

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२१९-२२२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१६४॥

(अंतेवासी चत्तारि थेरा) शिष्याः चत्वारः स्थविराः अभूवन् (थेरे अज्जनाइले, थेरे अज्जपोमिले, थेरे अज्जजयंते, थेरे अज्जतावसे) स्थविरः आर्यनागिलः, स्थविरः आर्यपौमिलः, स्थविरः आर्यजयन्तः, स्थविरः आर्यतापसः, (थेराओ अज्जनाइलाओ अज्जनाइला साहा निग्गया) स्थविरात् आर्यनागिलात् आर्यनागिला शाखा निर्गता (थेराओ अज्जपोमिलाओ अज्जपोमिला साहा निग्गया) स्थविराद् आर्यपोमिलाद् आर्यपोमिला शाखा निर्गता (थेराओ अज्जजयंताओ अज्जजयंती साहा निग्गया) स्थविरात् आर्यजयन्तात् आर्यजयन्ती शाखा निर्गता (थेराओ अज्जतावसाओ अज्जतावसी साहा निग्गया) स्थविरात् आर्यतापसात् आर्यतापसी शाखा निर्गता इति ॥ (६) ॥ अथ विस्तरवाचनया स्थविरावलीमाह–(वित्थरवायणाए पुण अज्जजसभद्दाओ पुरओ थेरावली एवं पलोइज्जइ) विस्तरवाचनया पुनः आर्ययशोभद्रात् अग्रतः स्थविरावली एवं प्रलोक्यते, तत्रास्यां किल वाचनायां भूरिशो भेदा लेखकदोषहेतुका ज्ञेयाः, तत्तत्स्थविराणां शाखाः कुलानि च प्रायः सम्प्रति न ज्ञायन्ते, नामान्तरेण तिरोहितानि भविष्यन्तीति तत्र तद्विदः प्रमाणं, तत्र कुलं–एकाचार्यसन्ततिर्गणस्तु–एकवाचनाचारमुनिसमुदायः, यदुक्तं–"तत्थ कुलं विन्नेयं एगायरिअस्स संतई जा उ । दुण्ह कुलाण मिहो पुण साविक्खाणं गणो होइ ॥ १ ॥ "शाखास्तु एकाचार्यसन्ततावेव पुरुषविशेषाणां पृथक् पृथगन्वयाः, अथवा

१ तत्र कुलं विज्ञेयं एकाचार्यस्य संततिर्या तु । द्वयोः कुलयोर्मिथः पुंनः सापेक्षयोर्गणो भवति ॥ १ ॥

आर्यनागिलादिस्थविरावली सू. ६ २० २५ ॥१६४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [७] गाथा ||१+१+.....१||

दीप अनुक्रम [२२३-२५८]

विवक्षिताद्यपुरुषसन्ततिः शाखा, यथाऽस्मदीया वैरस्वामिनाम्ना वैरीशाखा, कुलानि तु तत्तच्छिष्याणां पृथक् पृथगन्वयाः, यथा चान्द्रकुलं नागेन्द्रकुलमित्यादि (तंजहा) तद्यथा–(थेरस्स णं अज्जजसभद्दस्स तुंगियायणसगुत्तस्स) स्थविरस्य आर्ययशोभद्रस्य तुङ्गिकायनगोत्रस्य (इमे दो थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था) इमौ द्वौ स्थविरौ अन्तेवासिनौ 'आहावच्चा' न पतन्ति यस्मिन्नुत्पन्ने दुर्गतौ अयशःपङ्के वा, पूर्वजास्तदपत्यं–पुत्रादिस्तत्सदृशौ यथापत्यौ, अत एव 'अभिन्नाया' अभिज्ञातौ-प्रसिद्धौ अभूतां (तंजहा) तद्यथा (थेरे अज्जभद्दबाहू पाइणसगुत्ते) स्थविर आर्यभद्रबाहुः प्राचीनगोत्रः (थेरे अज्जसंभूइविजए माढरसगुत्ते) स्थविरः आर्यसम्भूतिविजयः माढरगोत्रः (थेरस्स णं अज्जभद्दबाहुस्स पाईणसगुत्तस्स) स्थविरस्य आर्यभद्रबाहोः प्राचीनगोत्रस्य (इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी आहावच्चा अभिन्नाया हुत्था) एते चत्वारः स्थविराः अन्तेवासिनो यथापत्याः प्रसिद्धा अभवन् (तंजहा) तद्यथा (थेरे गोदासे, थेरे अग्गिदत्ते, थेरे जन्नदत्ते, थेरे सोमदत्ते, कासवगुत्तेणं) स्थविरः गोदासः १ स्थविरः अग्निदत्तः २ स्थविरः यज्ञदत्तः ३ स्थविरः सोमदत्तः ४ काश्यपगोत्रः (थेरेहिंतो गोदासेहिंतो कासवगुत्तेहिंतो) स्थविरात् गोदासात् काश्यपगोत्रात् (इत्थ णं गोदासगणे नामं गणे निग्गए) अत्र गोदासनामको गणो निर्गतः (तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति) तस्य एताश्चतस्रः शाखा एवं आख्यायन्ते (तंजहा) तद्यथा (तामलित्तिया कोडिवरिसिया पुंडवद्धणीया दासीखब्बडिया) तामलिसिका १ कोटिवर्षिका २ पुण्ड्रवर्द्धनिका ३ दासीखर्बटिका ४ (थेरस्स णं अज्जसंभूइविजयस्स

विस्तृत-वाचना ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [७] गाथा ||१+१+.....१||

दीप अनुक्रम [२२३-२५८]

कल्प.सुबो-ध्या० ७

॥१६५॥

माढरसगुत्तस्स) स्थविरस्य आर्यसम्भूतिविजयस्य माढरगोत्रस्य (इमे दुवालस थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था) एते द्वादश स्थविराः शिष्या यथापत्याः प्रसिद्धा अभवन् (तंजहा)-तद्यथा (नंदणभद्दु- १ वनंदण भद्दे २ तह तीसभद्द ३ जसभद्दे ४ । थेरे य सुमणभद्दे ५ मणिभद्दे ६ पुण्णभद्दे ७ य ॥ १ ॥) नन्दनभद्रः १ उपनन्दः २ तिष्यभद्रः ३ यशोभद्रः ४ सुमनोभद्रः ५ मणिभद्रः ६ पूर्णभद्रः ७ (थेरे अ थूल- भद्दे ८ । उज्जुमई ९ जंबुनामधिज्जे १० य । थेरे अ दीहभद्दे ११ थेरे तह पंडुभद्दे १२ य ॥ २ ॥) स्थविरः स्थूलभद्रः ८ ऋजुमतिः ९ जम्बूनामधेयः १० स्थविरः दीर्घभद्रः ११ स्थविरः पाण्डुभद्रः १२ ॥

(थेरस्स णं अज्जसंभूइविजयस्स माढरसगुत्तस्स) स्थविरस्य आर्यसम्भूतिविजयस्य माढरगोत्रस्य (इमा ओ सत्त अंतेवासिणीओ अहावच्चाओ अभिन्नायाओ हुत्था) एताः सप्त अन्तेवासिन्यः यथापत्याः प्रसिद्धा अभवन् (तंजहा) तद्यथा (जक्खा य १ जक्खदिन्ना २ भूआ ३ तह चेव भूअदिन्ना य ४ । सेणा ५ वेणा ६ रेणा ७ भइणीओ थूलभद्दस्स ॥ १ ॥) सुगमा, थेरस्स णं अज्जथूलभद्दस्स गोयमसगुत्तस्स इमे दो थेरा अंते- वासी अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था, तंजहा–थेरे अज्जमहागिरी एलावच्चसगुत्ते, थेरे अज्जसुहत्थी वासिट्ठसगुत्ते, थेरस्स णं अज्जमहागिरिस्स एलावच्चसगुत्तस्स इमे अट्ठ थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था, तंजहा– थेरे उत्तरे थेरे बलिस्सहे थेरे धणड्ढे थेरे सिरिड्ढे थेरे कोडिन्ने थेरे नागे थेरे नागमित्ते थेरे छलुए रोहगुत्ते कोसियगुत्ते णं, 'छलुए रोहगुत्ते'त्ति द्रव्य १ गुण २ कर्म ३ सामान्य ४ विशेष ५ समवायाख्य ६ षट्पदार्थ-

विस्तृत-वाचना

२०

२५

॥१६५॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७] गाथा ||१+१+.....१|| दीप अनुक्रम [२२३-२५८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

त्रैराशिक-वृत्तान्तः

प्ररूपकत्वात् षट्, उलूकगोत्रोत्पन्नत्वेनोलूकः, ततः कर्मधारये षडुलूकः, प्राकृतत्वात् 'छडुलूए'त्ति, अत एव सूत्रे 'कोसिअगुत्ते' इत्युक्तं, उलूककौशिकयोरेकार्थत्वात्, थेरिहिंतो णं छडुलूएहिंतो रोहगुत्तेहिंतो कोसियगुत्तेहिंतो, तत्थ णं तेरासिया निग्गया, 'तेरासिय'त्ति त्रैराशिकाः–जीवाजीवनोजीवाख्यराशित्रयप्ररूपणस्तच्छिष्यप्रशिष्याः, तदुत्पत्तिस्त्वेवं–श्रीवीरात् पञ्चशतचतुश्चत्वारिंशत्तमे ५४४ वर्षे अन्तरञ्जिकायां पुर्यां भूतगृहव्यन्तरचैत्यस्थश्रीगुप्ताचार्यवन्दनार्थं ग्रामान्तरादागच्छन् रोहगुप्तस्तच्छिष्यः प्रवादिप्रदापितपटहध्वनिमाकर्ण्य तं पटहं स्पृष्ट्वाऽऽचार्यस्य तन्निवेद्य वृश्चिक १ सर्प २ मूषक ३ मृगी ४ वराही ५ काकी ६ शकुनिका ७ भिधपरिव्राजकविद्योपघातिका मयूरी १ नकुली २ बिडाली ३ व्याघ्री ४ सिंही ५ उलूकी ६ श्येनी ७–संज्ञाः सप्त विद्याः अशेषोपद्रशमकं रजोहरणं च गुरुभ्यः प्राप्य बलश्रीनाम्नो राज्ञः सभायामागत्य पोट्टशालाभिधेन परिव्राजकेन सह वादे प्रारब्धे तेन जीवाजीवसुखदुःखादिरूपे राशिद्वये स्थापिते:=देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरास्त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथ त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः। त्रैगुण्यं पुरुषत्रयी त्रयमथो सन्ध्यादिकालत्रयं, सन्ध्यानां त्रितयं वचस्त्रयमथाप्यर्थास्त्रयः संस्मृताः ॥ १ ॥ इत्यादि वदन् जीवाजीवनोजीवेत्यादिराशित्रयं व्यवस्थापितवान्, ततश्च तद्विद्यासु स्वविद्याभिर्विजितासु तत्प्रयुक्तां रासभीविद्यां रजोहरणेन विजित्य महोत्सवपूर्वकं आगत्य सर्वं वृत्तान्तं गुरुभ्यो व्यज्ञपयत्, ततो गुरुभिरूचे–वत्स ! वरं चक्रे, परं जीवाजीवनोजीवेति राशित्रयस्थापनमुत्सूत्रमिति तत्र गत्वा ददस्व मिथ्यादुष्कृतं, ततः कथं तथा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ त्रैराशिक-मतस्य उत्पत्तिः कथयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [७] गाथा ||१+१+.....१||

दीप अनुक्रम [२२३-२५८]

कल्प.सुबो-ध्या० ७

||१६६||

विघपर्षदि स्वयं प्रज्ञाप्य अप्रमाणयामीति जाताहङ्कारेण तेन तथा न चक्रे, ततो गुरुभिः षण्मासीं यावद्राज-सभायां वादमासूत्र्य प्रान्ते कुत्रिकापणान्नोजीवयाचने तस्यामासौ चतुश्चत्वारिंशेन पृच्छाशतेन (१४४) निर्लो-ठितः, कथमपि स्वाग्रहमत्यजन् गुरुभिः कुधा खेलमात्रभस्मप्रक्षेपेण शिरोगुण्डनपूर्वकं स सङ्घबाह्यश्चक्रे, ततःषष्ठो निह्नवस्त्रैराशिकः क्रमेण वैशेषिकदर्शनं प्रकटितवानिति। यत्तु सूत्रे रोहगुप्त आर्यमहागिरिशिष्यः प्रोक्तः, उत्त-राध्ययनवृत्तिस्थानाङ्गवृत्त्यादौ तु श्रीगुप्ताचार्यशिष्यः प्रोक्तस्ततोऽस्माभिरपि तथैव लिखितं,तत्त्वं पुनर्बहुश्रुता वि-दन्ति ॥ थेरेहिंतो णं उत्तरबलिसहेहिंतो तत्थ णं उत्तरबलिस्सहे नामं गणे निग्गए,तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति,तंजहा–कोसंबिया सुत्तिवत्तिया कोडंबाणी चंदनागरी, थेरस्स णं अज्जसुहत्थिस्स वासिट्ठसगुत्तस्स इमे दुवालस थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था–तंजहा–(थेरे अ अज्जरोहण १ भद्दजसे २ मेह गणिय ३ कामिड्ढी ४। सुट्ठिय ५ सुप्पडिबुद्धे ६, रक्खिय ७ तह रोहगुत्ते ८ अ ॥१॥ इसिगुत्ते ९ सिरिगुत्ते १० गणी अ, बंभे ११ गणी य तह सोमे १२। दस दो अ गणहरा खलु एए सीसा सुहत्थिस्स ॥२॥) आर्यरोहणः १ भद्रयशाः २ मेघः ३ कामर्द्धिः ४ सुस्थितः ५ सुप्रतिबुद्धः ६ रक्षितः ७ रोहगुप्तः ८ ऋषिगुप्तः ९ श्रीगुप्तः१० ब्रह्मा ११ सोमः १२ इति द्वादश गणधारिणः सुहस्तिशिष्याः ॥ थेरेहिंतो णं अज्जरोहणेहिंतो कासवगुत्तेहिंतो तत्थ णं उद्देहगणे नामं गणे निग्गए, तस्सिमाओ चत्तारि साहाओ निग्गयाओ.छच्च कुलाइं एवमाहिज्जंति, से किं तं साहाओ ?, साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा–उदुंबरिज्जिया मासपूरिआ मइपत्तिया पुन्नपत्तिया, से तं साहाओ ॥ से किं तं

त्रैराशिक वृत्तान्तः

२०

२५

||१६६||

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [७] गाथा ||१+१+.....१||

दीप अनुक्रम [२२३-२५८]

कुलाइं ? कुलाइं एवमाहिज्जंति, तंजहा–पढमं च नागभूयं बिइयं पुण सोमभूइयं होइ । अह उल्लगच्छ तइअं चउत्थयं हत्थलिज्जं तु ॥ १ ॥ पंचमगं नंदिज्जं छट्ठं पुण पारिहासयं होइ । उद्देहगणस्सेए छच्च कुला हुंति नायव्वा ॥२॥ थेरेहिंतो णं सिरिगुत्तेहिंतो हारियायसगुत्तेहिंतो इत्थ णं चारणगणे नामं गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ सत्त य कुलाइं एवमाहिज्जंति, से किं तं साहाओ ?, साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा–हारियमालागारी संकासीआ गवेधुया वज्जनागरी, से तं साहाओ, से किं तं कुलाइं ?, कुलाइं एवमाहिज्जंति, तंजहा–पढमित्थ वत्थलिज्जं बीयं पुण पीइधम्मिअं होइ । तइअं पुण हालिज्जं चउत्थयं पूसमित्तिज्जं ॥ १ ॥ पंचमगं मालिज्जं छट्ठं पुण अज्जवेडयं होइ । सत्तमयं कण्हसहं सत्त कुला चारणगणस्स ॥ २ ॥ थेरेहिंतो णं भद्दजसेहिंतो भारद्दायगुत्तेहिंतो इत्थ णं उडुवाडियगणे नामं गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ तिन्नि कुलाइं एवमाहिज्जंति, से किं तं साहाओ ?, साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा–चंपिज्जिया भद्दिज्जिया काकंदिया मेहलिज्जिया, से तं साहाओ, से किं तं कुलाइं ?, २ एवमाहिज्जंति, तंजहा–भद्दजसियं तह भद्दगुत्तियं, तइयं च होइ जसभद्दं । एयाइं उडुवाडियगणस्स तिन्नेव य कुलाइं ॥ १ ॥ थेरेहिंतो णं कामिड्ढीहिंतो कोडालसगुत्तेहिंतो इत्थ णं वेसवाडियगणे नामं गणे निग्गए,तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ,चत्तारि कुलाइं एवमाहिज्जंति, से किं तं साहाओ ?, सा० तंजहा–सावत्थिया रज्जपालिआ अंतरिज्जिया खेमलिज्जिया, से तं साहाओ, से किं तं कुलाइं ?, कुलाइं एवमाहिज्जंति, तंजहा–गणियं मेहियकामिड्ढिअं च तह होइ

नागभूतादीनि कुलानि चारणाद्या गणाः ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७] गाथा ||१+१+.....१||

दीप अनुक्रम [२२३-२५८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

इंदपुरगं च। एयाइं वेसवाडियगणस्स चत्तारि उ कुलाइं ॥ १ ॥ थेरेहिंतो णं इसिगुत्तेहिंतो वासिट्ठसगुत्तेहिंतो इत्थ णं माणवगणे नामं गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ तिन्नि कुलाइं एवमाहिज्जंति, से किं तं साहाओ ?, साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा–कासविज्जिया गोयमिज्जिया वासिट्ठिया सोरट्ठिया, से तं साहाओ, से किं तं कुलाइं ?, कुलाइं एवमाहिज्जंति, तंजहा–इसिगुत्तियत्थ पढमं बीयं इसिदत्तिअं मुणेयव्वं । तइयं च अभिजयंतं तिन्नि कुला माणवगणस्स ॥ १ ॥ थेरेहिंतो सुट्ठियसुप्पडिबुद्धेहिंतो कोडियकाकंदएहिंतो वग्घावच्चसगुत्तेहिंतो इत्थ णं कोडियगणे नामं गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ चत्तारि कुलाइं च एवमाहिज्जंति, से किं तं साहाओ ?, साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा–उच्चानागरि विज्जाहरी य वइरी य मज्झिमिल्ला य। कोडियगणस्स एया हवंति चत्तारि साहाओ ॥ १ ॥ सेत्तं साहाओ, से किं तं कुलाइं ?, कुलाइं एवमाहिज्जंति, तंजहा–पढमित्थ बंभलिज्जं बिइयं नामेण वत्थलिज्जं तु। तइयं पुण वाणिज्जं चउत्थयं पण्हवाहणयं ॥ १ ॥ थेराणं सुट्ठियसुप्पडिबुद्धाणं कोडियकाकंदयाणं वग्घावच्चसगुत्ताणं इमे पंच थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था, तंजहा–थेरे अज्जइंददिन्ने पियगंथे।

'पिअगंथे'त्ति एकदा त्रिंशतजिनभवनचतुःशतलौकिकप्रासादाष्टादशशतविप्रगृहषट्त्रिंशच्छतवणिग्गेहनवशताराम्ससप्तशतवापीद्विशतकूपसप्तशतसत्रागारविराजमाने अजमेरुनिकटवर्त्तिनि सुभटपालराजसम्बन्धिनि हर्षपुरे श्रीप्रियग्रन्थसूरयोऽभ्येयुः, तत्र चान्यदा द्विजैर्यागे छागो हन्तुमारेभे, तैः आद्धकरार्पितवासक्षेपे

२० २५ ॥१६७॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** आर्य-प्रियग्रन्थ-वृतांतं वर्णयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [७] गाथा ||१+१+.....१||

दीप अनुक्रम [२२३-२५८]

अम्बिकाधिष्ठितः स छागो नभसि भूत्वा बभाण–हनिष्यथ नु मां हुलै, बद्धीताऽऽयात मा हत। युष्मद्भुन्निर्दयः स्यां चेत्, तदा हन्मि क्षणेन वः ॥ १ ॥ यत्कृतं रक्षसां द्रङ्गे, कुपितेन हनूमता। तत्करोम्येव वः स्वस्थः, कृपा चेन्नान्तरा भवेत् ॥ २ ॥ यावन्ति रोमकूपानि, पशुगात्रेषु भारत ! । तावद्वर्षसहस्राणि, पच्यन्ते पशुघातकाः ॥ ३ ॥ यो दद्यात् काञ्चनं मेरुं, कृत्स्नां चैव वसुन्धराम् । एकस्य जीवितं दद्यान्न च तुल्यं युधिष्ठिर ! ॥ ४ ॥ महतामपि दानानां, कालेन क्षीयते फलम् । भीताभयप्रदानस्य, क्षय एव न विद्यते ॥ ५ ॥ इत्यादि, कस्त्वं प्रकाशयात्मानं, तेनोक्तं पावकोऽस्म्यहम् । ममैनं वाहनं कस्माज्जिघांसथ पशुं वृथा ? ॥ ६ ॥ इहास्ति श्रीप्रिय-ग्रन्थः, सूरीन्द्रः समुपागतः । तं पृच्छत शुचिं धर्मं, समाचरत शुद्धितः ॥ ७ ॥ यथा चक्री नरेन्द्राणां, धानु-ष्काणां धनञ्जयः । तथा धुरि स्थितः साधुः, स एकः सत्यवादिनाम् ॥ ८ ॥ ततस्ते तथा कृतवन्त इति ॥

श्रीप्रियग्रन्थसूरिवृत्तम्

५

थेरे विज्जाहरगोवाले कासवगुत्ते णं थेरे इसिदत्ते थेरे अरिहदत्ते। थेरेहिंतो णं पियगंथेहिंतो एत्थ णं मज्झिमा साहा निग्गया, थेरेहिंतो णं विज्जाहरगोवालेहिंतो कासवगुत्तेहिंतो एत्थ णं विज्जाहरी साहा निग्गया, थेरस्स णं अज्जइंददिन्नस्स कासवगुत्तस्स अज्जदिन्ने थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते, थेरस्स णं अज्जदिन्नस्स गोयमसगुत्तस्स इमे दो थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था, तंजहा–थेरे अज्जसंतिसेणिए माढरसगुत्ते, थेरे अज्जसीहगिरी जाइस्सरे कोसियगुत्ते, थेरेहिंतो णं अज्जसंतिसेणिएहिंतो माढरसगुत्तेहिंतो एत्थ णं उच्चनागरी साहा निग्गया, थेरस्स णं अज्जसंतिसेणियस्स माढरसगुत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था,

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७] गाथा ||१+१+.....१||

दीप अनुक्रम [२२३-२५८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१६८॥

तंजहा–(ग्रं. १०००) थेरे अज्जसेणिए थेरे अज्जतावसे थेरे अज्जकुबेरे थेरे अज्जइसिपालिए। थेरेहिंतो णं अज्ज-सेणिएहिंतो एत्थ णं अज्जसेणिया साहा निग्गया, थेरेहिंतो णं अज्जतावसेहिंतो एत्थ णं अज्जतावसी साहा निग्गया, थेरेहिंतो णं अज्जकुबेरेहिंतो एत्थ णं अज्जकुबेरी साहा निग्गया, थेरेहिंतो णं अज्जइसिपालि-एहिंतो एत्थ णं अज्जइसिपालिया साहा निग्गया, थेरस्स णं अज्जसीहगिरिस्स जाइस्सरस्स कोसियगुत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था, तंजहा–थेरे धणगिरी थेरे अज्जवइरे 'थेरे अज्जव इरे'त्ति तुम्बवनग्रामे सुनन्दाभिधानां भार्यां साधानां मुक्त्वा धनगिरिणा दीक्षा गृहीता, सुनन्दासुतस्तु स्वजन्मसमये एव पितुर्दीक्षां श्रुत्वा जातजातिस्मृतिर्मातुरुद्वेगाय सततं रुदन्नेवास्ते, ततो मात्रा षण्मासवया एव धनगिरेरर्पितः, तेन च गुरोः करे दत्तो महाभारत्वाद् दत्तवज्रनामा पालनस्थ एवैकादशाङ्गानि अध्यैष्ट, ततस्त्रिवार्षिकः सन् मात्रा राजसमक्षं विवादेऽनेकसुखभक्षिकादिभिर्लोभ्यमानोऽपि धनगिरिणाऽर्पितं रजोह-रणमग्रहीत्, ततो माताऽपि प्रवव्राज, ततोऽष्टवर्षान्ते एकदा तस्य पूर्वभववयस्यैर्जृम्भकैरुज्जयिनीमार्गे वृष्टिनि-वृत्तौ कूष्माण्डभिक्षायां दीयमानायां अनिमिषत्वादेवपिण्डोऽयमकल्प्य इत्यग्रहणे तुष्टैर्वैक्रियलब्धिर्दत्ता, तथैव द्वितीयवेलायां घृतपूरान्ग्रहणे नभोगमनविद्या दत्ता, यश्च पाटलीपुरे धनश्रेष्ठिना दीयमानां बहुधन-कोटिसनाथां साध्वीभ्यो गुणानाकर्ण्य वज्रमेव वृणोमीतिकृताभिग्रहां रुक्मिणीनामकन्यां प्रतिबोध्य दीक्षया-मास, अत्र कविः—मोहाब्धिश्चुलुकीचक्रे, येन बालेन लीलया। स्त्रीनदीस्नेहपूरस्तं, वज्रर्षिं प्लावयेत्कथम्? ॥१॥

श्रीवज्रसा-मिवृत्तम्

२०

२५

॥१६८॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** आर्य-वज्रस्वामिनं-वृतांतं वर्णयते

प्रत सूत्रांक [७] गाथा ||१+१+.....१||

दीप अनुक्रम [२२३-२५८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

यश्चैकदा दुर्भिक्षे सङ्घं पटे संस्थाप्य ससुभिक्षां पुरिकापुरीं नीतवान्, तत्र बौद्धेन राज्ञा जिनचैत्येषु पुष्पनिषेधः कृतः, अत्रापि किरणावलीदीपिकयोर्बौद्धराज्ञेति प्रयोगो लिखितःचिन्त्यः, तदनु पर्युषणायां आद्यैर्विज्ञप्तो व्योमविद्यया माहेश्वरीपुर्यां पितृमित्रभारामिकं पुष्पप्रगुणीकरणार्थमादिश्य स्वयं हिमवद्द्रौ श्रीदेवीगृहे गतः, ततश्च श्रिया दत्तं महापद्मं हुताशनवनाद्विंशतिलक्षपुष्पाणि च लात्वा जृम्भकामरविकुर्वितविमानस्थः समहोत्सवमागत्य जिनशासनं प्रभावयन् राजानमपि श्रावकं चक्रे, अन्यदा स श्रीवज्रस्वामी कफोद्रेके भोजनादनु भक्षणाय कर्णे स्थापितायाः शुण्ठ्याः प्रतिक्रमणवेलायां पाते प्रमादेन स्वमृत्युं आसन्नं विचिन्त्य द्वादशवर्षीयदुर्भिक्षप्रवेशे स्वशिष्यं श्रीवज्रसेनाभिधं-लक्षमूल्यौदनाद् भिक्षां, यत्राहि स्वमेवाप्नुयाः। सुभिक्षमवबुद्धयेथास्तदुत्तरे दिनोषसि ॥ १ ॥ इत्युक्त्वा अन्यत्र व्यहारयत्, स्वयं च स्वसमीपस्थसाधुभिस्सह रथावर्त्तगिरौ गृहीतानशनो दिवं प्राप, तत्र च संहननचतुष्कं दशमं पूर्वं च व्युच्छिन्नं, यत्तु किरणावलीकारेण तुर्यं संहननं व्युच्छिन्नमिति लिखितं, तच्चिन्त्यं, तन्दुलवैचारिकवृत्तिदीपालिकाकल्पादौ चतुष्कव्युच्छेदस्यैवोक्तत्वात्। तदनु च श्रीवज्रसेनः सोपारके जिनदत्तश्राद्धगृहे तत्पद्मया ईश्वरीनाम्न्या लक्षमूल्यमन्नं पक्त्वा प्रक्षिप्यमाणं विषं गुरुवचः प्रोच्य न्यवारयत्, प्रभाते पोतैः प्रचुरधान्यागमनात् सञ्जाते

१ दुष्कर्मावनिमिद्धत्रे, श्रीवज्रे स्वर्गमीयुषि। व्युच्छिन्नं दशमं पूर्वं, तुर्यं संहननं तथा ॥ १ ॥ इति परिशिष्टपर्वणि श्रीहेमचन्द्राचार्याः, 'तंमि य निव्वुए अद्धनारायसंघयणं वुच्छिन्नं' इत्यावश्यकचूर्णिवृत्त्योः, तन्दुलवैचारिकादौ तु तत्तद्ववधिकालतया वचनं।

क.सु. २९

श्रीवज्रस्वामिवृत्तं ५ १० १२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७] गाथा ||१+१+.....१||

दीप अनुक्रम [२२३-२५८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० ७

॥१६९॥

सुभिक्षे जिनदत्तः सभार्यो नागेन्द्र १ चन्द्र २ निर्वृति ३ विद्याधरा ४ ख्यसुतपरिवृतो दीक्षां जग्राह, ततस्तेभ्यः स्वस्वनाम्ना चतस्रः शाखाः प्रवृत्ताः ॥ अज्जसमिए थेरे अरिहदिन्ने। थेरेहिंतो णं अज्जसमिएहिंतो गोयमसगुत्तेहिंतो इत्थ णं बंभदीविया साहा निग्गया। 'बंभदीविया साहा निग्गया' इति आभीरदेशेऽचलपुरासन्ने कन्नावेन्नानद्योर्मध्ये ब्रह्मद्वीपे पञ्चशती तापसानां अभूत्, तेष्वेकः पादलेपेन भूमाविव जलोपरि गच्छन् जलालिप्तपादो वेन्नामुत्तीर्य पारणार्थं याति, ततोऽहो एतस्य तपःशक्तिः, जैनेषु न कोऽपि प्रभावीति श्रुत्वा श्राद्धैः श्रीवज्रस्वामिमातुला आर्यसमितसूरय आहूताः, तैरूचे–स्तोकमिदं, पादलेपशक्तिरिति, श्राद्धैस्ते स्वगृहे पादपादुकाधावनपुस्सरं भोजिताः, ततस्तैः सहैव श्राद्धा नदीमगुः, स च तापसो धार्ष्ट्यमालम्ब्य नद्यां प्रविशन्नेव बुडितुं लग्नः, ततस्तेषां अपभ्राजना। इतश्च तत्रार्यसमितसूरयोऽभ्येत्य लोकबोधनाय योगचूर्णं क्षिप्त्वा ऊचुर्भ–वेन्ने! परं पारं यास्याम इत्युक्ते कूले मिलिते, बभूव बह्वाश्चर्यं, ततः सूरयस्तापसाश्रमे गत्वा तान् प्रतिबोध्य प्राव्राजयन्, ततस्तेभ्यो ब्रह्मद्वीपिका शाखा निर्गता। तत्र च–महागिरिः १ सुहस्ती च २, सूरिः श्रीगुणसुन्दरः ३। श्यामार्यः ४ स्कन्दिलाचार्यो ५, रेवतीमित्रसूरिराट् ॥ १ ॥ श्रीधर्मो ७ भद्रगुप्तश्च, ८ श्रीगुप्तो ९ वज्रसूरिराट् १०। युगप्रधानप्रवरा, दशैते दशपूर्विणः ॥ २ ॥ थेरेहिंतो णं अज्जवइरेहिंतो गोयमसगुत्तेहिंतो इत्थ णं अज्जवइरी साहा निग्गया। थेरस्स णं अज्जवइरस्स गोयमसगुत्तस्स इमे तिन्नि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था, तंजहा–थेरे अज्जवइरसेणे थेरे अज्जपउमे थेरे अज्जरहे। थेरेहिंतो णं अज्जवइरसेणेहिंतो इत्थ णं

श्रीआर्यसमितसूरिवृत्तम् १५

२०

॥१६९॥

२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** आर्य-समितसूरि-वृतांतं वर्णयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [७] गाथा ||१+१+.....१||

दीप अनुक्रम [२२३-२५८]

अज्जनाइली साहा निग्गया, थेरेहिंतो णं अज्जपउमेहिंतो इत्थ णं अज्जपउमा साहा निग्गया, थेरेहिंतो णं अज्जरहेहिंतो इत्थ णं अज्जजयंती साहा निग्गया। थेरस्स णं अज्जरहस्स वच्छसगुत्तस्स अज्जपूसगिरी थेरे अंतेवासी कोसियगुत्ते, थेरस्स णं अज्जपूसगिरिस्स कोसियगुत्तस्स अज्जफग्गुमित्ते थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते, थेरस्स णं अज्जफग्गुमित्तस्स गोयमसगुत्तस्स अज्जधणगिरी थेरे अंतेवासी वासिट्ठसगुत्ते, थेरस्स णं अज्जधणगिरिस्स वासिट्ठसगुत्तस्स अज्जसिवभूई थेरे अंतेवासी कुच्छसगुत्ते, थेरस्स णं अज्जसिवभूइस्स कुच्छसगुत्तस्स अज्जभद्दे थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते, थेरस्स णं अज्जभद्दस्स कासवगुत्तस्स अज्जनक्खत्ते थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते, थेरस्स णं अज्जनक्खत्तस्स कासवगुत्तस्स अज्जरक्खे थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते। 'थेरे अज्जरक्खे'त्ति अहो बत किरणावलीकारस्य बहुश्रुतप्रसिद्धिभाजोऽपि अनाभोगविलसितं, यतो ये श्रीतोसलिपुत्राचार्यशिष्याः श्रीवज्रस्वामिपार्श्वेऽधीतसाधिकनवपूर्वा नाम्ना च श्रीआर्यरक्षितास्ते भिन्नाः, एते च श्रीवज्रस्वामिभ्यः शिष्यप्रशिष्यादिगणनया नवमस्थानभाविनो नाम्ना चार्यरक्षाः, इत्येवमनयोः आर्यरक्षितार्यरक्षयोः स्फुटं भेदं विस्मृत्य आर्यरक्षस्थाने आर्यरक्षितव्यतिकरं लिखितवान् ॥

थेरस्स णं अज्जरक्खस्स कासवगुत्तस्स अज्जनागे थेरे अंतेवासी गोअमसगुत्ते, थेरस्स णं अज्जनागस्स गोअमसगुत्तस्स अज्जजेहिल्ले थेरे अंतेवासी वासिट्ठसगुत्ते, थेरस्स णं अज्जजेहिल्लस्स वासिट्ठसगुत्तस्स अज्जविण्हू थेरे अंतेवासी माढरसगुत्ते, थेरस्स णं अज्जविण्हुस्स माढरसगुत्तस्स अज्जकालए थेरे अंतेवासी

श्रीआर्यप-ग्रादिस्थवि-रावली

५ १० १५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [७] गाथा ||१+१+.....१||

दीप अनुक्रम [२२३-२५८]

कल्प.सुबो-ध्या० ७

||१७०||

गोयमसगुत्ते, थेरस्स णं अज्जकालयस्स गोयमसगुत्तस्स इमे दो थेरा अंतेवासी गोयमसगुत्ता–थेरे अज्जसंपलिए थेरे अज्जभद्दे, एएसि णं दुण्हंपि थेराणं गोयमसगुत्ताणं अज्जवुड्ढे थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते, थेरस्स णं अज्जवुड्ढस्स गोयमसगुत्तस्स अज्जसंघपालिए थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते, थेरस्स णं अज्जसंघपालिअस्स गोयमसगुत्तस्स अज्जहत्थी थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते, थेरस्स णं अज्जहत्थिस्स कासवगुत्तस्स अज्जधम्मे थेरे अंतेवासी सुव्वयगुत्ते, थेरस्स णं अज्जधम्मस्स सुव्वयगुत्तस्स अज्जसीहे थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते, थेरस्स णं अज्जसीहस्स कासवगुत्तस्स अज्जधम्मे थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते, थेरस्स णं अज्जधम्मस्स कासवगुत्तस्स अज्जसंडिल्ले थेरे अंतेवासी–'वंदामि फग्गुमित्तं' मित्यादिगाथाचतुर्दशकं, तत्र गद्योक्तोऽर्थः पुनः पद्यैः सङ्गृहीत इति न पुनरुक्तशङ्का ॥ वंदामि फग्गुमित्तं,गोयमं,धणगिरिं च वासिट्ठं। कुच्छं सिवभूइंपि य, कोसिय दुज्जंत कण्हे अ ॥ १ ॥ ते वंदिऊण सिरसा,भद्दं वंदामि कासवसगुत्तं। नक्खं कासवगुत्तं,रक्खंपि य कासवं वंदे ॥ २ ॥ वंदामि अज्जनागं, गोयमं,जेहिलं च वासिट्ठं। विण्हुं माढरगुत्तं, कालगमवि गोयमं, वंदे ॥ ३ ॥ गोयमगुत्तकुमारं,संपलियं,तहय भद्दयं,वंदे। थेरं च अज्जवुड्ढं,गोयमगुत्तं नमंसामि ॥ ४ ॥ तं वंदिऊण सिरसा. थिरसत्तचरित्तनाणसंपन्नं। थेरं च संघवालिय,गोयमगुत्तं पणिवयामि ॥ ५ ॥ वंदामि अज्जहत्थिं,कासवं, खंतिसागरं धीरं। गिम्हाण पढममासे,कालगयं चेव सुद्धस्स ॥ ६ ॥ 'गिम्हाणं'ति–ग्रीष्मस्य,प्रथममासे–चैत्रे, 'कालगयं'त्तिदिवं गतं, 'सुद्धस्स'त्ति-शुक्लपक्षे। वंदामि अज्जधम्मं च,सुव्वयं,सीललद्धिसंपण्णं। जस्सनिक्खमणे देवो, छत्तं

आर्यकालकादिस्थविराणामावली

२०

२५

||१७०||

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [७...] गाथा ||१-१४||

दीप अनुक्रम [२५९-२६२]

वरमुत्तमं वहइ ॥ ७ ॥ 'वरमुत्तमं'ति वरा–श्रेष्ठा मा–लक्ष्मीस्तया उत्तमं छत्रं वहति–यस्य शिरसि धारयति देवः पूर्वसङ्गतिकः कश्चित् । हत्थं कासवगुत्तं, धम्मं सिवसाहगं पणिवयामि । सीहं कासवगुत्तं, धम्मंपि य कासवं वंदे ॥ ८ ॥ तं वंदिऊण सिरसा, थिरसत्तचरित्तनाणसंपन्नं । थेरं च अज्जजंबुं, गोयमगुत्तं, नमंसामि ॥ ९ ॥ मिउमद्दवसंपन्नं, उवउत्तं नाणदंसणचरित्ते । थेरं च नंदियंपि य, कासवगुत्तं पणिवयामि ॥ १० ॥ 'मिउमद्दवसंपन्नं'ति मृदुना–मधुरेण मार्दवेन–मायात्यागेन सम्पन्नम् । तत्तो य थिरचरित्तं, उत्तमसम्मत्तसत्तसंजुत्तं । देसिगणिखमासमणं, माढरगुत्तं नमंसामि ॥ ११ ॥ ततो अणुओगधरं, धीरं महसागरं महासत्तं । थिरगुत्तखमासमणं, वच्छसगुत्तं पणिवयामि ॥ १२ ॥ तत्तो य नाणदंसणचरित्ततवसुट्ठियं गुणमहंतं । थेरं कुमारधम्मं, वंदामि गणिं गुणोवेयं ॥ १३ ॥ सुत्तत्थरयणभरिए, खमदममद्दवगुणेहिं संपन्ने । देविड्ढिखमासमणे, कासवगुत्ते पणिवयामि ॥ १४ ॥ इति स्थविरावलीसूत्रं सम्पूर्णम् ।

फल्गुमित्रादीनां नमस्काराः

५

९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [७...] गाथा ||१-१४||

दीप अनुक्रम [२५९-२६२]

इति जगद्गुरुभट्टारकश्रीहीरविजयसूरिशिष्यरत्नमहोपाध्यायश्रीकीर्तिविजयगणिशिष्योपाध्याय-
श्रीविनयविजयगणिविरचितश्रीकल्पसूत्रसुबोधिनीवृत्तौ अष्टमः क्षणः समाप्तः ।
समाप्तश्चायं स्थविरावलीनामा द्वितीयोऽधिकारः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टमं व्याख्यानं समाप्तं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२६४]

॥ अथ नवमं व्याख्यानं प्रारभ्यते ॥

॥ अथ सामाचारीलक्षणं तृतीयं वाच्यं वक्तुं प्रथमं पर्युषणा कदा विधेयेत्याह–(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते) आषाढचातुर्मासिकदिनादारभ्य वर्षाकालस्य विंशतिदिनयुक्ते मासे व्यतिक्रान्ते (वासावासं पज्जोसवेइ) पर्युषणामकरोत् ॥(१)॥ (से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ) तत् केन अर्थेन-कारणेन हे पूज्य ! एवं उच्यते–(समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते) वर्षाकालस्य विंशतिदिनयुक्ते मासे व्यतिक्रान्ते सति (वासावासं पज्जोसवेइ) पर्युषणामकरोत्, इति शिष्येण प्रश्ने कृते गुरुः उत्तरं दातुं सूत्रमाह–(जओ णं पाएणं अगारीणं अगाराइं) यतः कारणात् प्रायेण अगारिणां–गृहस्थानां अगाराणि-गृहाणि (कडिआइं) कटयुक्तानि (उक्कंबियाइं) धवलितानि (छन्नाइं) तृणादिभिराच्छादितानि (लित्ताइं) गोमयादिना लिप्तानि (गुत्ताइं) वृत्तिकरणादिना गुप्तानि (घट्ठाइं) विषमभूमिभङ्गाद् घृष्टानि (मट्ठाइं) पाषाणखण्डेन घृष्ट्वा सुकुमालीकृतानि (संपधूमियाइं) सौगन्ध्यार्थं धूपैर्वासितानि (खाओदगाइं) कृतप्रणालीरूपजलमार्गाणि (खायनिद्धमणाइं) सञ्जितखालानि, एवंविधानि (अप्प-

१ अवस्थानपर्युषणापेक्षयैवैतत् सूत्रं, ततो जिनस्य सांवत्सरिकप्रतिक्रमणस्याभावेऽपि न क्षतिः, अत एवाग्रे 'अगारीणं अगाराइं' इत्यादिनाऽवस्थानोपयोग्येवोत्तरं ।

श्रीवीरस्य पर्युषणाकालस्तद्धेतुश्च सू. १–२

५

१०

१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवमं व्याख्यानं आरभ्यते

*** अथ सामाचारी-वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [२] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२६५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० ७

॥१७२॥

णो अट्ठाए) आत्मार्थं–आत्मनिमित्तं (कडाइं) गृहस्थैः कृतानि–परिकर्मितानि (परिभुत्ताइं) परिभुक्तानि-जनैः व्यापृतानि (परिणामियाइं भवंति) परिणामितानि–अचित्तीकृतानि, ईदृशानि यतो गृहाणि भवन्ति (से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ) तेनार्थेन–तेन कारणेन हे शिष्य ! एवं उच्यते–(समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते) वर्षाकालस्य विंशतिदिनयुक्ते मासे व्यतिक्रान्ते (वासावासं पज्जोसवेइ) पर्युषणामकरोत्, यतोऽमी प्रागुक्ता अधिकरणदोषा मुनिमाश्रित्य न स्युः॥(२)॥जहा णं समणे भगवं महावीरे) यथा श्रमणो भगवान् महावीरः (वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते) वर्षाकालस्य विंशतिदिनयुते मासे व्यतिक्रान्ते (वासावासं पज्जोसवेइ) पर्युषणामकरोत् (तहा णं गणहरावि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते) तथा गणधरा अपि वर्षाकालस्य विंशतिदिनयुक्ते मासे व्यतिक्रान्ते (वासावासं पज्जोसवेंति) पर्युषणां चक्रुः ॥ (३) ॥

(जहा णं गणहरा वासाणं जाव पज्जोसविंति) यथा गणधराः वर्षाकालस्य यावत् पर्युषणां चक्रुः (तहा णं गणहरसीसावि वासाणं जाव पज्जोसविंति) तथा गणधरशिष्याः अपि वर्षाकालस्य यावत् पर्युषणां चक्रुः ॥(४)॥ (जहा णं गणहरसीसा वासाणं जाव पज्जोसविंति) यथा गणधरशिष्याः वर्षाकालस्य यावत् पर्युषणां चक्रुः (तहा णं थेरावि वासाणं जाव पज्जोसविंति) तथा स्थविरा अपि वर्षाकालस्य यावत् पर्युषणां चक्रुः ॥(५)॥ (जहा णं थेरा वासाणं जाव पज्जोसविंति) यथा स्थविराः वर्षाकालस्य यावत् पर्युषणां चक्रुः (तहा

श्रीवीरवत् गणधर-तच्छिष्य-स्थविराणां पर्यु. सू. ३–४–५

२०

॥१७२॥

२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२६९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति) तथा ये इमे अद्यकालीना आर्यतया वा व्रतस्थविरत्वेन वर्त्तमानाः श्रमणा निर्ग्रन्थाः विहरन्ति (एएऽविअ णं वासाणं जाव पज्जोसविंति) ते अपि च वर्षाकालस्य यावत् पर्युषणां कुर्वन्ति ॥(६)॥ (जहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा) यथा ये इमे अद्यतनकाले श्रमणा निर्ग्रन्थाः (वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते) वर्षाकालस्य विंशतिदिनयुते मासे व्यतिक्रान्ते (वासावासं पज्जोसवेंति) पर्युषणां कुर्वन्ति (तहा णं अम्हंपि आयरिआ उवज्झाया वासाणं जाव पज्जोसविंति) तथा अस्माकमपि आचार्या उपाध्यायाश्च वर्षाकालस्य यावत् पर्युषणां कुर्वन्ति ॥(७)॥ (जहा णं अम्हंपि आयरिया उवज्झाया वासाणं जाव पज्जोसविंति) यथा अस्माकं आचार्या उपाध्यायाश्च यावत् पर्युषणां कुर्वन्ति (तहा णं अम्हेवि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते) तथा वयमपि वर्षाकालस्य विंशत्या दिनैर्युते मासे व्यतिक्रान्ते (वासावासं पज्जोसवेमो) पर्युषणां कुर्मः, (अंतरावि य से कप्पइ) अर्वागपि तत् पर्युषणाकरणं कल्पते (नो से कप्पइ तं रयणिं उवाइणावित्तए) परं न कल्पते तां रात्रिं-भाद्रशुक्लपञ्चमीरात्रिं अतिक्रमयितुम् ॥(८)॥

तत्र परि-सामस्त्येन उषणं-वसनं पर्युषणा, सा द्वेधा-गृहस्थैः ज्ञाता अज्ञाता च, तत्र गृहस्थैः अज्ञाता यस्यां वर्षायोग्यपीठफलकादौ प्राप्ते कल्पोक्तद्रव्यक्षेत्रकालभावस्थापना क्रियते, सा चाषाढपूर्णिमायां, योग्यक्षेत्रा-

१ उत्कृष्टत आषाढपूर्णिमायामेव पर्युषणाकरणात्, तथा च वसनपर्युषणाया वार्षिकपर्युषणा न भिन्नदिने इति वदन्निरस्तो वादी, एवमभिवर्धिते वर्षे विंशत्या दिनैर्वसनलक्षणैव पर्युषणा ज्ञेया, परेषामनभिवर्धितेऽभिवर्धितत्वापत्तिर्दुर्वारा, यतो मासस्य यत्र वृद्धिस्तत्र विंशत्याऽयत्र वर्षे त्रयोदशमास्या तेषां सांवत्सरिकमिति ।

अद्यतनसाधुसाध्वाचार्यखपर्युषणा सू.६-७-८

५

१०

१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [२७१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० ७ ॥१७३॥

भावे तु पञ्चपञ्चदिनवृद्ध्या दशपर्वतिथिक्रमेण यावत् श्रावणकृष्णपञ्चदश्यां एव, गृहिज्ञाता तु द्वेधा–सांवत्सरिककृत्यविशिष्टा गृहिज्ञातमात्रा च, तत्र सांवत्सरिककृत्यानि–संवत्सरप्रतिक्रान्ति १ र्लुञ्चनं२चाष्टमं तपः३ । सर्वार्हद्भक्तिपूजा ४ च, सङ्घस्य क्षामणं मिथः५॥१॥ एतत्कृत्यविशिष्टा भाद्रसितपञ्चम्यां एव, कालिकाचार्यादेशाच्चतुर्थ्यामपि, केवलं गृहिज्ञाता तु सा यत् अभिवर्द्धिते वर्षे चतुर्मासकदिनादारभ्य विंशत्या दिनैर्वयमत्र स्थिताः स्मेति पृच्छतां गृहस्थानां पुरो वन्दन्ति, तदपि जैनटिप्पनकानुसारेण, यतस्तत्र युगमध्ये पौषो युगान्ते चाषाढो वर्द्धते, नान्ये मासाः, तट्टिपनकं तु अधुना सम्यग् न ज्ञायते, ततः पञ्चाशतैव दिनैः पर्युषणा युक्तेति वृद्धाः । अत्र कश्चिदाह–ननु श्रावणवृद्धौ द्वितीयश्रावणसितचतुर्थ्यामेव पर्युषणा युक्ता, न तु भाद्रसितचातुर्थ्यां, दिनानां अशीत्यापत्तेः 'वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते' इति वचनबाधा स्यादिति चेत्, मैवं, अहो देवानुप्रिय ! एवं आश्विनवृद्धौ चतुर्मासककृत्यं द्वितीयाश्विनसितचतुर्दश्यां कर्त्तव्यं स्यात्, कार्त्तिकसितचतुर्दश्यां करणे तु दिनानां शतापत्त्या 'समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते सत्तरिराइंदिएहिं सेसेहिं' इति समवायाङ्गवचनबाधा स्यात्, न च वाच्यं-चतुर्मासिकानि हि आषाढादिमासप्रतिबद्धानि, तस्मात् कार्त्तिकचतुर्मासकं कार्त्तिकसितचतुर्दश्यामेव युक्तं, दिनगणनायां त्वधिको मासः कालचूलेत्यविवक्षणादिनानां ससतिरेवेति कुतः समवायाङ्गवचनबाधा इति ?, यतो यथा चतुर्मासकानि आषाढादिमासप्रतिब-

१ श्रावणादिवृद्धावेतत् पौषादिवृद्धिप्रसंगागतं वासापेक्षं वाक्यं प्रदर्शयन् प्रकरणगन्धस्याप्यङ्ग इत्यपकर्णनीयः, अधिकानामविवक्षयाऽप्येतत् ।

पर्युषणा भाद्रपदप्रतिबद्धा १५ २० ॥१७३॥ २५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ भाद्रपद-प्रतिबद्धा संवत्सरेः वर्णनं

प्रत सूत्रांक [८] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२७१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

द्धानि तथा पर्युषणाऽपि भाद्रपदमासप्रतिबद्धा तत्रैव कर्त्तव्या, दिनगणनायां तु अधिकमासः कालचूलेत्यविवक्षणाद् दिनानां पञ्चाशदेव कुतोऽशीतिवार्त्ताऽपि, न च भाद्रपदप्रतिबद्धत्वं पर्युषणाया अयुक्तं, बहुष्वागमेषु तथा प्रतिपादनात्, तथाहि–'अन्नया पञ्जोसवणादिवसे आगए अज्जकालगेण सालिवाहणो भणिओ–भद्दवयजुण्हपंचमीए पज्जोसवणा' इत्यादि पर्युषणाकल्पचूर्णौ, तथा–'तत्थं य सालिवाहणो राया, सो अ सावगो, सो अ कालगज्जं तं इंतं सोऊण निग्गओ अभिमुहो समणसंघो अ, महाविभूइए पविट्ठो कालगज्जो, पविट्ठेहि अ भणिअं–भद्दवयसुद्धपंचमीए पज्जोसविज्जइ, समणसंघेण पडिवण्णं, ताहे रण्णा भणिअं–तद्दिवसं मम लोगाणुवत्तीए इंदो अणुजाणेअव्वो होहित्ति साहुचेइए ण पज्जुवासिस्सं, तो छट्ठीए पज्जोसवणा किज्जउ, आयरिएहिं भणिअं-न वट्टति अइक्कमिउं, ताहे रण्णा भणिअं-ता अणागयचउत्थीए पज्जोसविंति, आयरिएहिं भणिअं-एवं भवउ, ताहे चउत्थीए पज्जोसवितं, एवं जुगप्पहाणेहिं कारणे चउत्थी पवत्तिआ, सा चेवाणुमया सव्व-

पर्युषणा भाद्रपदप्रतिबद्धा ५ ९

१ अन्यदा पर्युषणादिवसे आगते आर्यकालकेन शालिवाहनो भणितो-भाद्रपदशुक्लपंचम्यां पर्युषणा । २ तत्र च शालिवाहनो राजा, स च श्रावकः, स च कालकार्यं. तमायान्तं श्रुत्वा निर्गतोऽभिमुखं श्रमणसंघश्च, महाविभूत्या प्रविष्टः कालकार्यः, प्रविष्टैश्च भणितं-भाद्रपदशुद्धपञ्चम्यां पर्युष्यते, श्रमणसंघेन प्रतिपन्नं, तदा राज्ञा भणितं-तद्दिवसे मम लोकानुवृत्त्या इन्द्रः अनुज्ञापयितव्यो भविष्यतीति साधुचैत्यानि न पर्युपासिष्ये, तस्मात् षष्ठ्यां पर्युषणा क्रियतां, आचार्यैर्भणितं-न वर्त्तते अतिक्रान्तुं, तदा राज्ञा भणितं-तस्माद् अनागतचतुर्थ्यां पर्युष्यतां, आचार्यैर्भणितं–एवं भवतु, तदा चतुर्थ्यां पर्युषितं, एवं युगप्रधानैः कारणे चतुर्थी प्रवर्त्तिता, सैव च अनुमता सर्वसाधूनाम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२७१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० ७

॥१७४॥

साहूण' मित्यादि श्रीनिशीथचूर्णिदशमोद्देशके, एवं यत्र कुत्रापि पर्युषणानिरूपणं तत्र भाद्रपदविशेषितमेव, न तु काप्यागमे 'भद्दवयसुद्धपंचमीए पज्जोसविज्जइ'त्ति पाठवत् 'अभिवड्ढिअवरिसे सावणसुद्धपंचमीए पज्जोसविज्जइ'त्ति पाठ उपलभ्यते, ततः कार्त्तिकमासप्रतिबद्धचतुर्मासककृत्यकरणे यथा नाधिकमासः प्रमाणं तथा भाद्रमासप्रतिबद्धपर्युषणाकरणेऽपि नाधिकमासः प्रमाणमिति त्यज कदाग्रहं, किंच अधिकमासः किं काकेन भक्षितः ? किं वा तस्मिन् मासे पापं न लगति ? उत बुभुक्षा न लगति ? इत्याद्युपहसन् मा स्वकीयं ग्रहिलत्वं प्रकटय, यतस्त्वमपि अधिकमासे सति त्रयोदशसु मासेषु जातेष्वपि सांवत्सरिकक्षामणे 'बारसण्हं मासाणं' इत्यादिकं वदन्नधिकमासं नाङ्गीकरोषि, एवं चतुर्मासिकक्षामणेऽधिकमाससद्भावेऽपि 'चउण्हं मासाण'-मित्यादि, पाक्षिकक्षामणेऽधिकतिथिसम्भवेऽपि 'पन्नरसण्हं दिवसाण' मिति च ब्रूषे, तथा नवकल्पविहारादि-लोकोत्तरकार्येषु 'आसाढे मासे दुपया' इत्यादि सूर्यचारे लोकेऽपि दीपालिकाक्षततृतीयादिपर्वसु धनकला-न्तरादिषु च अधिकमासो न गण्यते तदपि त्वं जानासि, अन्यच्च-सर्वाणि शुभकार्याणि अभिवर्द्धिते मासे नपुंसक इतिकृत्वा ज्योतिःशास्त्रे निषिद्धानि, अपरं च आस्तामन्योऽभिवर्द्धितो भाद्रपदवृद्धौ प्रथमो भाद्रपदोऽपि अप्रमाणमेव, यथा चतुर्दशीवृद्धौ प्रथमां चतुर्दशीमवगणय्य द्वितीयायां चतुर्दश्यां पाक्षिककृत्यं क्रियते

१ तेरसण्हं मासाणं इत्यादि पंचण्हं मासाणं इत्यादि च वदन् कश्चित् शास्त्राणां स्वाचारस्यापि च विराधकः, पञ्चमासिकसाधिकमास-सांवत्सरिकप्रतिक्रमणकथनापत्तेः, पक्षे च दिनानां सदैवानियमः, यवनवदर्वागेव प्रत्यभिवर्धितमागमनं कार्यं मासे मासे ।

द्वितीयभा-द्रपदे पर्यु-षणा १०

१५

२०

॥१७४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२७१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

तथाऽत्रापि, एवं तर्हि अप्रमाणे मासे देवपूजामुनिदानावश्यकादि कार्यमपि न कार्यं इत्यपि वक्तुं माऽधरौष्ठं चपलय, यतो यानि हि दिनप्रतिबद्धानि देवपूजामुनिदानादिकृत्यानि तानि तु प्रतिदिनं कर्त्तव्यान्येव, यानि च सन्ध्यादिसमयप्रतिबद्धानि आवश्यकादीनि तान्यपि यं कञ्चन सन्ध्यादिसमयं प्राप्य कर्त्तव्यान्येव, यानि तु भाद्रपदादिमासप्रतिबद्धानि तानि तु तद्द्वयसम्भवे कस्मिन् क्रियते इति विचारे प्रथमं अवगणय्य द्वितीये क्रियते इति सम्यग् विचारय ॥ तथा च पश्य अचेतना वनस्पतयोऽपि अधिकमासं नाङ्गीकुर्वते, येनाधिकमासे प्रथमं परित्यज्य द्वितीय एव मासे पुष्प्यन्ति, यदुक्तं आवश्यकनिर्युक्तौ–"[3]जइ फुल्ला कणिआरडा चूअग! अहिमासयंमि घुट्ठंमि। तुह न खमं फुल्लेउं जइ पच्चंता करिंति डमराइं ॥ १ ॥" तथा च कश्चित् 'अभिवड्ढिअंमि वीसा इअरेसु सवीसई मासे' इति वचनबलेन मासाभिवृद्धौ विंशत्या दिनैरेव लोचादिकृत्यविशिष्टां पर्युषणां करोति, तदप्ययुक्तं, येन 'अभिवड्ढिअंमि वीसा' इति वचनं गृहिज्ञातमात्रापेक्षया, अन्यथा 'आसाढपुण्णिमासीए पञ्चोसविंति एस उस्सग्गो, सेसकालं पञ्चोसविंताणं अववाउ'त्ति श्रीनिशीथचूर्णिदशमोद्देशकवचनाद्दाषाढपूर्णिमायामेव लोचादिकृत्यविशिष्टा पर्युषणा कर्त्तव्या स्यात्, इत्यलं प्रसङ्गेन ॥ तत्र कल्पोक्ता द्रव्य १ क्षेत्र २-काल ३ भाव ४ स्थापना चैवं–द्रव्यस्थापना तृणडगलछारमल्लकादीनां परिभोगः सचित्तादीनां च परिहारः, तत्र सचित्तद्रव्यं शैक्षो न प्रव्राज्यते अतिश्रद्धं राजानं राजामात्यं च विना, अचित्तद्रव्यं च वस्त्रादि न गृह्यते,

१ किं तिथिवृद्धौ नोत्तरतिथौ पापं?, विचारय। २ यदि पुष्पिताः कणवीराः चूत! अधिकमासे घुष्टे। तव न क्षमं पुष्पितुं यदि प्रत्यंताः कुर्वन्ति डमरादि ॥

क.सु. १०

मासवृद्धि चर्चा कल्प-व्यवस्था सू. ८ ५ १० १३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [२७१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-व्या० ९ ॥१७५॥

मिश्रद्रव्यं सोपधिकः शिष्यः, क्षेत्रस्थापना सक्रोशं योजनं, ग्लानवैद्यौषधादिकारणे च चत्वारि पञ्च वा योजनानि, कालस्थापना चत्वारो मासाः, भावस्थापना क्रोधादीनां विवेकः ईर्यादिसमितिषु चोपयोग इति४(८)

(वासावासं पज्जोसवियाणं) वर्षावासं चतुर्मासकं पर्युषितानां–स्थितानां (कप्पइ) कल्पते (निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा) निर्ग्रन्थानां–साधूनां वा निर्ग्रन्थीनां–साध्वीनां वा (सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं उग्गहं ओगिण्हित्ताणं) सर्वतः–चतसृषु दिक्षु समन्तात्–विदिक्षु च सक्रोशं योजनं अवग्रहं अवगृह्य (चिट्ठित्तए अहालंदमवि उग्गहे) अथेत्यव्ययं, लन्दशब्देन काल उच्यते, तत्र यावता कालेनार्द्रः करः शुष्यति तावान् कालो जघन्यं लन्दं, पञ्च अहोरात्रा उत्कृष्टं लन्दं, तन्मध्ये मध्यमं लन्दं, लन्दमपि कालं यावत्–स्तोककालमपि अवग्रहे स्थातुं कल्पते, न तु अवग्रहाद् बहिः, अपिशब्दात् अलन्दमपि बहुकालमपि यावत् षण्मासानेकत्रावग्रहे स्थातुं कल्पते, न तु अवग्रहाद् बहिः, गजेन्द्रपदादिगिरेर्मेखलाग्रामस्थितानां षट्सु दिक्षु उपाश्रयात् सार्द्धक्रोशद्वयगमनागमने पञ्चक्रोशावग्रहः, यत्तु विदिक्षु इत्युक्तं तद्व्यावहारिकविदिग्पेक्षया, नैश्चयिकविदिशां एकप्रदेशात्मकत्वेन तत्र गमनासम्भवात्, अटवीजलादिना व्याघातेषु त्रिदिक्को द्विदिक्को एकदिक्को वाऽवग्रहो भाव्यः ॥(९)॥ (वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा) वर्षावासं–चतुर्मासकं पर्युषितानां स्थितानां कल्पते निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां वा (सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनियत्तए) सर्वतः–चतसृषु दिक्षु समन्तात्-विदिक्षु च सक्रोशं योजनं भिक्षाचर्यायां गन्तुं प्रतिनिव-

अवग्रहः भिक्षाद्यर्थं गमनविचारश्च सू. ९–१३ २० २५ ॥१७५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ भिक्षादि अर्थे गमन-विचारः दर्शयते

प्रत सूत्रांक [११] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२७३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

र्तितुम् ॥(१०)॥ (जत्थ नई निच्चोयगा निच्चसंदणा) यत्र नदी नित्योदका–नित्यं प्रचुरजला नित्यस्यन्दना–नित्यस्रवणशीला सततवाहिनीत्यर्थः (नो से कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनियत्तए) नैव तत्र कल्पते सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च सक्रोशं योजनं भिक्षाचर्यायां गन्तुं प्रतिनिवर्त्तितुं ॥(११)॥ (एरावई कुणालाए) यथा ऐरावती नाम्नी नदी कुणालायां पुर्यां सदा द्विक्रोशवाहिनी तादृशीं नदीं लङ्घयितुं कल्प्या, स्तोकजलत्वात्, यतः (जत्थ चक्किया सिया एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा) यत्र एवं कर्तुं शक्नुयात्, किं तदित्याह–सिया–यदि एकं चरणं जले कृत्वा–जलान्तः प्रक्षिप्य एकं चरणं स्थले कृत्वा-जलादुपरि आकाशे कृत्वा (एवं चक्किया एवन्नं कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं गंतुं पडिनियत्तए) अनया रीत्या गन्तुं शक्नुयात् एवं सति कल्पते सर्वतः समन्तात् सक्रोशं योजनं गन्तुं प्रतिनिवर्त्तितुम्॥(१२)॥ (एवं चे नो चक्किया एवं से नो कप्पइ सव्वओ समंता गंतुं पडिनियत्तए) पूर्वोक्तरीत्या नैव यत्र गन्तुं शक्नुयात् एवं तस्य साधोः नो कल्पते सर्वतः समन्तात् गन्तुं प्रतिनिवर्त्तितुं, यत्र च एवं कर्तुं न शक्नुयात् जलं विलोड्य गमनं स्यात् तत्र गन्तुं न कल्पते इतिभावः, जङ्घार्द्धं यावदुदकं दकसङ्घट्टो नाभिं यावल्लेपो नाभेरुपरि लेपोपरि, तत्र शेषकाले मासे मासे त्रिभिर्दकसङ्घट्टे सति क्षेत्रं नोपहन्यते, तत्र गन्तुं कल्पते इति भावः, वर्षाकाले च सप्तभिः क्षेत्रं नोपहन्यते, चतुर्थेऽष्टमे च दकसङ्घट्टे सति क्षेत्रं उपहन्यते एव, लेपस्तु एकोऽपि क्षेत्रं उपहन्ति, नाभिं यावज्जलसद्भावे तु गन्तुं न कल्पते एव, किं पुनर्लेपोपरि ?–नाभेरुपरि जलसद्भावे ॥ (१३) ॥

अवग्रहः भिक्षाद्यर्थं गमनवि-चारश्च सू. ९–१३ १ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [२७६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

(वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइयाणं) चतुर्मासकं स्थितानां केषाञ्चित् साधूनां (एवं वुत्तपुवं भवइ, दावे भंते! एवं से कप्पइ दावित्तए, नो से कप्पइ पडिगाहित्तए) गुरुभिः एवं प्रागुक्तं भवति–ग्लानायामुकं वस्तु दापयेः भदन्त!–हे शिष्य, तदा तस्य साधोः कल्पते दापयितुं, परं नो तस्य कल्पते स्वयं प्रतिग्रहीतुम् ॥(१४)॥ (वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइयाणं एवं वुत्तपुवं भवइ) चतुर्मासकं स्थितानां केषाञ्चित् साधूनां गुरुभिः एवं प्रागुक्तं भवति (पडिगाहे भंते!, एवं से कप्पइ पडिगाहित्तए, नो से कप्पइ दावित्तए) स्वयं प्रतिगृह्णीयाः हे शिष्य!, तदा तस्य कल्पते प्रतिग्रहीतुं, परं नो तस्य कल्पते दापयितुं, यद्येवमुक्तं भवति यत् त्वं स्वयं प्रतिगृह्णीयाः ग्लानाय अन्यो दास्यति तदा स्वयं प्रतिग्रहीतुं कल्पते न तु दातुं इत्यर्थः॥(१५)॥(वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइयाणं एवं वुत्तपुवं भवइ) चतुर्मासकं स्थितानां केषाञ्चित् साधूनां गुरुभिः एवं प्रागुक्तं भवति (दावे भंते! पडिगाहेहि भंते!, एवं से कप्पइ दावित्तएवि पडिगाहित्तएवि) दापयेः हे शिष्य! स्वयं प्रतिगृह्णीयाः हे शिष्य!, तदा तस्य कल्पते दापयितुमपि प्रतिग्रहीतुमपि, यदि च दद्याः प्रतिगृह्णीयाश्चेत्युक्तं भवति तदा दातुं प्रतिग्रहीतुं चोभयमपि कल्पते ॥ (१६) ॥ (वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा) चतुर्मासकं स्थितानां नो कल्पते साधूनां साध्वीनां च, कीदृशानां?–(हट्ठाणं) हृष्टानां–तारुण्येन समर्थानां, तरुणा अपि केचिद्रोगिणो निर्बलशरीराश्च भवन्ति, अत उक्तं-(आरुग्गाणं बलियसरीराणं) आरोग्यानां बलवच्छरीराणां, ईदृशानां साधूनां (इमाओ नव रसविगईओ अभिक्खणं अभिक्खणं आहा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१७] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२७७]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

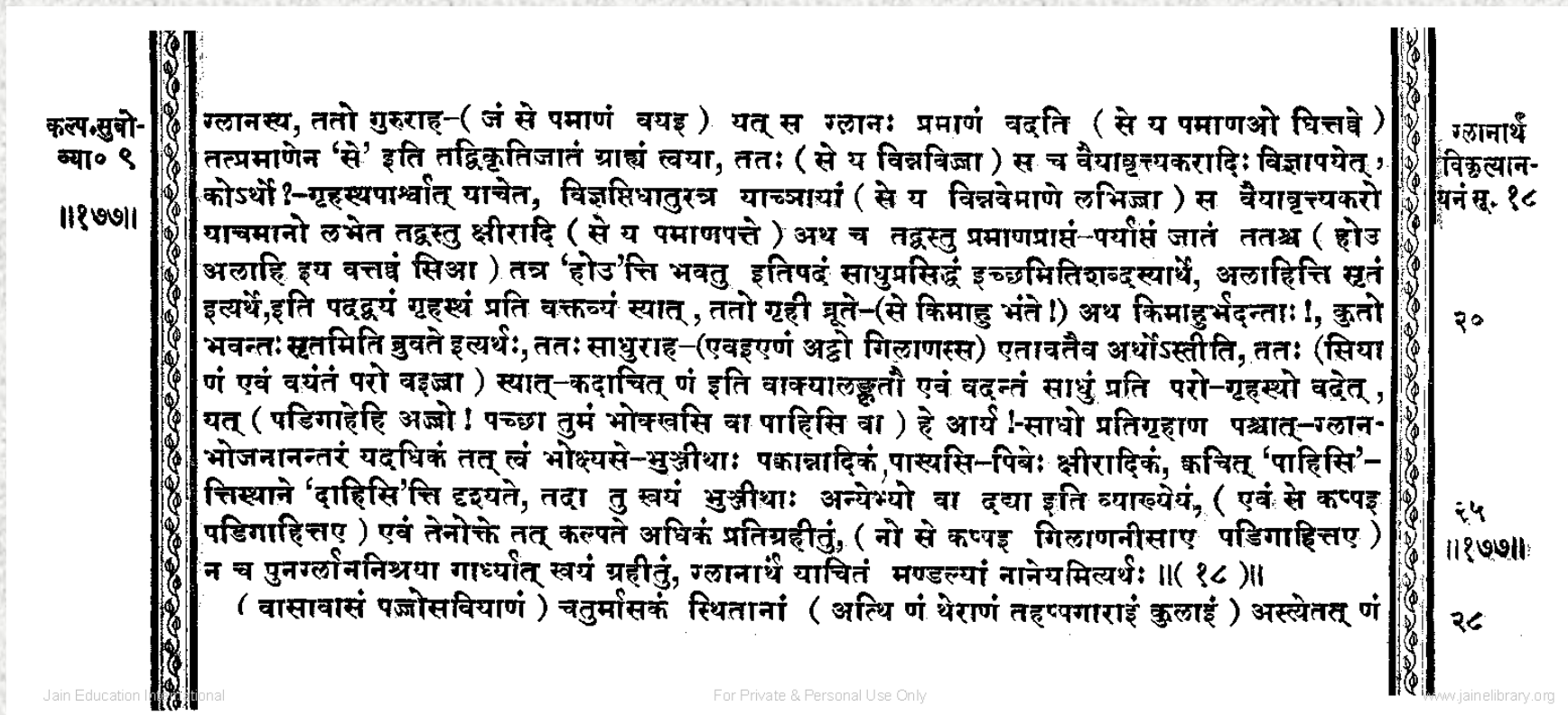
रित्तए) इमाः वक्ष्यमाणाः नव रसप्रधाना विकृतयोऽभीक्ष्णं–वारं वारं आहारयितुं न कल्पते (तंजहा) तद्यथा–(खीरं १ दहिं २ नवणीयं ३ सप्पिं ४ तिल्लं ५ गुडं ६ महुं ७ मज्जं ८ मंसं ९) दुग्धं १ दधि २ म्रक्षणं ३ घृतं ४ तैलं ५ गुडः ६ मधु ७ मद्यं ८ मांसं ९, अभीक्ष्णग्रहणात् कारणे कल्पन्तेऽपि, नवग्रहणात् कदाचित् पक्वान्नं गृह्यतेऽपि, तत्र विकृतयो द्वेधा–साञ्चयिका असाञ्चयिकाश्च, तत्रासाञ्चयिका या बहुकालं रक्षितुमशक्या दुग्धदधिपक्वान्नाख्याः, ग्लानत्वे गुरुबालाद्युपग्रहार्थं श्राद्धाग्रहाद्वा ग्राह्याः, साञ्चयिकास्तु घृततैलगुडाख्यास्तिस्रः, ताश्च प्रतिलम्भयन् गृही वाच्यो–महान् कालोऽस्ति, ततो ग्लानादिनिमित्तं ग्रहीष्यामः, स वदेत्–गृह्णीत, चतुर्मासीं यावत् प्रभूताः सन्ति, ततो ग्राह्या बालादीनां च देया न तरुणानां, यद्यपि मधु १ मद्य २ मांस ३-नवनीत ४ वर्जनं यावज्जीवं अस्त्येव तथापि अत्यन्तापवाददशायां बाह्यपरिभोगाद्यर्थं कदाचिद् ग्रहणेऽपि चतुर्मास्यां सर्वथा निषेधः ॥ (१७) ॥ (वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइआणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ) चतुर्मासकं स्थितानां अस्ति एतद् एकेषां–वैयावृत्त्यकरादीनां एवमुक्तपूर्वं भवति, गुरुं प्रतीति शेषः, वैयावृत्त्यकरैर्गुरवे एवं उक्तं भवतीत्यर्थः (अट्ठो भंते! गिलाणस्स) हे भदन्त–भगवन्! अर्थो वर्त्तते ग्लानस्य विकृत्या इति वैयावृत्त्यकरेण प्रश्ने कृते (से अ वएज्जा) स गुरुः वदेत् (अट्ठो) ग्लानस्य अर्थो वर्त्तते, (से अ पुच्छेअव्वो) ततः स ग्लानः प्रष्टव्यः (केवइएणं अट्ठो) कियता विकृतिजातेन क्षीरादिना तवार्थः?, तेन ग्लानेन स्वप्रमाणे उक्ते (से अ वइज्जा) स वैयावृत्त्यकरो गुरोरग्रे समागत्य ब्रूयात्–(एवइएणं अट्ठो गिलाणस्स) एतावताऽर्थो

हृष्टानांविकृतीनामकल्प्यता सू. १७ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [२७८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-ध्या० ९ ॥१७७॥

ग्लानस्य, ततो गुरुराह–(जं से पमाणं वयइ) यत् स ग्लानः प्रमाणं वदति (से य पमाणओ घित्तव्वे) तत्प्रमाणेन 'से' इति तद्विकृतिजातं ग्राह्यं त्वया, ततः (से य विन्नविज्जा) स च वैयावृत्त्यकरादिः विज्ञापयेत्, कोऽर्थो?–गृहस्थपार्श्वात् याचेत, विज्ञप्तिधातुरत्र याच्ञायां (से य विन्नवेमाणे लभिज्जा) स वैयावृत्त्यकरो याचमानो लभेत तद्वस्तु क्षीरादि (से य पमाणपत्ते) अथ च तद्वस्तु प्रमाणप्राप्तं–पर्याप्तं जातं ततश्च (होउ अलाहि इय वत्तव्वं सिआ) तत्र 'होउ'त्ति भवतु इतिपदं साधुप्रसिद्धं इच्छमितिशब्दस्यार्थे, अलाहित्ति सूतं इत्यर्थे,इति पदद्वयं गृहस्थं प्रति वक्तव्यं स्यात्, ततो गृही ब्रूते–(से किमाहु भंते!) अथ किमाहुर्भदन्ताः!, कुतो भवन्तः सूतमिति ब्रुवते इत्यर्थः, ततः साधुराह–(एवइएणं अट्ठो गिलाणस्स) एतावतैव अर्थोऽस्तीति, ततः (सिया णं एवं वयंतं परो वइज्जा) स्यात्–कदाचित् णं इति वाक्यालङ्कृतौ एवं वदन्तं साधुं प्रति परो–गृहस्थो वदेत्, यत् (पडिगाहेहि अज्जो! पच्छा तुमं भोक्खसि वा पाहिसि वा) हे आर्य!-साधो प्रतिगृहाण पश्चात्–ग्लान-भोजनानन्तरं यदधिकं तत् त्वं भोक्ष्यसे–भुञ्जीथाः पक्वान्नादिकं,पास्यसि–पिबेः क्षीरादिकं, क्वचित् 'पाहिसि'–त्तिस्थाने 'दाहिसि'त्ति दृश्यते, तदा तु स्वयं भुञ्जीथाः अन्येभ्यो वा दद्या इति व्याख्येयं, (एवं से कप्पइ पडिगाहित्तए) एवं तेनोक्ते तत् कल्पते अधिकं प्रतिग्रहीतुं, (नो से कप्पइ गिलाणनीसाए पडिगाहित्तए) न च पुनर्ग्लाननिश्रया गार्ध्यात् स्वयं ग्रहीतुं, ग्लानार्थं याचितं मण्डल्यां नानेयमित्यर्थः ॥(१८)॥

(वासावासं पज्जोसवियाणं) चतुर्मासकं स्थितानां (अत्थि णं थेराणं तहप्पगाराइं कुलाइं) अस्त्येतत् णं

ग्लानार्थं विकृत्यानयनं सू. १८

२०

२५

॥१७७॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१९] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२७९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

इति प्राग्वत् स्थविराणां तथाप्रकाराणि–अजुगुप्सितानि कुलानि–गृहाणि, किंविशिष्टानि?–(कडाइं) तैरन्यैर्वा श्रावकीकृतानि (पत्तिआइं) प्रीतिकराणि (थिज्जाइं) प्रीतौ दाने वा स्थैर्यवन्ति (वेसासियाइं) निश्चितं अत्र लप्स्येऽहमिति विश्वासो येषु तानि वैश्वासिकानि (सम्मयाइं) येषां यतिप्रवेशः सम्मतो भवति तानि सम्मतानि (बहुमयाइं) बहवोऽपि साधवः सम्मता येषां अथवा बहूनां गृहमनुष्याणां साधवः सम्मता येषु तानि बहुमतानि (अणुमयाइं भवंति) अनुमतानि–दानं अनुज्ञातानि अथवा अणुरपि–क्षुल्लकोऽपि मतो येषु सर्वसाधुसाधारणत्वात् न तु मुखं दृष्ट्वा तिलकं कुर्वन्तीति अनुमतानि अणुमताणि वा भवन्ति (तत्थ से नो कप्पइ अदक्खु वइत्तए) तत्र–तेषु गृहेषु 'से' तस्य साधोः याच्यं वस्तु अदृष्ट्वा इति वक्तुं न कल्पते (अत्थि ते आउसो! इमं वा) यथा हे आयुष्मन्! इदं इदं वा वस्तु अस्ति? इति, अदृष्टं वस्तु प्रष्टुं न कल्पते इत्यर्थः (से किमाहु भंते!) तत् कुतो भगवन्! इति शिष्यप्रश्ने गुरुराह–यतस्तथाविधः (सड्ढी गिही गिण्हइ वा तेणियंपि कुज्जा) श्रद्धावान् गृही मूल्येन गृह्णीत, यदि च मूल्येनापि न प्राप्नोति तदा स श्रद्धातिशयेन चौर्यमपि कुर्यात्, कृपणगृहे तु अदृष्ट्वाऽपि याचने न दोषः ॥ (१९) ॥

(वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (निच्चभत्तियस्स भिक्खुस्स) नित्यमेकाशनकारिणः भिक्षोः (कप्पइ एगं गोअरकालं गाहावइकुलं) कल्पते एकस्मिन् गोचरचर्याकाले गाथापतेः–गृहस्थस्य कुलं–गृहं (भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तएवा) भक्तार्थं वा पानार्थं वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं

दृश्यवाचननिषेधः सू. १९

५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ गोचर-चर्या-काल-वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [२०] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [२८०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-व्या० ९ ॥१७८॥

वा कल्पते, न तु द्वितीयवारं, परं (णन्नत्थ) णकारो वाक्यादौ अलङ्कारार्थः, अन्यत्र आचार्यादिवैयावृत्त्यकरेभ्यः, तान् वर्जयित्वेत्यर्थः, ते तु यदि एकवारं भुक्तेन वैयावृत्त्यं कर्तुं न शक्नुवन्ति तदा द्विरपि भुञ्जते, तपसो हि वैयावृत्त्यं गरीय इति, (आयरियवेयावच्चेण वा) आचार्यवैयावृत्त्यकरान् वा (उवज्झायवेयावच्चेण वा) उपाध्यायवैयावृत्त्यकरान् वा (तवस्सिवेयावच्चेण वा) तपस्विवैयावृत्त्यकरान् वा (गिलाणवेयावच्चेण वा) ग्लानवैयावृत्त्यकरान् वा (खुड्डएण वा खुड्डिआए वा अव्वंजणजायएण वा) यावत् व्यञ्जनानि–बस्तिकूर्च-कक्षादिरोमाणि न जातानि तावत् क्षुल्लकक्षुल्लिकयोरपि द्विर्भुञ्जानयोर्न दोषः, यद्वा वैयावृत्त्यमस्यास्तीति वैयावृत्त्यो वैयावृत्त्यकर इत्यर्थः आचार्यश्च वैयावृत्त्यश्च आचार्यवैयावृत्त्यौ, एवं उपाध्यायादिष्वपि, ततश्च आचार्यउपाध्यायतपस्विग्लानक्षुल्लकानां तद्वैयावृत्त्यकराणां च द्विर्भोजनेऽपि न दोष इत्यर्थो जातः ॥ (२०) ॥ (वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (चउत्थभत्तियस्स भिक्खुस्स अयं एवइए विसेसे) एकान्तरोपवासिनः साधोरयमेतावान् विशेषो (जं से पाओ निक्खम्म) यत् स प्रातर्निष्क्रम्य गोचरचर्यार्थं (पुव्वामेव वियडगं भुच्चा) प्रथममेव विकटं–प्रासुकाहारं भुक्त्वा (पिच्चा) तक्रादिकं पीत्वा (पडिग्गहगं संलिहिय संपमज्जिय) पात्रं संलिख्य–निर्लेपीकृत्य, सम्प्रमृज्य–प्रक्षाल्य (से य संथरिज्जा कप्पइ से तद्दिवसं तेणेव भत्तट्ठेणं पज्जोसवित्तए) स यदि संस्तरेत्–निर्वहेत् तर्हि तेनैव भोजनेन तस्मिन् दिने कल्पते पर्युषितुं–स्थातुं (से य नो संथरिज्जा) अथ यदि न संस्तरेत् स्तोकत्वात् (एवं से कप्पइ दुचंपि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए

गोचरचर्या-वेलानियमः सू. २०-२४

२०

२५

॥१७८॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [२८१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा) तदा तस्य साधोः कल्पते द्वितीयवारं गृहस्थगृहे भक्तार्थं वा पानार्थं वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा ॥(२१)॥ (वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (छट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स) नित्यं षष्ठकारिणः भिक्षोः (कप्पंति दो गोअरकाला गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा) कल्पेते द्वौ गोचरकालौ गृहस्थगृहे भक्तार्थं वा पानार्थं वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा ॥(२२)॥ (वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (अट्ठमभत्तियस्स भिक्खुस्स) नित्यं अष्टमकारिणः भिक्षोः (कप्पंति तओ गोअरकाला गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा) कल्पन्ते त्रयो गोचरकालाः गृहस्थगृहे भक्तार्थं वा पानार्थं वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा ॥(२३)॥ (वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (विगिट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति सव्वेऽवि गोअरकाला गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा) नित्यं अष्टमादुपरि तपःकारिणः भिक्षोः कल्पन्ते सर्वेऽपि गोचरकालाः गृहस्थगृहे भक्तार्थं वा पानार्थं वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा, यदा इच्छा भवति तदा भिक्षते, न तु प्रातर्गृहीतमेव धारयेत्, सञ्चयजीवसंसक्तिसर्पाद्याणादिदोषसम्भवात् ॥ (२४) ॥

एवमाहारविधिमुक्त्वा पानकविधिमाह—(वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (निच्चभत्तियस्स भिक्खुस्स) नित्यं एकाशनकारिणः भिक्षोः (कप्पंति सव्वाइं पाणगाइं पडिगाहित्तए) कल्पंते सर्वाणि पानकानि प्रतिग्रहीतुं, सर्वाणि च आचाराङ्गोक्तानि एकविंशतिः, अत्र वक्ष्यमाणानि नव वा, तत्राचाराङ्गोक्तानि इमानि—

गोचरचर्या-वेलानियमः सू. २०-२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२५] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२९०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

उस्सेइम १ संसेइम २ तंदुल ३तुस ४ तिल ५ जवोदगा ६ यामं ७ । सोवीर ८ सुद्धवियडं ९ अंबय १० अंबाडग ११ कविट्ठं १२ ॥१॥ मउलिंग १३ दक्ख १४ दाडिम १५ खज्जुर १६ नालिकेर १७ कयर १८ बोरजलं १९ । आमलगं २० चिंचापाणगाइं २१ पढमंगभणिआइं ॥२॥ एषु पूर्वाणि नव तु अत्रोक्तानि (वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (चउत्थभत्तियस्स भिक्खुस्स) एकान्तरोपवासकारिणः भिक्षोः (कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए) कल्पंते त्रीणि पानकानि प्रतिग्रहीतुं (तंजहा) तद्यथा–(उस्सेइमं संसेइमं चाउलोदगं) उत्स्वेदिमं-पिष्टादिभृतहस्तादिधावनजलं संस्वेदिमं–यत्पर्णाद्युत्काल्य शीतोदकेन सिञ्च्यते तज्जलं, तण्डुलधावनजलं ॥ (वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (छट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स) नित्यं षष्ठकारिणः भिक्षोः (कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए) कल्पन्ते त्रीणि पानकानि प्रतिग्रहीतुं (तंजहा) तद्यथा–(तिलोदगं तुसोदगं जवोदगं वा) तिलोदकं–निस्त्वचिततिलधावनजलं तुषोदकं–व्रीह्यादितुषधावनजलं यवोदकं–यवधावनजलं ॥ (वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (अट्ठमभत्तियस्स भिक्खुस्स) नित्यं अष्टमकारिणः भिक्षोः (कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए) कल्पन्ते त्रीणि पानकानि प्रतिग्रहीतुं (तंजहा) तद्यथा–(आयामं वा, सोवीरं वा, सुद्धवियडं वा) आयामकः–अवश्रावणं सौवीरं–काञ्जिकं शुद्धविकटं–उष्णोदकं ॥ (वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (विकिट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स) अष्टमादुपरि तपःकारिणः भिक्षोः (कप्पइ एगे उसिणवियडे पडिगाहित्तए) कल्पते एकं उष्णोदकं प्रतिग्रहीतुं (सेऽविय णं अस्सित्थे

उत्सेदिमा-दिजलवि-धिः सू.२५
२०
२५
॥१७९॥
२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२५] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२९०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

नोविय णं ससित्थे) तदपि सिक्थरहितं नैव सिक्थसहितं, यतः प्रायेण अष्टमादूर्ध्वं तपस्विनः शरीरं देवोऽधितिष्ठति ॥ (वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (भत्तपडियाइक्खियस्स भिक्खुस्स) भक्तप्रत्याख्यानकरस्य–अनशनकारिणः भिक्षोः (कप्पइ एगे उसिणवियडे पडिगाहित्तए) कल्पते एकं उष्णोदकं प्रतिग्रहीतुं (सेविय णं असित्थे) तदपि सिक्थरहितं, नैव सिक्थसहितं (सेऽविय णं परिपूए नो चेव णं अपरिपूए) तदपि परिपूतं–वस्त्रगलितं नैव अगलितं, तृणादेर्गले लगनात् (सेऽविय णं परिमिए, नो चेव णं अपरिमिए) तदपि मानोपेतं नैव अपरिमितं, अन्यथाऽजीर्णं स्यात् (सेऽविय णं बहुसंपन्ने नो चेव णं अबहुसंपन्ने) तदपि बहुसंपूर्णं–किञ्चिदूनं नैव बहुन्यूनं, तृष्णानुपशमात् ॥ (२५) ॥

(वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (संखादत्तियस्स भिक्खुस्स) दत्तिसङ्ख्याकारिणो भिक्षोः (कप्पंति पंच दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहित्तए पंच पाणगस्स) कल्पन्ते पञ्च दत्तयः भोजनस्य प्रतिग्रहीतुं पञ्च पानकस्य (अहवा चत्तारि भोअणस्स पंच पाणगस्स) अथवा चतस्रः भोजनस्य पञ्च पानकस्य (अहवा पंच भोअणस्स चत्तारि पाणगस्स) अथवा पञ्च भोजनस्य, चतस्रः पानकस्य, तत्र दत्तिशब्देन अल्पं बहु वा यदेकवारेण दीयते तदुच्यते इत्याह–(तत्थ णं एगा दत्ती लोणासायणमित्तमवि पडिगाहिया सिया) तत्र एका दत्तिः लवणास्वादनप्रमाणेऽपि भक्तादौ प्रतिगृहीते स्यात्, यतो लवणं किल स्तोकं दीयते, यदि तावन्मात्रं भक्तपानस्य गृह्णाति साऽपि दत्तिर्गण्यते, पञ्चेत्युपलक्षणं तेन चतस्रस्तिस्रो द्वे एका षट् सप्त वा यथाभि-

दत्तिविधिः सू. २६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२६] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [२९२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-व्या० ९ ॥१८०॥

ग्रहं वाच्याः, समग्रस्य च सूत्रस्य अयं भावः–यावत्योऽन्नस्य पानकस्य वा दत्तयो रक्षिता भवन्ति तावत्य एव तस्य कल्पन्ते, न तु परस्परं समावेशं कर्त्तुं कल्पते, न च दत्तिभ्योऽतिरिक्तं ग्रहीतुं कल्पते, (कप्पइ से तद्दिवसं तेणेव भत्तट्ठेणं पज्जोसवित्तए) कल्पते तस्य तस्मिन् दिने तेनैव भोजनेन अवस्थातुं (नो से कप्पइ दुवंपि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा) न तस्य कल्पते द्वितीयवारं गृहस्थगृहे भक्तार्थं वा पानार्थं वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा ॥ (२६) ॥

(वासावासं पज्जोसवियाणं) चतुर्मासकं स्थितानां (नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा) नो कल्पते साधूनां साध्वीनां वा (जाव उवस्सयाओ सत्तघरंतरं संखडिं संनियट्टचारिस्स इत्तए) यावद् उपाश्रयादारभ्य सप्तगृहमध्ये संस्कृतिः–ओदनपाकः तां गन्तुं साधोर्न कल्पते, भिक्षार्थं तत्र न गच्छेदित्यर्थः, एतावता शय्यातरगृहं अन्यानि च षड् गृहाणि वर्जयेदिति, तेषां आसन्नत्वेन साधुगुणानुरागितया उद्गमादिदोषसम्भवात्, कीदृशानां साधूनां ?–सन्निवृत्तचारिणां–'सन्नियट्ट'त्ति निषिद्धगृहेभ्यः सन्निवृत्ताः सन्तः चरन्तीति तथा तेषां, निषिद्धगृहेभ्योऽन्यत्र भ्रमतामिति भावः, अत्र बहुत्वे एकत्वं, भिक्षार्थं गन्तुं, बहवस्त्वेवं व्याचक्षते–सप्तगृहान्तरे सङ्खडिं–जनसङ्कुलजेमनवारालक्षणां गन्तुं न कल्पते, अत्रार्थे सूत्रकृत् मतान्तराण्याह–(एगे पुण एवमाहंसु नो कप्पइ जाव उवस्सयाओ परेणं संखडिं संनियट्टचारिस्स इत्तए) एके पुनः एवं कथयन्ति–नो कल्पते उपाश्रयादारभ्य परतः सप्तगृहमध्ये जेमनवारायां सन्निवृत्तचारिणां भिक्षार्थं गन्तुं

संखडीवर्जनविधिः सू. २७ २० २५ ॥१८०॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ संखडी-वर्जन-विधिः दर्शयते

प्रत सूत्रांक [२७] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२९५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

(एगे पुण एवमाहंसु नो कप्पइ जाव उवस्सयाओ परंपरेणं संखडिं संनियट्टचारिस्स इत्तए) एके पुनः एवं कथयन्ति–नो कल्पते उपाश्रयादारभ्य परम्परतः सप्तगृहमध्ये जेमनवारायां सन्निवृत्तचारिणां भिक्षार्थं गन्तुं, द्वितीयमते 'परेणं'ति शय्यातरगृहं अन्यानि च सप्त गृहाणि वर्जयेत्, तृतीयमते परम्परेणेति शय्यातरगृहं तत एकं गृहं ततः परं सप्त गृहाणि वर्जयेदिति भावः ॥ (२७) ॥

(वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (नो कप्पइ पाणिपडिग्गहियस्स भिक्खुस्स) नो कल्पते पाणिपात्रस्य–जिनकल्पिकादेर्भिक्षोः (कणगफुसियमित्तमवि वुट्ठिकायंसि निवयमाणंसि) कणगफुसिआ–फुसारमात्रं एतावत्यपि वृष्टिकाये निपतति सति (गाहावइकुलं भत्ताए पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा) गृहस्थगृहे भक्तार्थं वा पानार्थं वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा ॥ (२८) ॥ (वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (पाणिपडिग्गहियस्स भिक्खुस्स) करपात्रस्य–जिनकल्पिकादेः भिक्षोः (नो कप्पइ अगिहंसि पिंडवायं पडिगाहित्ता पज्जोसवित्तए) नो कल्पते अनाच्छादिते–आकाशे पिण्डपातं–भिक्षां प्रतिगृह्य अवस्थातुं–आहारयितुं न कल्पते, (पज्जोसवेमाणस्स सहसा वुट्ठिकाए निवइज्जा) यदि अनाच्छादिते स्थाने भुञ्जानस्य साधोः अकस्मात् वृष्टिकायः निपतेत् तदा (देसं भुच्चा देसमादाय से पाणिणा पाणिं परिपिहित्ता) पिण्डपातस्य देशं भुक्त्वा देशं चादाय स पाणिं–आहारैकदेशसहितं हस्तं पाणिना–द्वितीय-हस्तेन परिपिधाय–आच्छाद्य (उरंसि वा णं निलिज्जिज्जा) हृदयाग्रे वा गुसं कुर्यात् (कक्खंसि वा णं समा-

क.सु. ३१

वृष्टौ भिक्षा-गमनादि-विधिः सू. २८–३१

५

१०

१४

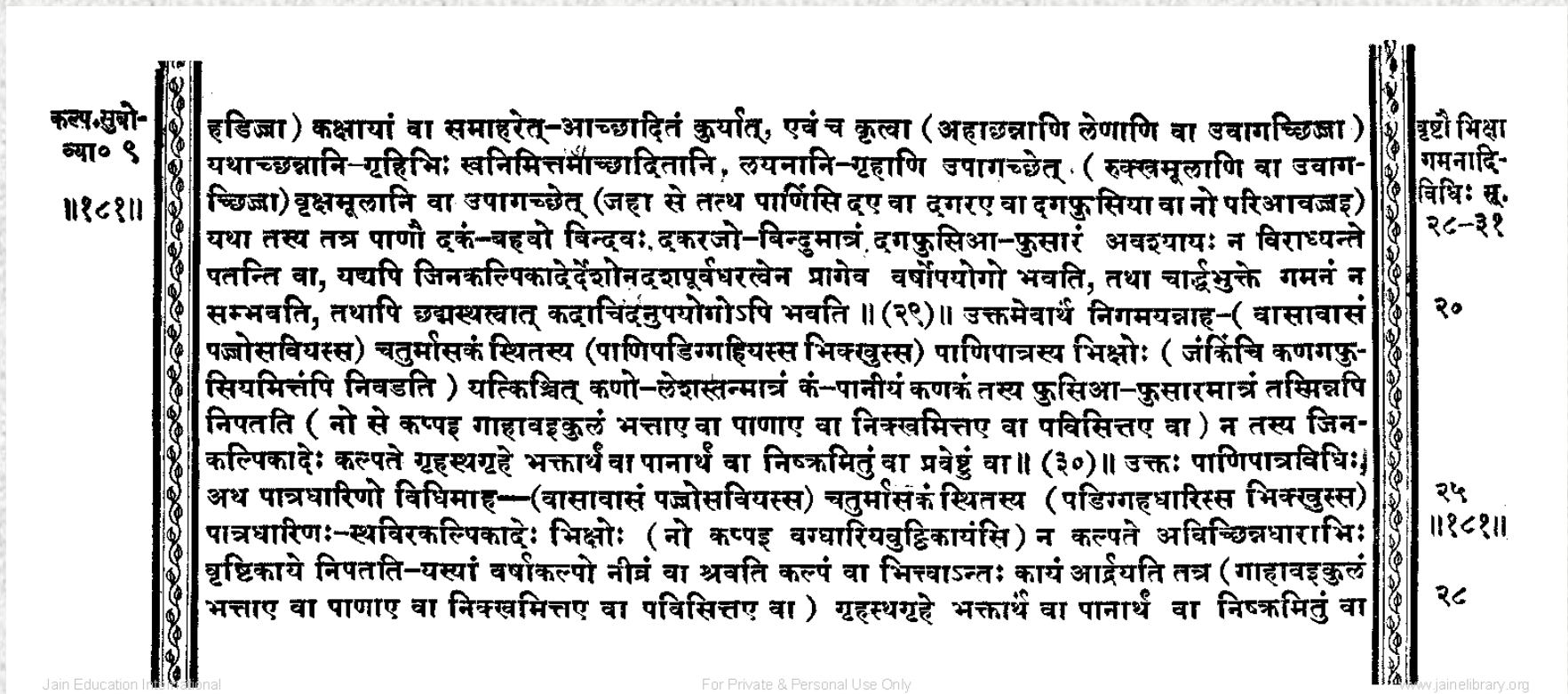
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ वृष्टिः समये भिक्षा-गमनादि विधिः दर्शयते

प्रत सूत्रांक [२९] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२९७]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-ध्या० ९ ॥१८१॥

हडिज्जा) कक्षायां वा समाहरेत्–आच्छादितं कुर्यात्, एवं च कृत्वा (अहाछन्नाणि लेणाणि वा उवागच्छिज्जा) यथाच्छन्नानि–गृहिभिः स्वनिमित्तमाच्छादितानि, लयनानि–गृहाणि उपागच्छेत्. (रुक्खमूलाणि वा उवागच्छिज्जा) वृक्षमूलानि वा उपागच्छेत् (जहा से तत्थ पाणिंसि दए वा दगरए वा दगफुसिया वा नो परिआवज्जइ) यथा तस्य तत्र पाणौ दकं–बहवो बिन्दवः, दकरजो–बिन्दुमात्रं, दगफुसिआ–फुसारं अवश्यायः न विराध्यन्ते पतन्ति वा, यद्यपि जिनकल्पिकादेर्देशोनदशपूर्वधरत्वेन प्रागेव वर्षोपयोगो भवति, तथा चार्द्धभुक्ते गमनं न सम्भवति, तथापि छद्मस्थत्वात् कदाचिदनुपयोगोऽपि भवति ॥ (२९)॥ उक्तमेवार्थं निगमयन्नाह–(वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (पाणिपडिग्गहियस्स भिक्खुस्स) पाणिपात्रस्य भिक्षोः (जंकिंचि कणगफुसियमित्तंपि निवडति) यत्किञ्चित् कणो–लेशस्तन्मात्रं कं–पानीयं कणकं तस्य फुसिआ–फुसारमात्रं तस्मिन्नपि निपतति (नो से कप्पइ गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा) न तस्य जिनकल्पिकादेः कल्पते गृहस्थगृहे भक्तार्थं वा पानार्थं वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा॥ (३०)॥ उक्तः पाणिपात्रविधिः, अथ पात्रधारिणो विधिमाह—(वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (पडिग्गहधारिस्स भिक्खुस्स) पात्रधारिणः–स्थविरकल्पिकादेः भिक्षोः (नो कप्पइ वग्घारियवुट्ठिकायंसि) न कल्पते अविच्छिन्नधाराभिः वृष्टिकाये निपतति–यस्यां वर्षाकल्पो नीत्रं वा श्रवति कल्पं वा भित्त्वाऽन्तः कायं आर्द्रयति तत्र (गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा) गृहस्थगृहे भक्तार्थं वा पानार्थं वा निष्क्रमितुं वा

वृष्टौ भिक्षा गमनादि-विधिः सू. २८–३१ २० २५ ॥१८१॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [३१] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [२९८]

प्रवेष्टुं वा, अपवादमाह–(कप्पइ से अप्पवुट्ठिकायंसि संतरुत्तरंसि) कल्पते तस्य–स्थविरकल्पिकादेः अल्पवृष्टिकाये अन्तरेण वर्षति सति, अथवा आन्तरः–सौत्रः कल्प उत्तरः–और्णिकस्ताभ्यां प्रावृतस्यालपवृष्टौ (गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा) गृहस्थगृहे भक्तार्थं वा पानार्थं वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा, अपवादे तु तत्रापि तपस्विनः क्षुदसहाश्च भिक्षार्थं पूर्वपूर्वाभावे और्णिकेन औष्ट्रिकेन तार्णेन सौत्रेण वा कल्पेन तथा तालपत्रेण पलाशच्छत्रेण वा प्रावृता विहरन्त्यपि ॥ (३१) ॥

(वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (निग्गंथस्स निग्गंथीए वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुप्पविट्ठस्स) निर्ग्रन्थस्य साध्व्याश्च गृहस्थगृहे पिण्डपातो–भिक्षालाभस्तत्प्रतिज्ञया–अत्राहं लप्स्ये इति धिया अनुप्रविष्टस्य–गोचरचर्यायां गतस्य साधोः (निगिज्झिय निगिज्झिय वुट्ठिकाए निवइज्जा) स्थित्वा स्थित्वा वृष्टिकायः निपतेत् , अथ घनो वर्षति तदा (कप्पइ से अहे आरामंसि वा) कल्पते तस्य साधोः आरामस्याधो वा (अहे उवस्सयंसि वा) साम्भोगिकानां इतरेषां वा उपाश्रयस्याधः, तदभावे (अहे वियडगिहंसि वा) विकटगृहं–मण्डपिका यत्र ग्राम्यपर्षदुपविशति तस्याधो वा (अहे रुक्खमूलंसि वा) वृक्षमूलं वा–निर्गलकरीरादिमूलं तस्य वा अधः (उवागच्छित्तए) तत्रोपागन्तुं कल्पते ॥ (३२) ॥ (तत्थ से पुव्वागमणेणं) तत्र–विकटगृहवृक्षमूलादौ स्थितस्य 'से' तस्य साधोः आगमनात् पूर्वकाले (पुव्वाउत्ते चाउलोदणे पच्छाउत्ते भिलिंगसूवे) पूर्वायुक्तः–पक्वुमारब्धः तण्डुलौदनः पश्चादायुक्तो भिलिंगसूपो–मसूरदालिर्माषदालिः सस्नेहसूपो वा (कप्पइ

वृष्टौ पूर्वयश्चादायुक्ता-दिविधिः सू. ३२-३५ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३४] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [२९९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० ९ ॥१८२॥

से चाउलोदणे पडिगाहित्तए) तदा कल्पते तस्य साधोः तण्डुलौदनं प्रतिग्रहीतुं (नो से कप्पइ भिलिंगसूवे पडिगाहित्तए) न कल्पते तस्य मसूरादिदालिः प्रतिग्रहीतुं, अयमर्थः-तत्र यः पूर्वायुक्तः-साध्वागमनात् पूर्वमेव स्वार्थं गृहस्थैः पक्तुमारब्धः स कल्पते दोषाभावात्, साध्वागमनानन्तरं च यः पक्तुमारब्धः स पश्चादायुक्तः, स न कल्पते उद्गमादिदोषसम्भवात् ॥(३३)॥ (तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते भिलिंगसूवे पच्छाउत्ते चाउलोदणे) तत्र गृहे तस्य पूर्वायुक्तः मसूरादिदालिः पश्चादायुक्तः तण्डुलौदनः तदा (कप्पइ से भिलिंगसूवे पडिगाहित्तए) कल्पते तस्य मसूरादिदालिः प्रतिग्रहीतुं (नो से कप्पइ चाउलोदणे पडिगाहित्तए) नो तस्य कल्पते तण्डुलौदनं प्रतिग्रहीतुं ॥ (३४) ॥ (तत्थ से पुव्वागमणेणं दोऽवि पच्छाउत्ताइं एवं नो से कप्पइ दोऽवि पडिगाहित्तए) तत्र गृहे तस्य द्वावपि पश्चादायुक्तौ तदा नो तस्य कल्पते द्वावपि प्रतिग्रहीतुं (जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते से कप्पइ पडिगाहित्तए) यत् तस्य तत्र पूर्वायुक्तं तत् कल्पते प्रतिग्रहीतुं (जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पच्छाउत्ते नो से कप्पइ पडिगाहित्तए) यत् तस्य तत्र पूर्वं पश्चादायुक्तं न तत् कल्पते प्रतिग्रहीतुं ॥ (३५) ॥

(वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (निग्गंथस्स निग्गंथीए वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठस्स) साधोः साध्व्याश्च गृहस्थगृहे भिक्षाग्रहणार्थं अनुप्रविष्टस्य (निगिंजिझय निगिंजिझय वुट्ठिकाए निवइज्जा) स्थित्वा स्थित्वा वृष्टिकायः निपतेत् तदा (कप्पइ से अहे आरामंसि वा) कल्पते तस्य आरामस्याधो वा (जाव रुक्खमूलंसि वा उवागच्छित्तए) यावत् वृक्षमूले वा उपागन्तुं (नो से कप्पइ पुव्वगहिएणं भत्तपाणेणं

वृष्टौ पूर्वप-श्चादायुक्ता-दिविधिः सू. ३२-३५ २० २५ ॥१८२॥ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३६] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३००]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

वेलं उवायणावित्तए) नो तस्य कल्पते पूर्वं गृहीतेन भक्तपानेन भोजनवेलां अतिक्रमयितुं, आरामादिस्थितस्य साधोर्यदि वर्षा नोपरमति तदा किं कार्यमित्याह–(कप्पइ से पुव्वामेव वियडगं भुचा पिचा पडिग्गहगं संलिहिय संलिहिय संपमज्जिय २) कल्पते तस्य साधोः पूर्वमेव विकटं–उद्गमादिशुद्धमशनादि भुक्त्वा पीत्वा च पात्रं निर्लेपीकृत्य सम्प्रक्षाल्य (एगओ भंडगं कट्टु) एकस्मिन् पार्श्वे पात्राद्युपकरणं कृत्वा वपुषा सह प्रावृत्य वर्षत्यपि मेघे (सावसेसे सूरिए) सावशेषे–अनस्तमिते सूर्ये (जेणेव उवस्सए तेणेव उवागच्छित्तए) यत्रैव उपाश्रयः तत्रैव उपागन्तुं, परं (नो से कप्पइ तं रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए) नो तस्य कल्पते तां रात्रिं वसतेर्बहिः गृहस्थगृहे एव अतिक्रमयितुं, एकाकिनो हि बहिर्वसतः साधोः स्वपरसमुत्था बहवो दोषाः सम्भवेयुः, साधवो वा वसतिस्था अधृतिं कुर्युरिति ॥ (३६) ॥ (वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (निग्गंथस्स निग्गंथीए वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठस्स) साधोः साध्व्याश्च गृहस्थगृहे भिक्षाग्रहणार्थं अनुप्रविष्टस्य (निगिज्झिय निगिज्झिय वुट्ठिकाए निवइज्जा) स्थित्वा स्थित्वा वृष्टिकायः निपतेत् तदा (कप्पइ से आरामंसि वा जाव उवागच्छित्तए) कल्पते तस्य आरामस्याधो वा यावत् उपागन्तुं, अग्रेतनसूत्रयुग्मसंबन्धार्थं पुनरेतत्सूत्रं ॥ (३७) ॥ अथ स्थित्वा २ वर्षे पतति यदि आरामादौ साधुस्तिष्ठति तदा केन विधिनेत्याह–(तत्थ नो से कप्पइ एगस्स निग्गंथस्स एगाए निग्गंथीए एगओ चिट्ठित्तए) तत्र विकटगृहवृक्षमूलादौ स्थितस्य साधोः नो कल्पते एकस्य साधोः एकस्याः साध्व्याश्च एकत्र स्थातुं १ (तत्थ नो कप्पइ

वर्षत्यपि-सतौ गमनं सू. ३६

५

१०

१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३८] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३०१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० ९ ॥१८३॥

एगस्स निग्गंथस्स दुण्हं निग्गंथीणं एगओ चिट्ठित्तए) तत्र नो कल्पते एकस्य साधोः द्वयोः साध्व्योश्च एकत्र स्थातुं २ (तत्थ नो कप्पइ दुण्हं निग्गंथाणं एगाए निग्गंथीए एगओ चिट्ठित्तए) तत्र नो कल्पते द्वयोः साध्वोः एकस्याः साध्व्याश्च एकत्र स्थातुं ३ (तत्थ नो कप्पइ दुण्हं निग्गंथाणं दुण्हं निग्गंथीणं एगओ चिट्ठित्तए) तत्र नो कल्पते द्वयोः साध्वोः द्वयोः साध्व्योश्च एकत्र स्थातुं ४ (अत्थि य इत्थ कोइ पंचमे खुड्डए वा खुड्डिया वा) यदि स्यात् अत्र कोऽपि पञ्चमः क्षुल्लको वा क्षुल्लिका वा (अन्नेसिं वा संलोए सपडिदुवारे) अन्येषां वा दृष्टिविषये बहुद्वारसहितस्थाने वा (एवण्हं कप्पइ एगओ चिट्ठित्तए) तदा कल्पते एकत्र स्थातुं; भावार्थस्त्वयं–एकस्य साधोः एकया साध्व्या सह स्थातुं न कल्पते, एवं च एकस्य साधोर्द्वाभ्यां साध्वीभ्यां सह द्वयोः साध्वोरेकया साध्व्या सह द्वयोः साध्वोः द्वाभ्यां साध्वीभ्यां सह स्थातुं न कल्पते, यदि चात्र पञ्चमः कोऽपि क्षुल्लकः क्षुल्लिका वा साक्षी स्यात् तदा कल्पते, अथवा अन्येषां ध्रुवकर्मिकलोहकारादीनां वर्षत्यप्यमुक्त-स्वकर्मणां संलोके तत्रापि सप्रतिद्वारे–सर्वतोद्वारे सर्वगृहाणां वा द्वारे, एवं पञ्चमं विनाऽपि स्थातुं कल्पते॥(३८)॥

(वासावासं पज्जोसवियस्स) चतुर्मासकं स्थितस्य (निग्गंथस्स गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए जाव उवा-गच्छित्तए) साधोः गृहस्थगृहे भिक्षाग्रहणार्थं यावत् उपागन्तुं (तत्थ नो कप्पइ एगस्स निग्गंथस्स एगाए अगारीए एगओ चिट्ठित्तए) तत्र नो कल्पते एकस्य साधोः एकस्याः आविकायाः एकत्र स्थातुं (एवं चउभंगी) एवं चत्वारो भङ्गाः (अत्थि णं इत्थ केइ पंचमे थेरे वा थेरिया वा) यदि अत्र कोऽपि पञ्चमः स्थविरः स्थविरा

वर्षति गृ-हादावव-स्थानवि-धिः सू. ३७–३९ २०

२५ ॥१८३॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३९] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३०२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

वा साक्षी भवति तदा स्थातुं कल्पते (अन्नेसिं वा संलोए सपडिदुवारे एवं कप्पइ एगओ चिट्ठित्तए) अन्येषां वा दृष्टिविषये बहुद्वारसहिते वा स्थाने, एवं कल्पते एकत्र स्थातुं, (एवं चेव निग्गंथीए अगारस्स य भाणियव्वं) एवमेव साध्व्याः गृहस्थस्य च चतुर्भङ्गी वाच्या, तथा एकाकित्वं च साधोः साङ्घाटिके उपोषितेऽसुखिते वा कारणाद्भवति, अन्यथा हि उत्सर्गतः साधुरात्मना द्वितीयः साध्व्यस्तु व्यादयो विहरन्ति ॥ (३९) ॥

(वासावासं पज्जोसवियाणं) चतुर्मासकं स्थितानां (नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा) नो कल्पते साधूनां साध्वीनां वा (अपरिन्नएणं) मदर्थं त्वं मम योग्यमशनमानयेः इति अपरिज्ञप्तेन–अज्ञापितेन साधुना (अपरिन्नयस्स अट्ठाए असणं ४ जाव पडिगाहित्तए) अहं त्वद्योग्यं अन्नमानयिष्यामीति अपरिज्ञापितस्य साधोः निमित्तं अशनादि ४ यावत् प्रतिग्रहीतुम् ॥(४०)॥ अत्र शिष्यः पृच्छति–(से किमाहु भंते !) तत् कुतो भदन्त इति पृष्टे गुरुराह–(इच्छा परो अपरिन्नए भुंजिज्जा इच्छा परो न भुंजिज्जा) इच्छा चेदस्ति तदा परोऽपरिज्ञापितः यदर्थं आनीतं स भुञ्जीत, इच्छा न चेत्तदा न भुञ्जीत, प्रत्युतैवं वदति–केनोक्तमासीत् यत्त्वया आनीतं, किं च–अनिच्छया दाक्षिण्यतश्चेद् भुङ्क्ते तदा अजीर्णादिना बाधा स्यात्, परिष्ठापने च वर्षासु स्थण्डिलदौर्लभ्याद्दोषः स्यात्, तस्मात् पृष्ट्वा आनेयं ॥ (४१) ॥

(वासावासं पज्जोसवियाणं) चतुर्मासकं स्थितानां (नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा) नो कल्पते साधूनां साध्वीनां च (उदउल्लेण वा ससिणिद्धेण वा काएणं असणं वा ४ आहारित्तए) उदकार्द्रेण–गलद्-

अपरिज्ञप्ताशनाद्यशन-निषेधः सू. ४०–४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४२] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३०४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

बिन्दुयुतेन तथा सस्नेहेन-ईषदुदकयुक्तेन कायेन अशनादिकं ४ आहारयितुम् ॥(४२)॥ (से किमाहु भंते!) तत् कुतः पूज्या इति पृष्टे गुरुराह-(सत्त सिणेहायययणा पण्णत्ता) सप्त स्नेहायतनानि-जलावस्थानस्थानानि प्रज्ञप्तानि जिनैः येषु चिरेण जलं शुष्यति (तंजहा) तद्यथा-(पाणी १ पाणिलेहा २ नहा ३ नहसिहा ४ भमुहा ५ अहरोट्ठा ६ उत्तरोट्ठा ७) पाणी-हस्तौ१ पाणिरेखा-आयूरेखादयः, तासु हि चिरं जलं तिष्ठति २ नखा अखण्डाः ३ नखशिखाः-तदग्रभागाः ४ भमूहा-भ्रूर्नेत्रोर्ध्वरोमाणि ५ अहरुट्ठा-दाढिका ६ उत्तरुट्ठा-श्मश्रूणि ७ (अह पुण एवं जाणिज्जा विगओदए मे काए छिन्नसिणेहे, एवं से कप्पइ असणं वा ४ आहारित्तए) अथ पुनः एवं जानीयात्-बिन्दुरहितः मम देहः सर्वथा निर्जलोऽभूत् तदा तस्य साधोः कल्पते अशनादिकं ४ आहारयितुं॥(४३)॥ (वासावासं पज्जोसवियाणं) चतुर्मासकं स्थितानां (इह खलु निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा) अत्र खलु साधूनां साध्वीनां च (इमाइं अट्ठ सुहुमाइं जाइं छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा) इमानि अष्टौ सूक्ष्माणि यानि छद्मस्थेन साधुना साध्व्या च (अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वाइं) वारं वारं यत्रावस्थानादि करोति तत्र तत्र ज्ञातव्यानि सूत्रोपदेशेन (पासिअव्वाइं) चक्षुषा द्रष्टव्यानि (पडिलेहिअव्वाइं भवंति) ज्ञात्वा दृष्ट्वा च प्रतिलेखितव्यानि-परिहर्त्तव्यतया विचारणीयानि सन्ति, (तंजहा) तद्यथा-(पाणसुहुमं १ पणगसुहुमं २ बीअसुहुमं ३ हरियसुहुमं ४ पुप्फसुहुमं ५ अंडसुहुमं ६ लेणसुहुमं ७ सिणेहसुहुमं ८) सूक्ष्माः प्राणाः-कुन्थ्वादयः द्वीन्द्रियादयः १ सूक्ष्मः पनकः-फुल्लिः २ सूक्ष्माणि बीजानि ३ सूक्ष्माणि हरितानि ४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४४] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३०५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

सूक्ष्माणि पुष्पाणि ५ सूक्ष्माणि अण्डानि ५ सूक्ष्माणि लयनानि–बिलानि ७ सूक्ष्मः स्नेहः–अप्काय: ८ (से किं तं पाणसुहुमे ?) तत् के सूक्ष्मप्राणाः ?, गुरुराह–(पाणसुहुमे पंचविहे पन्नत्ते) सूक्ष्मप्राणाः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः तीर्थकरगणधरैः (तंजहा) तद्यथा–(किण्हे १ नीले २ लोहिए ३ हालिद्दे ४ सुक्किल्ले ५) कृष्णाः नीलाः रक्ताः पीताः श्वेताः, एकस्मिन् वर्णे सहस्रशो भेदा बहुप्रकाराश्च संयोगास्ते सर्वे पञ्चसु कृष्णादिवर्णेष्वेव अवतरन्ति (अत्थि कुंथू अणुद्धरी नामं जा ठिया अचलमाणा) अस्ति कुन्थुः अणुद्धरी नाम या स्थिता अचलन्ती सती (छउमत्थाणं निग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा नो चक्खुफासं हव्वमागच्छइ) छद्मस्थानां साधूनां साध्वीनां च नो दृष्टिविषयं शीघ्रं आगच्छति (जाव छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वा पासियव्वा पडिलेहियव्वा भवइ) यावत् छद्मस्थेन साधुना साध्व्या च वारंवारं ज्ञातव्या द्रष्टव्याः प्रतिलेखितव्याश्च भवन्ति (से तं पाणसुहुमे) ते सूक्ष्माः प्राणाः, ते हि चलन्त एव विभाव्यन्ते, न हि स्थानस्थाः १ ॥ (४४) ॥ (से किं तं पणगसुहुमे ?) तत् कः सूक्ष्मः पनकः ?, गुरुराह–(पणगसुहुमे पंचविहे पन्नत्ते) सूक्ष्मपनकः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः (तंजहा) तद्यथा (किण्हे जाव सुक्किल्ले) कृष्णः यावत् शुक्लः (अत्थि पणगसुहुमे तद्दवसमाणवन्नए नामं पन्नत्ते) अस्ति सूक्ष्मः पनकः यत्रोत्पद्यते तद्द्रव्यसमानवर्णः प्रसिद्धः प्रज्ञप्तः (जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा जाव पडिलेहिअव्वे भवइ) यश्छद्मस्थेन साधुना साध्व्या यावत् प्रतिलेखितव्यः भवति, पनक उल्ली, स च प्रायः प्रावृषि भूकाष्ठादिषु जायते, यत्रोत्पद्यते तद्द्रव्यस-

अष्ट सूक्ष्माणि ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ अष्ट-सूक्ष्माणां वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [४५] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [३११]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० ९ ॥१८५॥

मवर्णश्च, नामं पन्नत्तेत्यत्र नाम प्रसिद्धौ (से तं पणगसुहुमे) स सूक्ष्मपनकः २ ॥ (से किं तं बीअसुहुमे?) अथ कानि तत् सूक्ष्मबीजानि ?, गुरुराह–(बीयसुहुमे पंचविहे पन्नत्ते) सूक्ष्मबीजानि पञ्चविधानि प्रज्ञप्तानि, (तंजहा) तद्यथा–(किण्हे जाव सुक्किल्ले) कृष्णानि यावत् शुक्लानि (अत्थि बीअसुहुमे कणियासमाणवण्णए नामं पण्णत्ते) सन्ति सूक्ष्मबीजानि, बीजानां मुखमूले कणिका–नखिका 'नहीउं' इति लोके तत्समानवर्णानि नाम प्रज्ञप्तानि (जे छउमत्थेणं जाव पडिलेहियव्वे भवइ) यानि छद्मस्थेन यावत् प्रतिलेखितव्यानि भवन्ति (से तं बीअसुहुमे) तानि सूक्ष्मबीजानि ३ ॥ (से किं तं हरियसुहुमे?) अथ कानि तत् सूक्ष्महरितानि ?, गुरुराह- (हरियसुहुमे पंचविहे पन्नत्ते) सूक्ष्महरितानि पञ्चविधानि प्रज्ञप्तानि, (तंजहा) तद्यथा–(किण्हे जाव सुक्किल्ले) कृष्णानि यावत् शुक्लानि (अत्थि हरिअसुहुमे पुढवीसमाणवन्नए नामं पन्नत्ते) सन्ति सूक्ष्महरितानि पृथिवीसमानवर्णानि प्रसिद्धानि प्रज्ञप्तानि (जे निग्गंथेण वा २ जाव पडिलेहियव्वे भवइ) यानि साधुना साध्व्या वा यावत् प्रतिलेखितव्यानि भवन्ति (से तं हरियसुहुमे) तानि सूक्ष्महरितानि, हरितसूक्ष्मं–नवोद्भिन्नं पृथ्वीसमवर्णं हरितं, तच्चाल्पसंहननत्वात् स्तोकेनापि विनश्यति ३ ॥ (से किं तं पुप्फसुहुमे ?) अथ कानि तत् सूक्ष्मपुष्पाणि ?, गुरुराह–(पुप्फसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते) सूक्ष्मपुष्पाणि पञ्चविधानि प्रज्ञप्तानि, (तंजहा) तद्यथा–(किण्हे जाव सुक्किल्ले) कृष्णानि यावत् शुक्लानि (अत्थि पुप्फसुहुमे रुक्खसमाणवन्ने नामं पन्नत्ते) सन्ति सूक्ष्मपुष्पाणि वृक्षसमानवर्णानि प्रसिद्धानि प्रज्ञप्तानि, सूक्ष्मपुष्पाणि वटोदुम्बरादीनां, तानि चोच्छ्वासे-

अष्ट सूक्ष्माणि

२०

२५

॥१८५॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४५] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३११]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

नापि विराध्यन्ते (जे छउमत्थेणं जाव पडिलेहियवे भवइ) यानि छद्मस्थेन यावत् प्रतिलेखितव्यानि भवन्ति (से तं पुप्फसुहुमे) तानि सूक्ष्मपुष्पाणि ४॥ (से किं तं अंडसुहुमे ?) अथ कानि तत् सूक्ष्माण्डानि ?, गुरुराह–(अंडसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते) सूक्ष्माण्डानि पञ्चविधानि प्रज्ञप्तानि, (तंजहा) तद्यथा–(उद्दंसंडे १ उक्कलियंडे २ पिपीलियंडे ३ हलियंडे ४ हल्लोहलिअंडे ५) उद्दंशा–मधुमक्षिकामत्कुणादयस्तेषां अण्डं उद्दंशाण्डं १ उत्कलिका–लूतापूता 'कुलातरा' इति लोके तस्या अण्डं उत्कलिकाण्डं २ पिपीलिकाः–कीटिकाः तासां अण्डं पिपीलिकाण्डं ३ हलिका–गृहकोलिका ब्राह्मणी वा तस्याः अण्डं हलिकांडं ४ हल्लोहलिआ–अहिलोडी सरटी 'कार्किंडी' इति लोके तस्या अण्डं हल्लोहलिकाण्डं ५ (जे निग्गंथेण वा २ जाव पडिलेहियवे भवइ) यानि साधुना यावत् प्रतिलेखितव्यानि भवन्ति (से तं अंडसुहुमे) तानि सूक्ष्माण्डानि ६॥ (से किं तं लेणसुहुमे?) अथ कानि तत् लयनं–आश्रयः सत्त्वानां यत्र कीटिकाद्यनेकसूक्ष्मसत्त्वा भवन्ति तल्लयनसूक्ष्मं–बिलानि ?, गुरुराह–(लेणसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते) सूक्ष्मबिलानि पञ्चविधानि प्रज्ञप्तानि, (तंजहा) तद्यथा–(उत्तिंगलेणे १ भिंगुलेणे २ उज्जुए ३ तालमूलए ४ संबुक्कावट्टे ५ नामं पंचमे) उत्तिङ्गा–भुवका गर्दभाकारा जीवास्तेषां बिलं–भूमौ उत्कीर्णं गृहं उत्तिङ्गलयनं १ भृगुः–शुष्कभूरेखा, जलशोषानन्तरं जलकेदारादिषु स्फुटिता दालिरित्यर्थः २ सरलं–बिलं ३ तालमूलाकारं–अधः पृथु उपरि च सूक्ष्मं बिलं तालमूलं ४ शम्बुकावर्त्त–भ्रमरगृहं नाम पञ्चमं ५ (जे छउमत्थेणं जाव पडिलेहियवे भवइ) यानि छद्मस्थेन यावत् प्रतिलेखितव्यानि भवन्ति (से तं लेणसुहुमे) तानि सूक्ष्म-

अष्ट सूक्ष्माणि ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [४५] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [३११]

कल्प.सुबो-ध्या० ९

॥१८६॥

बिलानि ७ ॥ (से किं तं सिणेहसुहुमे?) अथ कः तत् सूक्ष्मस्नेहः?, गुरुराह–(सिणेहसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते) सूक्ष्मस्नेहः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, (तंजहा) तद्यथा–(उस्सा १ हिमए २ महिया ३ करए ४ हरतणुए ५) अवश्यायो–गगनात्पतज्जलं १ हिमं प्रसिद्धं २ महिका–धूमरी ३ करकाः–घनोपलाः ४ हरतनुः–भूमिःसृततृणाग्र-बिन्दुरूपो यो यवाङ्कुरादौ दृश्यते ५ (जे छउमत्थेणं जाव पडिलेहियव्वे भवइ) यः छद्मस्थेन साधुना यावत् प्रतिलेखितव्यः भवति (से तं सिणेहसुहुमे) सः सूक्ष्मः स्नेहः ८ ॥ ॥ (४५) ॥ अथ ऋतुबद्धवर्षाकालयोः सामान्या सामाचारी वर्षासु विशेषेणोच्यते–

(वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा) चतुर्मासकं स्थितः साधुः इच्छेत् (गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा) गृहस्थगृहे भक्तार्थं वा पानार्थं वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा, (नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता) तदा नो तस्य साधोः कल्पते अनापृच्छ्य, कं? इत्याह—(आयरियं वा) आचार्यः–सूत्रार्थदाता दिगाचार्यो वा तं १ (उवज्झायं वा) सूत्राध्यापक उपाध्यायस्तं २ (थेरं वा) स्थविरो–ज्ञानादिषु सीदतां स्थिरीकर्त्ता उद्यतानामुपबृंहकश्च तं ३ (पवित्तिं वा) ज्ञानादिषु प्रवर्त्तयिता प्रवर्त्तकस्तं ४ (गणिं वा) यस्य पार्श्वे आचार्याः सूत्राद्यभ्यस्यन्ति स गणी तं ५ (गणहरं वा) तीर्थकरशिष्यो गणधरस्तं ६ (गणावच्छेअयं वा) गणावच्छेदको यः साधून् गृहीत्वा बहिः क्षेत्रे आस्ते गच्छार्थं क्षेत्रोपधिमार्गणादौ प्रधाव-न्नादिकर्त्ता सूत्रार्थोभयवित् तं ७ (जं वा पुरओ काउं विहरइ) यं वाऽन्यं वयःपर्यायाभ्यां लघुमपि पुरतः

आचार्याज्ञया गमनादि सू. ४६

२०

२५

॥१८६॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४६] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३१४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कृत्वा-गुरुत्वेन कृत्वा विहरन्ति (कप्पइ से आपुच्छिउं आयरियं वा जाव जं वा पुरओ काउं विहरइ) कल्पते तस्य आपृच्छ्य आचार्यं यावत् यं वा पुरतः कृत्वा विहरति, अथ कथं प्रष्टव्यमित्याह-(इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा) इच्छाम्यहं हे पूज्य ! भवद्भिः अभ्यनुज्ञातः सन् गृहस्थगृहे भक्तार्थं वा पानार्थं वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा इति, (ते य से वियरिज्जा, एवं से कप्पइ गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए पविसित्तए वा) ते आचार्यादयः 'से' तस्य साधोः वितरेयुः-अनुज्ञां दद्युः तदा कल्पते गृहस्थगृहे भक्तार्थं वा पानार्थं वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा (ते य से नो वियरिज्जा, एवं से नो कप्पइ गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा) ते आचार्यादयः तस्य नो आज्ञां दद्युः तदा नो कल्पते गृहस्थगृहे भक्तार्थं वा पानार्थं वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा, (से किमाहु भंते !) तत् कुतो हेतोः हे पूज्य ! इति पृष्टे गुरुराह- (आयरिया पच्चवायं जाणंति) आचार्याः प्रत्यपायं-अपायं तत्परिहारं च जानन्तीति ॥ (४६) ॥ (एवं विहार- भूमिं वा) एवमेव विहारभूमिः-जिनचैत्ये गमनं 'विहारो जिनसद्मनी' तिवचनात् (वियारभूमिं वा) विचार- भूमिः-शरीरचिन्ताार्थं गमनं (अन्नं वा जंकिंचि पओअणं) अन्यद्वा यत्किञ्चित्प्रयोजनं लेपसीवनलिख- नादिकं उच्छ्वासादिवर्जं सर्वमापृच्छ्यैव कर्त्तव्यमिति तत्त्वं (एवं गामाणुगामं दूइज्जित्तए) एवं ग्रामानुग्रामं हिण्डितुं भिक्षार्थं ग्लानादिकारणे वा, अन्यथा वर्षासु ग्रामानुग्रामहिण्डनमनुचितमेव ॥ (४७) ॥

आचार्या- द्याज्ञया गो- चर्याविहा- रभूम्यादि सू. ४६-७

५

१०

१४

क.सु. १२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४८] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [३१६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

(वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा अन्नयरिं विगइं आहारित्तए) चतुर्मासकं स्थितः भिक्षुः इच्छेत् अन्यतरां विकृतिं आहारयितुं तदा (नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव जं वा पुरओ काउं विहरइ) नो तस्य कल्पते अनापृच्छ्य आचार्यं वा यावत् यं वा पुरतः कृत्वा विहरति (कप्पइ से आपुच्छित्ता आयरियं वा जाव आहारित्तए) कल्पते तस्य साधोः आपृच्छ्य आचार्यं वा यावत् आहारयितुं, कथं प्रष्टव्यमित्याह–(इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे) अहं इच्छामि हे पूज्य ! युष्माभिः अभ्यनुज्ञातः सन् (अन्नयरिं विगइं आहारित्तए, तं एवइयं वा एवयखुत्तो वा) अन्यतरां विकृतिं आहारयितुं, तां एतावतीं एतावतो वारान् (ते य से वियरिज्जा, एवं से कप्पइ अन्नयरिं विगइं आहारित्तए) ते आचार्यादयः तस्य यदि आज्ञां दद्युः तदा तस्य कल्पते अन्यतरां विकृतिं आहारयितुं (ते य से नो वियरिज्जा एवं से नो कप्पइ अन्नयरिं विगइं आहारित्तए) ते आचार्यादयः तस्य नो यदि आज्ञां दद्युः तदा तस्य नो कल्पते अन्यतरां विकृतिं आहारयितुं (से किमाहु भंते !) तत् कुतो हेतोः हे पूज्य! इति पृष्टे गुरुराह–(आयरिया पच्चायं जाणंति) आचार्याः लाभालाभं जानन्ति ॥ (४८) ॥ (वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा अन्नयरिं तेगिच्छं) चतुर्मासकं स्थितः भिक्षुः इच्छेत् काञ्चित् चिकित्सां, वातिक १ पैत्तिक २ श्लेष्मिक ३ सान्निपातिक ४ रोगाणामातुर १ वैद्य २ प्रतिचारक ३ भैषज्य ४ रूपां चतुष्पादां चिकित्सां, तथा चोक्तम्—भिषग् १ द्रव्या २ ण्युपस्थाता ३, रोगी ४ पादचतुष्टयम् । चिकित्सितस्य निर्दिष्टं, प्रत्येकं तच्चतुर्गुणम् ॥ १ ॥ दक्षो १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४९] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३१७]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

विज्ञातशास्त्रार्थो २, दृष्टकर्मा ३ शुचि ४ र्भिषक् । बहुकल्पं १ बहुगुणं २, सम्पन्नं ३ योग्यमौषधम् ४ ॥ २ ॥ अनुरक्तः १ शुचि २ र्दक्षो ३, बुद्धिमान् ४ प्रतिचारकः । आढ्यो १ रोगी २ भिषग्वश्यो ३, ज्ञायकः सत्त्ववानपि ४ ॥ ३ ॥ (आउट्टित्तए) कारयितुं, आउट्टिधातुः करणार्थे सैद्धान्तिकः (तं चेव सव्वं भाणिअव्वं) तदेव सर्वं भणितव्यम् ॥ (४९) ॥ (वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा) चतुर्मासकं स्थितः भिक्षुः इच्छेत् (अन्नयरं ओरालं कल्लाणं सिवं धन्नं मंगल्लं सस्सिरीयं महाणुभावं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए) किञ्चित् प्रशस्तं कल्याणकारि उपद्रवहरं धन्यकरणीयं मङ्गलकारणं सश्रीकं महान् अनुभावो यस्य तत् तथा एवंविधं तपःकर्म आदृत्य विहर्त्तुं (तं चेव सव्वं भाणियव्वं) तदेव सर्वं भणितव्यम् ॥(५०) ॥ (वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा) चतुर्मासकं स्थितः भिक्षुः इच्छेत्, अथ कीदृशो भिक्षुः ?-(अपच्छिममारणंतियसंलेहणाजूसणाजूसिए) अपश्चिमं-चरमं मरणं अपश्चिममरणं, न पुनः प्रतिक्षणमायुर्दलिकानुभवलक्षणं आवीचिमरणं, अपश्चिममरणमेवान्तस्तत्र भवा अपश्चिममरणान्तिकी, संलिख्यते-कृशीक्रियते शरीरकषायाद्यनयेति संलेखना, सा च द्रव्यभावभेदभिन्ना 'चत्तारि विचित्ताइं' इत्यादिका तस्या 'जुसणं'ति जोषणं-सेवा तया 'जुसिए'त्ति क्षपितशरीरः, अत एव (भत्तपाणपडियाइक्खिए) प्रत्याख्यातभक्तपानः, अत एव (पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरित्तए वा) पादपोपगतः-कृतपादपोगमनः, अत एव कालं-जीवितकालं मरणकालं वाऽनवकाङ्क्षन्-अनभिलषन् विहर्त्तुमिच्छेत् (निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा) गृहस्यगृहे निष्क्रमितुं

विकृतचिकित्सातपः संलेखनाविधिः सू. ४८-५१ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५१] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३१९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-ध्या० ९ ॥१८८॥

वा प्रवेष्टुं वा (असणं वा ४ आहारित्तए वा) अशनादिकं ४ वा आहारयितुं (उच्चारं पासवणं वा परिठा- वित्तए वा) उच्चारं-पुरीषं प्रश्रवणं-मूत्रं परिष्ठापयितुं वा (सज्झायं वा करित्तए) स्वाध्यायं वा कर्त्तुं (धम्म- जागरियं वा जागरित्तए) धर्मजागरिकां-आज्ञा १ ऽपाय २ विपाक ३ संस्थानविचय ४ भेदधर्मध्यानविधाना- दिना जागरणं धर्मजागरिका तां जागरितुं-अनुष्ठातुमिति (नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता तं चेव सवं) नो तस्य कल्पते अनापृच्छय तदेव सर्वं वाच्यं, एतत् सर्वं गुर्वाज्ञया एव कर्त्तुं कल्पते ॥ (५१) ॥

(वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा) चतुर्मासकं स्थितः भिक्षुः इच्छेत् (वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुच्छणं वा) वस्त्रं वा पतद्ग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं-रजोहरणं वा (अन्नयरिं वा उवहिं आयावित्तए वा पयावित्तए वा) अन्यतरं वा उपधिं आतापयितुं-एकवारं आतपे दातुं प्रतापयितुं-पुनः पुनरा- तपे दातुं इच्छति, अनातापने कुत्सापनकादिदोषोत्पत्तेः, तदा उपधावातपे दत्ते (नो से कप्पइ एगं वा अणेगं वा अपडिन्नवित्ता) नो तस्य कल्पते एकं वा साधुं अनेकान् वा साधून् अप्रतिज्ञाप्य-अकथयित्वा (गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा) गृहस्थगृहे भक्तार्थं वा पानार्थं वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा (असणं वा ४ आहारित्तए) अशनादिकं ४ वा आहारयितुं (बहिया विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा सज्झायं वा करित्तए, काउस्सग्गं वा ठाणं वा ठाइत्तए) बहिः विहारभूमिं वा-जिनचैत्यगमनं, विचारभूमिः-शरीरचि- न्ताद्यर्थं गमनं स्वाध्यायं वा कर्त्तुं,कायोत्सर्गं वा स्थानं स्थातुं वृष्टिभयात्(अत्थि य इत्थ केइ अहासन्निहिए एगे वा

वस्त्राद्याता- पनं सू. ५२

२०

२५

॥१८८॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [५२] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [३२०]

अणेगे वा)यदि स्यात् अत्र कोऽपि निकटवर्त्ती एकः अनेको वा साधुः, तदा(कप्पइ से एवं वइत्तए)कल्पते तस्य एवं वक्तुं-(इमं ता अज्जो! तुमं मुहुत्तगं जाणाहि)इमं उपधिं त्वं हे आर्य! मुहूर्त्तमात्रं जानीहि-सत्यापयेः (जाव ताव अहं गाहावइकुलं जाव काउसग्गं वा ठाणं वा ठाइत्तए) यावत् अहं गृहस्थगृहे यावत् कायोत्सर्गं वा स्थानं-वीरासनादि वा स्थातुं इति (से य से पडिसुणिज्जा एवं से कप्पइ गाहावइकुलं तं चेव सव्वं भाणियव्वं) स चेत् प्रतिशृणुयात्-अङ्गीकुर्यात् तद्वस्त्रसत्यापनं तदा तस्य कल्पते गृहस्थगृहे गोचर्यादौ गन्तुं अशनाद्याहारयितुं विहारभूमिं विचारभूमिं वा गन्तुं स्वाध्यायं वा कायोत्सर्गं वा कर्त्तुं स्थानं वा-वीरासनादिकं स्थातुं, तदेव सर्वं भणितव्यं (से य से नो पडिसुणिज्जा एवं से नो कप्पइ गाहावइकुलं जाव ठाणं वा ठाइत्तए) स चेत् नो अङ्गीकुर्यात्तदा तस्य नो कल्पते गृहस्थगृहे यावत् स्थानं वा स्थातुं ॥ (५२) ॥

(वासावासं पज्जोसवियाणं) चतुर्मासकं स्थितानां (नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा) नो कल्पते साधूनां साध्वीनां वा (अणभिग्गहियसिज्जासणिएणं हुत्तए) न अभिगृहीते शय्यासने येन सोऽनभिगृहीतशय्यासनः अनभिगृहीतशय्यासन एव अनभिगृहीतशय्यासनिकः स्वार्थे इकप्रत्ययः तथाविधेन साधुना 'हुत्तएत्ति' भवितुं न कल्पते, वर्षासु मणिकुट्टिमेऽपि पीठफलकादिग्रहवतैव भाव्यं, अन्यथा शीतलायां भूमौ शयने उपवेशने च कुन्थ्वादिविराधनोत्पत्तेः (आयाणमेयं) कर्मणां दोषाणां वा आदानं-उपादानकारणं एतद्-अनभिगृहीतशय्यासनिकत्वं, तदेव द्रढयति-(अणभिग्गहियसिज्जासणियस्स) अनभिगृहीतश-

शय्याभिग्रहादि सू. ५३-५४ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५३] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [३२०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

व्यासनिक इति प्राग्वत् तस्य (अणुचाकुइयस्स) उचा हस्तादि यावत् येन पिपीलिकादेर्वधो न स्यात् सर्पादेर्वा दंशो न स्यात्, अकुचा 'कुच परिस्पन्दे' इति वचनात् परिस्पन्दरहिता निश्चलेतियावत् ततः कर्मधारयः, एवंविधा शय्या–कम्बिकादिमयी सा न विद्यते यस्य सः अनुचाकुचिको–नीचसपरिस्पन्दशय्याकस्तस्य (अणट्ठाबंधियस्स) अनर्थकबन्धिनः पक्षमध्ये अनर्थकं–निष्प्रयोजनं एकवारोपरि द्वौ त्रींश्चतुरो वारान् कम्बासु बन्धान् ददाति चतुरुपरि बहूनि अङ्कानि वा बध्नाति, तथा च स्वाध्यायविघ्नपलिमन्थादयो दोषाः, यदि चैकाङ्किकं चम्पकादिपट्टं लभ्यते तदा तदेव ग्राह्यं, बन्धनादिपलिमन्थपरिहारात् (अमियासणियस्स) अमितासनिकस्य–अबद्धासनस्य मुहुर्मुहुः स्थानात्स्थानान्तरं गच्छतो हि सत्त्ववधः स्यात्, अनेकानि वा आसनानि सेवमानस्य (अणाताविअस्स) संस्तारकपात्रादीनां आतपेऽदातुः (असमियस्स) ईर्यादिसमितिषु अनुपयुक्तस्य (अभिक्खणं अभिक्खणं अपडिलेहणासीलस्स अपमज्जणासीलस्स) वारंवारं अप्रतिलेखनाशीलस्य दृष्ट्वा अप्रमार्जनाशीलस्य रजोहरणादिना (तहारूवाणं संजमे दुरारादहए भवइ) तथारूपाणां ईदृशस्य साधोः संयमो दुराराधो भवति ॥ (५३) ॥ अत्र किरणावलीदीपिकाकाराभ्यां दुरारादयो दुष्प्रतिपाल्य इति प्रयोगौ लिखितौ, तौ चिंत्यौ, 'दुःस्वीषतः कृच्छ्राकृच्छ्रार्थात् खलु' इतिसूत्रेण खलप्रत्ययागमनेन दुराराधइति दुष्प्रतिपाल इति च भवनात्, न च वाच्यं आङा प्रतिना च व्यवधानात् खलु न भविष्यतीति 'उपसर्गो न व्यवधायी'ति न्यायात्, किं च–समागच्छतीत्यत्र आङा व्यवधानेन 'समो गमृच्छिभृच्छी'त्यादिनाऽऽत्मनेपदा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५४] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३२१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्राप्तेः, अस्य न्यायस्यानित्यत्वाद्त्रोपसर्गस्य व्यवधायकत्वं भविष्यतीत्यपि न वाच्यं, न हि खल्विषये उपसर्गस्य व्यवधायकत्वं, 'उपसर्गात् खलघञो'श्रेतिसूत्रेण ईषत्प्रलंभं दुष्प्रलंभं इत्यादिप्रयोगज्ञापनादिति दिक्। आदानमुक्त्वाऽनादानमाह—(अणायाणमेयं) कर्मणां दोषाणां वा अनादानं–अकारणं एतत्–अभिगृहीतशय्यासनिकत्वं उच्चाकुचशय्याकत्वं सप्रयोजनं पक्षमध्ये सकृच्च शय्याबन्धकत्वमिति, तदेव द्रढयति–(अभिग्गहियसिज्जासणियस्स) अभिगृहीतशय्यासनिकस्य (उच्चाकुइअस्स) उच्चाकुचिकस्य (अट्ठाबंधिस्स) अर्थाय बन्धिनः (मियासणियस्स) मितासनिकस्य (आयावियस्स) आतापिनो–वस्त्रादेरातपे दातुः (समियस्स) समितस्य–समितिषु दत्तोपयोगस्य (अभिक्खणं अभिक्खणं पडिलेहणासीलस्स पमज्जणासीलस्स) अभीक्ष्णं अभीक्ष्णं प्रतिलेखनाशीलस्य प्रमार्जनाशीलस्य ईदृशस्य साधोः (तहा तहा संजमे सुआराहए भवइ) तथा तथा–तेन तेन प्रकारेण संयमः सुखाराध्यो भवति ॥ (५४) ॥

(वासावासं पज्जोसवियाणं) चतुर्मासकं स्थितानां (कप्पइ निग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा तओ उच्चारपासवणभूमीओ पडिलेहित्तए) कल्पते साधूनां साध्वीनां तिस्रः उच्चारप्रश्रवणभूम्यः, अनधिसहिष्णोस्तिस्रोऽन्तः अधिसहिष्णोश्च बहिस्तिस्रो, दूरव्याघातेन मध्या भूमिस्तद्व्याघाते चासन्नेति आसन्नमध्यदूरभेदात्त्रिधा भूमिः प्रतिलेखितव्या (न तहा हेमंतगिम्हासु जहा णं वासासु) न तथा हेमन्तग्रीष्मयोर्यथा वर्षासु (से किमाहु भंते !) तत् कुतो हेतोः हे पूज्य ! इति पृष्टे गुरुराह—(वासासु णं ओसन्नं पाणा य तणा य बीया य पणगा य

उच्चारादिभूमयः सू. ५५–५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५६] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३२२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

हरियाणि य भवंति) वर्षासु 'ओसन्नं'ति प्रायेण प्राणाः–शङ्खनकेन्द्रगोपकृम्यादयस्तृणानि–प्रतीतानि बीजानि–तत्तद्वनस्पतीनां नवोद्भिन्नानि किसलयानि पनका–उल्लयो हरितानि–बीजेभ्यो जातानि एतानि वर्षासु बाहुल्येन भवन्ति ॥ (५५) ॥ वासावासं पज्जोसवियाणं) चतुर्मासकं स्थितानां (कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ मत्तगाइं गिण्हित्तए) कल्पते साधूनां साध्वीनां त्रीणि मात्रकाणि ग्रहीतुं (तंजहा) तद्यथा (उच्चारमत्तए पासवणमत्तए खेलमत्तए) उच्चारमात्रकं १ प्रश्रवणमात्रकं २ खेलमात्रकं ३ मात्रकाभावे वेलातिक्रमेण वेगधारणे आत्मविराधना वर्षति च बहिर्गमने संयमविराधनेति ॥ (५६) ॥

(वासावासं पज्जोसवियाणं) चतुर्मासकं स्थितानां (नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा) नो कल्पते साधूनां साध्वीनां च (परं पज्जोसवणाओ गोलोमप्पमाणमित्तेऽवि केसे) पर्युषणातः परं आषाढचतुर्मासकादनन्तरं गोलोमप्रमाणा अपि केशा न स्थापनीयाः, आस्तां दीर्घाः, 'ध्रुवलोओ उ जिणाणं, निच्चं थेराण वासवासासु' इति वचनात् (तं रयणिं उवायणावित्तए) यावत्तां रजनीं–भाद्रपदसितपञ्चमीरात्रिं साम्प्रतं चतुर्थीरात्रिं नातिक्रामयेत्, चतुर्थ्या अर्वागेव लोचं कारयेत्, अयं भावः–यदि समर्थस्तदा वर्षासु नित्यं लोचं कारयेद्, असमर्थोऽपि तां रात्रिं नोल्लङ्घयेत्, पर्युषणापर्वणि लोचं विना प्रतिक्रमणस्यावश्यमकल्प्यत्वात्, केशेषु हि अप्कायविराधना, तत्संसर्गाच्च यूकाः संमूर्च्छन्ति, ताश्च कण्डूयमानो हन्ति, शिरसि नखक्षतं वा

१ ध्रुवो लोचस्तु जिनानां नित्यं स्थविराणां वर्षावासेषु ॥

लोचविधिः सू. ५७

२०

२५

॥१९०॥

२७

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...ainelibrary.org

*** अत्र लोच-विधिः दर्शयते

प्रत सूत्रांक [५७] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३२३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

स्यात्, यदि क्षुरेण मुण्डापयति कर्त्तर्या वा तदाऽऽज्ञाभङ्गाद्याः दोषाः संयमात्मविराधना, यूकाश्छिद्यन्ते नापितश्च पश्चात्कर्म करोति शासनापभ्राजना च, ततो लोच एव श्रेयान्, यदि चासहिष्णोर्लोचे कृते ज्वरादिर्वा स्यात् कस्यचिद् बालो वा रुद्याद् घर्मं वा त्यजेत्ततो न तस्य लोच इत्याह–(अज्जेणं खुरमुंडेण वा लुक्कसिरएण वा होयव्वं सिया) आर्येण–साधुना उत्सर्गतो लुञ्चितशिरोजेन, अपवादतो बालग्लानादिना मुण्डितशिरोजेन भवितव्यं स्यात्, तत्र केवलं प्रासुकोदकेन शिरः प्रक्षाल्य नापितस्यापि तेन करौ क्षालयति, यस्तु क्षुरेणापि कारयितुमसमर्थो व्रणादिमच्छिरा वा तस्य केशाः कर्त्तर्या कल्पनीयाः। (पक्खिया आरोवणा) पक्षे पक्षे संस्तारकदवरकाणां बन्धा मोक्तव्याः प्रतिलेखितव्याश्चेत्यर्थः, अथवा आरोपणाप्रायश्चित्तं पक्षे पक्षे ग्राह्यं सर्वकालं, वर्षासु विशेषतः, (मासिए खुरमुंडे) असहिष्णुना मासि मासि मुण्डनं कारणीयं (अद्धमासिए कत्तरिमुंडे) यदि कर्त्तर्या कारयति तदा पक्षे पक्षे गुप्तं कारणीयं, क्षुरकर्त्तर्योश्च लोचे प्रायश्चित्तं निशीथोक्तं यथासङ्ख्यं लघुगुरुमासलक्षणं ज्ञेयं। (छम्मासिए लोए) षाण्मासिको लोचः (संवच्छरिए वा थेरकप्पे) स्थविराणां–वृद्धानां जराजर्जरत्वेनासामर्थ्याद् दृष्टिरक्षार्थं च 'संवच्छरिए वा थेरकप्पे'त्ति सांवत्सरिको वा लोचः स्थविरकल्पे स्थितानामिति, अर्थात्तरुणानां चातुर्मासिक इति ॥ (५७) ॥

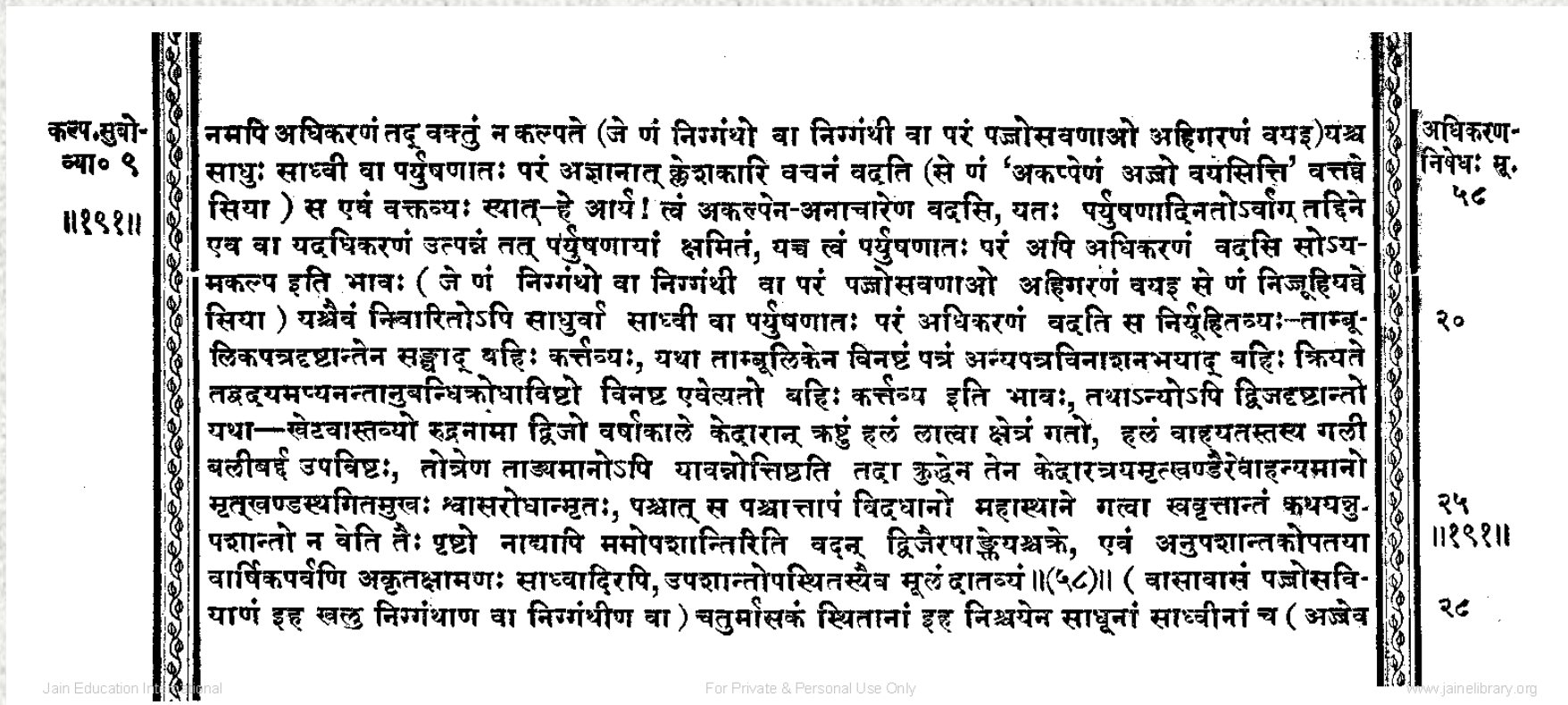
(वासावासं पज्जोसवियाणं) चतुर्मासकं स्थितानां (नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा) नो कल्पते साधूनां साध्वीनां च (परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वइत्तए) पर्युषणातः परं अधिकरणं–राटिस्तत्करं वच-

लोचविधिः सू. ५७ ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५८] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [३२५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कल्प.सुबो-व्या० ९ ॥१९१॥

नमपि अधिकरणं तद् वक्तुं न कल्पते (जे णं निग्गंथो वा निग्गंथी वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वयइ)यश्च साधुः साध्वी वा पर्युषणातः परं अज्ञानात् क्लेशकारि वचनं वदति (से णं 'अकप्पेणं अज्जो वयसित्ति' वत्तवे सिया) स एवं वक्तव्यः स्यात्–हे आर्य! त्वं अकल्पेन-अनाचारेण वदसि, यतः पर्युषणादिनतोऽर्वाग् तद्दिने एव वा यदधिकरणं उत्पन्नं तत् पर्युषणायां क्षमितं, यच्च त्वं पर्युषणातः परं अपि अधिकरणं वदसि सोऽयमकल्प इति भावः (जे णं निग्गंथो वा निग्गंथी वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वयइ से णं निज्जूहियवे सिया) यश्चैवं निवारितोऽपि साधुर्वा साध्वी वा पर्युषणातः परं अधिकरणं वदति स निर्यूहितव्यः–ताम्बूलिकपत्रदृष्टान्तेन सङ्घाद् बहिः कर्त्तव्यः, यथा ताम्बूलिकेन विनष्टं पत्रं अन्यपत्रविनाशनभयाद् बहिः क्रियते तद्वदयमप्यनन्तानुबन्धिक्रोधाविष्टो विनष्ट एवेत्यतो बहिः कर्त्तव्य इति भावः, तथाऽन्योऽपि द्विजदृष्टान्तो यथा—खेटवास्तव्यो रुद्रनामा द्विजो वर्षाकाले केदारान् कृष्टुं हलं लात्वा क्षेत्रं गतो, हलं वाहयतस्तस्य गली बलीवर्दं उपविष्टः, तोत्रेण ताड्यमानोऽपि यावन्नोत्तिष्ठति तदा क्रुद्धेन तेन केदारत्रयमृत्खण्डैरेवाहन्यमानो मृत्खण्डस्थगितमुखः श्वासरोधान्मृतः, पश्चात् स पश्चात्तापं विदधानो महास्थाने गत्वा स्ववृत्तान्तं कथयन्नुपशान्तो न वेति तैः पृष्टो नाद्यापि ममोपशान्तिरिति वदन् द्विजैरपाङ्क्तेयश्चक्रे, एवं अनुपशान्तकोपतया वार्षिकपर्वणि अकृतक्षामणः साध्वादिरपि, उपशान्तोपस्थितस्यैव मूलं दातव्यं ॥(५८)॥ (वासावासं पज्जोसवियाणं इह खलु निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा) चतुर्मासकं स्थितानां इह निश्चयेन साधूनां साध्वीनां च (अज्जेव

अधिकरण-निषेधः सू. ५८ २० २५ ॥१९१॥ २८

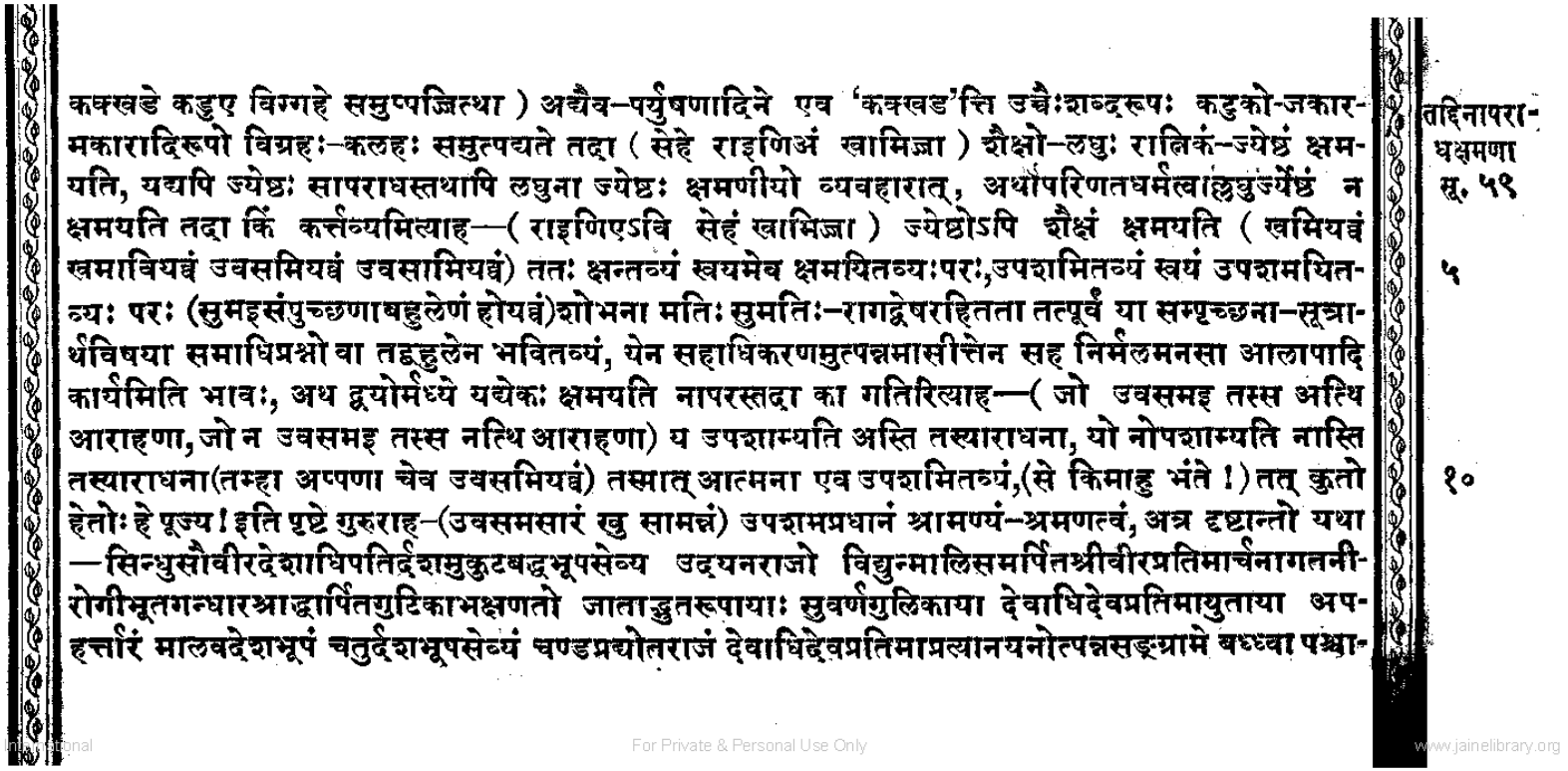
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** पर्युषण-क्षामणा-विधिः कथयते

प्रत सूत्रांक [५९] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३२६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:



कक्खडे कडुए विग्गहे समुप्पज्जित्था) अद्यैव–पर्युषणादिने एव 'कक्खड'त्ति उच्चैःशब्दरूपः कटुको-जकार-मकारादिरूपो विग्रहः–कलहः समुत्पद्यते तदा (सेहे राइणिअं खामिज्जा) शैक्षो–लघुः रात्निकं–ज्येष्ठं क्षमयति, यद्यपि ज्येष्ठः सापराधस्तथापि लघुना ज्येष्ठः क्षमणीयो व्यवहारात्, अर्थापरिणतधर्मत्वाल्लघुर्ज्येष्ठं न क्षमयति तदा किं कर्त्तव्यमित्याह—(राइणिएऽवि सेहं खामिज्जा) ज्येष्ठोऽपि शैक्षं क्षमयति (खमियव्वं खमावियव्वं उवसमियव्वं उवसामियव्वं) ततः क्षन्तव्यं स्वयमेव क्षमयितव्यःपरः,उपशमितव्यं स्वयं उपशमयितव्यः परः (सुमइसंपुच्छणाबहुलेणं होयव्वं)शोभना मतिः सुमतिः–रागद्वेषरहितता तत्पूर्वं या सम्पृच्छना–सूत्रार्थविषया समाधिप्रश्नो वा तद्बहुलेन भवितव्यं, येन सहाधिकरणमुत्पन्नमासीत्तेन सह निर्मलमनसा आलापादि कार्यमिति भावः, अथ द्वयोर्मध्ये यद्येकः क्षमयति नापरस्तदा का गतिरित्याह—(जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा, जो न उवसमइ तस्स नत्थि आराहणा) य उपशाम्यति अस्ति तस्याराधना, यो नोपशाम्यति नास्ति तस्याराधना(तम्हा अप्पणा चेव उवसमियव्वं) तस्मात् आत्मना एव उपशमितव्यं,(से किमाहु भंते !) तत् कुतो हेतोः हे पूज्य! इति पृष्टे गुरुराह–(उवसमसारं खु सामन्नं) उपशमप्रधानं श्रामण्यं–श्रमणत्वं, अत्र दृष्टान्तो यथा —सिन्धुसौवीरदेशाधिपतिर्दशमुकुटबद्धभूपसेव्य उदयनराजो विद्युन्मालिसमर्पितश्रीवीरप्रतिमार्चनागतनीरोगीभूतगन्धारश्राद्धार्पितगुटिकाभक्षणतो जाताद्भुतरूपायाः सुवर्णगुलिकाया देवाधिदेवप्रतिमायुताया अपहर्त्तारं मालवदेशभूपं चतुर्दशभूपसेव्यं चण्डप्रद्योतराजं देवाधिदेवप्रतिमाप्रत्यानयनोत्पन्नसङ्ग्रामे बध्वा पश्चा-

तद्दिनापरा-धक्षमणा सू. ५९

५

१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५९] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३२६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

कल्प.सुबो-व्या० ९ ॥१९२॥

दागच्छन् दशपुरे वर्षासु तस्थौ, वार्षिकपर्वणि च स्वयमुपवासं चक्रे, भूपादिष्टसूपकारेण भोजनार्थं पृष्टेन चण्डप्रद्योतेन विषभिया श्राद्धस्य ममाप्यद्योपवास इति प्रोक्ते धूर्त्तसाधर्मिकेऽप्यस्मिन्नक्षमिते मम प्रतिक्रमणं न शुद्ध्यतीति तत्सर्वस्वप्रदानतस्तद्गले मम दासीपतिरित्यक्षराच्छादनाय स्वमुकुटपट्टदानतश्च श्रीउदयनराजेन चण्डप्रद्योतः क्षमितः, अत्र श्रीउदयनराजस्यैवाराधकत्वं, तस्यैवोपशान्तत्वात् । क्वचित्तूभयोरप्याराधकत्वं, तथाहि—अन्यदा कौशाम्ब्यां सूर्याचन्द्रमसौ स्वविमानेन श्रीवीरं वन्दितुं समागच्छतः स्म, चन्दना च दक्षा अस्तसमयं विज्ञाय स्वस्थानं गता, मृगावती च सूर्यचन्द्रगमनात्तमसि विस्तृते सति रात्रिं विज्ञाय भीता उपाश्रयमागत्येर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य निद्राणां चन्दनां प्रवर्त्तिनीं क्षम्यतां ममापराध इत्युक्तवती, चन्दनापि भद्रे! कुलीनायास्तवेदृशं न युक्तमित्युवाच, साऽप्यूचे–भूयो नेदृशं करिष्ये इति पादयोः पतिता तावता प्रवर्तिन्या निद्राऽऽगात्, तया च तथैव क्षमणेन केवलं प्राप्तं, सर्पसमीपात् करापसारणव्यतिकरेण प्रबोधिता प्रवर्तिन्यपि कथं सर्पोऽज्ञायीति पृच्छन्ती तस्याः केवलं ज्ञात्वा मृगावतीं क्षमयन्ती केवलमासासाद, तेनेदृशं मिथ्यादुष्कृतं देयं, न पुनः कुम्भकारक्षुल्लकदृष्टांतेन, तथाहि—कश्चित् क्षुल्लको भाण्डानि काणीकुर्वन् कुम्भकारेण निवारितो मिथ्यादुष्कृतं दत्ते न पुनस्ततो निवर्त्तते, ततः स कुम्भकारोऽपि कर्करैः क्षुल्लककर्णमोटनं कुर्वन् पुनः पुनः क्षुल्लेन पीड्येऽहमित्युक्तोऽपि मुधा मिथ्यादुष्कृतं ददौ ॥ (५९) ॥

(वासावासं पज्जोसवियाणं) चतुर्मासकं स्थितानां (कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ उवस्सया

तद्दिनापराधक्षमणा सू. ५९

२०

२५

॥१९२॥

२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६०] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३२७]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

गिण्हित्तए) कल्पते साधूनां साध्वीनां च त्रीन् उपाश्रयान् ग्रहीतुं (तंजहा) तद्यथा (वेउविया पडिलेहा) जन्तुसंसक्त्यादिभयात् तत्र-त्रिषु उपाश्रयेषु द्वौ पुनः पुनः प्रतिलेख्यौ, द्रष्टव्यौ इति भावः (साइज्जिया पमज्जणा) साइज्जिधातुरास्वादने, ततः उपभुज्यमानो य उपाश्रयस्तत्सम्बन्धिनी प्रमार्जना कार्या, यतो यस्मिन्नुपाश्रये साधवस्तिष्ठन्ति तं प्रातः प्रमार्जयन्ति पुनर्भिक्षां गतेषु साधुषु पुनस्तृतीयप्रहरान्ते चेति वारत्रयं, ऋतुबद्धे च वारद्वयं, असंसक्तेऽयं विधिः, संसक्ते च पुनः पुनः प्रमार्जयन्ति, शेषोपाश्रयद्वयं तु प्रतिदिनं दृशा पश्यन्ति, कोऽपि तत्र ममत्वं मा कार्षीदिति, तृतीयदिने च पादप्रोञ्छनेन प्रमार्जयन्तीति, अत उक्तं 'वेउविया पडिलेह'त्ति ॥ (६०) ॥

(वासावासं पज्जोसवियाणं) चतुर्मासकं स्थितानां (निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा) साधूनां साध्वीनां च (कप्पइ अन्नयरिं दिसिं वा अणुदिसिं वा अवगिज्झिय भत्तं वा पाणं वा गवेसित्तए) कल्पते अन्यतरां दिशं-पूर्वादिकां अनुदिशं-आग्नेय्यादिकां विदिशं अवगृह्य-उद्दिश्य अहममुकां दिशं अनुदिशं वा यास्यामीत्यन्यसाधुभ्यः कथयित्वा भक्तपानं गवेषयितुं, (से किमाहु भंते!) तत् कुतो हेतोः हे पूज्य! इति पृष्टे गुरुराह-(उस्सण्णं समणा भगवंतो वासासु तवसंपउत्ता भवंति) 'उस्सन्न'न्ति प्रायः श्रमणा भगवन्तो वर्षासु तपःसम्प्रयुक्ताः-प्रायश्चित्तवहनार्थं संयमार्थं स्निग्धकाले मोहजयार्थं वा षष्ठादितपश्चारिणो भवन्ति (तवस्सी दुब्बले किलंते मुच्छिज्ज वा पवडिज्ज वा) ते च तपस्विनो दुर्बलास्तपसैव कृशाङ्गाश्च अत एव क्लान्ताः

वसतिविधिः पृष्ठा गमनं सू. ६०-६२ ५ १० १४

क.सु. ३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३२८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

सन्तः कदाचिन्मूर्च्छेयुः प्रपतेयुर्वा (तमेव दिसं वा अणुदिसं वा समणा भगवंतो पडिजागरंति) ततः तस्यामेव दिशि अनुदिशि वा उपाश्रयस्थाः श्रमणाः भगवन्तः सारां कुर्वन्ति–गवेषयन्ति, अकथयित्वा गतांस्तु कुत्र गवेषयन्ति ? ॥ (६१) ॥ (वासावासं पज्जोसवियाणं) चतुर्मासकं स्थितानां (कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा) कल्पते साधूनां साध्वीनां च (जाव चत्तारि पंच जोयणाइं गंतुं पडिनियत्तए) वर्षाकल्पौषधवैद्यार्थं ग्लानसाराकरणार्थं वा यावच्चत्वारि पञ्च योजनानि गत्वा प्रतिनिवर्त्तितुं कल्पते, न तु तत्र स्थातुं कल्पते, स्वस्थानं प्राप्तुमक्षमश्चेत्तदा (अंतरावि से कप्पइ वत्थए, नो से कप्पइ तं रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए) तस्यान्तराऽपि वस्तुं कल्पते, न पुनस्तत्रैव, एवं हि वीर्याचाराराधनं स्यादिति, यत्र दिने वर्षाकल्पादि लब्धं तद्दिनरात्रिं तत्रैव तस्य नातिक्रमयितुं कल्पते, कार्ये जाते सद्य एव बहिर्निर्गत्य तिष्ठेदिति भावः ॥(६२)॥

(इच्चेयं संवच्छरिअं थेरकप्पं) इतिरुपप्रदर्शने तं–पूर्वोपदर्शितं सांवत्सरिकं–वर्षारात्रिकं स्थविरकल्पं (अहासुत्तं) यथा सूत्रे भणितं तथा, न तु सूत्रविरुद्धं (अहाकप्पं) यथा अत्रोक्तं तथा करणे कल्पोऽन्यथा स्वकल्प इति यथाकल्पं, एतत्कुर्वतश्च (अहामग्गं) ज्ञानादित्रयलक्षणो मार्ग इति यथामार्गं (अहातच्चं) अत एव यथातथ्यं सत्यमित्यर्थः (सम्मं) सम्यग्–यथावस्थितं (काएण) उपलक्षणत्वात्कायवाङ्मानसैः (फासित्ता) स्पृष्ट्वा–आसेव्य (पालित्ता) पालयित्वा–अतिचारेभ्यो रक्षयित्वा (सोभित्ता) शोभित्वा विधिवत्करणेन (तीरित्ता) तीरयित्वा–यावज्जीवं आराध्य (किट्टित्ता) कीर्त्तयित्वा–अन्येभ्य उपदिश्य (आराहित्ता)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६३] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३३०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

आराध्य यथोक्तकरणेन (आणाए अणुपालित्ता) आज्ञया–जिनोपदेशेन यथा पूर्वैः पालितं तथा पश्चात् परिपाल्य (अत्थेगइआ समणा निग्गंथा) सन्त्येके ये अत्युत्तमया तत्पालनया श्रमणा निर्ग्रन्थाः (तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति) तस्मिन्नेव भवग्रहणे–भवे सिद्ध्यन्ति–कृतार्था भवन्ति (बुज्झंति) बुद्ध्यन्ते केवलज्ञानेन (मुच्चंति) मुच्यन्ते कर्मपञ्जरात् (परिनिव्वायंति) परिनिर्वान्ति–कर्मकृतसर्वतापोपशमनात् शीतीभवन्ति (सव्वदुक्खाणमंतं करिंति) सर्वदुःखानां शारीरमानसानां अन्तं कुर्वन्ति, (अत्थेगइआ दुच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव अंतं करिंति) सन्त्येके ये उत्तमया तु तत्पालनया द्वितीयभवग्रहणे सिद्ध्यन्ति यावत् अन्तं कुर्वन्ति, (अत्थेगइआ तच्चेणं भवग्गहणेणं जाव अंतं करिंति) सन्त्येके ये मध्यमया तत्पालनया तृतीयभवे यावत् अन्तं कुर्वन्ति, (सत्तट्ठ भवग्गहणाइं पुण नाइक्कमंति) जघन्ययाऽपि एतदाराधनया सप्ताष्ट भवांस्तु पुनः नातिक्रामन्तीति भावः ॥ (६३) ॥ अथैतत् न स्वबुद्ध्या प्रोच्यते किन्तु भगवदुपदेशपारतंत्र्येण इत्याह—

(तेणं कालेणं) तस्मिन् काले–चतुर्थारकपर्यन्ते (तेणं समएणं) तस्मिन् समये (समणे भगवं महावीरे) श्रमणो भगवान् महावीरः (रायगिहे नगरे) राजगृहे नगरे समवसरणावसरे (गुणसिलए चेइए) गुणशैलनामचैत्ये (बहूणं समणाणं) बहूनां श्रमणानां (बहूणं समणीणं) बहूनां श्रमणीनां (बहूणं सावयाणं) बहूनां श्रावकाणां (बहूणं सावियाणं) बहूनां श्राविकाणां (बहूणं देवाणं) बहूनां देवानां (बहूणं देवीणं) बहूनां देवीनां (मज्झगए चेव) मध्यगत एव, न तु कोणके प्रविश्य प्रच्छन्नतयेति भावः (एवमाइक्खइ)

कल्पाराधनफलं उपसंहारो वीरोक्तता सू.६३-६४ ५ १० १५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६४] गाथा ॥-॥

दीप अनुक्रम [३३१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

एवमाख्याति–कथयति (एवं भासइ) एवं भाषते वाग्योगेन (एवं पण्णवेइ) एवं प्रज्ञापयति फलकथनेन (एवं परूवेइ) एवं प्ररूपयति, दर्पणे इव श्रोतृहृदये सङ्क्रमयति (पज्जोसवणाकप्पो नामं अज्झयणं) पर्युषणाकल्पो नाम अध्ययनं (सअट्ठं) अर्थेन–प्रयोजनेन सहितं, न तु निष्प्रयोजनं (सहेउअं) सहेतुकं, हेतवो निमित्तानि, यथा गुरून् पृष्ट्वा सर्वं कर्त्तव्यं, तत् केन हेतुना ?, यतः आचार्याः प्रत्यपायं जानन्तीत्यादयो हेतवस्तैः सहितं (सकारणं) कारणं–अपवादो यथा 'अंतराऽविय से कप्पई'त्यादिस्तेन सहितं (ससुत्तं) सूत्रसहितं (सअत्थं) अर्थसहितं (सउभयं) उभयसहितं च (सवागरणं) व्याकरणं–पृष्टार्थकथनं तेन सहितं सव्याकरणं (भुज्जो भुज्जो उवदंसेइत्ति बेमि) भूयो भूय उपदर्शयति, इत्यहं ब्रवीमीति श्रीभद्रबाहुस्वामी स्वशिष्यान् प्रतीदमुवाचेति ॥ (६४) ॥ (इति पज्जोसवणाकप्पो दसासुअक्खंधस्स अट्ठममज्झयणं समत्तं) इति श्रीपर्युषणाकल्पो नाम दशाश्रुतस्कन्धस्याष्टममध्ययनं समर्थितम् ॥

इति जगद्गुरुभट्टारकश्रीहीरविजयसूरीश्वरशिष्यरत्नमहोपाध्यायश्रीकीर्तिविजयगणिशिष्योपाध्याय-श्रीविनयविजयगणिविरचितायां श्रीकल्पसूत्रसुबोधिकायां सामाचारीव्याख्यानं सम्पूर्णम् ॥
समाप्तश्चायं सामाचारीव्याख्याननामा तृतीयोऽधिकारः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवमं व्याख्यानं समाप्तं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [-]

॥ अथ प्रशस्तिः—आसीद्वीरजिनेन्द्रपट्टपदवीकल्पद्रुमः कामदः, सौरभ्योपहृतप्रबुद्धमधुपः श्रीहीर सूरीश्वरः । शास्त्रोत्कर्षमनोरमस्फुरदुरुच्छायः फलप्रापकश्चञ्चन्मूलगुणः सदाऽतिसुमनाः श्रीमान् मरुत्पूजितः ॥ १ ॥ यो जीवाभयदानडिण्डिममिषात् स्वीयं यशोडिण्डिमं, षण्मासान् प्रतिवर्षसुग्रमखिले भूमण्डलेऽवीवदत् । भेजे धार्मिकतामधर्मरसिको म्लेच्छाग्रिमोऽकब्बरः, श्रुत्वा यद्वदनादनाविलमतिर्धर्मोपदेशं शुभम् ॥ २ ॥ तत्पट्टोन्नतपूर्वपर्वतशिरःस्फूर्त्तिक्रियाहर्मणिः, सूरिः श्रीविजयादिसेनसुगुरुर्भव्येष्टचिन्तामणिः । शुभ्रैर्यस्य गुणैरिवानघ (गुणैर्गुणैरिव) घनैरावेष्टितः शोभते, भूगोलः किल यस्य कीर्तिसुदृशः क्रीडाकृते कन्दुकः ॥ ३ ॥ येनाकब्बरपर्षदि प्रतिभटान्निर्जित्य वाग्वैभवैः, शौर्याश्चर्यकृता वृता परिवृता लक्ष्म्या जयश्रीकनी । चित्रं मित्र! किमत्र मित्रमहसस्तेनास्य वृद्धा सती, कीर्त्तिः पत्यपमानशङ्कितमना याता दिगन्तानितः ॥ ४ ॥ विजयतिलकसूरिर्भूरिसूरिप्रशस्यः, समजनि मुनिनेता तस्य पट्टेऽच्छचेताः । हरहसितहिमानीहंसहारोज्ज्वलश्रीस्त्रिजगति वरिवर्ति स्फूर्त्तियुग् यस्य कीर्त्तिः ॥ ५ ॥ तत्पट्टे जयति क्षितीश्वरततिस्तुल्यांह्रिपङ्केरुहः, सूरिर्दूरितदुःखवृन्दविजयानन्दः क्षमाभृद्विभुः । यो गौरैर्गुरुभिर्गुणैर्गणिवरं श्रीगौतमं स्पर्द्धते, लब्धीनामुदधिर्दधीयितयशाः शास्त्राब्धिपारं गतः ॥६॥ यच्चारित्रमखिन्नकिन्नरगणैर्जेगीयमानं जगज्जाग्रज्जन्मजराविपत्तिहरणं श्रुत्वा जयन्तीपितुः । वाञ्छापूर्त्तिमियर्त्ति युग्ममथ तल्लेभे सहस्रं स्पृहावैयग्र्यं गुणरागिणोऽग्रिमगुणग्रामाभिरामात्मनः ॥ ७ ॥

किञ्च—श्रीहीरसूरिसुगुरोः प्रवरौ विनेयौ, जातौ शुभौ सुरगुरोरिव पुष्पदन्तौ । श्रीसोमसोमविजयाभिध-

प्रशस्तिः ५ १० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ वृत्तिकार: कृता प्रशस्ति: दर्शयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||-|| दीप अनुक्रम [-]

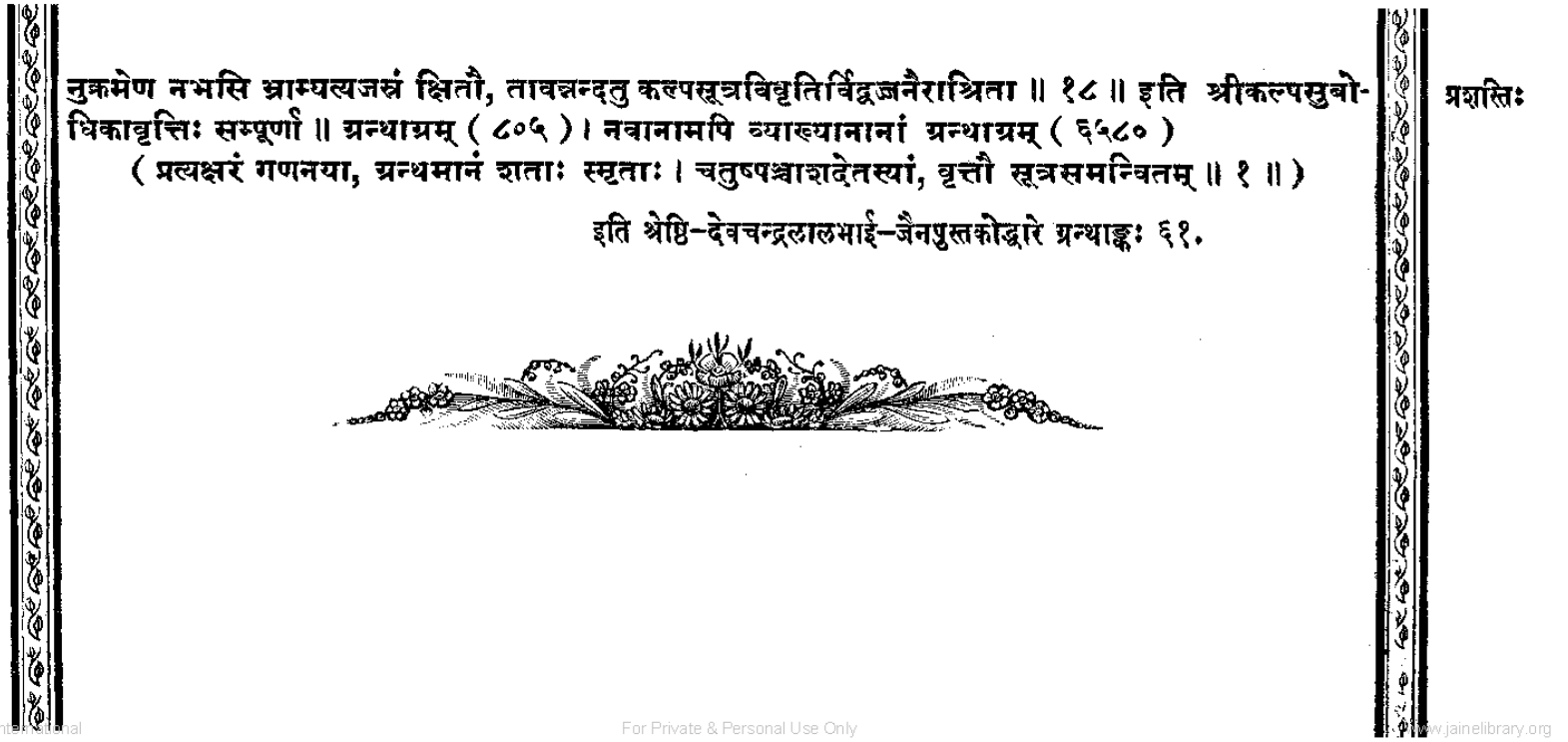
वाचकेन्द्रः, सत्कीर्त्तिकीर्त्तिविजयाभिधवाचकश्च ॥८॥ सौभाग्यं यस्य भाग्यं कलयितुममलं कः क्षमः सक्षमस्य, नो चित्रं यच्चरित्रं जगति जनमनः कस्य चित्रीयते स्म । चक्राणा मूर्खमुख्यानपि विबुधमणीन् हस्तसिद्धिर्यदीया, चिन्तारत्नेन भेदं शिथिलयति सदा यस्य पादप्रसादः ॥ ९ ॥ आबाल्यादपि यः प्रसिद्धमहिमा वैरङ्गिकग्रामणीः, प्रष्टः शाब्दिकपङ्क्तिषु प्रतिभटैर्जय्यो न यस्तार्किकैः । सिद्धान्तोदधिमन्दरः कविकलाकौशल्यकीर्त्युद्भवः, शश्वत्सर्वपरोपकाररसिकः संवेगवारांनिधिः ॥ १० ॥ विचाररत्नाकरनामधेयप्रश्नोत्तराद्यद्भुतशास्त्रवेधाः । अनेकशास्त्रार्णवशोधकश्च, यः सर्वदैवाभवदप्रमत्तः ॥ ११ ॥ तस्य स्फुरदुरुकीर्त्तेर्वाचकवरकीर्त्तिविजयपूज्यस्य । विनयविजयो विनेयः सुबोधिकां व्यरचयत्कल्पे ॥ १२ ॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥ समशोधयंस्तथैनां पण्डितसंविग्नसहृदयवतंसाः । श्रीविमलहर्षवाचकवंशे मुक्तामणिसमानाः ॥ १३ ॥ धिषणानिर्जितधिषणाः सर्वत्र प्रसृत(कान्त)कीर्त्तिकर्पूराः । श्रीभावविजयवाचककोटीराः शास्त्रवसुनिकषाः ॥ १४ ॥ युग्मम् ॥ रसनिधिरसशशिवर्षे (१६९६) ज्येष्ठे मासे समुज्ज्वले पक्षे । गुरुपुष्ये यत्नोऽयं सफलो जज्ञे द्वितीयायाम् ॥ १५ ॥ श्रीरामविजयपण्डितशिष्यश्रीविजयविबुधमुख्यानाम् । अभ्यर्थनापि हेतुर्विज्ञेयोऽस्याः कृतौ विवृतेः ॥ १६ ॥ यावद्धात्रीमृगाक्षी धरणिधरभरश्रीफलैः पूर्णगर्भं, चञ्चद्दक्षौघदर्भं निषधगिरिमहाकुङ्कुमामत्रचित्रम् । जम्बूद्वीपाभिधानं हिमगिरिरजतं मङ्गलस्थालमेतद्वृत्ते तावत् सुबोधा विबुधपरिचिता नन्दतात् कल्पवृत्तिः ॥ १७ ॥ यावद्व्योमतरङ्गिणी जलमिलत्कल्लोलमालाकुला, दिग्दन्तावलकीर्णपुष्करकणासेकप्रणष्टश्रमम् । ज्योतिश्चक्रम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता दशाश्रुतस्कंध-अध्ययन-८ कल्पसूत्र मूलं एवं विनयविजयजीरचिता वृत्तिः:

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||-||

दीप अनुक्रम [-]



नुक्रमेण नभसि भ्राम्यत्यजस्रं क्षितौ, तावन्नन्दतु कल्पसूत्रविवृतिर्विद्वज्जनैराश्रिता ॥ १८ ॥ इति श्रीकल्पसुबो-
धिकावृत्तिः सम्पूर्णा ॥ ग्रन्थाग्रम् (८०५) । नवानामपि व्याख्यानानां ग्रन्थाग्रम् (६५८०)
(प्रत्यक्षरं गणनया, ग्रन्थमानं शताः स्मृताः । चतुष्पञ्चाशदेतस्यां, वृत्तौ सूत्रसमन्वितम् ॥ १ ॥)

इति श्रेष्ठि-देवचन्द्रलालभाई-जैनपुस्तकोद्धारे ग्रन्थाङ्कः ६१.

प्रशस्तिः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिश्री दीपरत्नसागरेण पुनः संपादितः

"कल्पसूत्र" (विनयविजयजी रचिता सुबोधिका-वृत्तिः) परिसमाप्ता

इति श्रीसुबोधिकानाम्नी कल्पसूत्रटीका समाप्ता।

इति श्रेष्ठि-देवचन्द्रलालभाई-जैनपुस्तकोद्धारे ग्रन्थाङ्कः ६१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

भाग-8

पूज्य आगमोध्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधित: संपादितश्च

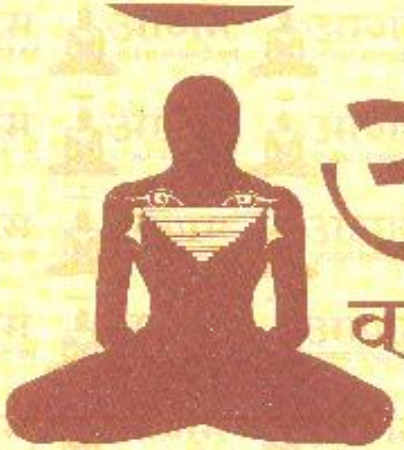
"कल्पसूत्र" [विनयविजयजी-रचिता **सुबोधिका-वृत्ति:**]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

"कल्पसूत्र" मूलं एवं सुबोधिका-वृत्ति:" नाम्ना परिसमाप्त:

'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि-2' श्रेणि, भाग-8



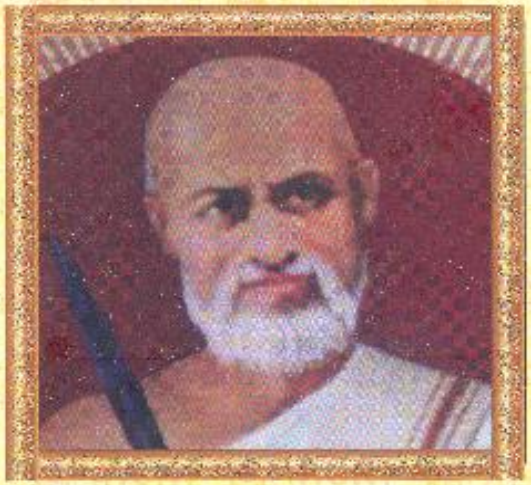
आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

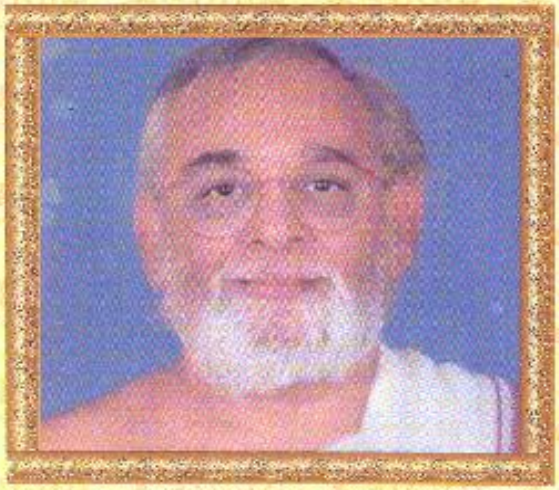
सवृत्तिक-आगम-सूत्राणि-2

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता



आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

सच्चारित्र चूडामणि स्वर्गस्थ पूज्यपाद
गच्छाधिपति आचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागर
सूरीश्वरजी महाराज साहेब

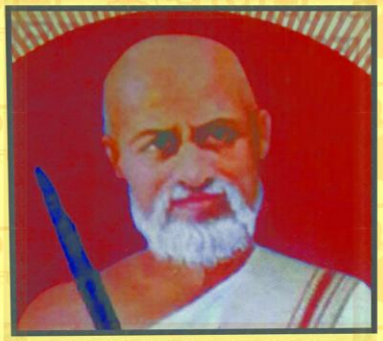


श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ

वीतराग सोसायटी, प्रभूदास ठक्कर कोलेज रोड, पालडी, अमदावाद

करीब पचास साल पहेले परम पूज्य स्व र्गस्थ गच्छाधिपति आचार्य देव श्रीमद् देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब द्वारा संस्थापित इस संघमें श्री शीतलनाथ भगवंत का जिनालय भी है, जिन के प्रतिष्ठाचार्य भी पूज्य देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी म० ही है |

इस संघमें पूज्य साधू -भगवंत एवं साध्वी -महाराज के लिए उपाश्रय भी है, जहां हर-साल चातुर्मास करवा के श्रावक-श्राविकाओ को धर्म-आराधन से लाभान्वित करवाया जाता है | इस संघमें आयंबिलभवन, उबाला हुआ पानी, ज्ञान-भण्डार एवं पाठशाला की भी बहोत अच्छी सुविधा प्रदान हो रही है | ऐसे सम्यग्-मार्गी संघ की सद्भावना और प्रभावक आचार्य पूज्य श्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणा से इस शास्त्र के लिए अनुदान प्राप्त हुआ है |



मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

(दशाश्रुतस्कंधस्य-अष्टम-अध्ययनम्)

"कल्पसूत्रं" मूलं एवं वृत्तिः

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर **मुनिश्री दीपरत्नसागरजी**

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

